हिन्दी महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों पर नारीवाद का प्रभाव

HINDI MAHILA UPANYASAKAROM KE UPANYASOM PAR NARIVAD KA PRABHAV

Thesis submitted to
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
for the Degree of
DOCTOR OF PHILOSOPHY

By

रमादेवी के. आर.
REMADEVI K. R.

Prof. & Head of the Dept.
Dr. M. EASWARI

Supervisor
Dr. M. SHANMUGHAN

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
KOCHI - 682 022

1994

CERTIFICATE

This is to certify that this THESIS is a bonafide record of work carried out by **REMA DEVI, K.R.** under my supervision for **Ph.D. (Doctor of Philosophy)** and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any University.

Dr. M. SHANMUGHAN
(Supervising Teacher)

Department of Hindi,
Cochin University of
Science & Technology
KOCHI Pin 682022

Date: 29 JUNE 1994

ACKNOWLEDGEMENT

This work was carried out in the Department of Hindi, Cochin University of Science & Technology, Kochi-22 during the period 1991-1994 (including one year F.I.P. granted to me by the University Grants Commission). I sincerely express my gratitude to the University Grants Commission and the Cochin University of Science & Technology for this help and encouragement.

Remadevi K.R.

REMA DEVI, K.R.

Department of Hindi,
Cochin University of Science & Technology,
KOCHI Pinn 682022

Date : 29 JUNE 1994.

विषय - सूची

पृष्ठसंख्या

पहला अध्याय ... ... 1 - 76

नारीवाद का उद्भव, विकास और उसके

विभिन्न रूप एवं आयाम

नारीवाद की व्याख्या - परिभाषायें - उद्भव की पृष्ठभूमि औद्योगिक क्रांति - मार्क्सवादी दर्शन - अक्तूबर क्रांति में स्त्रियों की भूमिका - नारी मुक्ति आंदोलन की शुरूआत - सफरेजिस्ट मूवमेंट - नारीवाद की वर्तमान स्थिति - भारत के नारीवादी आंदोलन - नारीवाद के विभिन्न रूप - समाजवादी फेमिनिज़म - लिबरल - {अस्तित्ववादी} फेमिनिज़म - राडिकल फेमिनिज़म ।

दूसरा अध्याय ... ... 77 - 126

भारतीय समाज और नारी

मुगल युग में नारी की हैसियत - सामंतवादी व्यवस्था और नारी - आधुनिक काल - स्वतंत्रता संग्राम का युग - स्वातंत्र्योत्तर युग - संयुक्त परिवार का विघटन - कानून स्त्री - पुरुष की बराबरी की स्थिति - भारत का वर्तमान राजनैतिक परिवेश और नारी ।

पृष्ठ संख्या

तीसरा अध्याय ... ... 127 - 196

हिन्दी उपन्यास में नारी के स्वरूप और

भूमिका

प्रेमचन्द के उपन्यासों के नारी पात्र - जैनेन्द्र के नारी पात्र - अज्ञेय के नारी पात्र - यशपाल के नारी पात्र - मोहन राकेश के नारी पात्र ।

चौथा अध्याय ... ... 197 - 344

नारीवाद के परिप्रेक्ष्य में अस्सी तक के

उपन्यासों का अध्ययन

कृष्णा सोबती - 'डार से बिछुड़ी' - 'मित्रो मरजानी' - 'सूरज मुखी अंधेरे के' - उषा प्रियंवदा - 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' - 'रुकोगी नहीं राधिका', मन्नू भण्डारी - 'आपका बंटी' - दीप्ति खण्डेलवाल - 'कोहरे' - 'प्रतिध्वनियाँ' - 'वह तीसरा' कृष्णा अग्निहोत्री - 'कुमारिकाएँ' - शशिप्रभा शास्त्री - 'नावें' - 'परछाइयाँ के पीछे' - मेहरुन्नीसा परवेज़ - 'उसका घर' मृदुला गर्ग - 'उसके हिस्से की धूप' ।

पृष्ठ संख्या

पाँचवाँ अध्याय ... ... 345 - 415

समकालीन उपन्यासों का अध्ययन

उषा प्रियंवदा - 'शेषयात्रा' - शशिप्रभा शास्त्री - 'कर्क रेखा' - मन्नू भण्डारी - 'स्वामी'- चित्रा मुद्गल - 'एक ज़मीन अपनी'- सुधा - 'कातर धूप' - ऋता शुक्ल - 'समाधान'- कृष्णा सोबती - 'ऐ लड़की'।

उपसंहार ... ... 416 - 422

ग्रंथ सूची ... ... 423 - 433

प्राक्कथन

प्राक्कथन

स्त्री और पुरुष सृष्टि के दो अभिन्न अंग हैं। सृजन और संचालन में दोनों का हक बराबर है। लेकिन दुनिया भर में नारी, समाज के ढाँचे का सबसे उपेक्षित और कमज़ोर हिस्सा रही है। बीसवीं सदी के इस प्रौद्योगिक युग में भी वह समाज में दूसरे दर्जे का इंसान है।

एक नारी होने के नाते मैं सामाजिक, पारिवारिक, धार्मिक और राजनैतिक क्षेत्र के इस अन्तर्विरोध से परिचित हूं। इसलिए स्वाभाविक रूप से नारी की स्थिति के बारे में गहराई से सोचने और समझने के लिए मैं मजबूर हो गयी। वास्तव में नारी मुक्ति आन्दोलन और महिला उपन्यासकारों की नारी मुक्ति भावना के प्रति आकृष्ट होने का कारण भी यही था। सचमुच मेरा यह दावा है कि यह अध्ययन नारी के व्यक्तित्व के विविध पक्षों के विकास का इतिहास है। साथ ही साथ मनोवैज्ञानिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में उनकी स्वतन्त्र और स्वस्थ प्रतिष्ठा का इतिहास भी है।

आज सारी दुनिया की नारी अपनी मुक्ति की तलाश में विद्रोह कर रही है। स्त्री को बराबरी के वैधानिक अधिकार देने के बाद उसे इन्सानी अधिकार देने से हम हिचकिचाते हैं। मानवी पद पाने की नारी की यह क्रांति महत्वपूर्ण है। दुनिया के आधे हिस्से, जो दुनिया के

सृजनकार और संचालक हो - की ओर ध्यान दिये बिना हमारी प्रगति अपूर्ण रहेगी । इसलिए मेरे ख्याल में प्रस्तुत विषय आज के सन्दर्भ में बेहद महत्वपूर्ण एवं समीचीन है ।

"हिन्दी महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों पर नारीवाद का प्रभाव" शीर्षक इस शोध प्रबंध में महिला लेखिकाओं के उपन्यासों के आधार पर नारी मुक्ति संघर्ष का अध्ययन हुआ है । इस के लिए 1960-1992 के दरमियान रचित उपन्यासों को ही चुना गया है ।

अध्ययन की सुविधा के लिए यह शोध प्रबन्ध पाँच अध्याय में विभक्त है । पहला अध्याय नारीवाद का उद्भव विकास, और उसके विभिन्न रूप एवं आयामों पर आधारित है । इसमें प्रागैतिहासिक काल से अभी तक के मानव समाज का विश्लेषण करके नारी के स्तर का अध्ययन किया गया है । नारीवाद की तीन मुख्य धारायें हैं - समाजवादी फेमिनिज़म, अस्तित्ववादी {लिबरल} फेमिनिज़म, और राडिकल फेमिनिज़म । इनमें से हर एक का विस्तृत अध्ययन हुआ है ।

दूसरा अध्याय "भारतीय समाज और नारी" है । इस में भारतीय परिवेश में नारी की भूमिका का ऐतिहासिक विश्लेषण किया गया है ।

"हिन्दी उपन्यास में नारी के स्वरूप और भूमिका" शीर्षक तीसरे अध्याय में हिन्दी के कतिपय महान उपन्यासकारों के उपन्यासों में चित्रित नारी के विविध स्वरूप एवं नारी चरित्र के विविध आयामों को आँका गया है ।

चौथे अध्याय में नारीवाद के परिप्रेक्ष्य में आठवें दशक तक के उपन्यासों का अध्ययन प्रस्तुत है । स्वातंत्र्योत्तर महिला उपन्यासकारों की ओर से नारीवाद के संदर्भ में लिखे गये श्रेष्ठ उपन्यासों का अध्ययन इसमें संकलित है ।

पाँचवें अध्याय में समकालीन उपन्यासों का अध्ययन है । अस्सी के बाद प्रकाशित उपन्यासों को ही इसमें सम्मिलित किया गया है ।

प्रस्तुत शोध का कार्यान्वयन कोचीन विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के आदरणीय गुरुवर डॉ. एम. षण्मुखन जी के निर्देशन में संपन्न हुआ है । उनकी प्रेरणा एवं समयानुकूल निर्देश मुझे विशेष रूप से सहायक रहे हैं । इसकेलिए मैं उनकी सदा आभारी रहूँगी । विभागाध्यक्षा डॉ. एम. ईश्वरी जी, भूतपूर्व विभागाध्यक्ष डॉ. विजयन जी तथा डॉ. अरविन्दाक्षन जी के उपदेश मुझे समय समय पर मिलते रहे, उनके प्रति भी मैं कृतज्ञ हूँ । विभाग के अन्य गुरुजनों और शोध छात्रों के प्रति भी मैं विशेष कृतज्ञ हूँ जिनसे मुझे प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से सहायता मिली है ।

बिशप एब्राहाँ मेमोरियल कोलेज के हिन्दी विभाग के सहकर्मी एवं अधिकारियों के प्रति भी मैं कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने मुझे छुट्टी देकर मेरे शोध कार्य में सहायता पहुँचाई है । कोचीन विश्वविद्यालय के पुस्तकालय की अध्यक्षा श्रीमती कुंञिक्कुट्टी तंपुरान एवं मदर तेरेसा यूनिवेर्सिटी फोर वुमन-स्टडीस के पुस्तकालय की अध्यक्षा के प्रति भी मैं अत्यन्त आभारी हूँ ।

रमादेवी के.आर.

हिन्दी विभाग,
कोचिन विज्ञान एवं
प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय,
कोची, पिन 682022

तारीख :

पहला अध्याय

नारीवाद का उद्भव, विकास और उसके विभिन्न रूप एवं आयाम

प्रथम अध्याय

नारीवाद का उद्भव, विकास और उसके विभिन्न रूप एवं आयाम

स्त्री और पुरुष सृष्टि के दो अभिन्न अंग हैं। सृजन और संचालन में दोनों का हक बराबर है। दोनों परस्पर पूरक हैं और इस संसार में दोनों की बराबर हैसियत भी है।

लेकिन स्त्री चाहे भारत की हो या अमेरिका की, धनी हो या गरीब वह आज भी पुरुष मेधा समाज के शोषण की शिकार है। इस शोषण के रूप अलग-अलग हो सकते हैं, पर वर्तमान समाज में इस शोषण से मुक्ति संभव नहीं है। सारी दुनिया की नारी अपनी मुक्ति की तलाश में विद्रोह कर रही है, भटक रही है, राह खोज रही है। कुदरत का करिश्मा कहें अथवा सभ्यता के उन्नायकों को कोसें कि स्त्री, हीन संस्कारों की जंजीरें पैरों में युगों से पहनने के लिए मजबूर है और इस कैदी जीवन को नियति मान उसने अपनी गर्दन झुका ली है। यानी साधारण गृहणी हो या कामकाजी महिला, श्रमिक हो या प्रतिष्ठित नारी, स्त्री होने की त्रासदी भोगने केलिए विवश है।

आज़ादी के अनेक वर्ष बीत चुके हैं, स्त्री को शिक्षा-दीक्षा मिली है। हर क्षेत्र में वह क्रियाशील बनी है। इसके बावजूद भी स्त्री-पुरुष के बीच सह-कर्मी और मित्र के सहज संबन्ध हम क्यों नहीं विकसित कर पाए ? स्त्री को बराबरी के वैधानिक अधिकार देने के बाद उसे इन्सानी अधिकार देने से क्यों हिचकिचाते हैं ? वह कब तक केवल नारी ही रहेगी ? उसे मानवी कब समझा जाएगा ? उसकी प्रतिभा, कार्यकुशलता और समाज को कुछ अधिक दे सकने की संभावना को कब तक स्वीकार किया जाएगा ?

आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नारी पुरुष के साथ गतिशील है। वह अपने को मानसिक तथा शारीरिक रूप से सबला बनाती जा रही है। आज की नारी न नरक का द्वार है, न पापों का मूल कारण है और न पुरुष की निजी संपत्तिमात्र। आज के सामाजिक परिवेश में नारी की शक्ति और उसके द्वारा किये गये महान कार्यों का सम्यक् आकलन होने लगा है। शास्त्रीय विधानों ने उसे "सबला" घोषित किया है। उसके विचारों में आज क्रान्ति आ गयी है। उसकी यह घोषणा है हम न तो मिट्टी के पुतले हैं, न तो उपभोग की वस्तु, हम भी पुरुष के बराबर मानव है। हम में भी पुरुष के समान स्वतंत्रता की चाह भरी हुई है।"[1]

सभी प्रकार के सामाजिक बन्धनों से आज नारी मुक्त हो जाना चाहती है। अपने सहज अधिकारों को हासिल करने की बलवती इच्छा से वह स्वतंत्र है। ज्वालामुखी की तरह वह अपने अन्दर के समस्त द्वेष को सुलगा कर शान्त हो रही थी। लेकिन आज वह ज्वाला के रूप में तबदील होकर झलमाने लगी है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के आह्वान के मुताबिक "सन् 1990 नारी-वर्ष के रूप में मनाया गया था । 1980 से 1990 तक नारी-दशक भी माना गया । इससे यह स्पष्ट है कि नारी का असमत्व प्रादेशिक ही नहीं देशीय और भौगोलिक स्तर तक बरकरार है । दर असल कुल आबादी में स्त्रियों की संख्या पुरुषों से अधिक है । उनकी समस्याओं और उनकी हालत पर ध्यान दिये बिना मानवजाति का सम्यक् व संतुलित विकास असंभव है । इस ओर ध्यान देना और इस यथार्थ को तह तक समझने की कोशिश करना ही नारी मुक्ति आंदोलन का लक्ष्य और कर्तव्य है । आज नारीमुक्ति आंदोलन का प्रमुख नारा है "आधा नहीं दो तिहाई चाहिए ।"[2] किसानों ने आधे हिस्से की जगह पूरे हिस्से की माँग की थी । आज इसी नारे को नारी मुक्ति आंदोलनकारियों ने आत्मसात् किया है ।

इक्कीसवीं सदी की ओर अग्रसर सभ्य व संस्कृत पुरुष समाज की कतिपय हैसियत नारी मुक्ति की बात सुनकर चकित होने लगा है । उनके मन में यह सवाल उठने लगा है कि औरत की कौन सी कमी है ? आज वह सुख के स्वर्ग में विहरती है, फिर भी स्वतंत्रता केलिए क्यों कराहती है ? वह और क्या मुक्ति चाहती है ? किस तरह की मुक्ति चाहती है ? लेकिन जब हम इतिहास का सूक्ष्म अध्ययन करेंगे तभी समझ में आएगा कि मानवता के विकास में औरत की क्या भूमिका रही थी । वह क्या थी, कहाँ थी, और उसकी क्या हैसियत रही थी ? इतिहास में नारी की हैसियत का आकलन युग की माँग है । इस माँग की ओर ध्यान दिये बिना मानव जाति आगे बढ़ नहीं सकती । और वर्तमान नारी की समस्याओं और उनके हल के संबन्ध में विचार भी नहीं कर सकते ।

नारीवाद की व्याख्या एवं परिभाषाएं

नारीवाद या "फेमिनिज़्म" शब्द का मूल फ्रांसीसी शब्द "फेम्मिनिस्मे" [FEMINISME] जिसका अर्थ नारी स्वतंत्रतावाद है।[3] एनसैक्लोपीडिया ऑफ फेमिनिज़्म में इसकी उत्पत्ति लाटिन के फेमिना [FEMINA] से माना गया है जिसका अर्थ नारी है। पहले इसका प्रयोग उसकेलिए होता था जिसमें स्त्री के गुण सम्मिलित हों। बाद में यह शब्द स्त्री-पुरुष समत्व केलिए तथा स्त्री-पुरुष समत्व केलिए जो आंदोलन चलाये गये उन केलिए प्रयुक्त होने लगा। दरअसल पहले यह शब्द "वुमनिज़्म" था। फिर सन् 1890 में आलीस रोज़ी ने ही पहले पहल "फेमिनिज़्म" का प्रयोग किया। अब इस शब्द का "स्त्री-मुक्ति आंदोलन के अर्थ में प्रचुर प्रचार हुआ है[4]

"फेमिनिज़्म" केलिए अनेक वैयक्तिक परिभाषायें उपलब्ध हैं। इनमें थोडा बहुत फर्क भी है। कोशों में इसकी परिभाषा "स्त्री पुरुष समानता की माँग या स्त्री की द्वितीय गौणावस्था को दूर करने की कोशिश" दी गयी है।

डोना हास्कर्ट और स्यू मोरो के मत में फेमिनिज़्म एक गत्यात्मक सिद्धांत है, जो हमेशा बदलता है, इसके विभिन्न पहलू हैं - वैयक्तिक राष्ट्रीय और दार्शनिक। वह कर्म की एक प्रकार है, यह महज़ विश्वास नहीं है। समाज के स्त्री संबन्धी दृष्टिकोण में कुछ त्रुटियाँ है, उन्हें बदलना है, इस दृष्टिकोण के आधार पर ही फेमिनिज़्म का उदय हुआ है। नारी की मुक्ति ही इसका लक्ष्य है।"[5]

मिल्लीसेन्ट ग्यारट फासेट ने कहा है, फेमिनिज़म का लक्ष्य स्त्री के प्राकृतिक विकास के साथ किसी कार्य को कार्यान्वित करने की वैधानिक स्वतंत्रता तथा उसकेलिए उसे योग्य बनाना है ।"[6]

जिल जोन्सन् के अनुसार फेमिनिज़म नारी केलिए नारी की स्वतंत्रता है ।[7]

तेरेसा बिल्लिंग्टन ग्रीज़ के विचारों में यह एक ऐसा आन्दोलन है जो, जीवन के सभी स्तरों में कोई भिन्नता के बिना सम-भावना स्थापित करना चाहता है । यह यौन भिन्नता को नष्ट करके नारी का अस्तित्व कायम रखना और मानवता के स्तर पर पुरुष-स्त्री के समान अस्तित्व को स्वीकार करना है ।"[8] देवकी जयिन के अनुसार फेमिनिज़म विभिन्न मत रखनेवाली स्त्रियों को एकत्रित करती एक संस्था है ।"[9]

बारबारा स्मित के विचार में फेमिनिज़म सभी प्रकार के वर्ण व वर्ग की नारी को मुक्ति दिलानेवाला एक राजनैतिक सिद्धांत का नाम है ।"[10]

नोवेल स्वाथी ने कहा है, मेरे विचार में यथार्थ नारीवाद का मतलब है - क्रान्तिकारी होना । क्रान्तिकारी होने का मतलब है नारी की संपूर्ण समस्या को ऐतिहासिक, समाज विज्ञान, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक धरातल पर ग्रहण करना । एक अतिवादी फेमिनिस्ट होने के कारण मेरा यह भी विचार है कि हमें शहंशाही, जिओनिज़म, साम्राज्यवाद और विभिन्न देशों वर्गों और स्त्री-पुरुष में दिखाई देनेवाली असमानता का विरोध करता है ।"[11]

रेबेलिविन के अनुसार फेमिनिज़म वास्तव में पुरुष, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र के जितने अधिकारों और अवसरों का अनुभव करते हैं, उन सब को प्राप्त करने की नारी की पुकार या माँग है ।"[12]

यों फेमिनिज़म के प्रवर्तकों की आम राय है कि फेमिनिज़म नारी-मुक्ति का संघर्ष है । एक ऐसा आन्दोलन जिसका लक्ष्य ऐसे समाज का निर्माण करना है जहाँ स्त्री को पुरुष के समान स्वतंत्र अस्तित्व हासिल हो, पुरुष के समान समाज की संपूर्ण इकाई की हैसियत भी मिले ।

नारी-मुक्ति के सिलसिले में यह प्रश्न स्वाभाविक है कि स्त्री किससे और कहाँ से स्वतंत्रता चाहती है ? फेमिनिज़म का मतलब यह नहीं है कि वह पुरुष सरीखा बनना चाहती है, जैसे कि बाल काटकर व पुरुष के समान पोशाक पहनकर । पुरुषों के साथ समान अस्तित्व और व्यक्तित्व की स्वीकृति के लिए आधुनिक नारी निरन्तर श्रम करती आ रही है । यही नारीवाद का मूलाधार है । जैसे अमेरिका के एलिज़बेत केडिस्टैण्डन ने कहा है "पुरुषों से स्वतंत्रता प्राप्त करना नहीं, बल्कि पुरुषों के अत्याचार से स्वतंत्रता प्राप्त करना ही हमारा लक्ष्य है ।"[13]

वास्तव में यह युगों से चली आ रही शोषण-प्रक्रिया की प्रतिक्रिया मात्र है । फेमिनिज़म की सभी व्याख्यायें पुरुष पेशा सामाजिक व्यवस्था से स्त्री की मुक्ति पर ही बल देती हैं । जैसे रामदरश मिश्र ने सूचित किया है - "महिला मुक्ति आन्दोलन का सामान्य पक्ष है महिलाओं के दमन की स्थिति से मुक्ति । हमारे समाज में महिलाओं के साथ जो अत्याचार होते हैं, बेकसूर उनकी आबरू से खेला जाता है, उनकी जो दुर्दशा हो रही है इन सब के

खिलाफ उनका उठना बहुत ज़रूरी है ।"[14] इसलिए आज फेमिनिज़म की यही खोज है कि क्या किसी भी ज़माने में स्त्री को पुरुष के समान ही महत्व मिला था ? क्या समाज में यह द्वितीय स्थान उस केलिए स्थायी रूप में बरकरार रहा है ? ये सब जानने केलिए हमें इतिहास की तह में गोता लगाना होगा ।

उद्भव की पृष्ठभूमि

मानवीय इतिहास के गहन अध्ययन से मालूम होता है कि मनुष्य का विकास विविध स्तरों पर हुआ है । इस विकास में स्त्रियों की भूमिका पुरुषों से किसी प्रकार कम महत्वपूर्ण नहीं रही है । प्रागैतिहासिक युग में जब समाज छोटे-छोटे कबीलों में बंट गया था, तब कबीले का मुखिया स्त्री होती थी । इस सामाजिक संरचना का आधारभूत सिद्धान्त मातृ स्रोत्र था । आर्कराइट[15] ने लिखा है - "सभी जंगली जातियों में, निम्न तथा मध्य अवस्था की ही नहीं आंशिक रूप से उन्नत अवस्था की बर्बर जातियों में भी नारी को स्वतंत्रता ही नहीं बल्कि बहुत ही आदरणीय स्थान भी प्राप्त था । घर में प्राय: नारी पक्ष शासन करता था, परन्तु यदि कोई पति या प्रेमी इतना नालायक निकले कि वह अपने हिस्से का सामान न जुटा पाये तो उसकी ज़रूर मुसीबत आ जाती थी । फिर चाहे उसके कितने भी बच्चे हो और घर में चाहे उसका कितना भी सामान हो, उसे किसी भी समय बोरिया बिस्तर उठाने की नोटीस मिल सकती थी । उसका उल्लंघन करने की कोशिश तक असंभव थी । उसकेलिए घर में ठहरना अपनी शामत बुलाना होता था और उसे अपने कुल में लौट जाना पड़ता था । गोत्र में भी मुख्य शक्ति स्त्रियों की होती थी । ज़रूरत होती तो, वे गोत्र के मुखिया को उसके पद से हटाकर साधारण योद्धाओं की पांत में वापस भेज देने में भी नहीं हिचकिचाती थी ।"[16]

युग्म परिवार में एक पुरुष एक नारी के साथ तो रहता है, एक से अधिक पत्नियों के रखने और कभी कभी पत्नी के सिवा और स्त्रियों के साथ संयोग करने का पुरुष का अधिकार भी बना रहता है। वास्तव में आर्थिक कारणों से पुरुष बहुधा अनेक स्त्रियों को नहीं रख पाता है, लेकिन सहवास काल में नारी से कठोर पातिव्रत्य की अपेक्षा की जाती है और उसका उल्लंघन करनेवाली स्त्री को कठोर दण्ड दिया जाता है। परन्तु दोनों पक्षों में से कोई भी आसानी से विवाह संबन्ध को तोड सकता है, और बच्चों पर तो पहले की तरह माता का ही अधिकार होता है।

समाज में धीरे धीरे एकनिष्ठ विवाह का प्रचलन हो गया। मोर्गन के अनुसार आदिम परिवार में पुरुषों को कभी स्त्रियों की कमी नहीं महसूस होती थी। यानी स्त्रियों का सदा बाहुल्य रहता था, बाद में स्त्रियों की कमी होने लगी और उनकी तलाश की जाने लगी। अतएव युग्म विवाह के साथ-साथ स्त्रियों की चोरी और खरीद-बिक्री भी शुरू हुई। युग्म परिवार स्वयं बहुत कमज़ोर और अस्थायी रहा, इसलिए अलग अलग परिवार की कोई विशेष आवश्यकता भी नहीं थी। अतएव पहले से चले आये युग्म परिवार का रिवाज़ टूटा नहीं। किन्तु सामूहिक परिवार में नारी को सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। समाज के आदि काल में नारी पुरुष की दासी थी, यह उन बिलकुल बेतुकी धारणाओं में एक है, जो हमें अठारहवीं सदी के जागरण काल में विरासत के रूप में मिली है।"[17]

आदि काल में आम तौर पर स्त्री का महत्व रहा था, इसका भौतिक आधार साम्ुदायिक कुटुम्ब था, जिसकी अधिकतर

स्त्रियाँ एक ही गोत्र की होती थीं और पुरुष दूसरे विभिन्न गोत्रों से आते थे। बखोफेन[18] के अनुसार सभ्यता के युग की नारी की - जिसका झूठा आदर सत्कार तो बहुत होता था, और वास्तविक काम से जिसका कोई संबन्ध नहीं रह था - सामाजिक स्थिति बर्बर युग की मेहनती नारी की सामाजिक स्थिति से कहीं नीची थी। बर्बर युग की नारियों को उनके अपने लोग सचमुच भद्र महिला [LADY, FROWA, FRAU] मालकिन समझते थे और उनकी सचमुच समाज में वैसी ही स्थिति थी।"[19]

जब पशुपालन, प्रजनन तथा धातुओं का इस्तेमाल होने लगा, बुनाई शुरू हो गयी और अन्त में जब खेत बनाकर खेती होने लगी। तब स्थिति बदल गयी। पहले पत्नियाँ बड़ी आसानी से मिल जाती थीं, पर बाद में उनको विनिमय-मूल्य प्राप्त हो गया तो खरीदी जाने लगीं। इस प्रकार सम्पदा जब एक बार परिवारों की निजी संपत्ति बन गयी और उसकी खूब बढ़ती हुई तो उसने युग्म विवाह तथा मातृसत्तात्मक समाज पर कठोर प्रहार किया। युग्म विवाह में सगी माँ के साथ बाप भी मौजूद था। परिवार के अन्दर उस ज़माने में जिस श्रम विभाजन का प्रचलन था उसके अनुसार आहार जुटाने और उसके लिए आवश्यक औजार तैयार करने का काम पुरुष का था। और इसलिए इन औजारों पर उसी का अधिकार होता था। यों जंगली युग से बर्बर युग और बर्बर युग के बाद युग्म परिवार ने जन्म लिया था। प्रामाणिक इतिहास के आरंभ में ही हम यह पाते है कि पशु-धन, परिवार के मुखियाओं की अलग सम्पदा उसी तरह होते थे, जिस तरह बर्बर युग की कलाकृतियाँ धातु के बर्तन ऐश-आराम के समान और मानव पशु यानी दास, मुखियाओं की अलग अलग संपत्ति होती थी।"[20]

आधुनिक परिवार को हम "फामिली" कहते हैं। लेकिन शुरू में [FAMILIA] "फामिलिया" शब्द में विवाहित दम्पति और उसके बच्चों का संकेत भी न था, वह केवल दासों का ही सूचक था। लैटिन भाषा के "फामुलस" [FAMULUS] शब्द का अर्थ है - घरेलू दास, और FAMILIA शब्द का अर्थ एक व्यक्ति के सारे दासों का समूह। रोम के प्रसिद्ध न्याय-शास्त्री गायस[21] के समय में भी गृहदास को एक वसीयतनामा के द्वारा अपने वंशजों केलिए छोड जाते थे। रोमन लोगों ने एक नये सामाजिक संगठन का विवरण देने केलिए इस नाम का आविष्कार किया था। उसमें उसके मुखिया के अधीन उसकी पत्नी उसके बच्चे और कुछ दास होते थे। रोमन पितृ-सत्ता के अन्तर्गत मुखिया केहाथ में इन लोगों की ज़िन्दगी और मौत का अधिकार सुरक्षित था।"[22]

संपत्ति के बढ़ने के साथ परिवार के अन्दर नारी की तुलना में पुरुष का दर्जा ज्यादा महत्वपूर्ण होता गया। पुरुष के मन में यह इच्छा ज़ोर पकडती गयी कि अपनी मज़बूत स्थिति का फायदा उठाकर उत्तराधिकार की पुरानी प्रथा को बदल दें ताकि उसके अपने बच्चे हकदार हो सकें। परन्तु मातृसत्ता के अनुसार वंश चल रहा था, इसलिए ऐसा करना असंभव था। फलत: मातृ-सत्ता को पलटना ज़रूरी बन गया। यही किया गया और इस बदलाव में उतनी कठिनाई नहीं हुई। मार्क्स और एंगेल्स के अनुसार "यह क्रान्ति जो मानव जाति द्वारा अब तक सृजित सब से निर्णायक क्रांति थी, गोत्र के एक भी जीवित सदस्य के जीवन में किसी तरह का खलल डाले बिना संपन्न हो सकती थी। सभी सदस्य जैसे पहले थे, वैसे ही बाद भी रह सकते थे। बस एक सीधा-सादा फैसला काफी था कि भविष्य में गोत्र के पुरुष सदस्यों के वंशज गोत्र में रहेंगे और स्त्रियों के वंशज गोत्र से अलग हटाकर उनके पिता के गोत्र में शामिल कर

दिये जायेंगे । इस प्रकार मातृ वंशानुक्रम तथा मातृक दायाधिकार की प्रथा उलट दी गयी और उसके स्थान पर पैतृक वंशानुक्रम तथा पैतृक दायाधिकार स्थापित किया गया ।"[23] इस प्रकार समाज में मातृ-सत्ता के स्थान पर पितृ सत्ता कायम हो गयी ।

रूसी समाजशास्त्री कोवलोवस्की के अनुसार मातृ-सत्ता का यह विनाश नारी जाति की संपूर्ण पराजय है जो ऐतिहासिक महत्व की घटना है । घर के अन्दर भी पुरुष ने अपना आधिपत्य जमा लिया । नारी पद-च्युत कर दी गयी । वह जकड दी गयी । वह पुरुष की वासना की दासी, संतान उत्पन्न करने का एक यंत्र मात्र रह गयी ।"[24]

धीरे धीरे समाज में पितृ सत्ता मजबूत हुई । पत्नी के सतीत्व की रक्षा यानी बच्चों के पितृत्व की रक्षा के लिए नारी को पुरुष की निरंकुश सत्ता के अधीन बना दिया गया । पति यदि उसे मार भी डाले तो यही समझा गया कि वह अपने अधिकार का ही प्रयोग कर रहा है ।

एक-निष्ठ परिवार के साथ सभ्य युग का आरंभ माना गया है । यह पारिवारिक व्यवस्था पुरुष की सर्वोच्च सत्ता पर आधारित होती है । उसका स्पष्ट उद्देश्य ऐसा बच्चा पैदा करना होता है जिसके पितृत्व के बारे में कोई विवाद न हो । यह इसलिए जरूरी होता है कि समय आने पर ये बच्चे अपने पिता के सहज उत्तराधिकारियों के रूप में दौलत विरासत में पा सकें । लेकिन इसमें भी यही नियम रहा कि पुरुष ही विवाह संबन्ध तोड सकता है । यानी पत्नी को त्याग देने का अधिकार पुरुष को ही है । अपनी पत्नी के प्रति, वफादार न रहने का पुरुष का अधिकार अब भी

कायम रहता है, कम से कम रीति-रिवाज़ इस अधिकार को प्रदान करते हैं। "नेपोलियनी संहिता में" [CODE OF NAPOLEON] में तो साफ तौर पर पति को यह अधिकार दिया गया है।"[25] समाज के विकास के साथ-साथ पुरुष इस अधिकार का अधिकाधिक प्रयोग करता आया है।

एकनिष्ठ परिवार के साथ समाज में दास प्रथा भी प्रचलित थी, और सुन्दर दासियाँ पूर्णत: पुरुष की संपत्ति होती थीं। अत: एकनिष्ठता पुरुष केलिए लागू नहीं थी।[26] प्राचीन यूनान के प्रसिद्ध नाटककार यूरिपिडीज़ ने पत्नी को 'OIKUREMA' यानी घर के संचालन की एक ज़रूरी वस्तु कहा है, और बच्चे पैदा करने के सिवा उनकी दृष्टि में पत्नी का और कोई महत्त्व नहीं है। दरअसल वह पुरुष की प्रमुख नौकरानी है।"[27]

एकनिष्ठ परिवार का वह पहला रूप सहज नहीं था, बल्कि अर्थ पर आधारित था। यानी प्राचीन काल की सहज विकसित सामूहिक संपत्ति के ऊपर निजी संपत्ति की विजय के आधार पर खड़ा किया गया रूप था। एकनिष्ठ विवाह का उद्देश्य केवल यह था कि परिवार में पुरुष का शासन रहे और जो बच्चे पैदा हों वे केवल उसकी अपनी सन्तान हों और वे ही उत्तराधिकारी बन सकें। अतएव एंगेल्स के अनुसार "एकनिष्ठ विवाह इतिहास में पुरुष और नारी का पुन: सामंजस्य बनकर कदापि प्रकट नहीं हुआ। उसे पुरुष और नारी के पुन: सामंजस्य का उच्चतम रूप समझना तो और भी गलत है। इसके विपरीत एकनिष्ठ विवाह नारी पर पुरुष के आधिपत्य के रूप में प्रगट होता है।"[28]

मार्क्स की एक पुरानी पांडुलिपि में यों लिखा है - सन्तानोत्पत्ति केलिए पुरुष और नारी के बीच श्रम विभाजन ही पहला श्रम विभाजन है । इतिहास में पहला वर्ग-विरोध एकनिष्ठ विवाह के अन्तर्गत पुरुष और नारी के विरोध के विकास के साथ-साथ और इतिहास का पहला वर्ग उत्पीडन पुरुष द्वारा नारी के उत्पीडन के साथ-साथ प्रकट होता है ।"[29]

इस प्रकार मानव विकास के तीन मुख्य युगों के अनुकूल विवाह के भी तीन रूप मिलते हैं । जंगल युग में यूथ विवाह, बर्बर युग में युग्म विवाह और सभ्य युग में एकनिष्ठ विवाह और उसके साथ जुडा हुआ व्यभिचार तथा वेश्यावृत्ति । बर्बर युग की उन्नत अवस्था में दासियों पर पुरुषों का आधिपत्य और बहु-पत्नीत्व का रिवाज़ है । इस क्रम में जो प्रगति हुई है, उसके साथ यह खास बात जुडी हुई है कि स्त्रियों से यूथ विवाह काल की यौन स्वातंत्र्यता अधिकाधिक छिननी जाती है, लेकिन पुरुषों से वह नहीं छिनती जाती ।

स्त्री उत्पीडन की शुरुआत

यह ऐतिहासिक सत्य है कि औजारों की खोज से पहले स्त्री-पुरुष समान रूप से शिकार करते कबीलों में स्वच्छ विचरण करते थे । फिर धीरे-धीरे पशुपालन और कृषि शुरू हुए । शिकार से अधिक महत्व जब कृषि को मिलने लगा तब से समाज में स्त्रियों का स्तर भी ऊँचा उठने लगा । पुरुष जब दूर-दूर शिकार पर या लडाई पर जाते थे तब स्त्रियाँ अपनी झोंपडियों के आस-पास एक तीखी लकडी और पत्थर की कुल्हाडी की सहायता से इधर-उधर ज़मीन में

कुछ न कुछ बोती रहती थीं। कृषि के प्रारंभिक चरण में स्त्रियों की स्थिति व सामाजिक महत्व काफी बढ़ गये। धीरे धीरे कृषि अधिक श्रम की मांग करने लगी। स्थिर रूप में एक ही जगह रहकर खेती करने का रिवाज़ शुरू हुआ। इस प्रकार कृषि;पुरुषों के हाथ आ गया। जैसे कृषि व पशुपालन का विकास होता गया वैसे इस कबीले समाज पर पुरुषों का प्रभुत्व होता गया। समाज का यह रूप मोटे तौर पर मध्यपाषाण और नवपाषाण युग का समकालीन था। वास्तव में यह मानव जाति के विकास में एक महत्वपूर्ण चरण का द्योतक था। मानव ने अपने परिष्कृत पाषाण औजारों के स्थान पर हल, धनुष और बाण जैसे अधिक श्रेष्ठतर औजारों को अपनाया तथा पशु पालन शुरू किया। फलत: भूमि व स्त्री दोनों पुरुष की निजी संपत्ति बन गयीं। धीरे-धीरे स्त्रियाँ घरेलू काम संभालने लगीं। यानी पुरुष ने स्त्री जाति को सत्ताच्युत कर दिया। यहीं से उनके शोषण व उत्पीडन की कहानी शुरू होती है।

महा-पाषाण युग से अभी तक लिखित 5000 वर्ष के इतिहास में स्त्री की दबी हुई गुलामी ही प्रकट होती है। एंगेल्स के अनुसार "आधुनिक वैयक्तिक परिवार नारी की खुली या छिपी हुई घरेलू दासता पर आधारित है, और आधुनिक समाज वह समवाय है जो केवल वैयक्तिक परिवारों के अणुओं से मिलकर बना है। आज अधिकतर परिवारों में, कम से कम मिल की वर्गों में पुरुष को जीविका कमानी पड़ती है, और परिवार का पेट पालना पड़ता है और उसकेलिए किसी कानूनी विशेषाधिकार की आवश्यकता नहीं पड़ती। परिवार में पति बुर्जुआ होता है, पत्नी सर्वहारा की स्थिति में होती है।"[30]

निष्कर्षत: यही बता सकते हैं कि आदिम मनुष्य समाज में स्त्री-पुरुष की समान हैसियत थी । बाद में स्त्री को पुरुष की तुलना में प्रमुख स्थान मिला और मातृ सत्तात्मक परिवार की स्थापना भी हुई । उसके बाद समाज में निजी संपत्ति का महत्व बढ गया । तब से नारी की स्वतंत्रता और महत्व घटने लगे । डी॰डी॰ कोसाम्बिया जैसे इतिहासकार का विचार है कि आर्यांश निवेश के बाद मातृ सत्तात्मक समूह को पितृ-सत्तात्मक रूप में पुरुषों ने बदल दिया होगा । एक ही जगह में स्थिर रूप से वास करना, कृषि की शुरुआत और नागरिकता का विकास आदि के साथ हमेशा केलिए स्त्री की दबी हुई अवस्था शुरू हुई ।"[31] एंगेल्स के अनुसार सामुदायिक कुटुम्ब में, जिसमें अनेक दम्पति और उनकी संतानें शामिल होते थे', स्त्रियाँ घर का प्रबंध किया करती थीं', और यह काम उतना ही महत्वपूर्ण सार्वजनिक और सामाजिक दृष्टि से आवश्यक उद्योग-धंधा माना जाता था जितना कि भोजन जुटाने का काम जो पुरुषों को करना पड़ता था । पितृसत्तात्मक स्थापना से यह स्थिति बदल गयी और एक-निष्ठ वैयक्तिक परिवार की स्थापना के बाद तो और भी बडा परिवर्तन आ गया । घर का काम एक निजी काम बन गया । पत्नी को सामाजिक उत्पादन के क्षेत्र से निकाल दिया गया । वह घर की मुख्य दासी बन गयी ।"[32] ऐतिहासिक दृष्टि से एकनिष्ठ विवाह प्रगति का एक बहुत बडा कदम था, परन्तु, इसके साथ साथ वह एक ऐसा कदम भी था जिसने दास-प्रथा और व्यक्तिगत धन-संपदा के साथ मिलकर उस युग का श्रीगणेश किया, जो आज तक चलता आ रहा है और जिसमें प्रत्येक अग्रगति के साथ ही सापेक्ष रूप से पश्चात्गति भी होती है ।

औद्योगिक क्रांति

नारीवाद के उद्भव के पीछे औद्योगिक क्रांति की भी अपनी भूमिका रही है। औद्योगिक क्रांति ने ज़िंदगी की सूरत ही बदल दी थी। यह स्त्री केलिए एक साथ वरदान और अभिशाप सिद्ध हुई। हज़ारों वर्षों के अंतराल में भी कई परिवर्तन हुए लेकिन इनसे लोगों की ज़िन्दगी और रहन-सहन में कोई गहरा परिवर्तन नहीं हुआ। लेकिन औद्योगिक क्रांति आमूल-चूल परिवर्तन लायी। नेहरूजी ने जिक्र किया है कि औद्योगिक क्रांति ने दुनियाँ को बड़ी बड़ी मशीनें दी। औज़ार और मशीनों की मदद से माल का उत्पादन आसान हो गया। एक तरफ तो इसने सहयोग, संगठन, समय की पाबन्दी वगैरह गुण सिखाये हैं, दूसरी तरफ लाखों की ज़िन्दगी को एक ऐसा नीरस और ऐसा मशीनी बोझ बना दिया है, जिसमें ज़रा भी खुशी आज़ादी नहीं है।"[34]

औद्योगीकरण के सहारे आधुनिक युग ने उत्पादन का एक नया रास्ता ही खोल दिया। समाज पूँजीपति और श्रमिक वर्ग में बँट गया। पूँजीपति-वर्ग मज़दूरों से काम करवाते उत्पादन बढ़ाते रहे औद्योगीकरण ने दौलत मंदों के ऐश आराम और गरीबों की गरीबी के अन्तर को पहले से भी ज्यादा बढ़ा दिया। मशीनी आविष्कारों से पैदावार के तरीकों में बड़ा जबर्दस्त फरक पड गया। 1765 ई. में इंग्लैण्ड में तीन नये उद्योगों-कपड़ा, लोहा और कोयला का विकास हुआ और कोयले क्षेत्रों तथा दूसरी जगहों पर कारखाने स्थापित होने लगे। इंग्लैंड की काया ही पलट गई। इन कारखानों के पास के उद्योग - नगर मज़दूरों से भर गये।

नये उद्योग ने बहुत से कुटीर उद्योगों को निगल लिया । औद्योगीकरण ने बेकरी की फौज खडा कर दी और लोग भूखे मरने लगे । इसी भूख ने आखिर इन कारीगरों को नौकरी की तलाश में नये कारखाने के दरवाज़ों पर ला पटका । कारखानों में मज़ूदूरों को खून पानी करने पर भी सिर्फ कौडी ही मिलती थी । औरत ही नहीं छोटे-छोटे बच्चे तक दम घोंटू वातावरण में रहने केलिए अभिशाप्त थे । उद्योग-धन्धों की नई प्रणाली की वजह बलवानों के हाथों निर्बलों का बुरी तरह शोषण होता रहा ।"[35] कुटीर उद्योग में काम करके जीविकोपार्जन करनेवाली औरतों को औद्योगीकरण की वजह से स्वच्छ वातावरण में काम करने का मौका नष्ट हो गया । लेकिन इसी के साथ तुच्छ वेतन में प्राप्त श्रम के रूप में स्त्री श्रमिकों को इन पूँजीपतियों ने पूर्णतः इस्तेमाल भी किया ।"[36]

औद्योगिक क्रांति के परिणाम स्वरूप औरत को श्रम के क्षेत्र में प्रवेश मिला और यही से औरत की स्वाधीनता के दावे को आर्थिक आधार मिला, साथ ही विरोधी वे और अधिक आक्रामक हो गये । क्रमशः स्त्रियों को घर से बाहर भी हैसियत होने लगी । वह धीरे-धीरे आर्थिक स्वतंत्रता भी प्राप्त करने लगी और स्त्री पुरुष की श्रम-शक्ति की भिन्नता भी कम हो गयी । "औद्योगीकरण से पैदावार बहुत ज्यादा बढ गई । इस माँग के कारण बडी संख्या में महिलाओं को कम वेतन पर दाखिल किया गया । लेकिन औद्योगिक क्रांति ने समाज में नारी केलिए एक नयी दिशा प्रदान की ।[37] मशीनी युग ने घर से बाहर उत्पादन के पैमाने को इतनी अधिक मात्रा में बढा दिया है कि स्वेच्छा या आर्थिक आवश्यकता के कारण स्त्रियाँ घर से बाहर के काम धन्धे अपनाने लगीं ।

पूँजीवादी व्यवस्था और नारी

पूँजीवादी व्यवस्था की यही विशेषता है कि वह केवल बिकने लायक चीज़ें पैदा करती है । इस व्यवस्था में श्रमिक केवल श्रम बेचनेवाला रह जाता है । अधिक आर्थिक लाभ कमाने की लालसा में पूँजीवाद मनुष्य को भी माल बनाता है । इस प्रकार की प्रक्रिया में अधिक दबाव या पीडा स्त्री को सहनी पडती है । सिमोन दि बोउवार ने सूचित किया है कि पूँजीवादी व्यवस्था में एक हद तक औरत की स्वतंत्र सत्ता और स्वाधीनता पुरुषों की आँखों की किरकरी बन गयीं । उसको वापस घर के दायरे में लौटने केलिए कहा गया । यहाँ तक कि मज़दूर वर्ग के पुरुषों ने भी औरत की स्वाधीनता पर बंधन लगाना शुरू किया । क्योंकि, वे औरत को अपना एक खतरनाक प्रतियोगी समझने लगे । प्रतियोगिता का एक कारण यह भी था कि औरत पुरुष की अपेक्षा कम वेतन में काम करने की अभ्यस्थ थी । सारे नारी सुधारवादी और समाजवादी आदर्श अंत में अतिवादी भेदभाव में परिणत होने लगे । औरत को हीनता की स्थिति में धकेल दिया गया और उसके प्रेरक तरीकों को न्यायोचित ठहराया गया । शाश्वत नारीत्व नीग्रो की काली आत्मा और यहूदी स्वभाव तदनुरूप होने लगे ।"[38]

औद्योगीकरण और पूँजीवाद के पहले संयुक्त परिवार में स्त्री को बाँधकर रखा गया था । औद्योगीकरण के साथ शहरीकरण और पति-पत्नी और बच्चों वाले अणु-परिवार का जन्म हुआ । यह अणु परिवार चीज़ों को आसानी से बिकने का बाज़ार बना । पूँजीवादी सभ्यता में माल के विज्ञापन केलिए स्त्री के नंगेपन का

प्रचुर प्रयोग होने लगा । इस प्रकार स्त्री का शरीर भी केवल एक माल बन गया । यों पूँजीवाद ने श्रमिकों और स्त्रियों को माल के रूप में तबदील कर दिया । यद्यपि औद्योगीकरण ने एक हद तक स्त्री को रसोई से समाज में आने तथा पैसे कमाकर स्वावलंबी बनाने में अवश्य सहायता दी । लेकिन "वस्तु" के रूप में उसकी गहरी अवनती हुई ।

नारी के प्रति मार्क्सवाद का रुख

मार्क्सवाद, औद्योगिक क्रांति व पूँजीवादी व्यवस्था की उपज है । वह भौतिकवादी दर्शन है । इसलिए स्त्री-पुरुष-संबन्धों को भौतिक विकास के परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन करता है । स्त्री पुरुषों के संबन्ध का आधार अर्थ है । पहले सगोत्र परिवार में माँ का राज्य था । किन्तु वह अन्याय और असमानता का राज्य नहीं था .... इसलिए मेरा तेरा का प्रश्न ही नहीं था । माँ का सभी पुरुषों पर समान अधिकार था ।"[39]

धीरे-धीरे समाज में उत्पादन के साधनों का विकास हुआ । इसलिए यह आवश्यकता अनुभव की गयी कि सभी को पृथक कार्य करने केलिए स्वतंत्र किया जाय । कार्य विभाजन की इस प्रक्रिया की वजह से परिवार के अन्दर स्त्री और पुरुष के बीच श्रम विभाजन हुआ । पुरुष जो अपेक्षाकृत शक्तिशाली होते थे घर के बाहर के कार्य जैसे भोजन के साधन जुटाने लगे, स्त्रियाँ, बूढे, बच्चे अपेक्षाकृत हल्के कार्यों में जुटे रहे । इस प्रकार उम्र और लिंग भेद के अनुसार श्रम का स्वाभाविक और प्रथम विभाजन हुआ ।"[40] पूँजीवाद ने निजी संपत्ति को महत्व दिया जो पितृ सत्तात्मक व्यवस्था की शुरुआत का

संकेत करता है । उत्पादन के साधनों पर पुरुष समाज ने आधिपत्य साबित किया । पुरुष, परिवार और गण में भी प्रमुख होता गया । समाज में इतने बड़े आर्थिक परिवर्तनों के परिणाम स्वरूप ही नारी को अपने अधिकार खोना पड़ा ।"[41] यों नारी को पुरुष की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी ।

एंगेल्स ने स्त्री पुरुषों के संबन्धों को शोषण पर आधारित बताया । उनके अनुसार - "आधुनिक वैयक्तिक परिवार नारी की खुली या छिपी हुई घरेलू दासता पर आधारित है । आज अधिकतर परिवारों में कम से कम मिल्की वर्गों में, पुरुष को कमाकर परिवार का पेट पालना पड़ता है और इससे परिवार में उसका आधिपत्य कायम हो जाता है, और उसकेलिए किसी कानून की आवश्यकता नहीं पड़ती । परिवार में पति बुर्जुवा होता है, पत्नी सर्वहारा की स्थिति में रहती है।"[42]

जैसे सूचित किया गया है पूँजीवाद स्त्री को चूल्हा-चक्की से कुछ समय केलिए बाहर ले आया लेकिन सारे संबन्ध अर्थ पर केन्द्रित होने के कारण स्त्री-पुरुष संबन्धों में तनाव आ गया। पूँजीवाद का आधारभूत सिद्धान्त है "मुनाफा" । मार्क्स ने इसी तथ्य की ओर स्पष्ट संकेत किया है कि पूँजीवादी विषमता के कारण आधुनिक परिवार छिन्न-भिन्न हो गया है । पूँजीपतियों ने बच्चे और स्त्रियों को उत्पादन का - साधन मात्र माना । उत्पादन के औजार के रूप में स्त्री को मान्यता दी गयी । पूँजीवादी समाज में उत्पादन के साधनों पर व्यक्तिगत स्वामित्व के कारण नारी श्रम करती हुई भी पुरुष की दासी है । एक ओर आम वर्ग की नारी को महँगाई और बेरोजगारी के कारण अपनी जीविका के हेतु शरीर तक बेचना पड़ता है, दूसरी ओर अमीर वर्ग की स्त्रियाँ, अधिकार छीनने, निर्णय और विकास के द्वार बन्द होने से विवश हैं । समाज केलिए ये एक प्रकार से

बोझ है, क्योंकि वे केवल खर्च ही करती रहती हैं, समाज के लिए कुछ उत्पन्न नहीं करती है। इसलिए इन्हें भी पुरुष का मोहताज रहना पड़ता है ।[43] पूँजीवादी समाज की नारी की दयनीय स्थिति और शोषण से अवगत महान क्रान्तिकारी लेनिन ने कहा था - "पूँजीवादी समाज की ये दोहरी शिकार व दया का पात्र हैं । पहले तो वे शिकार है उस समाज की मनहूस संपत्ति व्यवस्था की और दूसरे उसकी लानत भरी नैतिक ढकोसलबाजी की ।"[44]

मार्क्सवादियों के अनुसार संतान उत्पन्न करना केवल स्त्री का ही दायित्व नहीं, बल्कि यह कार्य समाज का एक महत्वपूर्ण कार्य है । मानव समाज का अस्तित्व इसी पर निर्भर है ।

मार्क्सवाद नारी की आर्थिक स्वतंत्रता को अत्यंत आवश्यक मानता है। इसलिए मार्क्सवादियों का कहना है, नारी की स्वतंत्रता, साम्यवादी व्यवस्था में ही संभव हो सकती है, क्योंकि उसमें उत्पादन के साधनों पर सामूहिक अधिकार होगा, सामाजिक विकास में स्त्री-पुरुषों का बराबर का योगदान होगा । तब नारी न तो किसी की दासी बनकर रहेगी और न अपनी जीविका केलिए उसे किसी के आगे बलात् समर्पण करना पड़ेगा । एंगेल्स ने बताया है "आधुनिक परिवार में नारी पर पुरुष के आधिपत्य का विशिष्ट रूप और उन दोनों के बीच वास्तविक सामाजिक समानता स्थापित करने की आवश्यकता तथा उसका ढंग, केवल उसी समय पूरी स्पष्टता के साथ हमारे सामने आयेगी, जब पुरुष और नारी कानून की नज़र में बिलकुल समान हो जायेंगी । तभी जाकर यह बात साफ होगी कि स्त्रियों की मुक्ति की पहली शर्त यह है कि पूरी नारी-जाति फिर से सार्वजनिक उद्योग में प्रवेश करे और इसकेलिए यह आवश्यक है कि समाज की आर्थिक इकाई होने के वैयक्तिक परिवार के गुण नष्ट कर

दिये जाये ।"[45] यानी मार्क्सवाद नारी के स्वतंत्र व्यक्तित्व के विकास का समर्थन करता है ।

अक्तूबर क्रान्ति में स्त्रियों की भूमिका

यह सत्य है कि सत्रहवीं सदी में ही यूरोप में आधुनिक प्रजातंत्र का बीज बोया गया । उस समय से व्यक्ति-स्वतंत्रता की बात भी शुरू हुई । फ्रान्सीसी क्रान्ति के नारे "स्वतंत्रता, समानता और भाई चारा [LIBERTY, EQUALITY, FRATERNITY] तथा सार्वजनिक मतदान के हक ने सभी दलित वर्गों में स्वतंत्रता के नव अंकुर को उगा दिया ।"[46]

लेकिन मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित अक्तूबर क्रान्ति ने इसे और भी मज़बूत किया था । आठ मार्च को क्रांति की पहली जब गड़गड़ाहट सुनाई पड़ी, उसमें नारियाँ भी शामिल थीं । कपड़े कारखानों की मजदूरिनें बाहर निकल आयीं और उन्होंने बाज़ार में प्रदर्शन किया । रोटी की पुकार मचाई गयी और निरंकुशता का नाश हो के नारे लगाये गये ।

अक्तूबर क्रांति सचमुच मज़दूर वर्ग की विजय रही थी । क्रांति के दरमियान लेनिन ने स्त्री शक्ति की पहचान ली थी । इसलिए अक्तूबर क्रांति के बाद नारियों को घरेलू कामों से मुक्ति दिलाने के उद्देश्य से भोजनशालाओं और शिशु संरक्षण केन्द्रों की स्थापना की गई । तलाक के नियमों का सरलीकरण भी हुआ । नारी को भ्रूण हत्या का अधिकार भी मिला ।

अक्तूबर क्रांति के बाद रूस में लेनिन के नेतृत्व में समाजवादी सत्ता ने नारियों की समस्याओं को सुलझाने की कोशिश की थी। लेनिन का विचार था कि "जब तक परिवार के अन्दर बूजर्वा संबन्ध मौजूद है तब तक नारी की गुलामी का अंत नहीं हो सकता है।"[47] इसलिए लेनिन ने औद्योगिक क्षेत्रों में स्त्रियों की नियुक्ति की और पुरुष के साथ समान अधिकार देने का प्रबन्ध भी किया। सब कार्यों के कार्यान्वियन में अलक्सान्द्रा कोल्लनताई नामक महिला ने लेनिन का साथ दिया था। उन्होंने रूस में नारियों को संगठित करने का प्रयत्न भी किया। स्त्री को पारिवारिक व्यवस्था के मंझधार में लाना उनका लक्ष्य था। नारी कई प्रकार के शोषणों की शिकार है। उनमें एक है लैंगिक शोषण। यौन भूख की पूर्ति भी आवश्यक है। यह भूख और प्यास के समान है यह विचार आलोचना का विषय बना। लेनिन के बाद पार्टी की नीति एक हद तक नारी-विरुद्ध हो गयी। स्टालिन ने उत्पादन को महत्व दिया। लेकिन नारी का उद्धार उनके ध्यान का विषय नहीं रहा। फिर भी मार्क्सवादी दर्शन और समाजवादी आंदोलन के पुरोधाओं की कोशिश से नारी की हालत में बदलाव आया और इन सबकी वजह समाजवादी नारीवादी आंदोलन का सूत्रपात भी हो गया।

नारीवाद के उद्भव की पृष्ठभूमि यही है। प्रागैतिहासिक काल से लेकर सभ्य संस्कृत युग तक के अध्ययन को आधार बनाकर फेमिनिज़्म ने अपनी राष्ट्रीय विचारधारा का ढांचा बनाया है।

नारी मुक्ति आंदोलन की शुरुआत

नारी मुक्ति आंदोलन का उद्भव पाश्चात्य देशों में हुआ था। इसकी शुरुआत मेरीवुल्फटेनक्रेफ्ट की "एविन्डिकेशन ओफ द राइट्स

आॅफ विमेन के प्रकाशन से माना जाता है।"[48] इसका प्रकाशन 1792 में लंदन में हुआ था । पश्चिमी समाज में शादी के बाद स्त्री को अपने शरीर तक का हक पुरुष को सौंपना पड़ता था । यानी आर्थिक ही नहीं शारीरिक स्वतंत्रता भी बिलकुल नहीं थी ।"[49] इसके विरुद्ध मेरी वुलफटेन क्रेफ्ट ने पहली बार आवाज उठाई । इस पुस्तक में मेरी ने लड़कों के साथ लड़की के समान अधिकार की माँग की । उन्होंने अपनी पुस्तक के ज़रिये दुनिया भर की स्त्रियों को जागृत किया कि परंपरागत "स्त्रीत्व" का कोमल संकल्प तक पुरुष की इस रक्षक वृत्ति का ही परिणाम है । बाद में शनै: शनै: सारे राष्ट्र एक एक करके इस आंदोलन में शामिल हो गए ।

उन्नीसवीं शताब्दी के स्त्री सुधारकों में जे.एस. मिल का नाम उल्लेखनीय है । मिल ने अपने प्रसिद्ध निबंध में याद दिलाया कि मानव होने के नाते पुरुष और स्त्री समान है ।"[50] लेकिन इस समानता का अधिकार नारी केलिए वर्जित रहा है । वैवाहिक जीवन में पत्नी को पति की दासी या सेविका माना जाता है । नारी होने के नाते बच्चे को जन्म देने के कारण अनेक पारिवारिक बन्धनों को स्वीकार करने केलिए वह मजबूर हो जाती है । जे.एस. मिल ने वैवाहिक जीवन में नारी की इस गुलामी के विरुद्ध संघर्ष किया था । मिल के बाद यूरोप की नारियाँ मिसेस फासेट के नेतृत्व में संगठित हुई । लियोन रिचर ने 1869 ई. में "द राइट्स ओफ वुमन" नामक पुस्तक की रचना की । 1878 में इस विषय में एक अन्तर्देशीय सम्मेलन बुलाया गया । इस समय तक मतदान के हक के बारे में माँग न हुई थी । समाज में ऐसा विश्वास था कि पति-पत्नी की एकता में जब परिवार बसता है तो पत्नी का मत पति का मत होना चाहिए । इसलिए पत्नी केलिए अलग मतदान की ज़रूरत नहीं है ।"[51]

सफरेजिस्ट मूवमेन्ट

पश्चिमी देशों में नारी ने राजनीतिक अधिकारों की मांग को लेकर जो आन्दोलन चलाया उसे "सफरेजिस्ट मूवमेंट" कहा जाता है। इसका आरंभ सबसे पहले 1840 में न्यूयोर्क में हुआ था। 8 मार्च 1857 में न्यूयोर्क में कपडे की मिलों की कामगार स्त्रियों ने अधिक वेतन व काम का समय 15-16 से घटाकर 10 घंटे करने की मांग को लेकर एक जुलुस निकाला जो विश्व भर की पहली घटना थी। इसको समकालीन ट्रेड यूनियनों ने पसंद नहीं किया। यह आन्दोलन पुलिस द्वारा कुचला गया। पर इसने महिला आंदोलन के इतिहास में एक अमिट लकीर छोड दी। इस प्रथम संगठित प्रदर्शन को महिला मुक्ति आन्दोलन की प्रेरणा मानते हुए आठ मार्च को अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस के रूप में मनाये जाने लगा है। तब से लेकर अमेरिका में मतदान के हासिल करने केलिए स्त्रियों ने घोर संघर्ष शुरू किया। 1915 में इस आन्दोलन में भाग लेनेवाली नारियों की संख्या सिर्फ न्यूयोर्क में पांच लाख थी। सूसन बी॰ आन्तोणी और एलिज़बथ काडिस्तान आदि महिलाओं के नेतृत्व में एक संगठन की स्थापना हुई और उसके नेतृत्व में मतदान के अधिकार केलिए घोर संघर्ष हुआ। एलिसबेथ काटिस्टन के नेतृत्व में तैयार किये गये घोषणा पत्र द्वारा स्त्रियों ने इसकी मांग की कि हम इन सत्यों को स्वतः प्रामाणिक मानते हैं कि सभी स्त्री पुरुष समान हैं। उनका सृजन समान ढंग से हुआ है। लेकिन मानव का इतिहास पुरुष द्वारा स्त्री को बराबर चोटें पहुंचाने की घटनाओं का इतिहास रहा है। कौन सी चोटें ?; उसने उसे कभी मतदान की अनुमति नहीं दी थी। उसने ऐसे कानून बना रखे थे जिनसे उसका कोई ताल्लुक ही नहीं था। उसने संपत्ति के सारे अधिकार छीन लिये थे, उसकी कमाई हुई मज़दूरी तक। सारे पेशे अपने लिए सुरक्षित कर रखे थे और स्त्रियों को

उपदेशक या वकील बनने तक की इज़ाजत नहीं थी । उसे शिक्षा प्राप्त करने का हक तक नहीं था । उसने उसे एकनिष्ठ अवस्था में रखा है और वहीं पर रोक भी लगायी है । इसलिए हम लोग उन सभी अधिकारों पर बल देती हैं जो संयुक्त राज्य के नागरिकों को प्राप्त हैं ।"[52]

उस सम्मेलन में एलिज़बेथ ने घोषणा की "स्त्रियों को मतदान का अधिकार है ।"[53] इस बात को लेकर सारी खलबली हुई । तब फ्रैड्रिक डग्लस ने घोषणा की "गुलामी स्त्रियों केलिए उतनी ही बुरी चीज़ है, जितनी नीग्रों केलिए । इसे खत्म करने का एक उपाय सब को मतदान का अधिकार प्रदान करना है ।" डग्लस महोदय की सहायता से ऐलिज़बेथ स्टैण्टन उस दिन विजयी रही । फिर यह पवित्र संग्राम ज़ारी रहा । एलिज़बेथ ने जब वकील स्टैण्टन से शादी की तब विवाह के सुलहनामे की पंक्तियों में से उन्होंने प्रेम सम्मान और आज्ञापालन में से "आज्ञापालन" को निकालने की सावधानी बरती थी । शादी के बाद हेनरी लन्दन में आयोजित विश्व-दासता विरोधी सम्मेलन के प्रतिनिधि के रूप में चले गये तो एलिज़बेथ ने सोचा कि वह भी सम्मेलन की प्रतिनिधि के रूप में भाग लेगी और सारी कार्यवाहियाँ भी सुन सकेगी । उस सम्मेलन में नाण्टकेट की लुक्रेशिया नामक अध्यापिका से उसकी मुलाकात हुई । लुक्रेशिया पुरुषों के समान ही सभी विषय पढाती थी, लेकिन उन्हें आधा वेतन ही मिलता था । इसलिए उन्होंने अपना सारा जीवन अन्याय और दासता के विरुद्ध संघर्ष करने में लगा दिया । लन्दन में स्त्रियों के अधिकारों के जिहाद केलिए अपने जीवन को समर्पित करनेवाली

लुक्रेशिया का परिचय असल में एलिज़ाबेथ केलिए एक मशाल का हस्तान्तरण जैसा था । फिर दोनों एक साथ आगे बढ़ी ।

वे गहराई से सोचने लगी थी कि क्या स्त्रियों की दासता को खत्म करने में किसी की रुचि नहीं थी ? क्या इसके विरुद्ध एकजुट होकर कोई आवाज़ नहीं उठायी थी ? फलत: दोनों ने मिलकर यह फैसला किया कि उन्हें अमेरिका में स्त्रियों की स्थिति सुधारने केलिए कुछ न कुछ ज़रूर करना है । इसकेलिए सम्मेलन बुलाया गया । उस सम्मेलन में एलिज़ाबेथ का परिचय सुधारवादी ऐन्थोनी रोचस्टर की पुत्री सूसन से हुई । फिर ये तीनों मिलकर नारी जागरण केलिए काम करने लगीं ।

सन् 1872 में सूसन एन्थोनी, रोचेस्टर की सोलह महिलाओं के साथ मतदान केन्द्र पर गयी और उन्होंने यह घोषणा की कि वे अब मतदान करने जा रही हैं और उन्हें कोई रोक नहीं सकता । किसी ने उन्हें रोका तो नहीं लेकिन कुछ दिन बाद अवैध मतदान केलिए उन्हें गिरफ्तार किया गया यही तो वह चाहती भी थी । मुकदमा चलाया गया और उन्हें अपराधी करार दिया गया और उनपर "एक हज़ार डालर" का जुर्माना किया गया । सूसन ने बयान में कहा - "मैं जुर्माना नहीं चुकाऊँगी, कोई आदमी मुझसे जुर्माना नहीं वसूल कर सकता ।"[54] जिस न्यायाधीश ने उन्हें दण्डित करके गिरफ्तार करना चाहा था, उसमें इतना साहस नहीं था कि वह उन्हें जेल भेज सके ।

इसके बाद सूसन ने स्त्रियों को मताधिकार के महत्व को समझाने, पश्चिम के अनेक देशों का दौरा किया । सन् 1869 में

वियामिंग, यूटा, कालराडो और सुदूर पश्चिम के अनेक देश एक एक करके इस आंदोलन में शरीक हो गए ।

नारी जागरण के क्षेत्र में कार्यरत और महिलाएं हैं - एलमा विलर्ड और मेरीलियन, ऐलिज़बेथ केलकवाले लूसी स्टोन आदि । एलमा विलर्ड ने साहस के साथ ट्राय नागर में लडकियों केलिए सेमिनारी खोली, जहाँ लडकियों को भी लैटिन, ग्रीक, गणित, विज्ञान आदि कठिन विषय पढाये जाते थे, जिन्हें अक्सर लड़के कोलेज़ों में पढते थे ।

मेरी लियन का लक्ष्य इससे भी ऊँचा था वह स्त्रियों के लिए कोलज खोलने में सफल हो गई । ओहीयो में ओबरलिन कालेज ने स्त्रियों केलिए भी पुरुषों के समान ही अपने दरवाज़े खोल दिए । यह वास्तव में स्त्रियों और नीग्रों को एक साथ भर्ती करनेवाला दुनियाँ का पहला कोलेज था । कालेज की स्थापना करके मेरी लियन ने कहा - "अगर आपके सामने कोई महान लक्ष्य हो तो आपको किसी भी बाधा, किसी भी कठिनाई से विचलित नहीं होना चाहिए । जहाँ कोई भी जाने को तैयार न हो उसे कर दिखाइये ।"[55]

सन् 1900 तक आते आते एक एक होकर सारे देशों ने स्त्रियों को मताधिकार प्रदान कर दिया और उन्हें दूसरे हक भी प्राप्त हो गए । प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान राष्ट्रपति विल्सन ने कहा था कि "यह प्रजातन्त्र के लिए युद्ध है, दुनिया में सर्वत्र प्रजातंत्र की स्थापना केलिए युद्ध है, तो फिर इसकी शुरुआत घर पर ही क्यों न की जाय ? क्यों न इसकी शुरुआत संयुक्त राज्य में हर जगह स्त्रियों को मताधिकार प्रदान करने से की जाय ? यही प्रजातंत्र है ।"[56]

इस प्रकार संयुक्त राज्य में 1919 में संविधान का उन्नीसवाँ संशोधन पारित किया - जिसके द्वारा सभी स्थानों पर महिलाओं को मताधिकार प्रदान किया गया। इस प्रकार मतदान का अधिकार केलिए नारियों ने घोर संघर्ष किया था और 26 अगस्त 1920 में अमेरिका में नारी को मताधिकार की संवैधानिक मान्यता प्राप्त हुई।

ब्रिटन में 1866 में जे.एस. मिल द्वारा नारियों को मतदान का अधिकार दिलाने का प्रस्ताव पार्लमेंट में रखा गया। 1903 में इस लक्ष्य को लेकर वहाँ एक संगठन की स्थापना हुई थी। 1918 में निरन्तर संघर्ष के बाद ही उन्हें मताधिकार मिल गया था।

स्वीडन में स्त्रियों ने शिक्षा, काम और स्वतंत्रता की माँग की लेकिन सालों के इन्तज़ार के बाद ही ये अधिकार मिले।

1907 में नोर्वे की और सन् 1906 में फिनलैण्ड की नारी ने भी मताधिकार प्राप्त किया।

जर्मन में 1848 में लूइस ओटो ने राष्ट्रीय स्तर के सुधारों में सहभागी बनने केलिए नारी के अधिकार की माँग की तथा सन् 1865 में नारी-समिति की स्थापना की। महिला कामगार तथा समाजवादियों ने एक संघ बनाया। सन् 1914 के युद्ध में नारियों ने सक्रिय भाग लिया और जर्मनी की हार के पश्चात् स्त्रियों को मतदान का अधिकार मिल गया।

कानडा में इस आन्दोलन के नेतृत्व में दो संस्थाएँ थीं - नेशनल सफरेज एसोसियेशन और नेशनल कौंसिल आफ विमेन। वहाँ

1919 में नारियों के मताधिकार संबन्धी नियम पारित हो गया ।

सोवियत रूस में नारी-मुक्ति आन्दोलन ने तीव्र गति से प्रगति की । उन्नीसवीं सदी में छात्राओं की ओर से इस आन्दोलन की शुरुआत हुई । रूस-जापान युद्ध के दौरान औरतों ने समानता केलिए सुसंगठित माँग प्रस्तुत की । 1905 के बाद उन्होंने राजनीतिक हड़तालों में भी हिस्सा लिया और लेनिन ने उन्हें राजनीतिक और आर्थिक समानता प्रदान की । इस प्रकार कई शताब्दी की हड़ताल और हल-चल के बाद बीसवीं सदी के प्रारंभ के साथ स्त्रियों को मतदान का हक पूर्ण रूप से मिल गया ।"[57]

अब भी कुवैत, मोरोको जैसे राष्ट्रों में स्त्रियाँ मतदान केलिए आवाज़ उठा रही हैं । यों नारी आन्दोलन के इतिहास में सफरेजिस्ट मूवमेंट से लेकर अनेक महत्वपूर्ण घटनाएँ घटीं जो नारी की वैयक्तिकता को प्राथमिकता देती हुई सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों में उसका स्थान निर्धारित करने में बेहद सफल हुई है ।

नारीवाद की वर्तमान स्थिति

मतदान का हक हासिल करने के बाद सालों तक इस क्षेत्र में चुप्पी सी छायी रही । फिर 1960 के आसपास अमेरिका नारीवादी आंदोलन का अगुवा बना । सन् 1960 में घटित मानवीय अधिकार आंदोलन ने, नागरिक भेद भाव के खिलाफ आवाज़ उठायी । असल में यह आंदोलन अमेरिका द्वारा वियतनाम के हमला के विरुद्ध हुआ था । बाद में वह वामपन्थी आन्दोलन के प्रभाव से नारी

मुक्ति आन्दोलन में तबदील हो गया । इस नारी मुक्ति आन्दोलन की मूल भावना नारी को अपने-आपको उपेक्षित पाना था । राजनीतिक कार्यों में कन्धे से कन्धे मिलाकर काम करनेवाली महिला को समाज में गौण भूमिका मिली तो उसमें असन्तोष उत्पन्न हुआ । इससे यह आन्दोलन व्यापक होता गया ।"[58] यह नया वामपंथी आंदोलन मुख्य रूप से मध्यवर्गीय शिक्षित नारियों तक ही सीमित था ।

1960 के बाद विदेशों में अनेक फेमिनिस्ट संगठनों का उदय हुआ । "फेमिनिन मिस्टिक" की लेखिका बेट्टी फ्रीडन के नेतृत्व में सन् 1966 में अमेरिका में "नाउ" [NOW] की स्थापना हुई । इसकी स्थापना में मध्यवर्गीय परिवारों की नारियों का योगदान महत्वपूर्ण था । ऐशो आराम के बीच भी बोरियत महसूस करतें नारी मन की कुंठा की प्रतिक्रिया स्वरूप ही इस संगठन का उदय हुआ था । नौकरी और शिक्षा के क्षेत्र में समान अधिकार प्राप्त करना "नाउ" का मुख्य लक्ष्य था ।

इस दरमियान ब्रिटन और अमेरिका में अनेक फेमिनिस्ट संगठनों का अविर्भाव हुआ जिनपर मार्क्सवादी विचारधारा का स्पष्ट रूप से प्रभाव पडा था । इन संगठनों के नेतृत्व में 1970 में आक्सफोर्ड में एक सम्मेलन हुआ जिसमें 600 महिलाएं सम्मिलित थीं । समान काम केलिए समान वेतन, लडकों के समान लडकियों की भी शिक्षा का प्रबन्ध, चौबीसों घंटे कार्यरत शिशुसंरक्षण केन्द्र, अपनी इच्छा से गर्भपात करने की सुविधा आदि इस सम्मेलन की मुख्य मांगें थी ।

अमेरिकी नारियों को मताधिकार मिलने की पचासवीं वर्षगांठ पर 20 अगस्त 1970 को एक जुलूस निकाला गया । तब से यह आंदोलन मितवाद को छोड़कर उग्रवाद की ओर उन्मुख हुआ । पुरुषों को शर्मिंदा करके उन्हें नीचे दिखाना इनका लक्ष्य रह गया । स्त्री-पुरुषों के बीच खुला युद्ध छिड़ गया । तलाकों की संख्या बढ़ गयी । अनेक परिवार टूट गये । लैंगिक स्वातन्त्र्य के नाम पर अविवाहित स्त्री, पुरुष के साथ रहने लगी । बच्चे अनाथ हो गये । इस अतिवादी वृत्ति को बढ़ावा देने में "सेक्सुअल पोलिटिक्स" [KATE MILLET] फीमेल यूनीक्स [GERMAN GREER] लैंगिकता की द्वन्द्वात्मकता [SHULASMITH FIRESTONE] आदि रचनाएं सहायक थीं । इन फेमिनिस्टों ने "को-हाबिटेशन", "फ्री सेक्स", "लेस्बियन" का भी समर्थन किया । NGLTF इसका प्रमाण है ।"[60]

"नाउ" जैसे मितवादी संगठनों का मुख्य उद्देश्य नारी को सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में समान हैसियत दिलाना था । इसलिए नारीवाद के अतिवाद से उनका संघर्ष रहा है । "फेमिनिन मिस्टिक" की रचना करते समय बेट्टी का उद्देश्य पुरुषों को नीचे दिखाना नहीं था । लेकिन आन्दोलनकारियों के गलत रास्ता अपनाने के कारण वे समाज के सामने हास्यास्पद और घृणास्पद बन गयीं । इससे दुःखी होकर बेट्टी फ्रीडन ने आन्दोलन का नेतृत्व छोड़ दिया । अपनी दूसरी पुस्तक "द सेकन्ड स्टेज" में उन्होंने यह स्थापित करने का प्रयास किया है कि पुरुष से अलग होकर नारी की स्वतंत्रता नहीं है । इसलिए उन्होंने नयी राह की खोज की है, जिसमें नारी और पुरुष अलग नहीं बल्कि जुड़े हुए हैं ।

कई महिलाओं ने मिलकर छोटी छोटी समितियां गठित कीं जो समूह में व्यापक रूप में चेतना लाने का काम करती थीं । इनमें स्त्रियों को अपने अनुभवों को संप्रेषित करने के अवसर प्राप्त हुए । वे खुले आम अन्य पुरुष, स्त्रियों और अपने बच्चों के साथ अपने संबन्धों की चर्चा करती थीं । बहुत से छोटे बड़े समूह, जिनमें से कुछ तो पूरी तरह से नारी मुक्ति आन्दोलन के समर्थक तथा कुछ समाजवादी नारी मुक्ति आन्दोलन के तरफदार थे । वे अपने विरोध को बुलन्द कर रहे थे । जनता के सामने प्रदर्शन नारे आदि के द्वारा इन्होंने उनका ध्यान आकर्षित किया । उनके आन्दोलन के निम्न लिखित उद्देश्य रहे थे -

1. लड़कियों को अधिक आरामदेह वस्त्र पहनने की स्वतंत्रता तथा परम्परागत परिधानों से मुक्ति दिलाना ।
2. बराबर के वेतन तथा कार्यालयों में ऊँचे पद ।
3. कैरियर बनाने केलिए प्रतियोगिता में भाग लेना का अवसर ।
4. परम्परागत रूप से पत्नी और माँ की भूमिका के अलावा अन्य भूमिकाओं की उपलब्धता ।
5. स्त्रियों केलिए उच्च शिक्षा ।
6. स्त्रियों के स्वास्थ्य पर ध्यान विशेषकर परिवार नियोजन और गर्भपात पर ।
7. स्कूलों, कार्यालयों, किताबों, प्रचार माध्यमों विज्ञान एवं सेन-खूद आदि में स्टीरियो टाइप भूमिका का विरोध आदि ।"[61]

सन् 1971 में कुछ महिला आन्दोलन कारियों ने बलात्कार से पीड़ित औरतों की मदद के लिए "रेप क्राइस सेन्टर" की स्थापना की।"[62]

उसी प्रकार अश्लील साहित्य के विरुद्ध वुमेन एगेनिस्ट वयलान्स इन पोर्नोग्राफी एन्ड द मीडिया"[63] का गठन हुआ । ये संगठन पुरुष के अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष करने में अत्यधिक सफल हुए है । आर्थिक अधिकारों तथा कानूनों में संशोधन किया गया । नारी आंदोलन ने स्त्रियों के सामने दूसरी तरह की ज़िन्दगी बिताने के नये विकल्प प्रदान किये ।

इन नारी आन्दोलनों के कारण सारे विश्व का ध्यान नारी और उनकी समस्याओं पर होने लगा । इसके फलस्वरूप संयुक्त राष्ट्र संघ ने 1975 को "महिला वर्ष" घोषित किया और अगले दशक "महिला दशक" के रूप में मनाया गया । इस अवधि में विश्व भर नारी कल्याण के कार्यक्रम आयोजित हुए । जून 1975 में मेक्सिको में 130 देशों की 6000 प्रमुख महिलाओं का एक सम्मेलन हुआ । 1975 में "स्टेट्स आफ वुमेन कमेटी" द्वारा जारी रिपोर्ट में 1947 के बाद से लगातार औरत की गिरती स्थिति पर बड़ा दुःखद व सच्चा बयान दिया गया है । इसके बाद राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक गोष्ठियों, सेमिनारों और समारोहों द्वारा नारी की समस्याओं पर विचार विमर्श हुआ । 1980 में कोपनहेग में दूसरा विश्वमहिला सम्मेलन हुआ जिसमें 145 देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया । उसमें शिक्षा, ग्रामीण नारी रोज़गार, परिवार नियोजन परिवारों में नारी हिंसा आदि मुख्य मुद्दे शामिल थे । संयुक्त राष्ट्रसंघ ने इन कार्यक्रमों को सरकार के तत्वावधान में चलाने का आदेश दिया था ।

भारत के नारीवादी आंदोलन

भारत में नारी आंदोलन जनवादी आंदोलन का एक महत्व पूर्ण हिस्सा रहा है । पिछले दशक में औरतों ने बहुत बड़ी संख्या में विभिन्न राजनैतिक व सामाजिक आंदोलनों में भाग लिया है । उदाहरण केलिए बिहार का क्रांतिकारी किसान संघर्ष, कश्मीर व पूर्वोत्तर राज्यों की राष्ट्रीयताओं के आंदोलन, आन्ध्रा प्रदेश के शराब बन्दी आंदोलन । ये सब भारतीय समाज में तेज़ होते सामाजिक अन्तर विरोधों को प्रदर्शित करने में सफल हुए ।

भारत में औरत की मुक्ति का सवाल भारतीय समाज के क्रांतिकारी परिवर्तन से पूरी तरह जुड़ा हुआ है । भारतीय नारी को तो समाज में बुनियादी अधिकार प्राप्त नहीं है । पितृसत्तात्मक उत्पीडन व शोषण, आर्थिक निर्भरता, पुरुष की अधीनता आदि अर्द्ध सामंती मूल्यों के कारण संभव हुए है, इन्हीं मूल्यों ने भारत के एक बड़े हिस्से को जकड़कर हमारी अर्थ व्यवस्था को पीछे धकेल दिया है, यह उपभोक्तावादी संस्कृति के कारण भी हैं, जो हमारी सामाजिक ज़िंदगी में अपनी पैठ बनाती जा रही हैं ।"[64]

स्वतंत्रता के बाद भारत में नारी आंदोलन मृतप्राय हो गए । इसके कई कारण थे । विभिन्न राजनीतिक व सामाजिक आंदोलन भी खत्म हो गए । तेलंगाना विद्रोह के बाद कांग्रेस से "भाजपा" तक सभी राजनीतिक पार्टियाँ वोट की राजनीति में उलझ गयी । जिन औरतों को पहले के आंदोलनों में लामबंद किया गया था वे वापिस घरों में चूल्हे-चौके पर चली गई । नेहरू सरकार ने समाज की भलाई केलिए नीतियों की घोषणा की और राजसत्ता सामाजिक सुधारों की एजेंसी के रूप में दिखाई गई । न्यायपालिका ने हिन्दू औरतों को संपत्ति, उत्तराधिकार, शादी, तलाक जैसे मुद्दों पर

कुछ अधिकार देते हुए यह दिखाने की कोशिश की कि नारी मुक्ति केलिए कानूनी बदलाव ही मुख्य रास्ता है । इसके अतिरिक्त सक्रिय महिलाओं को सरकारी संस्थाओं में नियुक्त कर दिया गया ।

समकालीन नारी आंदोलन उन ज़बर्दस्त राजनीतिक हलचलों से पैदा हुआ जिन्होंने 1960 के अंत व 1970 के दशक के शुरू में भारत को हिलाकर रख दिया । अकाल, महंगाई, बढ़ता भ्रष्टाचार, चुनावी राजनीति आदि ने अस्थिरता व संघर्षों को जन्म दिया । नक्सलबाडी आंदोलन ने सामंतवाद विरोधी आंदोलनों को एक क्रान्तिकारी उभार दिया और बडी संख्या में महिलाओं सहित छात्राओं व नौजवानों को आकर्षित भी किया । इस क्रांतिकारी उभार ने औरतों को पारंपरिक पारिवारिक सीमाओं को तोड़कर राजनीतिक गतिविधियों में शामिल होने केलिए प्रेरित किया । महंगाई के विरोध में हुए आंदोलनों ने पहली बार शहरी महिलाओं को सक्रिय कर उन्हें सड़कों पर उतारा । मेहनतकश औरतों ने बराबर मज़दूरी व काम केलिए आंदोलन शुरू किया ।

भारत में जनवादी अधिकारों केलिए आयोजित आंदोलनों ने महिलाओं के मुद्दों को और बडा आधार दिया । औरतों की स्थिति व उत्पीड़न के प्रश्न पर चर्चा करने केलिए भारत के मुख्य शहरों में अनौपचारिक नारी समूह बने जो सैद्धान्तिक व आन्दोलन दोनों पहलुओं पर ध्यान रखते थे । इनमें सब से पहला समूह प्रोग्रसीव ओर्गनैसेषन आफ इंडिया {पी.ओ.ई} 1974 में हैदराबाद में था जो नक्सलबाडी आंदोलन से प्रभावित होकर मध्यवर्गीय महिलाओं द्वारा बनाया गया था ।

1980 में "मथुरा बलात्कार आन्दोलन" शुरू हुआ और इससे बलात्कार संबन्धी कानून के संशोधन केलिए भूमिका तैयार हुई। 1981 तक दहेज के कारण होनेवाली मौतें मुख्य मुद्दा बनीं जिन का कारण उन परिवारों के विरुद्ध प्रचार था जिनके यहाँ महिलाएं जिन्दा जला दी गई थीं। इसलिए परिवार के अन्दर होनेवाली हिंसा व शोषण पर ध्यान केन्द्रित हुआ। संपत्ति को लेकर महिलाओं के साथ होनेवाले अन्यायों का विश्लेषण और आलोचना की गई। इन संगठनों ने नारी आंदोलनों के रूप में पहचान बनाई, जिन्हें राजनीतिक पार्टियों व पुरुषों से अलग व स्वतंत्र रखने की बात पर ज़ोर दिया गया। अक्तूबर 1980 में बम्बई में "स्वायत्त महिला संगठनों की ओर से एक सम्मेलन आयोजित किया गया।

1982 के बाद विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं के संगठित होने की प्रक्रिया को स्पष्टतः महसूस किया जा सकता है। बीड़ी मज़दूर, घरेलू कार्य में तल्लीन और आदि बड़ी संख्या में अपनी अपनी मांगों को लेकर सड़कों पर आयी। कामगार औरतों की एक राष्ट्रीय समन्वय समिति स्थापित हुई। जिसने सार्वजनिक क्षेत्र में काम कर रही औरतों को इकट्ठा किया। इस समिति की दो बैठकें हो चुकी है जिनमें काम से जुड़ी समस्याओं के साथ ही अन्य समस्याओं पर भी ध्यान केन्द्रित किया गया। स्वायत्त नारी आंदोलन के प्रभाव में विभिन्न राजनीतिक पार्टियों ने महिला मोर्चे बनाए हैं।

इन पार्टियों ने महिला जन संगठन को फिर से सक्रिय किया है। अन्य कामों के साथ मुस्लीम औरतों से संबन्धित प्रोटेक्शन बिल के खिलाफ मार्क्सिस्ट पार्टी ने एक मोर्चा संगठित किया। समस्त भारत में अनेक महिला संगठन, वामपंथी और क्रान्तिकारी विचारधारा का समर्थन देते हुए कस्बों व शहरों में बने हैं।

1986 के बाद ग्रामीण महिलाओं में भी जागृति दिखाई देती है । नारी आंदोलन की वजह से विशेष रूप से शिक्षित मध्य-वर्गीय महिलाओं ने उन व्यवसायों, शासकीय पदों पर प्रवेश किया जो अभी तक पुरुषों के कब्जे में थे । इन वर्गों की नारियाँ स्वायत्त नारी आंदोलनों में अग्रणी रही है । इसकी महत्ता पहचानते हुए, शासक वर्ग नारियों में कैरियर निर्माण को प्रोत्साहित करने का काम, अपने प्रचार से करता रहा है । ये नारी आंदोलन इस शोषक व्यवस्था को चुनौती देने में सफल हो गये है । प्रभाव पैदा करने केलिए इनकी ओर अनेक कदम उठाए गए हैं जैसे - महिला आयोग की स्थापना, नारी पुलिस दल संगठित कर उसमें महिला कार्य कर्ताओं को सम्मिलित करना स्त्री संबन्धी अध्ययन व शोध के काम केलिए दिल खोलकर धन देना, नारी समर्थक उद्यमों को राहत एवं सहायता देना जिससे वे सत्ता के नियंत्रण व निगरानी में आ जाए । कालेजों व विश्वविद्यालयों में "वुमेन सेल" की स्थापना, नारी संबन्धित मुद्दों से ताल्लुक रखने वाले नए कानून बनाना या उन में संशोधन करना आदि ।

नारी को राजनीतिक गलियारे में लाने की खातिर उन्हें पंचायतों, जिला परिषदों व पालिकाओं में 30 % आरक्षण लागू किया गया है । नारी को शिक्षा ज्ञान एवं तकनीकी कुशलता देने में आज सरकार जागरूक है । कर्नाटक और राजस्थान सरकारों ने अपनी विकास-योजनाओं में महिला कार्यकर्त्ताओं व शोधकार्यकर्ताओं को मुखिया बनाया है । गुजरात सरकार ने नौकरियों में स्त्रियों केलिए 30 % आरक्षण प्रदान किया है । आज परिवार को समाज का अभिन्न अंग माना गया है । नारी कमाती है और घर गृहस्थी भी संभालती है । तलाक की सुविधा, गर्भपात की वैधता आदि नारी के पुरुष के गिरफ्त से बाहर आकर स्वतंत्र होने की उज्वल मिसाल है ।

नारीवाद के विभिन्न रूप एवं आयाम

जैसे हमने देखा, नारी-मुक्ति आन्दोलन पर विभिन्न सैद्धान्तिक विचारों का प्रभाव पड़ा है। इनके मुताबिक उसके विभिन्न रूप भी मिलते हैं। इनमें प्रमुख है - समाजवादी-फेमिनिज़म, लिबरल (अस्तित्ववादी) फेमिनिज़म और राडिकल फेमिनिज़म।

समाजवादी फेमिनिज़म

समाजवादी फेमिनिज़म ने अपनी आधार-शिला के रूप में मार्क्सवाद को अपनाया है। यह समाज के मज़दूर वर्ग के संगठनों से जोड़कर स्त्रियों की यातनाओं के निवारण का मार्ग ढूंढता है। यानी मार्क्सवादी दर्शन और प्रयोग के अनुसार सोश्यलिस्ट फेमिनिज़म विकसित होता है। चार्ल्स फेरियर, अगस्त बेबल कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स आदि को समाजवादी फेमिनिस्ट आन्दोलन के प्रवर्तक और उत्प्रेरक माने जा सकते हैं।

बेबल के अनुसार जिस प्रकार मज़दूर वर्ग का उद्धार एक सामाजिक आवश्यकता है उसी प्रकार नारी की लैंगिक गुलामी से मुक्ति भी सामाजिक आवश्यकता है। नारी और पुरुष के लैंगिक समत्व के द्वारा ही मानव वर्ग की समूची मुक्ति संभव है।

मौजूदा समाज में स्त्री के द्वितीय स्थान का कारण क्या है? एंगेल्स की पुस्तक परिवार, निजी संपत्ति और राज्य की उत्पत्ति इसे खोज निकालने का सफल प्रयास करती है। इस पुस्तक में प्रथम बार नारी की सामाजिक स्थिति का ऐतिहासिक विश्लेषण प्रस्तुत हुआ है।

अमेरिका के नृतत्त्व वैज्ञानिक एल॰एच॰ मोरगन के परिवार के उद्भव सम्बन्धी अनुसंधान और जर्मनी के इतिहासकार बलोफन की मातृ-अधिकार 1861 नामक रचना उनके मार्गदर्शक बने । मोर्गन ने अपने अनुसन्धान में समाज के क्रमिक विकास के साथ, मातृसत्ता से पितृसत्ता की करवट और समूह विवाह से एकनिष्ठ विवाह का ऐतिहासिक परिवर्तन आदि का प्रतिपादन किया है ।

प्राचीन काल में जब परिवार का स्थापन ही नहीं हुआ था तब नारी भी पुरुष के समान समाज की स्वतंत्र इकाई थी, दोनों की समान हैसियत भी थी । उस समय समाज में श्रम विभाजन के अनुसार जीविकोपार्जन के साधन जुटाने का काम पुरुष का था और घर के अन्दर का काम नारी का हो गया था । धीरे धीरे मातृ सत्ता से पितृसत्ता को महत्त्व मिला और संपत्ति का अधिकारी भी पुरुष बने । वंशानुक्रम तथा मातृ दायाधिकार की प्रथा उलटा दी गयी और उसके स्थान पर पैतृक वंशानुक्रम तथा पैतृक दायाधिकार स्थापित हुआ ।"[65]

मातृसत्ता के विनाश के बाद बहुत तेज़ी से एकनिष्ठ विवाह का विकास हुआ । एकनिष्ठ परिवार पुरुष की सर्वोच्च सत्ता पर आधारित होता है । जैसे कि पहले ही सूचित किया गया है, उसका स्पष्ट उद्देश्य ऐसा बच्चा पैदा करना होता है जिसके पितृत्व के बारे में कोई विवाद न हो । यह इसलिए ज़रूरी है कि समय आने पर ये बच्चे अपने पिता के सहज उत्तराधिकारियों के रूप में उसकी दौलत विरासत में पा सकें ।

सामाजिक विकास की दृष्टि से एकनिष्ठ विवाह एक बहुत बड़ा कदम था, परन्तु इसके साथ साथ उसने ऐसे युग का श्रीगणेश भी किया जिसमें एक समूह की भलाई और विकास दूसरे समूह को दु:ख देकर और कुचलकर संपन्न होते हैं ।

पुरुष के अधिनायकत्व को सोशलिस्ट फेमिनिस्ट, वर्ग संघर्ष की पृष्ठभूमि में मूल्यांकन करते हैं । राडिकल फेमिनिस्टों की तरह ये पितृ सत्ता को केवल काल्पनिक नहीं मानते है । यह तो मानव समाज के विकास के विभिन्न संदर्भों में वाकई यथार्थ रहा था । यह मौजूदा पूँजीवादी सभ्यता की खासियत भी है ।

समाजवादी फेमिनिस्टों का विचार यह था कि एकनिष्ठ परिवार का वह पहला रूप सहज नहीं था बल्कि अर्थ पर आधारित था - यानी निजी-संपत्ति की विजय के आधार पर खड़ा हुआ था । एक निष्ठ विवाह से परिवार में पुरुष का शासन रहता और जो बच्चे पैदा होते हैं वे केवल उसकी अपनी सन्तान रहते हैं, और वे ही उत्तराधिकारी भी बन सकते हैं । समाजवादी फेमिनिस्टों ने इस विचारधारा को मजबूत करने केलिए एंगेल्स का सहारा लिया है । एंगेल्स के अनुसार "एकनिष्ठ विवाह इतिहास में पुरुष और नारी का पुन: सामंजस्य होकर कदापि प्रगट नहीं हुआ । उसे पुरुष और नारी का पुन: सामंजस्य का उच्चतम रूप समझना तो और भी गलत है । उसके विपरीत एकनिष्ठ विवाह नारी पर पुरुष के आधिपत्य के रूप में प्रगट होता है ।"[66] मार्क्स ने भी बताया पुरुष और नारी के बीच का पहला श्रम विभाजन सृजन के क्षेत्र में हुआ है । एंगेल्स के अनुसार इतिहास में पहला वर्ग विरोध एकनिष्ठ विवाह के अन्तर्गत पुरुष और नारी के विरोध के विकास के साथ और इतिहास का वर्ग-उत्पीड़न पुरुष द्वारा नारी के उत्पीड़न के साथ साथ प्रकट होता है ।

श्रम विभाजन से धीरे धीरे समाज में नारी की स्थिति में बदलाव आया । एंगेल्स ने ठीक ही कहा है, यह निजी संपत्ति के विकास के कारण हुआ था । अपनी संपत्ति अपने ही वारिस को देने के प्रयत्न में स्त्री भी पुरुष की निजी संपत्ति का अंग बन गयी । उसको भोग वस्तु के रूप में निम्न स्थान ही मिला । नारी, रोटी, कपडा, मकान और संरक्षण देकर अपनी संपत्ति के उत्तराधिकारी को पैदा करने का पुर्जा मात्र बन गई ।"[67] एंगेल्स ने मातृसत्ता के इस पतन को नारी-वर्ग की ही ऐतिहासिक पराजय मानी है । वे कहते हैं कि पारिवारिक शासन भी पुरुषों के हाथों आ गया था । नारी की स्थिति इतनी गिर गयी कि वह पुरुष की काम-पूर्ति और वर्ग संचालन की मशीन मात्र रह गयी ।"[68]

समाजवादी फेमिनिस्ट मानते हैं, एकनिष्ठ विवाह की प्रथा एक व्यक्ति के, और वह भी एक पुरुष के हाथों में बहुत सा साधन एकत्रित हो जाने के कारण और उसकी इस इच्छा के फलस्वरूप उत्पन्न हुई थी कि वह यह धन किसी दूसरे की सन्तान केलिए नहीं, केवल अपनी सन्तान केलिए छोडा जाये । इस उद्देश्य केलिए आवश्यक था स्त्री "एकनिष्ठ रहे", परन्तु पुरुष केलिए यह आवश्यक नहीं था । इसलिए नारी की एक-निष्ठता से पुरुष के खुले या छिपे बहुपत्नीत्व में कोई बाधा नहीं पड़ती थी । इस प्रकार यदि एकनिष्ठ विवाह आर्थिक कारणों से उत्पन्न हुआ था तो इन कारणों के मिट जाने पर वह भी क्या मिट जायेगा ? समाधान के रूप में इन फेमिनिस्टों ने बताया है कि दाम्पत्य जीवन में पुरुष का आधिपत्य केवल उसके आर्थिक प्रभुत्व का एक परिणाम है । और उस प्रभुत्व को मिटाने पर वह अपने आप खतम हो जायेगा ।

विवाह में पूर्ण स्वतंत्रता केवल उसी समय आम तौर पर कार्य रूप ले सकेगी जब पूंजीवादी उत्पादन तथा उससे उत्पन्न सम्पत्ति के सम्बन्ध मिट जायेंगे और उसके परिणाम स्वरूप वे सब गौण आर्थिक कारण भी मिट जायेंगे जो आज भी जीवन साथी के चुनाव पर इतना भारी प्रभाव डालते हैं। तब आपस में प्रेम के सिवा और कोई उद्देश्य विवाह के मामले में काम नहीं करेगा। जब वे आर्थिक कारण मिट जायेंगे जिनसे स्त्रियां पुरुषों की हस्ब मामूल बेवफाई को सहन करने केलिए विवश हो जाती है - अर्थात् जब स्त्री को अपनी जीविका की ओर, इस से भी अधिक अपने बच्चों के भविष्य की चिन्ता न रह जायेगी और इस प्रकार जब स्त्रियां और पुरुषों के बीच सचमुच समानता स्थापित हो जायेगी, तब पहले का सारा अनुभव यह बताता है कि इस समानता का परिणाम उतना यह नहीं होगा कि स्त्री बहुपति की हो जायेगी बल्कि कहीं अधिक प्रभावपूर्ण रूप से यह होगा कि पुरुष सही माने में एकपत्नीक बन जायेंगे।"[70]

इन फेमिनिस्टों ने भी एंगेल्स से सहमत होकर बताया है कि निजी संपत्ति के खतम होने से उत्पादन के साधनों के समाजिक संपत्ति में रूपान्तरण के फलस्वरूप उभरते श्रम सर्वहारा वर्ग को भी मिटा देगा। इस प्रकार पुरुषों की स्थिति में बहुत बडा परिवर्तन हो जायेगा। साथ सभी स्त्रियों की स्थिति में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन होगा। उत्पादन के साधन समाज की संपत्ति बन जाने से वैयक्तिक परिवार, समाज की आर्थिक इकाई नहीं रह जायेगा। घर का निजी प्रबन्ध एक सामाजिक उद्योग धंधा बन जायेगा। समाज सब बच्चों का समान रूप से पालन करेगा, चाहे वे विवाहित की सन्तान हो या अविवाहित की। पूंजीवादी वर्तमान समाज में नैतिकता का जो नींवाधार आचरण कन्या की संकल्पना का समाजवादी समाज में कोई अस्तित्व नहीं रहेगा।

समाजवादी समाज में प्रेम विवाह मनुष्य का अधिकार घोषित कर दिया जाएगा, यानी यह केवल पुरुष का ही अधिकार [Droit-de l'homme] नहीं रहेगा। स्त्री भी इसका हकदार रहेगी Droit-de-la-femme] पूँजीवाद के कायम रहते निजी संपत्ति पतिव्रत धर्म और स्त्री की गुलामी भी बरकरार रहेंगे। यानी निजी संपत्ति की समाप्ति के साथ ही समाज में पुरुष के साथ स्त्री की भी समान हैसियत हासिल होगी।

मोर्गन एकनिष्ठ परिवार के विकास को एक प्रगतिशील कदम मानते हैं। उनकी राय में भी यह नारी और पुरुष की समानता के लक्ष्य की ओर एक कदम है, पर यह नहीं मानते कि इसके द्वारा मानव जाति उस लक्ष्य पर पूरी हद तक पहुँच जाएगी। मोर्गन के विचार है, जब यह सत्य स्वीकार कर लिया जाता है कि परिवार एक के बाद एक करके चार अलग अलग रूपों से गुज़र चुका है और अब वह अपने पाँचवें रूप में है, तब फौरन यह सवाल उठता है कि क्या भविष्य में यह रूप स्थायी बना रहेगा ?

समाजवादी फेमिनिस्ट भी मानते हैं कि परिवार सामाजिक व्यवस्था की उपज है, और वह उसकी संस्कृति को प्रतिबिंबित करेगा। सभ्यता के प्रारंभ से लेकर अब तक चूँकि एकनिष्ठ परिवार में बडा सुधार हुआ है, इसलिए कम से कम इतना तो माना ही जा सकता है कि उसमें अभी और सुधार हो सकता है और वह उस समय तक होता रहेगा जब तक कि नारी और पुरुष की समानता स्थापित नहीं हो जायेगी।

समाजवादी फेमिनिस्ट एंगेल्स का यह कथन पर ज़ोर देते है कि परिवार में पुरुष बुजुर्वा और नारी मज़दूर का प्रतिनिधित्व करते हैं।

परिवार में पुरुष और नारी के बीच का संघर्ष मौजूद है और पहला वर्ग-शोषण नारी पर पुरुष द्वारा किया गया था ।"[72]

इस प्रकार एंगेल्स ने नारी की परतंत्रता को भौतिक संपत्ति और वर्ग शोषण से जोड़ दिया । उन्होंने इस कृति के द्वारा समाज में प्रचलित इस विश्वास का खंडन किया कि सामाजिक जीवन के आरंभ से नारी पुरुष की गुलाम रही थी । मातृ सत्ता का नाश, पितृ सत्ता की स्थापना और युग्म परिवार के धीरे धीरे एक निष्ठ विवाह की ओर संक्रमण आदि से यह तानाशाही मजबूत हुई और स्थायी बनी ।

एंगेल्स के अनुसार जब तक स्त्रियों को सामाजिक उत्पादन के क्षेत्र से अलग और केवल घर के कामों में सीमित रखा जायेगा, तब तक स्त्रियों की पूरी स्वतंत्रता नहीं रहेगी । पूर्ण स्वतंत्रता तभी संभव होती है जब वे बड़े पैमाने पर, उत्पादन में भाग लेने में समर्थ हो पाती है, और जब घरेलू काम उनके न्यूनतम ध्यान का तकाज़ा करते हैं ।"[73]

एंगेल्स की इस पुस्तक से प्रभावित होकर जर्मनी और रूस में समाजवादी फेमिनिस्ट आंदोलन का प्रारंभ हुआ । जर्मनी में क्लेरा सेट्किन और रोसा लक्सम्बर्ग आदि महिलाओं ने आन्दोलन का नेतृत्व किया । लेकिन हिटलर की तानाशाही में इसका विकास होना संभव नहीं था ।

रूस में लेनिन के नेतृत्व में समाजवादी सत्ता ने नारियों की समस्याओं को प्रमुखता दी थी । अक्तूबर क्रान्ति में नारी शक्ति का

फायदा उन्होंने उठाया और क्रान्ति के बाद नारी मुक्ति के लिए कानून भी बनाया ।

समाजवादी फेमिनिस्टों का विचार है कि पूँजीवाद के अन्त किये बिना समाज में नारी को समानता और समान हक नहीं मिलेंगे । पूँजीवाद के अनेक शोषणों में पति द्वारा पत्नी का शोषण भी होता है । इसके विनाश केलिए निजी संपत्ति का नष्ट होना है । इसके बिना किसी को भी नारी मुक्ति आन्दोलन से फायदा नहीं मिलेगा । समाजवादी फेमिनिस्टों ने माना है कि पुरुष के अधिनायकत्व के विरुद्ध लडाई में शोषक वर्ग का भी अपना स्थान है । शोषण का आधार केवल लिंगाधिष्ठित श्रम विभाजन नहीं है । राडिक्कल फेमिनिस्टों के समान ये भी मानते हैं कि स्त्री के शोषण में परिवार का भी स्थान है । लेकिन राडिक्कल फेमिनिस्टों की तरह परिवार तोडने में ये विश्वास नहीं रखते बल्कि परिवार में मूल परिवर्तन लाना अनिवार्य मानते हैं । परिवार को उसके काल्पनिक दृष्टिकोण से हटाकर पूँजीवादी सभ्यता की इकाई बनाने की {जो चीज़ों का उत्पादन और विक्रय करने का बाज़ार रूप में} रीति के बारे में मार्क्स ने पहले ही बताया है । सोश्यलिस्ट फेमिनिस्ट भी इस बात को मानते हैं । घरेलू कामों में स्त्रियों का अधिकतर समय बीता जाता है । परिवार में अर्थ, स्थान, अधिकार, स्तर अवसर आदि के मामले में समानता नहीं है । मार्क्स ने पहले ही बताया है कि परिवार के हर एक सदस्य को पूँजीवादी समाज की इकाई बनाने का प्रयत्न होता है । इस प्रकार जो शोषण परिवार में है, समाज में भी होता है । यह बपौती के रूप में पीढियों तक चलता रहता है । इस प्रकार सम्भावना और व्यवहार में अधिष्ठित एक समूह का नव निर्माण कभी भी नहीं हो सकता । यही सोश्यलिस्ट फेमिनिस्टों का विचार हैं ।

लिबरल फेमिनिस्ट मानते हैं कि समाज में परिवार का महत्वपूर्ण स्थान है । लेकिन समाजवादी फेमिनिस्ट घर में परिवर्तन लाना चाहते हैं । समाजवादी फेमिनिस्ट ऐसे विचार रखते हैं कि स्त्रियों की गुलामी को कायम रखना पूँजीवाद केलिए परम अवश्यक है । क्योंकि स्त्री पुनरुत्पादन में अधिक शक्ति और योगदान देती है । दो प्रकार से वह सहायक बनती है - §1§ श्रम शक्ति बिकनेवाले श्रमिकों का जन्म देती है । §2§ पारिश्रमिक के बिना घर का काम करती है और उसकी परवरिश करती है । इस प्रकार पूँजीवाद को कायम रखने में महत्वपूर्ण योगदान देती है । इनके अनुसार यदि एक श्रमिक को काम में लगाने पर वास्तव में पूँजीपति को दो व्यक्तियों की श्रम शक्ति मिलती है । श्रमिक के साथ उसको भोजन देकर उसके बच्चे की परवरिश करनेवाली उसकी औरत का श्रम भी उसे मिलता है । श्रमिक का संरक्षण स्त्री यथोचित करने के कारण उसे पूँजीपति मोल लेता है । इस प्रकार पुरुष की संरक्षा के वास्ते स्त्री का घर में रहना पूँजीपति केलिए अनिवार्य है । एवलीन रीड, मीच्चल सिमोन-द-बुआ आदि के विचार भी इस प्रकार है ।

समाजवादी फेमिनिस्टों ने निजी संपत्ति के उद्भव संबन्धी ढाँचे में नारी की स्थिति का विवेचन किया था । उनके अनुसार पूँजीवाद के उन्मूलन से ही नारी-समस्याओं का समाधान हो सकता है । इसलिए वर्ग संघर्ष के अन्तर्गत उन्होंने नारी संघर्ष को स्थान दिया है । उनका विश्वास है, एक ऐसे समाज का निर्माण होगा जहाँ पुरुष जीवन भर कभी किसी नारी की देह को पैसा देकर शक्ति व साधनों को खरीदने का मौका नहीं मिलेगा और स्त्री को कभी सच्चे प्रेम के सिवा और किसी कारण से पुरुष के सामने आत्मसमर्पण करने की नौबत नहीं आयगी और न परिणामों के भय से अपने प्रेमी के सामने

आत्मसमर्पण करने से अपने आप को रोकना भी नहीं पड़ेगा । इस व्यवस्था में नारी स्वयं तय करेगी कि उन्हें क्या करना चाहिए और उनके अनुसार वे स्वयं ही प्रत्येक व्यक्ति के आचरण के बारे में जनमत का निर्माण करेंगी और सारे मामले खत्म हो जायेंगे ।

यों समाजवादी नारीवादी प्रवृत्ति ने दुनिया भर के नारी आंदोलन पर गहरा प्रभाव डाला । वे वर्गशोषण व पितृ सत्ता से लड़ने को बराबर महत्ता देते हैं । परिवार में महिलाओं की मातहत स्थिति, परंपरागत लिंग भेद, पूंजीपतियों द्वारा नारी का शोषण करके मुनाफा कमाने की प्रवृत्ति, घरेलू काम का विश्लेषण और पूंजीवाद केलिए इसका महत्व पितृसत्तात्मक शील और नारी उत्पीड़न इन सब का समाजवादी नारीवादियों ने बखूबी विश्लेषण किया है ।

समाजवादी आंदोलन की वर्तमान स्थिति

समाजवादी नारी-आन्दोलन अभी तक चले आंदोलन की वजह उपलब्ध नकारात्मक पहलू व सीमाओं को स्वीकार करते हैं । लेकिन फिलहाल वे सत्ता के खिलाफ और इस ढांचे को पूरी तरह बदल देने केलिए अटल नहीं रहे हैं । वे मानते हैं कि आर्थिक मौकों की कमी महिलाओं की लड़ने की क्षमता को घटाती है । फिर भी सत्ता द्वारा खड़े किए गए कई फोरमों में भी वे भाग लेते हैं जैसे कमीशन व पुलीस सेल । वे महिलाओं की राजनीतिक, स्थानीय स्वयंशासी संस्थाओं में भागीदारी की पैरवी भी कर रहे हैं। वास्तव में इनके एक नेतृत्वकारी समर्थक के शब्दों में "हमारे सामने बड़ा चुनौती भरा सवाल है - मुख्य राजनीतिक धारा में, कानूनी व्यवस्था में, सरकारी नीति निर्धारण

में, विशिष्ट सामाजिक राजनीतिक आंदोलनों में महिलाओं केलिए स्थान बढाना ।"[74]

समाज को बदलने केलिए यानी जनवादी समाज की स्थापना केलिए कोई कारगर राजनीति के अभाव की वजह, वे अब नारी केलिए मौजूदा आर्थिक समाजिक ढाँचे की भ्रष्ट चुनाती राजनीति में भाग लेने की बात करते हैं । इसलिए काफी लोगों का समय सुधार-कार्यों में गुज़र जाता है । सुधारवादी आंदोलन पूँजीवादी राजनीति का ही अंश है जो समाज व महिलाओं की स्थिति में सार्थक परिवर्तन नहीं ला सकता ।

लिबरल या अस्तित्ववादी फेमिनिज़म

इस आंदोलन का नींवाधार सिमोन द बोउआर के विचार हैं । दरअसल नारी मुक्ति आंदोलन के इतिहास में बोउआर और उनकी पुस्तक "द सेकेन्ड सेक्स" का महत्वपूर्ण स्थान है । इसके प्रकाशन ने पहली बार पाश्चात्य नारी को अपने अस्तित्व के बारे में सोचने को मजबूर किया । अपनी पुस्तक में बोउआर ने नारी संबन्धी अपना मत यों प्रकट किया - "मानव पुरुष प्रधान है, नारी की परिभाषा हमेशा पुरुष से संबन्धित है । समाज की स्वतंत्र इकाई के रूप में नारी के अस्तित्व की स्वीकृति नहीं है ।"[75] बोउआर का विचार है कि हमेशा, नारी का अस्तित्व पुरुष सापेक्ष होता है । कन्या पिता के साथ जुडी रहती है । शादी के बाद पति के साथ उसका संबन्ध है । कभी भी पुरुष का नाम नारी से जोड्कर कहा नहीं जाता, चाहे वह कितनी भी प्रतिभावान हो ।"[76]

औरत की दासता के मूल कारण की खोज के संदर्भ में बुउआर ने लिखा है कि औरत, शक्ति-संपन्ना होती हुई भी उर्वरा थी, उसमें प्रजनन की क्षमता थी । यह क्षमता पुरुष के पास नहीं थी । औरत की यही विशेषता उसकी दासता का मूल कारण भी बनी । मासिक धर्म, गर्भधान एवं, प्रसव ये सारी जैविक घटनाएं उसकी काम करने की क्षमता का ह्रास करनेवाली साबित हुई । ऐसे समय उसे पूरी तरह पुरुष पर ही निर्भर रहना पड़ता था । मनुष्य महज़ जीता नहीं, बल्कि अपने जीवन की सर्वोपरिता का औचित्य भी सिद्ध करना चाहता है । पुरुष ने यह सर्वोपरिता हासिल की । क्योंकि बच्चे पैदा करने का काम पुरुष का नहीं है । वह नर है, और भविष्य की रूपरेखा तैयार कर सकता है । यह उसका पौरुषीय क्रिया कलाप है, जिसके ज़रिये उसने "स्वयं" के अस्तित्व को सर्वोपरि मूल्य में बदल कर रख दिया । उसने जीवन की जटिलताओं को सुलझाने का भार अपने हाथों में ले लिया और स्त्री तथा प्रकृति को अधिकृत किया । यह सदियों से जारी है और विकसित होती रही है ।

नारी को स्त्रीत्व का बोध उसे सामाजिक वातावरण के प्रभाव से होता है । पुरुष मेधा समाज के कानून का पालन करके, उसीके कहे अनुसार जीना उसका धर्म माना गया है । उसे अपना एक अलग व्यक्तित्व या अस्तित्व नहीं दिया गया है । नारी विधि को कोसकर सब तरह की प्रताडनों को सहती है । इसलिए जब समाज में पतन होता है, तब भी उसका फल नारी ही भोगती है ।"[77]

स्कूली-शिक्षा के दौरान, जो कि उसके कैरियर का बड़ा निर्णायक समय होता है, स्त्रियां उपलब्ध सुविधाओं का भी उपभोग नहीं कर पाती है । उनकी यह कुंठित शुरूआत ही आगे चलकर उनके

जीवन-विकास को अवरुद्ध करती है । स्त्री होने के द्वन्द्व को बारह से तीस वर्ष की आयु के बीच वह अधिक गहराई से झेलती है । स्त्री चाहे विवाहित हो या अपने गृह और परिवार में रहती हो, एक पुरुष की तुलना में परिवार उसके कार्य-व्यवसाय को अपेक्षित महत्व नहीं देता । परिवार उसके कार्य का बोझ तो लादता ही जाता है, आचार व्यवहार के नाम पर कदम-कदम पर उसके कार्यों में अनावश्यक हस्ताक्षेप भी करता रहता है । स्त्री को अपने परिवेशगत संस्कारों से ग्रस्त रहना पड़ता है । किशोरावस्था के सपनों में जकड़ी हुई वह उन्हीं मूल्यों का सम्मान कर पायी है जिन्हें उसके पूर्वजों ने उसपर थोप दिया था ।"[78] बचपन से ही लड़कियों को भविष्य में पत्नी और माँ की भूमिका निभाने तथा पुरुष की अनुचरी की तरह पति ही गति है समझकर सेवा करना सिखाती है । बुआ लिखती है - शादी स्त्रियों केलिए समाज द्वारा दी गयी एक नियति है, और आगे जोड़ देती है, स्त्री-जीवन के हर मोड़ पर उसे हमेशा एकरसता का ही अनुभव होता है ।"[79] विवाह और मातृत्व के माध्यम से नारी का निरन्तर शोषण होता रहता है । यह निर्धारित भी किया गया है कि समाज में उसकी श्रेणी निम्न है ।

बहुधा अनचाहे मातृत्व के कारण स्त्री का वैवाहिक जीवन भी नष्ट होता है । परंपरा औरत को अब भी अपनी इच्छा से प्रजनन की इज़ाजत नहीं देती । अविवाहित माँ समाज के लिए कलंक है, और नाजायज बच्चा अपने आप में एक दाग । बिना वैवाहिक बन्धन के शायद ही कोई औरत माँ बनना चाहे, यदि कृत्रिम गर्भाधान आज अधिकतर औरतों को रुचिकर लगता है तो इसका कारण यह नहीं कि अब समाज में मातृत्व की स्वतंत्रता स्वीकृत होने लगी है ।

अन्य सभी दृष्टियों में समानता हासिल होने पर भी नारी को आर्थिक समानता कभी नहीं मिलती है । मतदान और अन्य तमाम नागरिक अधिकारों के बावजूद आर्थिक स्वतंत्रता के अभाव में स्त्री की स्वतंत्रता सिर्फ अमूर्त और सैद्धान्तिक रह जाती है । पुरुष पर अपनी आर्थिक निर्भरता की स्थिति में स्त्री अपनी किसी भी भूमिका पत्नी, प्रेमिका या रखैल में स्वावलंबी नहीं हो पाती । अर्थ ही व्यक्ति को वह अधिकार देता है जिसके द्वारा वह अपनी परियोजनाएं पूरी कर सके । इस संदर्भ में बुउआर ने लिखा है - "मैं यह कहना चाहती हूं कि केवल एक नौकरी या वोट देने के अधिकार मात्र से स्त्री स्वतंत्र हो जाती है । आज की दुनिया में नौकरी भी एक प्रकार की गुलामी है । स्त्री की दशा में इन परिवर्तनों की वजह से कोई बदलाव नहीं आया है । सामाजिक संरचना नहीं बदली है । दुनिया अब भी पुरुषों की है और जैसा वे चाहते हैं, वैसा ही आकार ग्रहण करती है ।"[80]

बुउआर के अनुसार जो कुछ पुरुष ने स्त्री को दिया है केवल उसी पर नारी का अधिकार है । वे कुछ लेती नहीं केवल उसे दिया जाता है । इसका कारण नारी का असंगठित होना है । अतः आज नारी पुरुष की आश्रिता या गुलाम बनकर जिन्दगी काटती है । उसे कभी भी समान हैसियत प्राप्त नहीं होती है । स्त्री कहीं झुण्ड बनाकर नहीं रहती । वह पूरी मानवता का आधा हिस्सा होते हुए भी पूरी एक जाति नहीं ।"[81] गुलाम अपनी गुलामी से परिचित है और एक काला आदमी अपने रंग से, पर स्त्री घरों, अलग अलग वर्गों एवं भिन्न-भिन्न जातियों में बिखरी हुई है । उसमें क्रान्ति की चेतना नहीं, क्योंकि अपनी स्थिति केलिए वह स्वयं जिम्मेदार है । समाजवाद की स्थापनामात्र से स्त्री मुक्त नहीं हो जाएगी । समाजवाद भी पुरुष की सर्वोपरिता की विजय है ।

स्त्री की स्थिति अधीनता की है । स्त्री के अधीनस्थ बने रहने के कारणों की व्याख्या उन्होंने जीवविज्ञान, मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र और जातीय इतिहास आदि के आधार पर व्यापक एवं गंभीर रूप में की है । स्त्री को, धर्म, समाज, रूढ़ियाँ और साहित्य सभी शाश्वत नारीत्व के मिथक के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं । विश्व की प्रत्येक संस्कृति ने या तो स्त्री को देवी का स्थान दिया है या उसे गुलाम की हैसियत दी है ।

बुउआर के अनुसार औद्योगिक क्रांति ने एक हद तक नारी को उत्पादन में सहयोग देने का अवसर तो दिया लेकिन यह भी पारंपरिक कट्टरपन में विश्वास रखनेवाले लोगों ने तत्परता से स्वीकार नहीं किया । उन्होंने नारी को रसोई और चूल्हा चक्की में बाँध रखने का आदेश दिया । उनका डर था नारी स्वतंत्र होगी तो वह पुरुष वर्ग केलिए खतरनाक बनेगी ।"[82-83]

नारी की इस बुरी हालत पर बुउआर ने लिखा है - "दि फेमिनइन वेल्ड हमेशा पुरुषों की दुनिया से विभिन्न है। हम जानती है कि स्त्रियों की दुनिया एक बन्द कमरा है । वह पूर्ण स्वतंत्र नहीं है । वह समूह का एक अलग अंग है । जहाँ स्त्री पुरुष द्वारा अनुशासित नियंत्रित और संचालित है, वहाँ स्त्री का स्थान द्वितीय ही है । शादी नारी को मुक्ति देती है - केवल उसकी माँ की कठिन नियन्त्रणाओं और उनकी जकड से । मायके से पति के घर आने-वाली नारी नई ज़िन्दगी नई बेडियों की श्रृंखला पहनकर शुरू करती है, इस प्रकार वह जानवरों की तरह नये मालिक के प्रशिक्षण के अनुसार जीना शुरू करती है ।"[84]

अपनी पुस्तक के ज़रिये बुउआर ने इसका ऐलान किया कि नारी हमेशा अस्वतंत्र थी । मध्ययुग में नारी पति या पिता की सुरक्षा में रहती थी । हमेशा शादी उसके हित के बिना होती और वह केवल नौकरानी की हैसियत पाती है । कानून उसका बचाव तो करता है लेकिन ये सब केवल पुरुष की संपत्ति के वास्ते या उसके बच्चे की माँ होने के नाते ही है । सामंतवादी युग से लेकर अब तक शादी शुदा औरत को निजी संपत्ति का हक नहीं दिया गया । पति जितना धनी हो उतनी उसकी पत्नी आश्रिता रहेगी । सामंतवाद या चर्च ने कभी उसे स्वतंत्रता नहीं दी ।"[85]

बोउआर के अनुसार किसी भी अवस्था में अपनी कोशिशों स्त्री के कारण पूर्ण स्वाधीन नहीं बन पाती यद्यपि बडी संख्या में ऐसी स्त्रियाँ हैं जिन्हें कुछ विशेषाधिकार प्राप्त है और जिन्होंने अपने पेशे से अधिक सामाजिक स्वायत्ता हासिल की है । जो स्त्री को अधिकार देने के खिलाफ है प्राय: यह दलील देते हैं कि आज की स्वाधीन स्त्रियों ने अब तक जगत में ऐसा कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं किया है । उन्हें अब भी आंतरिक संतुलन प्राप्त करने में कठिनाई होती है । आज की स्त्री मझदार में पडी है । यद्यपि आर्थिक रूप में ये आज़ाद है फिर भी मानसिक, सामाजिक या नैतिक आधार पर पुरुष के बराबर नहीं है । स्त्री की पुरुष की भाँति सफलता की कोई परम्परा नहीं है । समाज उसे नये अध्यवसायी पुरुषों के बराबर महत्व नहीं देता । उसके साथ यह दुनिया एक नये परिप्रेक्ष्य में पेश आती है । एक स्वतंत्र मानव की हैसियत प्राप्त करना, स्त्री के लिए आज भी एक विलक्षण समस्या है ।

बुद्धिमान स्त्रियों से भी समाज बड़ी अंतर्विरोधी अपेक्षाएं रखता है । यदि वे अपने परिधान पर पूरा ध्यान नहीं देती तो लोग उनपर "मर्दाना" स्वभाव का आरोप करते हैं । बुउआर कहती है - "मुझे इस तरह की सारी बातें बकवास लगती है क्योंकि नारीत्व की अवधारणा आदिकाल से चली आ रही स्थायी अवधारणा नहीं मानी जा सकी । यह आचार-व्यवहार और फैशन के परिवर्तनों के साथ बदलती रहती है ।"[86]

पुस्तक के द्वितीय भाग में स्त्री के जीवन के वास्तविक तथ्यों का विस्तार से विश्लेषण हुआ है । सीमोन ने यह समझाने की चेष्टा की है कि कैसे स्त्री जन्म से लेकर वृद्धावस्था तक अपनी विभिन्न भूमिकाओं से अलग हटा दी जाती है तथा इन भूमिकाओं की सर्वोपरिता की ओर बढ़ने की संभावनाओं को सीमित कर दी जाती है । अन्त में सीमोन स्वतंत्र स्त्री के विचारों की विवेचन करती हुई कहती है - "स्त्री को अमीर हो या गरीब, श्वेत हो या काली अपनी लड़ाई खुद लड़नी होगी । यही दुनिया पुरुषों ने बनाई, पर स्त्री से पूछकर नहीं । फ्रांस की राज्यक्रांति हो या विश्व युद्ध स्त्री से पुरुष सहारा लेता है । वह सदियों से ठगी गई है । यदि उसने कुछ स्वतंत्रता हासिल भी की है तो उतनी ही जितनी कि पुरुष ने अपने सुविधा केलिए उसे देना चाहा । अतः सीमोन का मुक्ति-संदेश उस आधी दुनिया केलिए है, जो स्त्री कहलाती है ।

यह पुस्तक न मनुसंहिता है और न गीता या रामायण । यह सीमोन का मानव जगत का आलोचनात्मक अध्ययन है । सीमोन ने उन्हीं आदर्शों को चुनौती दी, जिनका प्रतिनिधित्व वे करती रही थीं । औरत होने की जिस नियति को उन्होंने महसूस किया, हो

उन्होंने लिख दिया । उन्होंने पश्चिम के कृत्रिम मिथकों का पर्दाफाश भी किया । पश्चिम में औरत देवी है, शक्तिरूपा है, लेकिन व्यवहार में औरत की क्या हस्ती है ? वह तो पैर की जूती है । सीमोन पूछती है क्या औरत मानव नहीं ? शरीर के अलावा उसकी कोई पूँजी नहीं ? इस प्रकार सिमोन दि बुआ की पुस्तक "दि सेकेन्ट सेक्स" ने नारी जाति केलिए प्रेरणा और आत्मचिंतन के नए क्षितिज खोल दिये है । जागरूक नारी-जाति को इस पुस्तक के ज़रिये बहुत कुछ मिल गया, जो अब तक उनकी दृष्टि से ओझल या अमूर्त रहा था । पहली बार पीड़ित स्त्री के इतिहास की मार्मिक प्रस्तुति करके इस पुस्तक ने मानव समाज को एक क्रान्तिकारी दिशा दी । साथ एक नये नारीवादी आंदोलन के सृजन में महत्वपूर्ण भूमिका भी निभाई । अत: यह पुस्तक अस्तित्ववादी या लिबरल नारीवाद की मज़बूत नींव बनी । लेकिन इस की सीमाएं थी । उनकी यही धारणा है कि समूह में पुरुष के आधिपत्य वैज्ञानिक ढंग से प्रमाणित नहीं है । इसलिए उसके विरोध में आवाज़ उठना इनके लिए कठिन सिद्ध हो गया । यह इनका नकारात्मक पहलू है । ये पूँजीवाद का नाश करना नहीं चाहते क्योंकि उनका विश्वास है कि केवल पूँजीवाद में ही दूसरी व्यवस्थाओं की अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक महत्व और स्थान प्राप्त कर सकती हैं ।"[87]

अस्तित्ववादी फेमिनिस्टों ने नारी शोषण को वर्ग शोषण से अलग माना है । नारी को समाज का एक पृथक वर्ग मानना वे उचित नहीं समझते हैं । बुर्जुवा और मज़दूर के बीच की बुनियाद समस्या अर्थ-संबन्धी है । नारी और पुरुष के बीच जैववैज्ञानिक अन्तर है । नारी केलिए प्रत्युत्पादन की समस्या आर्थिक समस्या के समान ही महत्वपूर्ण है ।

रांडिकल फेमिनिज़्म

1960 के आस-पास एक नई विचारधारा अमेरिका और यूरोप में शुरू हुई । यह नारीवादी आन्दोलन का अतिवादी रूप है । समाज में नारी का स्थान निर्धारित करने का अधिकार केवल उन्हीं का है, यही उनका मुख्य मुद्दा है ।

1963 में लिखी बेट्टी फाइडन की पुस्तक "द फेमिनियन मिस्टिक" इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है । इस पुस्तक का मूल स्वर स्त्री पर खुले और छिपे दोनों प्रकार, प्रहार करनेवाले पुरुष-प्रधान समाज के दबाव के खिलाफ गरज उठना था । अनेक तथ्यों और उदाहरणों के आधार पर बेट्टी ने सिद्ध किया था कि स्त्री को भोग्या बनाने के साथ उसे लगातार केवल माँ, पत्नी गृहणी की भूमिका स्वीकार करने केलिए विवश किया जाता रहा है । स्त्री-पत्रिकाएँ भी स्त्री के इसी रूप को उभारने में सहायक रही है । इसलिए स्त्री ने इसे ही अपनी नियति मान ली । कामकाज के वास्ते घर की देहरी लाँघने पर वे एक अचेतन अपराध भावना से भर उठीं और इसी अपराध भावना ने बाहरी कार्यक्षेत्र में उन्हें पुरुषों से पीछे धकेल दिया ।

"नारी रहस्यात्मकता" में बेट्टी ने खुलकर लिखा है कि स्त्री केलिए सबसे महत्वपूर्ण मूल्य तथा उसकी एकमात्र प्रतिबद्धता अपने स्त्रीत्व की पूर्णता है । पाश्चात्य सभ्यता की सबसे बडी गलती है "स्त्रीत्व" का अवमूल्यांकन । स्त्रीत्व रहस्यों से भरा है, और यह सृष्टि के आरंभ के समान अवर्णनीय है, इसलिए शायद मनुष्य निर्मित विज्ञान उसे ठीक तरह नहीं समझ पा रहा है । स्त्रीत्व विशिष्ट एवं भिन्न रहा होगा, लेकिन स्त्री किसी भी तरह पुरुष से हीन या तुच्छ नहीं है । कुछ मायने में तो स्त्री पुरुषों से श्रेष्ठ भी है ।"[88]

बेट्टी ने आगे बताया कि स्त्री का भी दिल है और उसे भी अन्य प्राणियों के समान जीने का अधिकार है । लेकिन घरेलू कामों में मग्न नारी को सांसारिक जीवन को समझने का अवसर नहीं दिया जाता है । वह हमेशा घर में बन्द रहती है, अपने अस्तित्व पर भी उसका कोई नियंत्रण नहीं । स्त्री, पुरुष को खुश किये बिना जी नहीं सकती । नारी को पुरुष की दुनिया में कोई स्थान नहीं है । उसकी दुनिया को बनाने में भी कोई योगदान नहीं है । "मैं कौन हूँ ?" "मुझे क्या चाहिए ?" ऐसा प्रश्न पूछने तक केलिए वह काबिल नहीं बनती ।"[89]

समाज में प्रचलित रूढ़ि- ग्रस्त मान्यता है कि "नारी और जानवर में कोई फर्क नहीं है । वह पुरुष से निम्न है, पुरुष के समान चिन्ता करने की शक्ति नारी में नहीं है । नारी की सृष्टि प्रत्युत्पादन और पुरुषों की सेवा केलिए हुई है । इस गलत धारणा को फ्रोयड ने मनोविज्ञान के सहारे खत्म कर दिया था । यों नारी के प्रति समाज की भावना में बदलाव हुआ था । इसी से बेट्टी को हौसला बढ़ गया था, और नारी रहस्यात्मकता लिखने की प्रेरणा भी मिली थी ।

आज विज्ञान ने यह सिद्ध किया है कि पेशीय शक्ति के अलावा अन्य सभी स्तरों पर स्त्री-पुरुषों में कोई भिन्नता नहीं है । लेकिन इस वैज्ञानिक युग में भी पेशीय शक्ति को प्रमुखता देकर स्त्री को निम्न समझाना उपहास्य और पाखंडता है ।"[90]

बेट्टी के अनुसार "फेमिनिज़म" केवल एक मज़ाक नहीं है । आबादी का आधा हिस्सा स्वतंत्रता के बिना गुलाम बनकर रहेगा तो

यह सचमुच उसके मानवी रूप का निषेध होगा । नारी के घरेलू काम में उसकी शक्ति का कोई महत्व नहीं है, इसमें उसका जीवन गँवाना बेवकूफी है । इसलिए उन्होंने नारी को मुक्ति दिलाने के सामाजिक बदलाव में ज़ोर देना चाहा ।"[91]

बेट्टी ने निष्कर्ष रूप में यों कहा है कि स्त्री होने से वह पुरुष के परे या निम्न नहीं है । इसलिए स्त्री को मातृत्व और स्त्री धर्म के प्रशिक्षण देने के बदले जीवन की समस्याओं को समझकर उसे खुद सामना करने और हल करने केलिए सक्षम बनाना है ।

राडिकल नारी-मुक्ति आन्दोलन के प्रमुख प्रवर्तकों ने कला, संस्कृति, इतिहास, मानव विज्ञान, नृवंश विज्ञान, लैंगिक विज्ञान राजनीति, आदि अनेक आयामों में नारी की स्थिति का विवेचन किया और उन्होंने अनुभव किया कि समाज में पुरुष का एकाधिकार होने के कारण, नारी के निजी दृष्टिकोण के अनुसार समाज का पुनर्निर्माण करने से ही नारी की मुक्ति संभव है । प्रेम, यौन क्रिया, बच्चों का पालन आदि के द्वारा भी स्त्री का शोषण हो रहा है ।"[92] नारी के श्रम, प्रत्युत्पादन और लैंगिक विज्ञान इन तीनों को एक साथ नियंत्रण में रखने की पुरुष की स्वार्थ-वृत्ति केलिए पुरुष मेधा शब्द का प्रयोग किया गया है ।

बेट्टी फ्रीडन के अलावा इस अतिवादी प्रवृत्ति को बढ़ावा देनेवाली पुस्तकें हैं "यौन राजनीति", लैंगिकता की द्वन्द्वात्मकता" और जर्मन ग्रीआर की पुस्तक "फीमेल युनीक" । इन किताबों ने आंदोलन को इतना अतिवादी रूप दिया कि इनके प्रभाव से स्त्रियों ने सौंदर्य प्रसाधनों का बहिष्कार कर दिया । सड़कों पर "ब्रा" की होली जलाने लगी ।

इस आन्दोलन के और एक महान हस्ती केट मिल्लट ने अपनी पुस्तक "सेक्सुअल पोलिटिक्स" में पितृ सत्ता का विस्तार से विवेचन किया है । उनका विचार है कि पाश्चात्य समाज में शिक्षा, राजनीति आदि क्षेत्र में समानता का अधिकार होते हुए भी नारी के व्यक्तित्व की स्वीकृति नहीं है । मिलट के अनुसार इसका कारण पुरुष का शारीरिक बल नहीं बल्कि स्त्री की मानसिक गुलामी है । पितृ सत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री के व्यक्तित्व का आविष्कार नहीं होता।[93] विवाह और मातृत्व उसके स्वाभाविक सत्ता के विकास को रोकने में सहायक हो जाता है । शिशु परिपालन के दायित्व के कारण उसे राष्ट्रीय, सांस्कृतिक व सामाजिक क्षेत्रों में काम करने में दिक्कत होती है । मातृत्व दो प्रकार के हैं - स्वाभाविक और आरोपित । पितृ सत्ता में यह आरोपित मातृत्व ही बरकरार रहता है । क्योंकि बच्चा कब पैदा होना है, उसकी परवरिश कैसी करनी है यह सब पुरुष के हित के अनुसार होता है । वास्तविक मातृत्व में स्त्री आनन्द, शक्ति और संतृप्ति का अनुभव करती है तो आरोपित मातृत्व उसे भार सा मालूम पड़ता है, यह उसके व्यक्तित्व में बाधा पहुँचाता है ।

पितृसत्ता में शादी कभी भी सम-भावना का संबन्ध नहीं बनती है । स्त्री का व्यक्तित्व पति में मिलकर नष्ट होता है और वह पति की परछायामात्र बन जाती है । शादी के बाद उसका पता वह किसकी 'मिसिस' है इसके अनुसार है । कानूनन भी उसे कोई दूसरा अस्तित्व नहीं है । उसकी संपत्ति, व्यक्तित्व और जीवन में भी पुरुष का पूर्ण अधिकार और नियंत्रण है ।"[94]

प्राचीन मिथकों के विश्लेषण द्वारा उन्होंने यह स्थापित करने का प्रयास किया है कि पुरुषापेक्ष समाज को बनाये रखने में मिथकों का महान योगदान है । हव्वा और पानडोरा के मिथकों में

नारी को अनर्थ की जड़ के रूप में चित्रित किया है । पारिवारिक मिथकों के प्रभाव के कारण समाज नारी की देह-शुद्धि पर हमेशा ध्यान रखता है । इसलिए कन्यात्व का महत्व है और नारी को भ्रूणहत्या की अनुमति नहीं है । इन सबके पीछे स्त्रीत्व की "विशुद्धि" की भावना ही निहित है ।"[95] यह आरोपित मातृत्व का दोष है । इसलिए राडिकल नारीवादी विवाह को लैंगिक गुलामी मानती है ।"[96] मिलट ने पुरुष मेधा के विरोध के साथ यौन-क्रान्ति का भी आह्वान किया है । यौन क्रान्ति का एक मात्र लक्ष्य पुरुष मेधा की संकल्पना का सर्वनाश करना है ।" मिलट के अनुसार पितृ-सत्ता का सबसे सशक्त शस्त्र उसकी सार्वलौकिकता तथा चिरकालीनता है ।"[97]

राडिकल फेमिनिज़म के इतिहास में शुलामिस्थ फायरस्टोन की रचना "लैंगिकता की द्वन्द्वात्मकता" का महत्वपूर्ण स्थान है । उन्होंने स्त्री-पुरुष को जैविक भिन्नता के आधार पर बनायी गयी व्यवस्था मानी है । इसमें पुरुष वर्ग ने नारी वर्ग पर अपना अधिकार जमाया है, जिसका मुख्य कारण तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था है । इसलिए फायरस्टोन ने जैविक परिवार का विनाश करके लैंगिक-क्रान्ति लाने का आह्वान दिया । जब तक यह क्रांति जैविक पारिवारिक व्यवस्था पर खलल नहीं करती है तब तक शोषण के इस कीडे का उन्मूलन संभव नहीं है । साथ ही उन्होंने पूर्ण रूप से लैंगिक स्वतंत्रता की मांग भी की । तभी शोषण का पूर्णतः उन्मूलन हो सकता है ।"[98]

उन्होंने काल्पनिक प्रेम की आलोचना की है क्योंकि प्रेम नारी की गुलामी का नींवाधार है ।"[99] यानी उन्होंने जैविक व्यवस्था के उल्लंघन का आह्वान किया । इसके लिए आधुनिक तरीकों को स्वीकार करने में कोई हिचक की आवश्यकता नहीं है । इसकेलिए

गर्भपात, गर्भनिरोधन, किराये पर कोख और टेस्ट्यूब शिशु आदि आधुनिक वैज्ञानिक सुविधाओं का इस्तेमाल करना ज़रूरी है। लैंगिक स्वतंत्रता की माँग भी उन्होंने की।"[100]

फायरस्टोन के विचार अतिवाद की पराकाष्ठा है। फिर भी नारी मुक्ति आन्दोलन को क्रान्तिकारी मोड देने में उनकी पुस्तक बेहद सहायक हुई है।

लिबरल नारीवादियों का ऐसा विश्वास रहा है कि पुरुषों के हाथों में अधिकार और शासन है, इसलिए वह स्त्री को दबाकर शासन करना चाहते हैं। मिलर व मिल्लट का विश्वास है कि पुरुष सेक्षा का केवल एक ही कारण अधिकार है। परिवार, दफ़्तर आदि जीवन के सभी क्षेत्रों से पुरुष, स्त्री को सचेत हटा देता है। केवल पुरुष के अधिकार और इच्छा की रक्षा करने केलिए कानून का भी निर्माण हुआ है। स्त्रियों पर सामाजिक, आर्थिक व घरेलू क्षेत्र में दबाव डालकर और अत्याचार करके पुरुष सत्ता कायम रहती है। शादी करना गुलामी है, इसलिए वैवाहिक प्रथा के विरुद्ध काम करना है। शादी के उन्मूलन के बिना स्त्री स्वतंत्रता अप्राप्य है, दरअसल शोषण का उद्गम ही परिवार है।"[101]

लिबरल फेमिनिज़म में जो कमियाँ रही थीं उसे दूर करने केलिए राडिक्कल फेमिनिज़म का उदय हुआ था। लेकिन पुरुष सेक्षा के प्रति उनकी लडाई कभी-कभी पुरुष से विद्रोह करने के मोर्चे के रूप में बदल गयी। शादी-विहीन समाज की कल्पना करके अमेरिका की प्रसिद्ध फेमिनिस्ट बेट्टी फ्रीडन ने "नारी रहस्यात्मकता" नामक पुस्तक लिखी थी। समाज में इसका असर पडा। जैसे आशारानी व्योहरा ने

बताया है - "स्त्री-पुरुष प्रतिद्वन्द्विता में आमने-सामने खड़े हों, एक दूसरे पर गाली गलौज करने लगे और नारी-मुक्ति की माँग यौन स्वच्छन्दता की पर्याय बन गयी । नतीजा सही माँगों को लेकर उठा । एक सही आंदोलन पीत-पत्रकारिता, आत्म प्रवंचना और प्रतिक्रिया में पुरुषों द्वारा अत्याचारों, बलात्कारों की बाढ़ में बह गया । विवाह को एक गुलामी की संस्था में तब्दील किया गया । स्त्रियों ने पुरुषों पर प्रहार ही नहीं किये, एक जाति रूप में उनके अस्तित्व को नकारा । वैवाहिक संबन्ध टूटने लगे । अनेक जोड़े बिना विवाह किये साथ रहने लगे । स्त्री-पुरुष समलैंगिकता, मुक्त यौनाचार, तलाकों, हत्याओं - आत्महत्याओं का अटूट सिलसिला चल पड़ा । पति-पत्नी के परिवार टूटकर केवल माँ या पिता के सिंगल फामिली सिस्टम् में बदलने लगे ।"[102]

इस प्रकार के अतिवाद से दु:खी होकर दो वर्ष बाद उसी महिला ने इस पुस्तक का दूसरा भाग "दि सेकेण्ड स्टेज" लिखकर पहली पुस्तक में बतायी बातों पर खेद प्रकट करते हुए कुछ सत्य कथन दुनिया के सामने रखे । उसने कहा कि नारी मुक्ति आन्दोलन के ज़रिये महिलाओं को आर्थिक, सामाजिक और सामूहिक स्वतंत्रता एक हद तक हासिल हुई है, लेकिन दूसरी ओर टूटे परिवार, तलाक में वृद्धि, बच्चों के प्रति उदासीन भावना स्त्री-पुरुष संबन्धों में मूल्यहीनता आदि की चौगुनी वृद्धि हुई है । इसलिए इस हादसा से दु:खी होकर आंदोलन की सूत्रधार बेट्टी फ्राइडन ने अपने आपको आंदोलन से अलग कर लिया । उनकी नयी पुस्तक "द सेकेण्ड स्टेज" में परिवार के महत्व को स्वीकारा गया कि इतने संघर्षों के बाद स्त्रियों को मिली आज़ादी कहीं फिर उनसे छिन न जाये ।

यों 1960 के आस पास अमेरिका और यूरोप में शुरू होकर सारे संसार में प्रचलित इस नई विचार धारा ने पुरुषाधिपत्य के कारणों को खोज निकाला है। इस से श्रेष्ठ नारी मुक्ति संस्था और व्यक्ति सामने आये हैं। यूरोप के राडिकल फेमिनिस्ट मानिफेस्टो में इस प्रकार बताया गया है कि हम नहीं मानते हैं कि स्त्री दमन का कारण पूँजीवाद या कोई दूसरा पूँजी संप्रदाय है। इसलिए केवल एक पूँजी क्रान्ति मात्र से स्त्रियों का उत्पीडन और दमन अप्रत्यक्ष हो जायेगा, ऐसा विश्वास हमें बिलकुल नहीं है।"[103]

राडिकल फेमिनिस्टों की प्रमुख खोज पितृसत्तात्मक परिवार, यौन चिन्ता, स्त्रियों के स्वभाव आदि दिशा में हुई है। राडिकल फेमिनिज़म मातृसत्ता को मानती नहीं है। उनका विचार है कि मातृसत्ता केवल एक काल्पनिक विचार है, किसी भी सामाजिक व्यवस्था में नारी को प्रमुख स्थान नहीं मिला है। पुरुष मेधा सबसे पुराना और आधारभूत मेधा है। बाकी सब शोषण और दमन इस पुरुष मेधा के अनुबन्ध है। अत: पितृसत्ता का विरोध करने केलिए पुरुष-जाति का विरोध करना है। इस केलिए तीन संगठनों का गठन भी हुआ - "नौ" [NOW] "स्कम" [SCUM] "विच" [WITCH]

यौनबद्ध सामाजिकता के प्रवर्तक जर्मन ग्रीर, ग्लोरिया स्टीनी, बट्टी फ्रीडन और केरोलिन वेयट का विश्वास है कि स्त्रियों के पतन का नींवाधार कारण मनुष्य के लिंग भेद के अनुसार श्रम विभाजन है। इस तरह के श्रम विभाजन में पुरुष घर के बाहर के कामों में संलग्न रहते हैं और स्त्री घर के अन्दर चूल्हा चक्की करती रहती है। सचमुच लिंग भेद के अनुसार श्रम विभाजन का कोई आधार नहीं है। जन्म होते ही

समाज और परिवार बालक और बाला को अलग अलग शिक्षा, आचार, विचार, प्रदान करते हैं । समाचार माध्यम धार्मिक क्षेत्र आदि सब इस प्रकार की लैंगिक भिन्नता को प्रोत्साहन देते हैं और स्त्रियों की अपेक्षा ये सब समाज पुरुष को ज्यादातर महत्व देते हैं ।"[105] इस प्रकार लिंगभेद के अनुसार जो तत्व रूढ हो गये हैं इनसे स्त्री को मुक्ति दिलाना ही लिबरेशनवादियों का लक्ष्य है ।

समाज में स्त्रियों के द्वितीय स्थान का यथार्थ कारण लैंगिक भिन्नता नहीं है, बल्कि स्त्रीत्व को स्थापित करते मूल्य बोध है । सोलनास बरीस, फयरस्टोन आदि फेमिनिस्टों का यही विचार है । समाज में ऐसा विश्वास रूढ हो गया है कि धैर्य, बुद्धि, शक्ति, युक्ति मानव शक्ति, आक्रामकता, स्मार्टनेस, होड स्वतंत्रता बोध अहं आदि पुरुषों के गुण है और स्त्रैण गुणों की सूची में ये सब आते हैं - लज्जा, शालीनता, कुलीनता, सौन्दर्य बोध, विनय विधेयत्व, पोसिट्टिविट्टी, वैकारिकता, चपलता, दूसरों की सहायता करने की मानसिकता आदि ।"[106] इस प्रकार के आचरणों को जीवन भर कायम रखने केलिए समूह और परिवार उसे मज़बूर कराते हैं । इसलिए उसकी गुलामी समाज में हमेशा कायम रहती है । पौरुष को समाज में प्रथम और स्त्रीत्व को द्वितीय स्थान होने के कारण स्त्री का स्थान भी द्वितीय हो गया । लैंगिकता के समान छोटी उम्र में ही अभ्यास और अनुशीलन के द्वारा नारी इन आरोपित मूल्यों को अपनाने केलिए मज़बूर हो जाती है । लज्जा, विनय विधेयत्व आदि से यदि वह लैस नहीं है तो समाज उसका बहिष्कार करेगा । यों स्त्री डरती है । इस प्रकार के सामाजिक तिरस्कार के डर से स्त्री अपने निचले या द्वितीय स्थान पर रहने केलिए विवश बनती है ।"[107]

नारी-मुक्ति आंदोलन का अतिवाद अपने मूल उद्देश्य से भटक गया। आन्दोलन का अतिवादी रूप स्त्री-पुरुषों के आपसी झगड़े, विवाह, कट्टर धार्मिक रूढ़िवादी व्यक्तियों का हस्तक्षेप आदि कारणों से अमेरिका आदि देशों में अब अपने उतार पर आकर फिर से "परिवारवाद" की ओर लौट रहा है। लेकिन तीसरी दुनिया के देश अपनी बुनियादी समस्याओं को भूलकर इस मुक्ति-आंदोलनों को अपनाने की होड़ में लगे हैं।

फेमिनिज़म के इस अध्ययन से यह बात स्पष्ट है कि उनके तीनों रूपों में पुरुष मेधा के मूल कारण के प्रति मत-भेद हैं। इस भिन्नता के बावजूद भी समानताएं हैं। लिबरल फेमिनिज़म या अस्तित्ववादी फेमिनिज़म जानती है कि समाज में परिवार का महत्वपूर्ण स्थान है, इसलिए अब उपस्थित पारिवारिक संगठन में थोड़ा सा परिवर्तन करके वर्तमान स्थिति का सुधार हो सकता है। राडिकल फेमिनिस्टों की मान्यता है कि परिवार पुरुष और स्त्री के सामाजिक यौन समागम की एक जगह है। और यह भी मानते हैं कि धर पुरुष प्रधान समाज की छोटी इकाई है। इसलिए वे पारिवारिक व्यवस्था को पूर्णत: तहस-नहस करने की बात करते हैं। सोशलिस्ट फेमिनिस्ट परिवार का उसकी ऐतिहासिक, राष्ट्रीय पृष्ठभूमि पर मूल्यांकन करते हैं और उसमें काल्पनिक धारणाओं को जोड़ने का विरोध भी करते हैं। एक बेहतर सामाजिक सृष्टि के रूपायन में परिवार का परिवर्तन भी अनिवार्य है।

फेमिनिज़म के तीनों रूपों में परिवार का स्थान महत्वपूर्ण है। परिवार तो स्त्री को उसकी चहारदीवारी में बांधकर रखनेवाली एक सामाजिक संस्था है। इसलिए स्त्री की अवस्था को जो भी सुधार करना चाहता है उसे पहले परिवार में स्त्री की अवस्था से अवगत होना है। परिवार को भूलकर सुधार नहीं हो सकता है।

टिप्पणियाँ

1. We are neither ethereal damsels nor dolls nor bundles of passion and nerves. We are as much as human beings as men are and we are filled with the same urge for freedom.

   THE ETHICS OF FEMINISM - A.R. WADIA, p.225

2. यह नारा ते भाग आन्दोलन के दौरान बंगाल में बटाइदार किसानों के द्वारा उठाया गया था ।

   मानुषी जून 1985

3. '<u>Femins me</u>' - The theory of political, economic and social equality of the sexes. Organised activity on behalf of Women Rights and interests.

   WEBSTER'S THIRD WORLD INTERNATIONAL DICTIONARY Vol. 1 A to G

4. <u>Feminism</u> - This term, from the Latin (Femina = Woman) Originally meant having the qualities of females. It began to be used in reference to the theory of sexual equality and the movement for women's rights, replacing womanism, in the 1890's Alice Rossi has traced the first usage in print to a book review published in the Athenaeum, 27 April 1895. Not until the turn of the century, however, was the term widely used and recognized.

   ENCYCLOPEDIA OF FEMINISM, p.107 LISA TUTTLE

5. According to Donna Hawxhurst and sue Morrow (1984) 'Feminism has only working definitions since it is a dynamic, constantly changing ideology with many aspects including the personal, the political and the philosophical .... Feminism is a call to action, feminism is merely empty rhetoric which cancel itself.

   Feminism originates in the perception that there is something wrong in the society's treatment of women, it attempts to analyse the reason for and dimensions of women's oppression, and to achieve women's liberation.

   ENCYCLOPEDIA OF FEMINISM, p.107 LISA TUTTLE

6. Has its goal to give every woman the opportunity of becoming the best that her natural faculties make her capable of -
   MILLICENT GARRETT FAWCETT, 1878,357

   A FEMINIST DICTIONARY BY CHERISKRAMA RAE AND PAULLA TREICHLER, p.158

7. The liberation of women for women. We don't have to have anything to do with men at all. They 've taken excellent care themselves - Jill Johnston 1973 91

Ibid p.158

8. May be defined as a movement seeking the re-organization of the world upon a basis of sex-equality in all human relations; a movement which would reject every differentiation between individuals up on the ground of sex, would abolish all sex privileges and sex burdens, and would strive to set up the recognition of the common humanity of woman and man as the foundation of law and custom.

TERESA BILLINGTON - GREIG. Ibid. p.158

9. Women uniting as women to generate a force which presses society to accept and accommodate femaleness as equal, even if different in its attributes.

DEVAKI JAIN 1978. Ibid p.159

10. Feminism is the political theory and practice to free all women, women of color, working class women, poor women, physically challenged women, lesbians, old women, as well as white economically privileged heterosexual women. Anything less than this is not feminism, but merely female self aggrandizement.

BARBARA SMITH 1979. Ibid,p.159

11. "Feminism means you have to read a lot, to understand a lot, to feel a lot, and to be honest." To me, real Feminism means being revolutionary. To be revolutionary means that one examines the problems of women from all aspects; historically, sociologically, economically and psychologically ...... And as a radical feminist, I think you should oppose imperialism, zionism, feudalism and in equality between - nations, sexes and classes.

NAWALEL SAADAWI 1980. Ibid. p.159

12. It is a theory that calls for women's attainment of social, economic, and political rights and opportunities equal to those possessed by men. Feminism is also a model for a social state - an ideal, or a desired standard of perfection not yet attained in the world.

REBECCA LEWIN 1983. Ibid p.160

13. आज़ादी के परवाने, पृ॰182

14. आजकल - सितम्बर 1984 - डॉ॰रामदरश मिश्र

15. आर्कराइट, रिचार्ड - अंग्रेज़ उद्योगपति

16. परिवार, निजी संपत्ति और राज्य की उत्पत्ति - फ्रेडरिक एंगेल्स - मार्क्स एंगेल्स, पृ॰196

17. परिवार, निजी संपत्ति और राज्य की उत्पति - एंगेल्स - मार्क्स एंगेल्स, पृ॰195

18. बाखोफेन, जोहान जैकब - स्विट्ज़रलैंड के मशहूर इतिहासकार और वकील, "मातृ-सत्ता" पुस्तक के रचयिता ।

19. मार्क्स एंगेल्स, पृ॰197

20. वही, पृ॰203

21. गायस {ईसवी सन की दूसरी शताब्दी} रोम के न्यायशास्त्री रोमन कानून संबन्धी एक पुस्तक के संकलनकर्ता ।

22. मार्क्स एंगेल्स, पृ॰205

23. वही, पृ॰205

24. परिवार और संपत्ति की उत्पत्ति और विकास की रूपरेखा - मा‌क्सिम कवोलेवस्की, पृ॰100

25. नेपोलियनी संहिता का उल्लेख करने में एंगेल्स का अभिप्राय पूँजीवादी कानून की समूची व्यवस्था से है, जैसा कि वह नेपोलियन बोनपार्ट के तहत 1804-1890 के काल में जारी की गई पाँच संहिताओं {दीवानी कानून, दीवानी प्रक्रिया, तिजारती फ़ौजदारी और फौजदारी प्रक्रिया की संहितायें} के रूप में देखी जाती है । मार्क्स एंगेल्स, पृ॰366

26. मार्क्स एंगेल्स, पृ॰212

27. वही, पृ॰214

28. परिवार, निजी सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति : एंगेल्स - मार्क्स एंगेल्स संकलित रचनाएं, पृ॰216

29. वही, पृ॰226

30. परिवार निजी संपत्ति और राज्य की उत्पत्ति,पृ॰226

31. वही,पृ॰204

32. मार्क्स एंगेल्स, पृ॰226 33. वही, पृ॰216

34. विश्व इतिहास की झलक - भाग एक,पृ॰448
पंडित जवाहरलाल नेहरू ।

35. In its early years it was responsible for infinite mis~~s~~ery and unparalled crime against infancy and womanhood.

THE ETHICS OF FEMINISM, p.71 A.R. WADIA

36. Since the earliest dawn of the Industrial Revolution a woman employee has been consistenly paid less than a man. But she is forced to put up with this inequality.

THE ETHICS OF FEMINISM, p.73

37. THE SECOND SEX - SIMONE-DE-BEAUVIOR, p.143-44

38. THE SECOND SEX - Introduction.

39. मार्क्स एंगेल्स - संकलित रचनाएं भाग - 1, पृ.27

40. Problems of women liberation - A Marxist Approch,p.18

41. THE ETHIC OF FEMINISM,p.24, A.R. WADIA

42. मार्क्स और एंगेल्स, पृ.227

43. मार्क्सवाद - यशपाल, पृ.89-

44. नारी मुक्ति - लेनिन, पृ.129

45. मार्क्स एंगेल्स, पृ.227

46. THE ETHICS OF FEMINISM, p.39 A.R. WADIA

47. About women liberation, p.32 Lenin.

48. A vindication of the Rights of Women - By.MARY WORLSTONE CRAFT 17 92

49. Under the common law which prevailed in both countries at the op~~p~~ening of the period, a woman under went civil death upon marriage, forfeting what amounted to every human right.
The husband had complete rights over a wife's personal estate and income. Over real estate he also possessed a large a number of rights, although wealthy and landed families had worked out elaborate dodges here in the form of 'settlements' arranged according to rules of equity, as common law did not recognized ownership in women. But the settlement was available

only to the comfortable classes (English law stipulated it applied only to property over £200) It was permitted in the intrests of class rather than of women, who whatever their settlement were prevented from the pre use of what might legally be theirs.
SEXUAL POLITICS, p.67 KATE MILLET

50. In 1867 John Stuart Mill made before the English Parliament the first speech ever officially presented in favour of votes for women.

51. Since I am bound to my wife in unity her intrests are mine. If her political convictions are the same as mine her votes superfuvous.

THE ETHICS OF FEMINISM, p.97

52. आज़ादी के परवाने - हेनरी स्टील कोमेगर, पृ.188
अनुवादक भगवान सिंह

53. वही, पृ.188

54. आज़ादी के परवाने, पृ.189

55. वही, पृ.197

56. वही, पृ.190

57. हिन्दी उपन्यासों में रूढ़िमुक्त नारी - राजरानी शर्मा, पृ.25

58. हिन्दी उपन्यासों में रूढ़िमुक्त नारी - डॉ. राजरानी शर्मा
पृ.26

59. Now - National organization of women, 1966

60. NGLTF - NATIONAL GAY AND LESHIAN TASK FORCE-AMERICA

61. आज़ादी के परवाने, पृ.43

62. Women organization against Rape.

63. Women's Against violence in pornography and media.

64. भारत में नारी आंदोलन की प्रवृत्तियां - आमुख - उन्नीसवीं
संकलन, सितम्बर 1993 अनुराधा गांधी

65. मार्क्स एंगेल्स, पृ.205

66. वही, संकलित रचनाएं भाग - 3, पृ.216

67. The overthrow of mother right was the world historic defeat of the female sex. The man seized the reins in the house also, the woman was degraded, enthralled, the slave of the man's lust, a mere instrument for freeding children.

FERIEDRICH ENGELS - THE ORIGIN OF THE FAMILY PRIVATE PROPERTY AND THE STATE, p.57

68. As wealth increased, it on the one hand gave the man a mere important status in the family than the woman and on the other hand, created a stimulus to utilize traditional order of inheritance in favour of his children.
Ibid. p.62

70. परिवार, निजी संपत्ति और राज्य की उत्पत्ति -
- फ्रेडरिक एंगेल्स, पृ.236

71. dorit de I'homme के दो अर्थ है "मानव अधिकार तथा मनुष्य (पुरुष का अधिकार)
dorit de la femme ("नारी का अधिकार)

72. The first class antagonism which appears in history coincides with the development of antagonism between man and woman in monogamous marriage and the first class oppression with that of the female sex by the male.

THE ORIGIN OF THE FAMILY PRIVATE PROPERTY AND THE STATE, p.65

73. मार्क्स एंगेल्स, पृ.335

74. भारत में नारी आंदोलन की प्रवृत्तियां - आभूषण, पृ.47
अखिल भारतीय क्रांतिकारी सांस्कृतिक संघ केलिए अनुराधा गांधी द्वारा पेश किया निबंध"

75. Woman herself recognizes the world is masculine, on the whole, those who fashioned it ruled it and still dominate it today are men.

SECOND SEX, p.16

76. The humanity is male and man defines women not in herself, but as a relative to him, she is not regarded as an autonomous being. Ibid,p.16

77. SECOND SEX, p.612

78. स्त्री उपेक्षिता - प्रभाखेतान, पृ.328

79. Each period in the life of woman is uniform and monotonous. Marriage is the destiny traditionally offered to woman by the society.

SECOND SEX, p.445

80. स्त्री उपेक्षिता, पृ.318

81. Woman have gained only what men have been willing to grant, they have taken nothing, theyhave only received.

SECOND SEX p.19

82. Ibid.p.21

83. Ibid.p.23

84. Marriage permits a woman to keep her social dignity. She will free herself from the parental home, from her mother's hold, she will open up her future, not by active conquest but by delivering herself up, passive and docile, into the hands of a new master.

SECOND SEX p.375

85. In the middle Ages, woman being in a state of absolute dependence of father and husband.... The richer the husband, the greater the dependence of the wife, Neither Feudalism nor the church Freed Women.

86. SECOND SEX, p.320

87. SECOND SEX p.144
All women can be liberated with-in the capitalist world system.

WOMAN ORGANIZATION AND WOMEN INTERESTS,p.3
BY P.M. MATHEW & M.S. NEAMI

88. The Feminine mystique says that the highest value and the only commitment for women is the fulfilment of their own feminity. It says that the great mistake of western culture, through most of its history has been the undervaluation of this feminity. It says this feminity is so mysterious and intuitive and close to the creation and origin of life that man made science may never be able to understand it. But however special and different, it is no way inferior to the nature of man, it may even in certain respects be superior.

THE FEMININE MYSTIQUE p.38 BETTY FRIE DAAN

89. Women also had minds. They also had the human need to grow. But the work that fed life and moved it forward was no longer done at home, and women were not trained to understand and work in the world. Confined to the home, a child among her children, passive, no part of her existence under her own control, a woman could only exist by pleasing man. She was wholly dependent on his protection in a world that she had no share in making, man's world she could never grow up to ask the simple human question, who am I ? what do I want ?

Ibid. p.72

90. To day, when women's equal intelligence has been proved by science, when their equal capacity in every sphere, except sheer muscular strength has been demonstrated a theory explicitly based on woman's natural inferiority would seem as ridiculous as it is hypocritical.

THE FEMININE MYSTIQUE, p.106

91. Feminism was not only a Joke. The feminist revolu tion had to be fought because women quite simply were stopped at a stage of evolution for short of their human capacity. The domestic function of woman does not exhaust her powers. To make one half of the human race consume its energies in the functions of housekeeper, wife and mother is a monstrous waste of the most precious material God ever made. And running like a bright and some times dangerous thread through the history of the feminist movement was also the idea that equality for woman was necessary to free both man and woman for true sexual fulfilment.

Ibid. p.76

92. FACES OF FEMINISM,p.228 OLIVE BANKS

93. Primarily, however, a sexual revolution would bring the institution of patriarchy to an end, abolishing both the ideology of male supremacy and the traditional socialization by which it is upheld in matters of status, role and temperament.

SEXUAL POLITICS - KATE MILLET, p.62

94. Her husband owned both her person and services, could and - did rent her out in any form he pleased and pocket the profits....... Her husband became something like a legal keeper as by marrying she succumbed to a mortifying process which placed her in the same class with lunatics or idiots who were also 'dead in the law'.

SEXUAL POLITICS, p.67

95. Woman is still denied sexual freedom and biological control over her body through the cult of virginity the double standard, the prescription against abortion and in many places because contraception is physically unavailable to her.
Ibid. p,54

96. SEXUAL POLITICS, p.61
The abolition of sex role and the complete economomic independence of woman would under-mine both its authority and its financial structure..........
marriage might generally be replaced by voluntary association, if such is desired.
Ibid,p.62

97. Perhaps patriarchy's greatest psychological weapon is simply it universality and longevity.
Ibid. p.58

98. Unless the revolution disturbes the basic social organization the biological family, the tape worm of exploitation will never be annihilated.

SULSMITH FIRESTONE - THE DIALECTIC OF SEX,p.290

99. Love perhaps even more than child bearing is the pivot of women's oppression today.

Ibid, p.143

100. The Freedom of all woman and children to do what ever they wish to do sexually., p.271

101. Faces of Feminism, Olive Blanks, p.245

102. नारी विद्रोह का भारतीय मंच - आशारानी व्होरा, पृ.142

103. Problems of women's liberation - A marxist Approach p.88

104. NOW-National Organization for women
SCUM - Society for the cutting up of men.
WITCH - Women's international Terrorist Conspiracy from Hell.

PROBLEMS OF WOMEN'S LIBERATION, p.26

105. FEMALE EUNUCH - GERMANE GREER, p.19

106. THE DIALETIC OF SEX, pp.269-70

107. FEMALE EUNUCH - GERMANE GREER, p.104

दूसरा अध्याय

भारतीय समाज और नारी

दूसरा अध्याय

भारतीय समाज और नारी

मुगल युग

आठवीं शताब्दी व अठारहवीं शताब्दी के दरमियान, यानी मुहम्मदबिन कासिम के आक्रमण से लेकर मुगल साम्राज्य के पतन तक भारत में हिन्दू स्त्रियों पर अनेकानेक सामाजिक बंधन लगाये गये थे। उनपर अनगिनत नियोग थोपे गए। बाल विवाह, विधवा विवाह निषेध, जबरदस्ती से सती व जौहर व्रत का अनुष्ठान, परदा प्रथा आदि इनमें प्रमुख रहे। इन सबके कारण लडकियों को शिक्षा से वंचित भी कर दिया गया। अशिक्षा और अंधविश्वास से जकड़ी नारी पुरुष की पूर्णत: गुलाम बन गयी। फलस्वरूप नारी के सहधर्मिणी, सह कर्मी स्वरूप नष्ट होने लगे। अत: एक हज़ार वर्ष की अवधि में भारतीय समाज में नारी की सामाजिक स्थिति जितनी गिरी उतनी इसके पूर्व हज़ारों वर्षों में भी नहीं हुई।

भारत बरसों तक दासता की बेड़ियों में जकड़ा रहा था। दासवृत्ति के समस्त दुष्परिणामों से भारतीय जनता ग्रसित थी।

शिक्षा के अभाव के कारण अनेक रूढ़ियों और अंधविश्वासों ने उसकी प्रगति के समस्त द्वार अवरुद्ध कर दिए थे। फलतः आत्महीनता तथा निराशा की भावना प्रबल हो गई थी।

भारत में, स्त्री शताब्दियों से अपने अधिकारों से वंचित रही है। जैसे भारतीय स्त्री की इस अवनति के संबन्ध में महादेवी जी ने लिखा है - "भारतीय स्त्री की सामाजिक स्थिति का इतिहास भी उसके विकृत से विकृततर होने की कहानी मात्र है। बीती हुई शताब्दियाँ उसके सामाजिक प्रासाद केलिए नींव के पत्थर नहीं बनीं वरन उसे दहाने केलिए वज्रपात बनती रही हैं। फलतः उसकी स्थिति उत्तरोत्तर दृढ तथा सुन्दर होने के बदले दुर्बल और कुत्सित होती गई।"[1]

चाहे भारतीय नारी की गौरव गाथा से आकाश गूंज रहा हो चाहे उसके पतन से पाताल कांप उठा हो परन्तु उसकेलिए 'न सावन सूखे न भादों हरे' की कहावत चरितार्थ होती रही है। उसे अपने उत्कर्ष तथा अपकर्ष दोनों का इतिहास आँसुओं से लिखना पड़ा है। प्राचीन काल में जब उसने त्याग संयम तथा आत्मदान की आग में अपना व्यक्तित्व गलाकर और उसे कठोर आदर्श के सांचे में ढालकर एक देवता की मूर्ति गढ डाली तब उसके बलिदान को पुरुष ने उसकी दुर्बलता के अतिरिक्त और कुछ समझने का प्रयत्न नहीं किया। मनुस्मृति की हिदायतों के अनुकूल नारी-नारीसे पुरुष के संरक्षण और नियंत्रण में जीकर उनका स्वतंत्र व्यक्तित्व एवं चिन्तन नष्ट हो गये। मनु-स्मृति के प्रकाशन के साथ-साथ भारतीय समाज में स्त्री के पतन की शुरुआत हुई है।"[2] समाज भूल चुका था कि कभी दुर्गा, लक्ष्मी, अदिति, उषा, इला, श्रद्धा जैसी देवियाँ, गार्गी जैसी ब्रह्मवादिनी तथा अपला, लोपमुद्रा,

मैत्रेयी, भारती जैसी विदुषी स्त्रियाँ भी इसी देश में जन्मी थीं। भारतीय मनीषियों का "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते देवता:" जैसी उद्घोषणा विस्मृत हो चुकी थी। इसका स्थान मनु के निम्नांकित श्लोक की भावना ने अपना लिया था -

"बाल्ये पितृवशे तिष्ठेत्पाणिग्राहस्य यौवने ।[3]
पुत्राणां भर्तरि प्रेते न भजे स्त्री स्वतन्त्रताम् । 48 ।"

यों विधायक मनु ने जहाँ एक ओर स्त्री को बचपन से मृत्युपर्यन्त, पिता, पति, पुत्र की सुरक्षा में सौंपकर उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व और अस्तित्व को जकड़ा दिया, वहीं दूसरी ओर नारी की पूजा जहाँ हो वहाँ देवता का निवास होता है, कहकर संरक्षक पुरुष पर उसके सम्मान की रक्षा का दायित्व भी डाल दिया। फिर भी स्त्री का पलड़ा हल्का रहा, और पुरुष का वजनदार।

मुगल शासन के दौरान स्त्री की स्थिति बदतर हो गयी थी। नारी बादशाहों के दरबारों की विलासिता का साधन बन गयी। "कला और ऐश्वर्य का काल होने के कारण मुगल काल में युद्ध से थके बादशाहों के दरबारों में विलासिता का वातावरण व्याप्त था और उस विलासिता की शिकार बनी भोली-भाली असहाय नारी।"[4] नारी के प्रति आकर्षण केवल मनबहलाव के लिए हो गया। ब्राह्मणों ने रक्त की शुद्धता, स्त्री सतीत्व की रक्षा और हिन्दू धर्म की रक्षा के नाम पर उसे इतने अधिक सामाजिक बंधनों से जकड़ दिया कि उसके स्वतंत्र अस्तित्व का नामोनिशान न रहा। लड़कियों की शिक्षा बंद हो गयी। मुसलमानी आक्रमणों के दौरान लड़कियों के अपहरण की घटनाएं बढ़ीं तो हिंदुओं में छोटी-छोटी बच्चियों तक का विवाह किया जाने लगा।

पर्दा प्रथा भी प्रारंभ हो गई । यह नारी की अस्वतंत्रता को बढाने में ही सहायक हुई । सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों से उसे अलग करके घर की चहार दीवारी के भीतर बन्द रखने में पर्दा प्रथा का प्रमुख हाथ रहा था । नारी शिक्षा के क्षेत्र में भी पर्दा प्रथा अवरोध बनी थी ।

उस समय सती प्रथा चरम सीमा तक पहुँच गई । विधवा-विवाह नीची जातियों के अतिरिक्त सभी मध्य व ऊँचे वर्गों में बुरा माना जाने लगा । पति की मृत्यु के बाद पत्नी के सामने केवल एक ही मार्ग था - सतीत्व का पालन करना । वैधव्य जीवन कठोर नियमों से आबद्ध था । भय और पातिव्रत-धर्म को बरकरार रखने की चिंता पति के साथ जल जाने केलिए उसे प्रेरित करती थी । इस प्रथा के पीछे की अर्थ से जुडी स्वार्थता से स्त्री अनभिज्ञ थी और वह बोध्य पुरुष मेधा समाज केलिए हानिकारक भी थी । बाल विवाह उस समय की एक अन्य सामाजिक विसंगति था । नादान बालिकाओं की कच्ची उम्र में शादी करायी जाती थी, जिससे उनका जीवन नरक बन जाता था । दहेज के कारण स्त्री को वृद्ध, बीमार, कुरूप व्यक्ति के साथ जीवन बिताना पड़ता था । वैवाहिक जीवन के दायित्वों को संभालने की प्रौढता इन बालिकाओं में नहीं थी, साथ ही कच्ची उम्र में मातृत्व का भार ढोने केलिए वे विवश होती थी । बच्चा होते ही उनकी मृत्यु भी स्वाभाविक थी । पुरुष विधुर होने पर भी शादी कर सकता था - इसलिए नारी का जीवन उनकेलिए कोई महत्व की चीज़ नहीं रहा । बूढे पति की मृत्यु के बाद भी बाल विधवा को कठोर अभिशप्त जीवन जीना पड़ता था । विधवा जीवन के बारे में महादेवी जी की बात सही रही है - समाज में विधवाओं की हालत इतनी क्रूर एवं अमानवीय थी कि वे वैधव्य की अपेक्षा

सती हो जाना बेहतर समझती थी । पुरुष अपनी मर्जी के अनुसार एक से अधिक विवाह कर सकता था । लेकिन विधवा का पुन: विवाह कल्पनातीत थी । अगर विधवा, मातृत्व के उत्तरदायित्व से युक्त होती तो अन्धकार में मार्ग ढूंढना पड़ता था । यदि विधवा अबोध बालिका है तो भी समाज और परिवार, सनातन नियमों को निभाने केलिए उसे मजबूर करते थे ।"[5]

अशिक्षा नारी जीवन के पतन का मुख्य कारण थी । पिता का दायित्व दहेज और कन्यादान तक सीमित था । शिक्षा देना या शिक्षा का प्रबन्ध करना पिता का काम नहीं रहा । पर्दा प्रथा के कारण बाहर जाकर शिक्षा का अर्जन करना संभव नहीं था । शिक्षा के अभाव से नारी का जीवन कूप के मेंढक जैसा बन गया ।

सामंती सामाजिक परिवेश में नारी की हालत

अंग्रेज़ों के आने के पहले भारतीय समाज में सामंतवादी व्यवस्था मज़बूत थी । अंग्रेज़ों ने जानबूझकर इस व्यवस्था में परिवर्तन करने की कोशिश नहीं की, साथ अपने शोषण को और सख्त बनाने केलिए उसे और दृढ भी कर दिया ।

सामंतीय परिवेश में नारी की हालत बेहद नृशंस एवं दयनीय थी । भारत के अधिकतर गाँवों में आज भी सामंतीय व्यवस्था में कोई बदलाव नहीं आया है, इसलिए नारी की हैसियत भी नहीं रही है । नारी की दुर्दशा की सही पहचान के लिए सामंतीय व्यवस्था में उसकी हालत का आकलन अवश्यंभावी है ।

भारत में सामंतवादी शोषण और महाजनी सभ्यता का जो दौर मध्यकाल में विद्यमान था स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी एक हद तक बरकरार है । उसका यानी थोडा रूप बदला है । लेकिन मूलभूत प्रवृत्ति शोषण की जकड पकड गयी है ।

सामंतवादी सामाजिक रीति-रिवाजों में शोषण प्रक्रिया की यह नीति है कि शक्तिशाली वर्ग शक्तिहीन वर्ग को अधिकारों से धीरे धीरे वंचित कर देता है । शक्तिहीन वर्ग शक्तिशाली वर्ग का दास मात्र रह जाता है । शोषण सामन्ती व्यवस्था की विशिष्ट देन है । अपने काम-बल और मनोबल से किसी शक्तिशाली व्यक्ति का दीन-हीन कमज़ोर व्यक्तियों के मन और शरीर पर आधिपत्य स्थापित करना शोषण है । अपने स्वत्व और सत्ता का आरोप किसी अन्य व्यक्ति पर करना भी शोषण है जिससे उसका स्वतंत्र अस्तित्व समाप्त हो जाय । सामन्तवादी व्यवस्था के अन्तर्गत शोषण के विभिन्न आयाम उभर कर आये हैं, जिनमें नारी-शोषण मुख्य है । "विभिन्न युगों में नारी-शोषण के स्वरूपों में भिन्नता होते हुए भी उसमें प्रवृत्तिगत साम्य दृष्टिगत होता है । कहीं नारी पुरुष की क्षुधा-शान्ति का साधन है तो कहीं उसके राजनीतिक उद्देश्य की पूर्ति का साधन रूप पृथक-पृथक होते हुए भी मूल भाव एक ही है । नारी साधन है साध्य नहीं ।"[6]

सामंतवादी समाज में नारी की स्थिति वाकई दयनीय थी । इला मुखर्जी के अनुसार - "सिद्धान्तों में तो हमारे यहाँ गृहस्थी को सुचारू रूप चलाने के लिए स्त्री-पुरुष का स्थान समान महत्व का माना जाता रहा है, किन्तु व्यवहार में हमारे पुरुष मेधा समाज में, पुरुषों को

प्रथम श्रेणी की तथा स्त्री को द्वितीय श्रेणी की नागरिकता प्राप्त है । फलत: पुरुष का स्थान महत्वपूर्ण और स्त्री का गौण है । वह मात्र अनुगामिनी तथा मूक दासी बन गई है । नैतिकता धार्मिकता और त्याग की जितनी अपेक्षा नारी से की जाती है उतनी पुरुष से नहीं सामाजिक रूढियों, परम्पराओं तथा अंधविश्वासों का पंजा नारी को ही दमघोटू रूप में जकडे हुए है । सामंती युग में नारी केवल भोग्या बनकर रह गई थी । वह पुरुष के हाथ का खिलौना थी, जिसे जब चाहा मनबहलाव केलिए प्यार किया तथा जब न चाहा, ठुकरा दिया ।"[7]

डॉ.चण्डीप्रसाद जोशी लिखते हैं - "भारतीय समाज में नारी वर्ग ही सर्वाधिक पीडित रहा, अछूते वर्ग से भी अधिक अछूता, सामाजिक व्यवहार में घृणा का पात्र रहा, लेकिन समाज ने धर्म का आश्रय लेकर उसके मृत्युदण्ड का विधान नहीं रच डाला, लेकिन सती प्रथा के रूप में, समाज ने नारी केलिए पातिव्रत्य धर्म की स्थापना की, जो सामूहिक आत्महत्या को स्वीकृति देना ही था ।"[8] यों शक्तिशाली वर्ग ने अपनी स्वार्थ पूर्ति केलिए नारी शोषण के विभिन्न तरीके और विभिन्न क्षेत्र स्थापित कर लिए एवं उन्हें धर्म की स्वीकृति दे दी । नारी जीवन ने इतनी सामाजिक समस्याओं और कुंठाओं को जन्म दिया कि नारी केलिए नारी का जन्म ही अभिशाप बन गया और इस अभिशाप को जन्म के साथ ही मृत्यु से जोड देने का चलन भी जातियों में आरंभ हुआ ।"[9] पैदा होने पर लडकी को अनचाहा मेहमान माना जाता था । अत: कुछ कबीलों में तो उसे जन्म लेते ही मार डाला जाता था ।"[10] यह प्रथा अब भी राजस्थान, तमिलनाडु आदि प्रांतों में ज़ारी है ।

नारी के अस्तित्व का मूल्य सामंतीयुग में केवल अपने सौन्दर्य के जादू में फंसे नवाबों की भूख शांत करना था । यानी सामन्ती समाज में नारी केवल वेश्या रह गयी थी । रिश्वत में रूपये-जवाहरात के साथ खूबसूरत स्त्रियों की भी बड़ी माँग थी । अमृत लाल नागर ने 'शतरंज के मोहरे' में लिखा है - नीची समझी जानेवाली जाति की स्त्रियों का उपभोग सामन्ती लोगों के अलिखित विधान के अनुसार उचित था । बड़े जातिवाले छोटी जाति की स्त्रियों को हर प्रकार कल, बल, छल से अपने रस प्रयोग में लाते थे ।

सामंतवाद ने नारी को अबला बना दिया था । लोगों में यह धारणा घर कर चुकी थी कि नारी कमज़ोर है, वह विपत्ति आने पर किसी की सहायता के बिना कुछ नहीं कर सकती है । नारी भी अपने आप को प्रताड़ित और उपेक्षित महसूस करती थी । पुरुषों को बाँधने का एकमात्र हथियार उसका सौन्दर्य था । बाकी सब काम उसका कर्तव्य मात्र माना जाता था ।"[11]

सामन्तों की इस स्वार्थी विलासी प्रकृति ने नारी को शिक्षा से वंचित रखा और उसे वेश्या बनने केलिए विवश किया । ज़मीन्दार जब किसी को लूटता तो दो चार दिन आप भोग करता, फिर उसके सहायक उस पर अत्याचार करते । स्त्री घर से निकाली गयी । वेश्या बन गयी । फिर उसका समाज में कहीं कोई स्थान ही न रह गया ।

नारी - जीवन की सार्थकता उसे भोगनेवाले पुरुष से जुड़ी हुई थी । उसकी स्वतंत्र कोई सत्ता नहीं, उसका कोई अपना कुल नहीं ।

यानी जिस पुरुष केलिए नारी आत्म समर्पण करती है, वही उच्च पद और धन के लिए नारी के प्यार की तिलांजली करता है । और उसे ठोकरें खाने केलिए मार्ग में ही छोड देता है । सामंती-समाज की उपेक्षित, वंचित और प्रताडित नारी दासी बनने केलिए विवश हो जाती है ।

सामंतवादी समाज ने नारी को गृहिणी-पद का सम्मान देकर उसे बाह्य जीवन संघर्ष एवं ज्ञान से बिलकुल वंचित कर दिया, परिणाम-स्वरूप नारी अबला बन गयी, घर की देहरी से बाहर निकलकर अपनी रक्षा करने में असमर्थ हो गयी । "दस वर्ष का बालक भी युवा नारी का अंगरक्षक बन सकता है, ऐसी स्थिति भारतीय समाज ने उत्पन्न की, क्योंकि समाज के भूखे भेडिये सर्वत्र ही नारी की ओर गिद्ध-दृष्टि लगाये देखते रहते हैं । नारी सर्वत्र बन्धनों से जकड़ी हुई है । कुलीनता उसका सबसे बडा अभिशाप है । वह अपने सतीत्व की रक्षा करने में भी असमर्थ है ।"[12]

समाज और धर्म की इन यथार्थ मान्यताओं से त्रस्त नारी केलिए आर्थिक, सामाजिक स्वावलंबन का रास्ता था कि वह वेश्या बनकर शरीर बेचे । क्योंकि वेश्या स्वतंत्र नारी है । सामंती विधान में नारी एक निर्जीव माँस-पिण्ड ही है जिसकी कोई स्वतंत्र इच्छा नहीं सत्ता नहीं, उसे पुरुष की दासी बनकर रहना चाहिए । इस युग में नारी का कोई निजत्व नहीं, उसका अस्तित्व पुरुषों का निमित्त है । "नारी शोषण का यह क्रम यही समाप्त नहीं था । बादशाह को प्रसन्न रखने केलिए अनेक सुन्दर कन्यायें क्रय करके लायी जाने लगी मानों नारी व्यक्ति न होकर कोई खिलौना हो, कोई बाज़ारी चीज़ हो, जिसे कभी भी खरीदा जा सके ।"[13]

केवल वासना-तृप्ति केलिए ही नहीं धनप्राप्ति केलिए भी नारी का शोषण किया गया । नारी शोषण को सभी प्रकार के उद्देश्यों की पूर्ति का, केन्द्र बनाया गया । सामंती जीवन और समाज में वैवाहिक संबन्धों का स्वरूप जितना विकृत था उसके पहले कभी न था । सामन्तों ने विवाह-संबन्धी धर्म और नैतिकता के सारे बन्धन नारी के ऊपर लगा दिये, लेकिन वे स्वयं इन सब बन्धनों से मुक्त स्वेच्छाचार आचरण करते रहे । नारी इन वैवाहिक बन्धनों के चक्र में फंसी अभिशाप्त जीवन जीती रही । इस कुप्रथा के द्वारा नारी का अत्यधिक शोषण हुआ एवं समाज में भ्रष्टाचार व अनैतिकता को भी प्रश्रय मिला ।

बाल विवाह, बहु विवाह, अनमेल विवाह, अभिशाप्त विधवा जीवन आदि वैवाहिक संबन्धों की विडम्बनायें हैं, जो सामंती परिवेश में पलकर विकसित हो गए थे जिनका प्रभाव आधुनिक जीवन में भी पड़ा है । उस युग के वैवाहिक जीवन की यह विडम्बना रही कि पशुओं की भाँति नारियाँ बेची या खरीदी गयीं । एक की विवाहिता पत्नी को दूसरा व्यक्ति हरजाना देकर खरीद सकता है और इस प्रकार वह उसका नया पति बनता है । नारी को पैसे के द्वारा खरीदी जाती है, पति बदल जाता है, और उसके द्वारा व्यापार भी कराया जाता है, यानी नारी सदैव क्रूरता के चक्र में पिसती रही है ।"[14]

बाल विवाह, अनमेल विवाह, दहेज प्रथा, छुआ-छूत की भावना एवं अवैध-यौन संबन्ध आदि सामंतवादी प्रवृत्तियाँ नारी शोषण के अनगिनत तरीके हैं । नारी न केवल विलासिता की पुतली बनी, अपितु अकथनीय यौन कुण्ठाओं एवं बलात्कार की शिकार भी बनी ।

कभी बाल विवाह उसकेलिए अभिशाप बन गया तो कभी अनमेल विवाह उसके जीवन की विडम्बना और कभी इन दोनों के परिणाम स्वरूप आजीवन विधवा की उपाधि उसके भाग्य की लेखा बनकर रह गया । विधवा विवाह को सामंती समाज में स्वीकृति न थी, लेकिन सामन्ती समाज भूखे भेड़िये के समान उसकी विवशताओं से खेलता रहा और विधवा का जीवन उसकेलिए कलंक बन गया, जिसे ढोना ही उसकी नियति थी । विधवा जीवन के प्रति समाज की दृष्टि सदैव ही परम्परा-वादी रही एवं विधवा को समाज से असमानता और प्रताड़णा ही मिलती रही । समाज ने कभी भी उसके स्वतंत्र अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया । सामन्ती समाज की अनैतिक दृष्टि के कारण अनेक विसंगतियों के दुर्वह बोझ को ढोने के कारण स्त्री केलिए जीवन भार बन गया ।

सामंतवादी भारतीय समाज ने स्त्री और पुरुष केलिए पृथक पृथक विधाओं की रचना की है । स्त्री के मरने पर पुरुष तो दूसरा विवाह करके नया जीवन आरम्भ कर सकता है, किन्तु नारी विधवा रहकर तिल तिल गलती रहती है । अनमेल विवाह भी नारी शोषण की एक अलग सक्रिय विधा रहा है, डॉ॰ कमला गुप्ता के अनुसार "यह एक ऐसी कुप्रथा है जो सामन्ती समाज में प्रचलित रही एवं स्वतंत्रता पूर्व तक इस सभ्यता का विकराल स्वरूप सामने आया । गरीबी और अशिक्षा की चक्की में गाँव बुरी तरह पिस रहे थे और नारी का यह सामाजिक शोषण उसकी एक नियति बन गया था ।"[15] विवाह से जुड़ी और एक दूषित सामंती प्रवृत्ति है बहु विवाह । सामन्ती जीवन में इस कुप्रवृत्ति को सर्वाधिक महत्व प्राप्त हुआ था । असीम धन से संपन्न सामंत अपनी विलासिता की पूर्ति बहु विवाह करके करते थे । उस समाज में पुरुष के लिए एक से अधिक विवाह अनुचित नहीं नहीं माना जाता एवं सामन्तों ने इस नियम का खूब दुरुपयोग भी किया ।

राजाओं की वैभवप्रियता, विलासिता और प्रदर्शन-प्रवृत्ति का तत्कालीन सामन्तीय जीवन पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा । महलों में लगनेवाले "रूप बाज़ारों" का प्रभाव जन सामान्य पर भी पड़ा । फलस्वरूप पौरुष का ह्रास हुआ, आभिजात्य संस्कृति के नाम पर केवल विलासिता और प्रदर्शन की प्रवृत्ति शेष रह गई । मनोबल की कमी के साथ समाज का बौद्धिक स्तर भी बहुत नीचा हो गया । अनेक छोटे-मोटे सामन्तों के पास रखैलों की भरमार थी । एक पत्नी-व्रत का अनादर पहले से ही मुगल सम्राटों के द्वारा हो चुका था । नारी को केवल मनोरंजन और विलास की सामग्री समझा गया । सामन्ती युग की दृष्टि का प्रसार उनके शारीरिक लावण्य एवं कोमलता तक ही सीमित रहा, उसकी अनुपम शक्ति संपन्न अन्तरात्मा तक न पैठ सकी । सामन्तीय जीवन आरम्भ से जीवन की विकृतियों से भली-भाँति परिचित हो गया था । जीवन के संघर्ष से उनका कोई सरोकार नहीं था । यौन आचरण में किसी प्रकार का नियंत्रण नहीं था । शराब तथा द्यूत क्रीडा इनके जीवन के अंग बन गये थे ।

जनता के जीवन में भी इस सामंतीय संस्कृति का हूबहू प्रभाव पड़ा था । जन जीवन में अन्ध-विश्वास तथा रूढ़ियाँ घर कर गई थीं । ज्योतिषियों की वाणी, शकुनशास्त्र, सामुद्रिक शास्त्र पर उनका अगाध विश्वास था । जनता प्रायः अशिक्षित थी । उनमें नागरिकता का पूर्ण अभाव था । स्वार्थान्ध होकर विलास के उपकरण एकत्रित करना उसके जीवन का एकमात्र लक्ष्य रह गया था । सभ्यता और संस्कृति के ह्रास के साथ-साथ उस युग को महान आर्थिक संकट भी झेलना पड़ा ।

आधुनिक काल

मध्ययुग के पश्चात् अंग्रेज़ी-शासन काल से आधुनिक युग का आरंभ होता है । अंग्रेज़ों के आगमन काल में भारतीय समाज और धर्म दोनों परंपरागत रूढियों, रीतिरिवाज़ों, और कुप्रथाओं से बुरी तरह ग्रस्त थे,। अंग्रेज़ों ने ही भारत में नवीन शिक्षा प्रणाली का सूत्रपात किया । पाश्चात्य शिक्षा और सभ्यता के संपर्क में आकर लोगों में नव चेतना का विकास होने लगा । अंधविश्वास, निरक्षरता और अज्ञानता से धीरे धीरे मुक्ति मिलने लगी ।"[16]

इस काल में अनेक समाज सुधारक हुए और उनकी ओर से सुधारवादी आन्दोलन भी चलाये गए । सालों से उपेक्षित नारी की समस्याओं को वाणी देने का महान कार्य हुआ साथ ही उनके अथक परिश्रम के फलस्वरूप नारी सुधार संबन्धी कार्य का भी आरंभ हुआ । लडकियों केलिए अनेक प्राथमिक और माध्यमिक स्कूलों की स्थापना हुई । राजाराम मोहन रॉय ने अंग्रेज़ी शिक्षा को महत्व दिया साथ ही उपयोगी विज्ञान के अध्ययन पर ज़ोर दिया ।"[17] राजा राममोहन रॉय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, स्वामी दयानन्द, पंडिता रमाबाई, महर्षी कर्वे, महात्मा गांधी आदि महान सुधारकों का ध्यान सामाजिक सुधार व स्त्री-शिक्षा पर केन्द्रित था । एक ओर सती प्रथा का उन्मूलन, बालविवाह पर प्रतिबंध, विधवा पुनर्विवाह की स्वीकृति, स्त्रियों का संपत्ति पर समान अधिकार आदि कानून वैध बनाकर उन्हें सामाजिक अन्याय से कुछ राहत प्रदान की गई, दूसरी ओर उनकी शिक्षा दीक्षा के प्रबन्ध किए जाने लगे । 1878 में कलकत्ता में लडकियों केलिए बेथून कोलेज की स्थापना हुई । इसे महिला शिक्षा क्षेत्र का मील का पत्थर माना गया । आगे चलकर लडकियों केलिए अनेक प्राथमिक और माध्यमिक स्कूलों की स्थापना हुई ।

1907 में नारी शिक्षा के प्रबल समर्थक महर्षी कार्वे ने महिला विश्व विद्यालय की स्थापना की । 1916 में उन्हीं के द्वारा बम्बई में एस.एन.डी.टी. महिला विश्वविद्यालय की स्थापना की गयी ।

नारी उत्थान केलिए श्रीमती मार्गरेट ई.कजिन्स, ऐनीबेसेंट, मार्गरेट नोबिल के प्रयत्नों से भारतीय नारी आन्दोलन आरम्भ हुए । ऐनी बेसेंट ने सन् 1917 में वीमेंस इण्डियन एसोसियेशन की [Women's Indian Association] नींव डाली और तदुपरान्त भारतीय महिला संघ, संतति निरोध संघ और अखिल भारतीय महिला सम्मेलन आदि की स्थापना हुई ।

1917 में मारग्रेट कज़िन्स की अगुआई में भारत में सफरेजिस्ट आन्दोलन का आरंभ हुआ था । उसी वर्ष श्रीमती सरोजनी नायिडू के नेतृत्व में चौदह महिलाओं का एक दल इंगलैंड में सर मोण्टेगु से मिला और उन्होंने एक ज्ञापन समर्पित किया । उसमें मानव होने के नाते नारियों को भी मताधिकार मिलने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया था ।[18] 1925 में श्रीमती सरोजनी नायडू कांग्रेस अध्यक्ष की गद्दी पर शोभित हुई । श्रीमती नायिडू व उनकी अन्य अन्य साथी महिलाओं ने "माउंट फोर्ड रिफार्म्स" का विरोध किया क्योंकि उसमें स्त्रियों को मताधिकार नहीं दिया गया था । पर मताधिकार पर विचार करने का अधिकार प्रांतीय विधान परिषदों को सौंप दिया गया था । फलस्वरूप कुछ प्रान्तों में अधिनियम पास कर स्त्रियों को मतदान के सीमित अधिकार व चुनाव लडने के अधिकार दिए गए । 1926 में पहली बार स्त्रियों ने चुनाव में भाग लिया । आम चुनाव के बाद 1927 में कतिपय महिलाएं ही विधान सभाओं में थीं, क्योंकि चुनाव लडने के अधिकार कुछ शर्तों पर ही प्रदान किए गए थे ।

इसी समय 1927 में "अखिल भारतीय महिला सम्मेलन" नामक एक गैर राजनीतिक संगठन की स्थापना हुई। इस संगठन का मुख्य काम महिलाओं की सामाजिक और शैक्षणिक स्थिति को उन्नत करना था। पर इसके साथ-साथ उनमें राजनीतिक चेतना जागृत करना भी इसका लक्ष्य रहा था। 1929 में बाल-विवाह-निषेध अधिनियम पास हुआ, जो महिलाओं की सामाजिक स्थिति सुधार में एक नया मोड़ था। इसका अर्थ स्त्री-शिक्षा में उन्नति तथा व्यक्तित्व विकास के अवसरों में वृद्धि था।"[19]

कहने का मतलब यह है कि इस समय नारी जागृति का कार्य सब ओर से हो रहा था। नारी ने इस कार्य को करने का बीड़ा उठाया और पुरुष ने उसमें सहयोग दिया। इसके परिणाम स्वरूप देश में सुधारवादी कार्य आरंभ हुआ और सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक आन्दोलनों के साथ स्वयं नारी इस कार्य में लग गयी। भारतीय नारी में एक नई स्फूर्ति और आशा भर गयी। वे भी जागरूक होकर अपनी हीन-दीन अवस्था से मुक्त होने में समाज-समक्ष उपस्थित हो गयी।"[20] बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ से स्त्रियों ने स्वयं इस ओर रुचि प्रदर्शित की और अनेक महिला संगठन इस कार्य को आगे बढ़ाने लगे। स्वतंत्रता संग्राम का युग-स्वतंत्रता संग्राम के दौरान भारत के महान पुरुषों ने स्त्री शक्ति को महसूस किया था। गांधी जी ने नारी को सदैव ही पुरुष की सहयोगिनी के रूप में मान्यता दी। 1909 में इंग्लैण्ड में रहते वक्त गांधीजी की मुलाकात श्रीमती पंकहर्स्ट तथा श्रीमती डेसपार्ड से हुई थी। दोनों उस समय वहाँ के नारी-मुक्ति आंदोलन के नेतृत्व कर रही थीं। गांधीजी को इनसे प्रेरणा मिली थी, तब से वे भारतीय महिलाओं में भी जागृति लाना चाहते थे। गांधीजी का विश्वास था कि अपने शरीर की आहुति देने से पति के प्रति स्त्री के कर्तव्य की पूर्ति नहीं हो पाती। इसकेलिए उसे

जीवित रहकर अपने पति के आदर्शों की स्थापना के लिए प्रयत्न करना है। वे मानते थे "पत्नी पति की दासी नहीं परन्तु उसकी सहचारिणी और सहधर्मिणी है, दोनों एक दूसरे के सुख-दुख के सहभागी हैं, भलाई और बुराई में जितनी स्वतंत्रता पति को है, उतनी ही पत्नी को भी है।"[20] उन्होंने कई बार कहा है कि अक्सर स्त्रियों का बहुत सा समय आवश्यक घरेलू कामों में नहीं बल्कि अपने पति के अहंग्रस्त सुख की तृप्ति में ही बीतता है। मेरे विचार में स्त्रियों की यह गुलामी हमारी सभ्यता का अवशेष है ..... अब समय आ गया है कि हमारा समाज इस बंधन से मुक्त हो जाए, स्त्री को अपना सारा समय घरेलू कार्य में ही नहीं लगाना चाहिए।"[21] नारी में समान भाव की प्रतिष्ठा लाने केलिए उनका यही सुझाव है कि सबसे पहले सामान्य महिलाओं को उनकी वर्तमान पतित स्थिति का ज्ञान कराना ज़रूरी है। पर्दा प्रथा का विरोध करते हुए उन्होंने कहा कि पतिव्रता धर्म पर्दे की आड में रहने से ही नहीं पनपता। वह बाहर से नहीं लादा जा सकता। यह भाव तो भीतर से होना होगा। नारी को आधुनिक बनाने और उसे सामाजिक स्वीकृति दिलाने में गांधीजी का योगदान सराहनीय रहा है।

गांधीजी का विश्वास था कि यदि हमें अपने देश को स्वतंत्र कराना है तो स्त्री-शक्ति को भी साथ लेकर चलना होगा। वे चाहते थे कि स्त्रियाँ भी आंदोलनों व सत्याग्रहों में भाग लें। वे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने नारी को राजनीति में भाग लेने केलिए प्रोत्साहित किया था। राजपूत शासन काल के पश्चात् बीसवीं शताब्दी में ही पहली बार महिलाएं राजनैतिक क्षेत्र में आयीं। गांधीजी द्वारा संचालित सत्याग्रह, बहिष्कार तथा असहयोग आन्दोलनों में देश के महिला-वर्ग का पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ। उनका कहना था कि स्वराज्य प्राप्ति केलिए स्त्री-पुरुष दोनों का सहयोग आवश्यक है।

स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय भाग लेने के कारण भारतीय नारी जागरूक हो गयी । वे अपने अधिकारों को लड़कर मांगने लगीं और उनका उपयोग करने लगीं । इस प्रकार नारी बदलती हुई सामाजिक मान्यताओं एवं परिस्थितियों में एक बार फिर महत्त्वपूर्ण स्थान ग्रहण कर पायी । देशव्यापी पाश्चात्य शिक्षा एवं विचारों के प्रचार और प्रसार, नारी के शैक्षणिक जागरण तथा तत्संबन्धी राष्ट्रीय आंदोलनों के प्रभाव से नारी को जैसे जैसे समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो गया और वह सभी क्षेत्रों में पुरुष की सहयोगिनी एवं प्रेरणा बनती गयी ।"[22]

बीसवीं शताब्दी भारतीय नारी केलिए नव जागरण की दुंदुभि बजाकर आयी । भारत में नारी-मुक्ति और देश की गुलामी से मुक्ति ये दो अलग-अलग बातें नहीं रहीं । इसी अर्थ में भारत का नारी-मुक्ति आंदोलन पश्चिम के विमेन लिब आंदोलन से सर्वथा भिन्न है । वहाँ स्त्रियों को लंबी अवधि तक पुरुषों के विरुद्ध मोर्चे बाँधकर लड़ना पड़ा था और इस लड़ाई में उन्हें बहुत कष्ट व अपमान सहने पड़े थे ।"[23] पराधीन भारत की स्त्रियों ने मताधिकार प्राप्ति की लड़ाई केवल 5 वर्ष {1917 से 1921} लड़ी जबकि आज़ाद और प्रगतिशील इंग्लैण्ड की स्त्रियों ने पूरे 86 वर्ष 1832 से 1928 तक लड़ी थी । कारण यह है कि भारत में नारी जागृति और प्रगति का प्रारंभिक कदम नवजागरण काल के सुधार-युग में भारतीय पुरुषों - मनीषियों और सुधारकों द्वारा ही उठाया गया था । उन्होंने ही स्त्रियों को आगे बढ़ाया और धीरे-धीरे नेतृत्व उनके हाथ में सौंपा, जबकि पश्चिमी स्त्रियों को सालोंसाल पुरुषों से लड़कर अपने अधिकार छीनने पड़े थे । भारत में मुक्ति संघर्ष के इतिहास में यह पहली

विलक्षण घटना थी कि संभ्रांत घरों की पढ़ी-लिखी महिलाओं के अलावा, सामान्य महिलाएं भी आंदोलन की भागीदार बनीं । सभी जातियों, धर्मों, वर्गों की पढ़ी-अनपढ़ी, गरीब-अमीर, छात्राओं से लेकर वृद्धाएँ तक इनमें शामिल थीं । समाज-सुधार और देश की आज़ादी, इस संयुक्त लक्ष्य में कहीं भी स्त्री पुरुष भेद भाव आड़े नहीं आया । दोनों परस्पर सहयोगी और पूरक भूमिका निभाते रहे । इस संयुक्त शक्ति का रहस्य था, परस्पर त्याग बलिदान और सहयोग, न कि स्त्री-अधिकारों केलिए पुरुष - प्रतिद्वंद्विता या उचित-अनुचित हर तरीके से हर क्षेत्र में बराबरी की होड़ ।[24]

जागृति के इस युग में समाज की अनिवार्य अंग नारी को उपेक्षित रखना असंभव था । नारी कल्याण के जितने आन्दोलन हुए उनका राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, शैक्षिक, आर्थिक और नैतिक सभी पहलुओं का प्रभाव इस युग की नारी पर पड़ा है ।

स्वातंत्र्योत्तर युग -

स्वातंत्र्य के बाद लगभग पचास वर्ष में जो परिवर्तन भारत में हुए हैं उनसे यहाँ का पूरा जन जीवन प्रभावित हुआ है, किन्तु समाज के कुछ अंगों पर उनका प्रभाव अधिक पड़ा है । विशेषत: स्वतंत्रता के बाद की बदली हुई सामाजिक - आर्थिक स्थितियों में महिलाओं की शिक्षा और रोजगार के अवसरों पर काफी वृद्धि हुई है । डॉ.कीर्ति केसर के अनुसार "सामाजिक दृष्टि से देखें तो भारत की स्वतंत्रता के बाद से होने वाले सबसे अधिक सारभूत और उल्लेखनीय परिवर्तनों में से एक है नारी समाज की अपेक्षित मुक्ति, घरों की चारदीवारियों से निकलकर उसका बाहरी दुनियाँ की गति विधि में शामिल होना ।"[25]

स्वातंत्र्योत्तर परिवेश में धर्म और ईश्वर के प्रति दृष्टिकोण में भी बदलाव आया है । धर्म और ईश्वर के प्रति जो अन्धविश्वास प्रचलित था, विज्ञान के प्रचार प्रसार ने उसे खत्म कर दिया है । धार्मिक आदर्शों के खण्डन होने से स्त्रियों की मानसिकता में बड़ा परिवर्तन आया । विधवा विवाह को प्रोत्साहन मिला । इन नई परिस्थितियों के फलस्वरूप नारी केलिए अपनी समानता की अभिव्यक्ति और उसकी प्रतिष्ठा के नये रास्ते खुल गए है । बदली हुई परिस्थितियों में उनकी भावनाओं, विचारों और विवाह, प्रेम, यौन-संबन्धों, सामाजिक परम्पराओं, धार्मिक विश्वासों तथा स्त्री चरित्र की नैतिकता के प्रति दृष्टिकोण में बड़ा परिवर्तन दिखाई देता है । आज की नारी पति को "परमेश्वर" नहीं मानती । उसकी एक तरफा मनमानी को भगवान की इच्छा मानकर या भाग्य का फल समझकर सिर झुकाने केलिए वह तैयार नहीं है । समाज की संकुचित रूढ़ियों को त्यागकर और सीमारेखाओं को लाँघकर नारी पुरुष के अनुचित एकाधिकार को मिटाने केलिए तत्पर हो उठी है । मानव धर्म ही युग धर्म माना गया है । समाज के निम्न वर्ग को अन्य वर्ग के व्यक्तियों के समान धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान की गई । हिन्दू धर्म ने पति में जो देवत्व की स्थापना की थी नारी ने उसके देवत्व को त्याग दिया और पुरुष को पुरुष के रूप में ही स्वीकार करने का निश्चय किया । नारी केलिए जीवन के मार्ग खुल गए ।

नेहरूजी ने कहा था कि आर्थिक स्वतंत्रता के बिना स्वतंत्रता कुछ अर्थ नहीं रखती ।"[26] अत: आर्थिक रूप से परतंत्र नारी की मूल्य संबन्धी धारणाओं में अब भी परिवर्तन नहीं आया है । नवचेतना और जागृति के इस युग में समाज के शिक्षित नवयुवकों ने स्त्री को सहयोगिनी के रूप में देखना प्रारंभ कर दिया तो नारी में भी

अपनी मान-रक्षा, आर्थिक स्वतंत्रता तथा स्वावलंबिनी बनने की अदम्य आकांक्षा जागृत हुई । समता और स्वतंत्रता के इस युग में नारी पुरुष के समान घर के बाहर भी कार्य करने के योग्य मानी गई । नारी की आर्थिक स्वतंत्रता देश की राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक और धार्मिक क्षेत्र के परिवर्तन में भी सहायक हुई । नारी ने अनुभव किया कि वह असहाय अबला नहीं अपितु स्वाभिमानी सबला है ।

उन्नीसवीं शताब्दी में नारी-सुधार संबन्धी आंदोलन केवल पुरुषों द्वारा ही आयोजित थे । बीसवीं शताब्दी में सामाजिक राजनैतिक आन्दोलनों तथा, साहित्यिक सुधारवादी विचारधारा के परिणाम स्वरूप पुन: नारी-शिक्षा का प्रचार हुआ, फलत: वह अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो गई और भारतीय नारी भली प्रकार इस निर्णय पर पहुँची कि यदि वास्तविक रूप से नारी अपनी स्थिति सुधारना चाहती है तो उसे स्वयं इसकेलिए प्रयत्नशील होना पड़ेगा ।

परंपरागत पारिवारिक व्यवस्था का विघटन

स्वतंत्रता के नये परिवेश, आधुनिक अंग्रेज़ी शिक्षा तथा संस्कृति के प्रभाव के कारण पारिवारिक व्यवस्था में भी नींवाधार परिवर्तन आया । इस परिवर्तन के सही आकलन केलिए पहले संयुक्त परिवार की नींवाधार विशेषताओं की ओर थोडा संकेत ज़रूरी है ।

संयुक्त परिवारों की मान्यतें

सामंतीय व्यवस्था में भारत के परिवारों का ढांचा संयुक्त परिवार का था । बडे-बडे व्यापारी कुटुम्ब का ढांचा भी संयुक्त तत्व का था । इस संरचना में आर्थिक तत्व मुख्य रूप से क्रियाशील था ।

इस संयुक्त परिवार में दो या तीन पीढ़ियाँ रहती थीं, और परिवार की संपत्ति का उपभोग संयुक्त रूप से होता था। संयुक्त परिवार श्रम, पूंजी, भूमि एवं शक्ति के कारण समाज में प्रतिष्ठित एवं सम्मानित होता था। व्यक्ति का परिचय खान-दान या संयुक्त परिवार के नाम से जाना जाता था।"[27] संक्षेप में संयुक्त परिवार आपसी हितों की रक्षा करते हुए एक वंशावली से संबन्धित पति-पत्नी और बच्चों सहित या रहित वह संस्था रहा था, जिसके सदस्यों में आर्थिक सामर्थ्य और शक्ति के अनुसार पारिवारिक साधनों और स्नेह का बराबर विभाजन होता था।

संयुक्त पारिवारिक व्यवस्था में कई कमियाँ और त्रुटियाँ थीं। इस व्यवस्था में समाज एवं परिवार में पत्नी का अधिकार सीमित था। उसे पति और उसके वंश की मर्यादाओं की सीमाओं में रहना पड़ता था। पति देवता या भगवान का रूप है और पत्नी केवल उसकी अनुचरी होती है। सामन्ती व्यवस्था की सभी विकृतियों को सहना इस व्यवस्था में भी स्त्री का धर्म माना जाता था।

परिवार में यौन-संबन्ध की सामाजिक स्वीकृति केवल विवाहित दम्पति को प्राप्त होती थी। वैवाहिक यौन-संबन्धों का मुख्य लक्ष्य वारिश को पैदा करना मात्र था। पुत्र का जन्म दाम्पत्य-संबन्ध की अपूर्व सफलता माना जाता था। परिवार में पत्नी की सार्थकता उसके मातृत्व से जुड़ी थी। पुत्रवती माता का अधिक सम्मान होता था।

संपत्ति परिवार के मुखिया या पिता के अधिकार में रहती थी। आय का स्वामी भी पिता होता था और प्रत्येक सदस्य को उसके आवश्यकतानुसार परिवार की आय से हिस्सा मिलता था।

पिता परिवार का नायक होता था, परिवार के सभी सदस्यों को उसकी आज्ञाओं का पालन करना पड़ता था ।"[28]

पुत्री जन्म से ही परायी अमानत समझी जाती थी । पिता कन्यादान अपनी इच्छानुसार करता था । पुत्री को दहेज मिलता था । लेकिन पिता की संपत्ति पर अधिकार नहीं था । पत्नी संतानोत्पत्ति के लिए कुल वधु थी किन्तु अधिकार के नाम पर दासी मात्र थी । यानी संयुक्त परिवार में स्त्रियों को आर्थिक स्वातन्त्र्य बिलकुल नहीं था । पत्नी और माँ का कर्तव्य उसे निभाना पड़ता था, लेकिन निजी व्यक्तित्व से वंचित थी । इस संदर्भ में कृष्णू स्वामीजी लिखते हैं, "पुरुष को स्त्री से उत्तम समझा जाता था लड़कों की अपेक्षा लड़कियों का परिवार में निम्नस्थान था ।"[29] दहेज के कारण पुत्री जन्म को अभिशाप माना जाता था । शिक्षा-प्रशिक्षण की प्राथमिकता लड़कों को दी जाती थी । प्रतिभाशालिनी लड़की की अपेक्षा मूर्ख लड़का अधिक सम्मानित था । विवाह के विषय में लड़की की राय नहीं पूछी जाती थी । वर का चुनाव परिवार का मुखिया करता था । कतिपय कबीलों में पति को उसे बेचने तक का अधिकार था । उसे मारने-पीटने का अधिकार पति को अवश्य था । यातना सहना स्त्री की मर्यादा थी ।

संयुक्त परिवार का मूलाधार संयुक्त भूमि और कृषि प्रधान अर्थ व्यवस्था था । परिवार की इस संरचना को धार्मिक विश्वासों और सामाजिक मान्यताओं ने और भी पक्का कर दिया था ।

संयुक्त परिवार का विघटन

उन्नीसवीं शताब्दी के अंत और बीसवीं शताब्दी की शुरूआत में भारतीय सामाजिक जीवन का नवोत्थान प्रारंभ हुआ । अंग्रेज़ी शासन, पाश्चात्य संस्कृति एवं शिक्षा भारतीय सामाजिक जीवन की पारिवारिक, राजनैतिक एवं आर्थिक व्यवस्था में बुनियादी परिवर्तन लाए । जैसे सूचित किया गया भारतीय समाज-संरचना की बुनियाद संयुक्त परिवार थी । इसमें भी आमूल-चूल परिवर्तन आया । अनेक सामाजिक रूढियों और परम्परागत संस्कारों से सुदृढ संयुक्त परिवार की नींव हिलने लगी । स्वतंत्रता के बाद राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में आए परिवर्तनों ने जनमानस को झकझोर दिया और परंपरागत आदर्शों, मान्यताओं, जीवन मूल्यों व आस्थाओं का विघटन हुआ ।"[30]

स्वातंत्र्योत्तर मूल्य संक्रमण के परिवेश में समाज में व्यक्ति को प्रतिष्ठा मिली है । व्यक्ति-स्वातंत्र्य की चेतना का विकास पुरुष वर्ग के साथ स्त्रियों में भी हुआ है । आधुनिक परिवारों में नारी का मूल्यांकन केवल नारी के रूप में होने लगा है । आधुनिक नारी परंपरागत श्रृंखलाओं से अधिकाधिक मुक्ति की आवश्यकता का अनुभव कर रही है । "सामाजिक क्षेत्र में स्त्री-स्वतंत्रता और नारी प्रतिष्ठा की भावना ने परंपरागत मूल्यों में परिवर्तन प्रस्तुत किया है । पारिवारिक क्षेत्र में संयुक्त परिवार विघटन के कगार पर खडा है, और अणु परिवार उसका स्थानापन्न बन रहा है । आज व्यक्ति की समाज सापेक्षता संकुचित होने के कारण संयुक्त परिवार के विघटन का सूत्रपात हो चुका है ।"[31]

सम्मिलित परिवार में जो पारस्परिक स्नेह, सहयोग और सुरक्षा मिलते थे, अब उनका अन्त हो गया है । परिवार के मूल्य अब विघटित हो गये है । इसलिए परिवर्तन की तेज़ धारा में इस परंपरागत पारिवारिक व्यवस्था का विध्वंस कर दिया गया है।

आज व्यक्ति जागृत है । किसी पर निर्भर नहीं रहना चाहता । आर्थिक रूप से भी वह स्वतंत्रता चाहता है । और आर्थिक रूप में स्वतंत्र व्यक्ति अपने ऊपर किसी का दबाव नहीं पसंद करता । चाहे वह मुखिया हो या पिता । संयुक्त पारिवारिक व्यवस्था में व्यक्ति को अपनी इच्छा और आकांक्षाओं की कुर्बानी करनी पड़ती थी । इन सब की वजह पारिवारिक संबन्धों में तीव्र गति से परिवर्तन होने लगा और उसके सदस्यों की वैयक्तिकता प्रमुख होती गयी । आधुनिक युग के लोग कृषि को छोड़कर नौकरी की तलाश में शहर आने लगे हैं । उसे परिवार से अलग होना पड़ा । अपना अलग घर बसाने को वह विवश हो गया । परन्तु पुरानी पीढ़ी यह नहीं चाहती थी । पीढ़ियों के बीच संघर्ष की प्रवृत्ति भारतीय समाज में बड़ी तेज़ी से होने लगी ।

पारिवारिक संबन्धों की शिथिलता में इसी पीढ़ी-संघर्ष ने अपनी भूमिका निभायी थी । पहले परिवार का बड़ा ही घर का स्वामी होता था, चाहे वह छोटे से कम अर्थोपार्जन करता हो, किन्तु अब जो अधिक अर्थोपार्जन करता है वही अपने को घर का मालिक समझता है । डॉ• बैजनाथ प्रसाद शुक्लजी लिखते हैं - "परिवार का सबसे बड़ा व्यक्ति अब उसका स्वामी नहीं रह गया, अपितु स्वामित्व उसके हाथ में आ गया, जिसके पैसे के आश्रय में परिवार पलने लगा ।

घर की मालकिन अब सास नहीं बहू हो गयी, क्योंकि उसका पति कमाता है और पूरे परिवार का भरण-पोषण करता है ।"[32]

संयुक्त परिवार के आधार आपसी प्रेम और ऐक्य थे, जो धीरे-धीरे नवीन स्थितियों के परिवर्तनों के साथ लुप्त होने लगे । संयुक्त परिवार की यह खासियत है कि उसमें किसी की आस्था नहीं होती । सब परंपरागत मर्यादा और सामाजिक प्रतिष्ठा को बनाये रखने केलिए अपने व्यक्तित्व को बलिदान करते हैं । धीरे धीरे परिवार के सदस्यों में ऐक्य भावना तथा संयुक्त हित पर विश्वास नहीं रह गए । देश की परिवार व्यवस्था पर पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव तथा महानगरों में औद्योगिक विकास के परिणाम स्वरूप आघात होते गये हैं । युवा पीढी पृथक रहना चाहती है ।

पीढी-संघर्ष के कारण पारिवारिक ढांचा भी बदल गया । कोई भी लडका माँ बाप के साथ रहना पसंद नहीं करता । समाज में अकेले रहने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है । नई पीढी परंपरागत प्रतिमा का भंजन करने में लगी हुई है । और परंपरागत पीढी उस प्रतिमा को बचाये रखनेकेलिए प्रयत्नशील है । इस संघर्ष ने एक ओर नई पीढी में आक्रोश और विद्रोह भर दिया, वहाँ दूसरी ओर उनकी चेतना को कुण्ठित भी कर दिया है । संयुक्त परिवार का शाब्दिक अर्थ चाहे कितना भी महान हो, उसका सबसे बडा दोष यह होता है कि परिवार का कोई भी सदस्य अपने व्यक्तित्व का विश्वास नहीं कर पाता । सारा समय या तो समस्याएँ बनाने में या बनी बनाई समस्याओं को सुलझाने में जाता है । लडाई, झगडा, खींचतान, बदला ग्लानी, सब मिलकर वातावरण ऐसा विषैला और दमघोटू बना रहता है कि सास तक नहीं ले सके ।"[33]

वास्तव में संयुक्त परिवार की समाप्ति ऐतिहासिक आवश्यकता थी। सामूहिक श्रम द्वारा जीवन के विकास का दर्शन सर्वप्रथम भारतीय संयुक्त परिवार में ही दिखता है। संयुक्त परिवार के टूटने के साथ मानवीय संबन्धों और मूल्यों में भी आमूल परिवर्तन हुआ। नये मूल्यों के उन्मीलन का उल्लेख करते हुए वार्ष्णेयजी ने लिखा है - "नवीन जीवन मूल्यों की स्थापना से व्यक्ति, व्यक्ति के परस्पर संबन्ध में व्यक्ति के अपने चारों ओर के समाज और वातावरण के साथ संबन्ध में परिवर्तन होना अवश्यंभावी हो जाता है। यही कारण है कि आज की वैज्ञानिक तकनीकी प्रगति पूँजीवादी अर्थव्यवस्था जीवन के मशीनीकरण अत्यधिक औद्योगीकरण के फलस्वरूप नागरीकरण और नगरों की अपार भीड-भाड आदि के कारण पुराने मूल्य नकारे जा रहे हैं।"[34]

आधुनिक काल में नारी के सामने यही समस्या है कि वह सास-ससुर की आज्ञानुसार परंपरा से जुडी रहे या पति की इच्छानुसार नई प्रणाली अपनाये। स्वतंत्रता के विकास के साथ स्त्रियों के विचार एवं दृष्टिकोण में व्यापक परिवर्तन होने लगा है। नारी इससे अवगत हो गयी कि त्याग बलिदान, सहनशीलता आदि परम्परागत स्त्री सुलभ गुणों से अपना उत्थान असंभव है। परिणामस्वरूप भारतीय स्त्री भी धीरे धीरे विद्रोह करने लगी। उसे अनुभव हो गया कि पुरुष की प्रभुता का कारण अपनी कोमल भावनाएं है और इसलिए उन्हें परिवर्तित करने का प्रयत्न भी किया गया। अनेक सामाजिक रूढियों और परंपरागत संस्कारों के कारण उसे पश्चिमी स्त्री के समान न सुविधाएं मिलीं और न सुयोग। परंतु उसने उन्हीं को अपना मार्ग दर्शक बनाया। डॉ॰ भोलानाथ गर्ग के मत में "स्त्री स्वतंत्रता के इस स्वरूप ने संयुक्त परिवार की परंपरागत भारतीय मान्यता को तोडा और धीरे धीरे पश्चिमी देशों की भांति भारतवर्ष में भी संयुक्त परिवार समाप्त होने लगा।"[35]

संयुक्त परिवार के विघटन के फल स्वरूप नारी पुरुष की सहचरी के रूप में समता पाने लगी । युगों से त्रस्त भारतीय नारी जब पुरुष की दासता से मुक्त हुई तो वह समाज की झूठी मान्यताओं के प्रति विद्रोह करने लगी और विवाहोपरान्त पति और परिवारवालों की दासी बनकर सम्मिलित परिवार में जीने से इनकार भी करने लगी । स्वतंत्रता ने उसे संयुक्त चूल्हा चक्की को फेंक देने की शक्ति प्रदान की । जो स्त्रियाँ आजीविका के साधन स्वयं जुटाने लगीं, उनकी मानसिकता में धीरे धीरे व्यापक परिवर्तन आया । उन्होंने जीवन और चिन्तन के स्तर पर पुरुषों के समान स्वयं को प्रस्तुत करने की कोशिश भी की ।

संयुक्त परिवार के विघटन के कारण जो अणु परिवार या एकांगी परिवार अस्तित्व में आया है उसकी सदस्य संख्या बहुत ही सीमित हो गयी है, जिसमें पति-पत्नी तथा बच्चे ही सामाजिक इकाई के रूप में आते हैं । परिवार में परंपरागत नीति मूल्यों का ह्रास होता गया है, सारी जिम्मेदारियाँ अब एक ही व्यक्ति पर आ गयी है । इस कारण वह अधिक दायित्वशील बना और अधिक से अधिक कमाने की ओर भी अग्रसर हुआ है ।"[35 अ.] अपने जीवन और अपने भविष्य का वह खुद ही निर्णय करने लगा । साथ ही साथ नारी में भी परिवर्तित जीवन मूल्य एवं पारिवारिक स्वरूप के कारण एक नया प्रतिमान उदित हो गया है ।

कानूनन स्त्री-पुरुष की बराबरी की स्थिति

समता पर आधारित समाज सब चाहते हैं । 1949 में स्वतंत्र भारत ने अपना जो संविधान तैयार किया था उसमें सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक न्याय, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता अपने विश्वास के अनुकूल धर्म की स्वतंत्रता, सबको समान अवसर, राष्ट्र की एकता एवं

व्यक्ति की गरिमा आदि अनेक तथ्यों की घोषणा की गई थी ।[36]

इसके साथ भारतीय नारी को पुरुष के समान सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं धार्मिक अधिकार भी प्रदान किये हैं । 1955 में हिन्दू विवाह अधिनियम पारित करने के उपरान्त हमारी सरकार ने हिन्दुओं के इतिहास में प्रथम बार परम्परागत कानून की मान्यताओं को दूर कर सभी हिन्दुओं केलिए एक समान वैधानिक स्तर निर्धारित कर दिया । इस अधिनियम द्वारा एक विवाह का नियम स्त्री एवं पुरुष दोनों पर लागू कर दिया गया और स्त्रियों को विशेष परिस्थितियों में तलाक देने का अधिकार प्रदान किया गया । इससे पूर्व एक व्यक्ति एक साथ एकाधिक स्त्रियों से विवाह कर सकता था, एवं नारी को तलाक का कोई अधिकार प्राप्त नहीं था ।

1950 में हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम पारित होने के उपरांत महिलाओं के आर्थिक अधिकार भी सुरक्षित हो गये । इससे पूर्व नारी पिता, पति पुत्र पर आश्रित रहती थी । उसे किसी प्रकार की आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त न थी । प्रत्येक स्थिति में सब संपत्ति का स्वामी पुरुष ही था । इस विधेयक ने नारी की उत्तराधिकार संबन्धी सब प्रकार की वैधानिक अयोग्यताओं का उन्मूलन कर दिया और बिना वसीयत किये गये उत्तराधिकार में पुरुष के समान, समान व्यवहार की सुरक्षा प्रदान की गयी है ।

1954 से पूर्व दो पृथक-पृथक धर्मावलंबी पुरुष एवं महिला का परस्पर विवाह करना जुर्म था । विशेष विवाह अधिनियम 1954 ने इस कठिनाई को दूर कर दिया । "दहेज" नारी जाति के समुचित विकास में सर्वाधिक बाधक प्रथा थी । इसके परिणाम स्वरूप अनमेल विवाह एवं बाल विवाह जैसी समस्याएं जन्म लेती थीं । इस कुप्रथा को दूर करने केलिए भारत सरकार ने दहेज निरोधक अधिनियम (1961)

पारित किया इस विधेयक के अनुसार, किसी भी पक्ष के माता-पिता द्वारा विवाह के अवसर पर अथवा दूसरे व्यक्ति द्वारा विवाह पर, विवाह से पूर्व अथवा पश्चात् वर-वधु के विवाह की शर्त के रूप में सम्पत्ति अथवा मूल्यवान सुरक्षा प्रदान करने के लिए सहमत होना अपराध सिद्ध कर दिया गया । दहेज माँगना अथवा देना, जेल जुर्माना अथवा दोनों के साथ दंडनीय है । उपर्युक्त विधेयकों के पारित होने के उपरांत यह कहा जा सकता है कि भारतीय हिन्दू नारी की अधिकांश वैधानिक अयोग्यतायें समाप्त कर दी गयी हैं ।

नया संविधान और नारी को प्राप्त अधिकार

1. व्यक्तित्व विकास का अधिकार

शिक्षा, नृत्य, संगीत, नाट्य, चलचित्र तथा चित्रकला आदि व्यक्तित्व विकास के सभी साधनों में लिंग के आधार पर अब कोई भेद नहीं है । नारी को अपनी इच्छानुसार विकास करने का अधिकार है ।

2. वैवाहिक अधिकार

आज स्त्रियों के संवैधानिक अधिकार काफी विस्तृत है । उनपर हिन्दू विवाह अधिनियम 1955 लागू होता है । बाल विवाह कानूनन समाप्त कर दिया है । वह जीवन भर गुलाम नहीं है, तलाक का अधिकार भी उसे प्राप्त है ।

3. संपत्ति का अधिकार

इस अधिकार का मिलना एक क्रांतिकारी परिवर्तन है । उम्र भर पिता, पति या पुत्र की आश्रित नारी का संपत्ति में कोइ अधिकार

नहीं था । सर्वप्रथम विवाहित स्त्रियों की संपत्ति अधिनियम 1874 में पारित हुआ । प्रमुख अधिनियम 1956 में बना । इसके अनुसार विधवा को तो संपत्ति का अधिकार मिला है । इतना ही नहीं लड़के के साथ लड़की को भी सह उत्तराधिकारी घोषित किया गया है ।

4. आर्थिक अधिकार

लिंग के आधार पर व्यवसाय करने तथा नौकरी के समस्त भेद संविधान द्वारा समाप्त कर दिए गए हैं । पुरुष तथा स्त्री के वेतन में सैद्धान्तिक रूप मे कोई भेद नहीं किया जाता है।

5. राजनैतिक अधिकार

सन् 1951 में जब वयस्क मताधिकार प्रदान किया गया तो स्त्रियों को भी यह अधिकार मिला । 1952 तथा 1957 के आम चुनावों में स्त्रियों ने भाग लिया । उन्हें राजनैतिक क्षेत्र में किसी भी पद पर नियुक्त होने का अधिकार मिला ।

6. धार्मिक अधिकार

यद्यपि धर्म की कोई खास चिन्ता नहीं करता तथापि इस दृष्टि से आज के युग में स्त्री की किसी प्रकार की रोक नहीं है, पति को ही देवता मानने वाली परम्परागत स्त्रियों का तो आज कल सर्वथा अभाव है ।

इसके अलावा समय समय पर अन्य कई कानून भी स्त्रियों के सुधार केलिए हुआ है । इनमें श्रेष्ठ है, 1910 की देवदासी संप्रदाय पर कानूनी रोक । देवदासी प्रथा भारतीय समाज के माथे पर कलंक रही थी । धार्मिक विश्वासों को अंधविश्वास में बदलकर यह प्रथा कायम रखी गयी भारतीय दंड विधान की धारा 372-373 के अनुसार अब इस पर कानूनी रोक है ।

हाल ही में थाने के भीतर हुए मथुरा बलात्कार कांड को फाइलों से निकालकर बाहर करने पर नारी आंदोलन का धमाका हुआ और शोषण के विरुद्ध सड़कों पर संघर्ष भी हुआ । मेरठ का माया त्यागी कांड, बिहार का छातिरानी अमानुषिक कांड और देश के विभिन्न गांवों कस्बों में घटित सामूहिक बलात्कार की घटनाएं जिनकी गूंज सड़कों और संस्थाओं से संसद कक्षों तक उठी । इन सब के फलस्वरूप विधि आयोग की सिफारिशों के अनुसार भारतीय दंड संहिता की बलात्कार संबंधी धाराओं का संशोधन (1983) किया गया । नये कानून में कड़ी सजा देने का प्रावधान है । अपराधिक कानून संशोधन अधिनियम 1983 और अपराधिक कानून संशोधन, द्वितीय संशोधन अधिनियम 1983 जिनके अनुसार दोषी व्यक्तियों केलिए 6 से 10 वर्ष के कठोर कारावास की सजाएं, मानसिक गड़बड़ी नासमझी या नशे की हालत में स्त्री से प्राप्त की गयी संभोग की स्वीकृति को बलात्कार की परिभाषा में लाने, ऐसे मामलों की सुनवाई खुली अदालत की बजाय बंद कमरे में करने का सुझाव, कार्यवाही की रिपोर्टिंग व प्रकाशन पर रोक लगाने जैसे महत्वपूर्ण प्रावधानों की व्यवस्था आदि पीड़ित स्त्री को सुरक्षा प्रदान की गई है । इसकेलिए विचार गोष्ठियाँ और सेमिनार भी आयोजित किये गये हैं । महिला संस्थाओं और सरकार की ओर से विशेष सहायता केन्द्र भी खोले गये ।

1983 मई 27 भारतीय सामाजिक परिवर्तन में एक ऐतिहासिक अदालती निर्णय आया । दिल्ली के न्यायाधीश श्री·एस·एम·अग्रवाल ने दहेज के लालच में गर्भवती बहू को जलाकर मार डालने के आरोप में सास, पति व जेठ को फांसी की सजा सुना दी । मान्य न्यायाधीश ने समाज के हित में दहेज लोलुप हत्यारों केलिए मौत की सजा ज़रूरी बतायी । इसके पूर्व भी कुछ मामलों में जेल की सजाएं तो हुई थी, एक केस में आजीवन कारावास की भी, पर दहेज संबन्धी अपराध में फांसी की सजा सुनाये जाने का यह पहला ही मामला था । इन सब की वजह से उम्मीद है, दहेज - अपराधों की कमी होगी ।

दहेज प्रतिषेध अधिनियम 1985 अक्तूबर 12 से लागू किया गया है । 1984 मार्च 12 को प्रतिभारानी बनाम सूरज कुमार के मामलों में सुप्रीम कोर्ट के एक फैसले से शादी टूटने के बाद पति से पत्नी का दहेज वापस लाना भी आसान हो गया है । पत्नी को छोडने के बाद पति, पत्नी का धन वापस नहीं करता है तो उसके खिलाफ अपराधिक विश्वास भंग की कार्यवाही की जा सकती है । दहेज संयुक्त संपत्ति नहीं होता । पति उसे अपनी इच्छा के अनुसार इस्तेमाल नहीं कर सकता । ज़रूरत पडने पर उसे पत्नी को तुरंत लौटाना होगा । इस तरह दहेज की परिभाषा इस फैसले में स्पष्ट की गयी है ।

तलाक आसान हो जाने पर सुविधावादी पुरुष ने इसका अनुचित लाभ भी उठाया । बहु विवाह पर रोक होने से उसकी इच्छाओं वासनाओं पर रोक नहीं लगायी गयी । भोगवादी युग के प्रभाव से विवाह के बाद पत्नी को अपने मार्ग से हटाने केलिए कई तरह के तरीकों का प्रयोग होता है । जल्दी तलाक पाने केलिए धर्म-परिवर्तन के ढोंग रचाये जाते हैं । स्त्री द्वारा ही स्त्रियों पर चरित्र हीनता के झूठे लांछन भी लगाये जाते हैं । इससे उनकी बदनामी होती है

और पुनर्विवाह असंभव हो जाता है । बिना तलाक लिए भी दूसरे विवाह केलिए कई चालाकियाँ अपनायी जाती हैं । अवैध संबन्धों की बाढ आई हुई है, जिसके कारण बलात्कार ही नहीं अन्याय, अत्याचार और हिंसा की कहानियाँ भी आये दिन आ रही हैं । तलाक जल्दी न मिलने और दूसरी शादी रचाने की उतावली में धोखे से पत्नी की हत्या तक की जाती है । इसलिए इस विषय में संशोधित कानून की ज़रूरत हुई । तलाक कानून पर पुनर्विचार किया गया और पूर्व कानून में संशोधन कर परस्पर समझौते के आधार पर इसे पर्याप्त सरल कर दिया गया । अब ये मामले अपेक्षाकृत आसान शर्तों के साथ न्यायालय में जल्दी निपटाये जाते हैं । इससे संबन्धित पक्षों को काफी राहत मिली है और पुनर्विवाह आसान हो गया है ।

हिन्दू विवाह अधिनियम (संशोधन) विधेयक जिसमें मुकदमों के शीघ्र निपटान केलिए और उनके दौरान भ्रष्ट कार्यवाहियों की रोकथाम केलिए पारिवारिक न्यायालयों की स्थापना शामिल है । इस संशोधन विधेयक में प्रस्तावित है कि तलाक केलिए केवल यह सिद्ध करना होगा कि पति पत्नी लगातार गत तीन वर्षों से पृथक-पृथक रह रहे हैं । इससे दोषी को तलाक दिया जा सकता था, पर स्वयं तलाक नहीं ले सकता था । तभी यह संशोधन आया कि दोष चाहे किसी का भी हो, यदि पति-पत्नी दोनों चाहते हैं तो दोनों इस आशय का साझा आवेदन पत्र देकर तलाक ले सकते हैं, केवल उन्हें यह सिद्ध करना होगा कि वे एक वर्ष से अलग रह रहे हैं ।

इंडियन कौंसिल आफ फामिली एंड सोश्यल वेल्फेयर ने भी माँग की है कि हिन्दू विवाह कानून में संशोधन करके अदालतों को अधिकार दिया जाए । तलाक के मामले में निर्णय देते समय इस पर

ध्यान रखा जाय कि प्राप्त पारिवारिक संपत्ति पर दोनों पक्षों का समान अधिकार हो ।"[37]

कुछ समय पूर्व आंध्रा उच्च न्यायालय ने हिन्दू विवाह कानून धारा (9) को अवैध करार दिया था । न्यायालय का कहना था कि पत्नी की इच्छा के खिलाफ उसे पति के साथ रहने, सोने, और प्रजनन में योग देने केलिए विवश करने से संविधान में दिये गये बुनियादी अधिकारों का हनन होता है ।"[38]

अत: स्पष्ट है कि हमारी उपलब्धियाँ गर्व करने योग्य हैं । वैधानिक दृष्टि से नारी का स्थान काफी ऊंचा कर दिया गया है । नये कानूनों की छाया में अब कोई पुरुष एक पत्नी के जीवित रहते दूसरा विवाह नहीं कर सकता है । पिता की जायदाद में लड़के लड़की का हक बराबर है । दहेज मांगना या बढ़ा चढ़कर देना कानूनी अपराध है । किसी स्त्री को अबला मान उसे अनैतिक कार्य केलिए बेचना या विवश करना जुर्म है। पति के जुल्मों की शिकार पत्नी तलाक पाने केलिए अदालत द्वार पर खटखटा सकती है । परिवार नियोजन के अंतर्गत अधिक संतान पैदा करने से इनकार कर सकती है । निराश्रित स्त्रियाँ व वृद्धाएं राज्य से संरक्षण की अधिकारिणी हैं । किसी भी शिक्षा - प्रशिक्षण के संस्थान में प्रवेश देने से किसी भी लड़की को केवल लड़की होने के नाते इनकार नहीं किया जा सकता । आज की शिक्षित नारी अपनी पूर्ववर्ती नारी की अपेक्षा घर परिवार बच्चों के भार संभालने केलिए अधिक योग्य, अधिक सक्षम मानी जा सकती है ।

आधुनिकता के नए परिवेश में नारी की हैसियत

जैसे सूचित किया गया उन्नीसवीं शताब्दी की औद्योगिक और तकनिकी क्रांतियाँ मानव समाज में आमूल-चूल परिवर्तन लायीं। मशीनों ने मानव की भौतिक शक्ति को बढ़ाने में सहायता प्रदान की। सामाजिक क्षेत्र में क्रान्तिकारी घटनाओं की वजह परंपरागत मूल्यों में परिवर्तन आया। औद्योगिक क्रांति, मार्क्सवादी दर्शन, अक्तूबर क्रांति, अस्तित्ववादी विचारधारा आदि के कारण व्यक्ति, परिवार, विवाह एवं स्त्री-पुरुष संबन्धों में नये दायरे स्पष्ट हुए।

पति-पत्नी के संबन्धों में स्वच्छन्दता का भाव उभर आया। समाज में सतीत्व और पातिव्रत्य की मांग निरर्थक प्रतीत होने लगी। गर्भपात की वैधानिक स्वीकृति ने आधुनिक नैतिकता पर भी प्रश्न चिह्न लगा दिया। परंपरागत संस्कार रीति-रिवाज़, खान पान, रहन-सहन, आदि में विश्वव्यापी परिवर्तन परिलक्षित हुआ। ये सब परिवर्तन नारी-जागरण केलिए निमित्त बन गए।

समकालीन स्त्री ने पातिव्रत्य की शोषक मान्यताओं को अस्वीकार कर दिया है। अपने विरुद्ध मनमाने अन्यायपूर्ण निर्णय के विरुद्ध वह प्रतिशोध की उसी शक्तिमत्ता के साथ उठ खड़ी हुई है जिसे पाकर सीता ने राम के साथ अयोध्या लौटने की अपेक्षा धरती में समा जाना अधिक उचित समझा था। नारी की मानसिकता और सामाजिक चिन्तन की प्रक्रिया में परिवर्तन आया है। इस परिवर्तन का मुख्य आधार स्त्रियों में उच्च शिक्षा एवं विज्ञान टेकनोलजी के शिक्षण प्रशिक्षण के कारण उत्पन्न बौद्धिक विकास है।

फ्रायड ने मानव प्रकृति के विषय में जो अभिनव ज्ञान की पूँजी दी उससे व्यक्ति की प्रकृतिवादी नियतिवाद को प्रतिष्ठा मिली, लेकिन उसने पहली बार इस तथ्य को उद्घाटित किया कि मनुष्य की प्रकृति को आधारभूत रूप में समझने पर ही व्यक्ति के मानसिक संसार की व्याख्या की जा सकती है । अत: जब व्यक्ति की सत्ता को प्रतिष्ठा मिली और व्यक्ति केलिए भी मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित हुआ तो नारी की स्थिति तथा स्वयं नारी की चिन्ता में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ । नारी के प्रति समाज की दृष्टि भी बदल गयी । शिक्षित नारी अपनी प्राकृतिक प्रवृत्तियों के प्रति सचेत हो गयी और उसे अभिव्यक्ति देने की छटपटाहट संघर्ष में परिवर्तित हो गयी ।[32]

सदियों के अत्याचार से तड़पती स्त्री सोचने लगी हमें मुक्ति चाहिए । आज शिक्षित नारी के मन में शंका होती है कि क्या संसार के समस्त वैभव और विलास के संपूर्ण सुख केवल पुरुष केलिए है । क्या समस्त जप-तप नियम-संयम सब स्त्रियों के खाते में है ? क्या पुरुष को न शास्त्रलागू होते हैं और न समाज के बन्धन ? क्या स्त्री का संसार केवल घर की चाहर-दीवारी ही है ? यही उसके विद्रोह के पीछे की मानसिक वृत्ति है ? अब वह पुरुष के समकक्ष बनने का गौरव नहीं छोड़ना चाहती । संविधान ने उसे मौलिक अधिकारों का हकदार बनाया है । घर, समाज, और राजनीति के क्षेत्र में वह पुरुष के समान ही अपने अधिकार माँगने लगी है । इस नये जागरण की भावना को नारी मुक्ति आंदोलन का बीजांकुर समझना चाहिए ।

गतिशील मानव समाज में समय-समय पर परिवर्तन होते रहते हैं । नारी के इतिहास का सूक्ष्म आकलन करें तो पता चलेगा कि महा-पाषाण काल से स्पूटनिक युग तक नारी, नर के जीवन का पोषण एवं उन्नयन करती आ रही है । लेकिन आज तक देवी कहकर पुरुष ने उसे अपने अधिकारों से वंचित किया है । उसे पाषाणी प्रतिमा बना

दिया और उसके मानवी जीवन को भी नकार कर दिया । केवल देना ही देना सहना ही सहना उसके हिस्से में रह गया और समर्पण उसके भाग्य में कील सा गड गया ।[40]

आधुनिकता का प्रवेश एवं समाज के नये परिवेश के कारण आज समाज शास्त्रियों और नारी जागरण कर्ताओं के सामने यह प्रश्न चिह्न लगा हुआ है कि नारी की कोख में पलकर उसकी गोद में मचलकर याने माता की ममता, बहिन का स्नेह, प्रेयसी का प्यार तथा पत्नी का समर्पण पाकर पुरुष नारी के प्रति पाषाणवत कैसे हो गया ? इससे भी बडा आश्चर्य तो यह है कि पददलित होकर भी नारी पुरुष के प्रति नवनीत सी कोमल कैसे बनी रही ? क्यों वह प्रतिशोध की अग्नि में प्रज्वलित नहीं हुई ? उसके स्नेह का स्रोत क्यों अभी तक न सूखा ? शायद इससे होगा कि यह सूखने से मानवता की बेली सूख जायेगी ।[41]

जागृत नारी ने देखा और समझा कि समाज व्यवस्था, विधि निर्माण आदि पुरुष वर्ग के हाथों में होने से पुरुष ने नारी की सभी त्रुटियों केलिए मनचाहे दण्ड की व्यवस्था कर दी । जिस त्रुटि केलिए पुरुष को क्षम्य माना जाता है उसी त्रुटि केलिए नारी को कठोरतम दण्ड दिया जाता है । व्यभिचार केलिए पुरुष ने स्वयं को दण्डित करना स्वीकार नहीं किया । अपनी वासना की तृप्ति केलिए जिन नारियों के जीवन उसने तबाह किये, वे वेश्याएं कही गयीं । किन्तु उन वेश्याओं के यहाँ जाने वाले पुरुषों के लिए ऐसा कोई समानार्थी शब्द तक नहीं गढा गया जो उसकी इस दुर्बलता का परिचायक होता है । विश्व के हर कोने में ये वेश्यायें कहलानेवाली नारियां अपने जीवन को पुरुषों की वासना की अग्नि में अर्पित कर अपनी गृहस्थी के मधुर सपनों को चूर कर जिन्दा रहती है । लेकिन इसे पापिनी कहकर पत्थर फेंकने वालों में से ये ग्राहक गण सबसे आगे निकलते हैं । युगों से प्रताडित

नारी को अब मालूम हुआ कि नारी का कार्य क्षेत्र घर ही नहीं लेकिन अब उसे बाहर भी निकलना है । आज उसका अपना अलग व्यक्तित्व और अस्तित्व है ।

आधुनिक नारी परंपरागत बेडियों से अधिकाधिक मुक्ति की आवश्यकता अनुभव कर रही है । घर के अन्दर होनेवाले अत्याचारों को अभी तक क्या सिर्फ इसलिए सहनीय मानती रही कि वे अत्याचार अपने बहुत ही करीबी रिश्तेदारों द्वारा होते हैं ? नारी को क्षमा और सहनशीलता के दो अनुपम गुण स्वभावगत प्राप्त हैं । नारी के इन दो गुणों का ही समय समय पर और अलग अलग कारणों से समाज और घर परिवार के लोग गलत फायदा उठाते आए हैं । उसे मालूम हो गया नारीत्व की परंपरागत धारणा अपना अर्थ खो चुकी है । चारों ओर का माहौल उन्हें परंपरागत नारीत्व की याद दिलाकर उनके पैरों में आदर्श की बेडियाँ डालने में तत्पर है । इसलिए जागृत नारी में निजत्व और मानवीयता के इतर गुणों का विकास अपनाने की चाह उपस्थित होने लगी । वह नारीत्व के विकास में बाधक बेडियों को तोडने की अनिवार्यता महसूस करने लगी । वह अपने अस्तित्व और अपने स्वत्व के प्रति भी सचेत हो उठी । "आज वह केवल आर्थिक लाभ की वजह से नौकरी नहीं करती है, बल्कि इसके पीछे अन्य दूसरे सामाजिक और मनोवैज्ञानिक कारण भी है, जैसे अपनी प्रतिभा का सदुपयोग करना, अपनेलिए उच्च दर्जा प्राप्त करना, आर्थिक रूप से स्वावलम्बी होना, दूसरे लोगों से मिलने जुलने की स्वतंत्रता प्राप्त करना, घर की चार दीवारी के ऊबने वाले वातावरण से राहत पाना ।"[42] महिलाओं के विवाह और परिवार संबन्धी दृष्टिकोण में भी भारी अन्तर आया है । नारी विवाह न करके नारी-जाति का गौरव बढाना चाहती है । आज नारी समूह भी शाश्वत मूल्यों की अपेक्षा जीवन मूल्यों को अधिक महत्व देने लगा है । विवाह की स्वतंत्रता, प्रेम की स्वतंत्रता कर्म की

स्वतंत्रता और संपूर्ण व्यक्तित्व के विकास की स्वतंत्रता ही व्यक्ति स्वतंत्रता है । न स्वयं बद्ध होने की आकांक्षा है, न दूसरे को बद्ध करने की, यही न्याय है, यही मानव समानता है ।"[43]

भारत का वर्तमान राजनैतिक परिवेश और नारी

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय जनता स्वतंत्र वातावरण में सांस लेने लगी थी । जनतंत्रीय शासन पद्धति के परिणाम स्वरूप सामाजिक जीवन में राजनीतिक चेतना का जागरण हुआ । भारत में अनेक राजनीतिक दल अस्तित्व में आये और पनपे । इन सभी राजनीतिक दलों का लक्ष्य किसी न किसी प्रकार देश में समता और समानता लाना था, क्योंकि देश में विभिन्न वर्गों में बंटे करोडों लोगों के उत्थान केलिए समाजवाद ही केवल एकमात्र उपाय रहा था । सत्ता के विकेन्द्रीकरण से भारत में राजनीति को विशेष गति भी मिली । आम चुनाव और स्वायत्त शासन के चुनावों ने राजनीति को गाँव-गाँव और घर-घर पहुँचा दिया है, जिसके कारण समाज के सभी वर्ग राजनीति में अपनी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं ।

भारतीय स्वतंत्रता का अर्थ है - सामंतवाद, साम्राज्यवाद, आर्थिक और सामाजिक शोषण से मुक्त भारतीय मानवता की स्थापना । लेकिन स्वतंत्रता के पश्चात सत्ता और व्यवस्था का सामाजिक जीवन से सीधा सम्बन्ध हुआ और स्वतंत्रता पूर्व जिस राजनैतिक क्रान्ति के साथ राष्ट्रीय जीवन की कायापलट का सम्मोहन भारतीय जन पर छाया हुआ था वह स्वप्न की ही बात रही । राजनैतिक स्वतंत्रता विभाजन की अनेक समस्याओं के साथ मात्र सत्ता का हस्तांतरण ही रही, शोषण व्यवस्था के आन्तरिक चरित्र में कोई परिवर्तन नहीं आया ।

स्वतंत्र भारत में प्रजातंत्र तो स्थापित हुआ किन्तु उसकी मूल व्यवस्था वही रही जो अंग्रेज़ों ने हमें सौंप दी थी। स्वराज आया लेकिन सुराज न आ सका। प्रजातंत्र में अफसरशाही का संत्रास इतना बढ गया कि "फासिज्म" की मनोवृत्ति पनपने लगी है। डॉ॰ हरदयाल के शब्दों में "पिछले सत्ताईस वर्ष में बडी तेज़ी से सडन फैलती गई है। इत्तिफाक से हमारी चुनाव-प्रणाली का लाभ उठाकर बडे पैमाने पर इज़ारेदारों और काली जेबों ने सरकार पर दक्षिण-पंथी श्रम विरोधी दबाव बढाया है जिसका नतीजा यह हुआ कि मुल्क में गरीब और ज्यादा गरीब और अमीर और ज्यादा अमीर और ज्यादा बदनीयत और बेईमान। ..... देश में टूटन और सडांध है, इसमें सन्देह नहीं और इससे मुक्ति केलिए व्यापक जनसंघर्ष भी ज़रूरी है।"[44]

स्वाधीनता के पश्चात भारतीय राजनीतिक चेतना विविध रूपों तथा स्तरों में प्रकट हुई है। व्यक्ति और वर्ग अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होकर अपने हितों के संरक्षण की चिन्ता करने लगे। परिणामत: व्यक्ति, वर्ग तथा राष्ट्रीय हितो में संघर्ष की समस्यायें पैदा होने लगीं, जिसके कारण देश की भावात्मक एकता को गहरा धक्का और भारी आघात लगे। संगठित भावात्मक एकता स्वतंत्रता आंदोलन के संदर्भ में देश में थी, वह लुप्त हो गयी। "स्वाधीनता की भावना से व्यक्ति के चिंतन को एक नयी दिशा मिली। संवैधानिक अधिकारों की भावना ने व्यक्ति का आत्मविश्वास जगाया। फल स्वरूप इस युग में आकर व्यक्ति को भी काफी प्रतिष्ठा प्राप्त हुई।"[45]

गुलामी की जंजीरें तोडने के साथ ही जनता में वैचारिक परिवर्तन भी होने लगा। अत: स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही देश का वैचारिक पुनर्जन्म हुआ। आज़ादी केवल राजनैतिक मूल्यों के रूप में ही

स्वीकृत नहीं हुई थी बल्कि विचारों की एक नव क्रान्ति का सपना भी उससे जुड़ा हुआ था । लोकतंत्र ने जब व्यक्तियों को मतदान का अधिकार दिया और पुरातन विधि विधान विचार व पद्धति समान संरचना और नैतिक प्रतिमानों के आगे अपने प्रश्न चिह्न लगा दिया । समाज में शनैः शनैः परिवर्तन होने लगे । पुरानी जीर्ण मान्यताओं का बहिष्कार कर नयी मान्यताओं को आत्मसात् करने का प्रयास होने लगा । समाज में विभिन्न स्तरों पर नवचेतना को विकसित करने की कोशिश हुई ।

स्वतंत्रता के पश्चात् नेताओं के एक नए वर्ग का उदय हुआ । इनमें से अधिकांश जेल काट चुके थे तथा अब अपने त्याग का मूल्य वसूल करना चाहते थे । ऐसे नेताओं ने राष्ट्रहित की अपेक्षा अपने व्यक्तिगत लाभ को ही अपना लक्ष्य बनाया । भाषा के विभाजन ने भी अनेक समस्याओं को जन्म दिया । सत्याग्रह रूपी अस्त्र का मनमाना उपयोग होने पर पुलिस को हर जगह दखल देना पड़ा । राजनैतिक क्षेत्र में राष्ट्रहित के नाम पर अपना और अपनी पार्टी का स्वार्थ सिद्ध करने का प्रयत्न हर पार्टी करने लगी । पार्टी बाजी तथा दल-दल के कारण कोई राजनैतिक दल जनता को उसकी डूबती स्थिति से उभारने व आश्वासन देने में सफल नहीं हो पा रहा है ।

आज हमारा समाज भ्रष्ट राजनीति से ग्रस्त है और नैतिक रूप से जाने कितना पतित हो चुका है । हमारे देश की राजनीति में भ्रष्टाचार का सैलाब ही हुआ है । देश को खोखला व कमज़ोर बनाने वाले इस भ्रष्टाचार के दो रूप देखने को मिलते हैं - रिश्वतखोरी व बेईमानी और भाई-भतीजावाद । आधुनिक युग की भ्रष्ट राजनीति अपने

जाल में व्यक्तियों को बुरी तरह जकड लेती है । आज के प्रत्येक विभाग में उच्चाधिकारी से लेकर चपरासी तक भ्रष्टाचार के प्रचार प्रसार में लिप्त दिखाई देते हैं । दफ्तरों के भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद, समाज में विकसित होते हुए पूँजीवादी मूल्य, बढ़ती महँगाई, चोर बाज़ारी आदि से इस देश के मध्यवर्गीय नागरिक जिस घुटन कटुता और असुरक्षा को महसूस करने लगे हैं, उसका आकलन तक कठिन है । "ऐसी राजनीतिक व्यवस्था से जो आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था तथा जीवन मूल्य बनते हैं वह सामान्य व्यक्ति की मानसिकता को उत्तम मानवीय संस्कृति से हटाकर भ्रष्टाचार की ओर मोड़ते हैं, जिससे भ्रष्ट संस्कृति का पोषण होता है । और मानव जीवन का शिव-सुन्दर पक्ष ही नष्ट नहीं होता बल्कि स्वयं मानव-अस्तित्व ही विनाश की ओर बढ़ने लगता है ।"[46]

स्वतंत्रता के पश्चात् भ्रष्टाचार राज्य की व्यवस्था का एक खुला चरित्र बन गया है । श्रीमती तारा जिंकिन अपने संस्मरण में लिखती है कि स्वतंत्रतापूर्व भारत की प्रशासन सेवाओं में काफी भ्रष्टाचार था । पुलिस के सिपाही से लेकर न्यायालय के न्यायाधीश तक भ्रष्ट थे । किसी न किसी रूप में रिश्वत खाते थे । अस्पताल से दर्दनिवारक दवाइयाँ और एन्टीसेप्टिक्स काले बाज़ार पहुँच जाया करते थे । सार्वजनिक सेवा विभाग भी अपनी भ्रष्ट सेवाओं के लिए बदनाम था ।"[47] विरासत के रूप में प्राप्त ये सब तीस वर्ष में कांग्रेस के शासन की छत्रछाया में खूब फूले फले । पूँजीवादी मानसिक वृत्ति ने रिश्वत, बख्शिश कमीशन और कालेधन को सामाजिक प्रतिष्ठा में सम्मिलित कर दिया है ।

स्वातंत्र्योत्तर भारत में समाजवाद शब्द जितना उछाला गया है, उतना संभवत: कोई अन्य शब्द नहीं । भारतीय राजनीतिक नेताओं ने समाजवाद की अपने अपने ढंग से व्याख्या की, किन्तु मूल रूप से सभी दल इस बात से सहमत रहे कि शोषण को समाप्त करना और सभी नागरिकों को जीवन की अनिवार्य आवश्यकताएँ उपलब्ध कराना समाजवादी व्यवस्था का परम लक्ष्य है । किन्तु सच बात यह है कि व्यावहारिक रूप में समाजवादी मूल्यों की स्थापना का कोई प्रयास नहीं किया गया । वर्तमान भारत में अर्थ व्यवस्था और सभ्यता दिनों दिन बढ़ती जा रही है । आज पूँजीवादी अर्थ व्यवस्था और निजीकरण की नीति अपनी चरम सीमा की ओर बढ़ रही है । विसंगतियों से राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन भर गये है । फलत: सामान्य व्यक्ति की सोच में भी धन का महत्व बढ़ता जा रहा है ।

कांग्रेस जैसी पुरानी राजनीतिक पार्टी में भी नैतिक बल और चारित्रिक दृढ़ता के स्थान पर अवसरवादिता, पदलोलुपता और धनलोलुपता बढ़ीं और भ्रष्टाचारिता धुस गयी । राजनीतिक नेताओं की कथनी और करनी में कोई ताल मेल नहीं रहा । नेताओं में सेवा भाव नहीं रहा और उनकी इच्छा, आकांक्षा सिर्फ जेबें भरना है । राजनीतिज्ञों ने देश में पारस्परिक कलह, प्रान्तीयता, जातिवाद, क्षेत्रवाद भाषावाद आदि के बीज बोकर चारों तरफ अराजकता फैला दी है । शोषक ही आज शासक बन बैठा है । उच्च पदों में आसीन राजनीतिक कार्यकर्ता और सरकारी कर्मचारी दोनों मिलकर अपने ढंग से जनता से रूपया ऐंठने में लगे हैं । जैसे उनकी आत्मा मर गयी हो । उनके आचरण से राजनीतिक जीवन कलुषित हो गया है । स्वयं राजनीतिज्ञ खरीदे जाने लगे हैं । राजनीतिक दल राजनीतिज्ञों का खिलौना बन गया है ।[48] साथ ही पूँजीपति वर्ग प्रशासन का बागडोर संभालने लगे हैं ।

यह सत्य है कि आज देश की औसत आय बढ़ गई है । खाद्यान्न का उत्पादन अधिक होने लगा है, अनेक नये नये कल कारखाने खुल गए है, छात्र छात्राओं की संख्या में कई गुना अधिक वृद्धि हुई है । लेकिन विडंबना की बात है आज भी लाखों प्राणी भूखे और अधनंगे हैं ।

भारत के स्वतंत्र होने के बाद सन् 1950 में जो भारतीय संविधान स्वीकृत एवं अंगीकृत हुआ, उसमें प्रत्येक वयस्क महिला नागरिक को मतदान का अधिकार मिल गया । भारतीय संसद के निचले सदन लोकसभा तथा उच्च सदन राज्य सभा एवं राज्यों के विधान मंडलों में राजनीतिक दृष्टि से महिला नेतृत्व निरन्तर उभरता ही रहा । सन् 1977 के आमचुनाव के बाद लोकसभा एवं राज्यसभा में महिलाओं की संख्या 42 थी, जो 1980 के आमचुनाव के बाद 54 हो गई । इसी प्रकार सन् 1971, 1977, 1980, 1983, 1986, 1989 के चुनावों से भी ऐसा ज्ञात होता है, कि महिलाओं में मत-दान का स्वतंत्र रूप से उपयोग करने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है । अनेक श्रेष्ठ नारियों ने केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों में जिम्मेदारी के पदों का निर्वाह किया जिनके कार्य का मूल्यांकन करते समय वे किसी पुरुष मन्त्री, राज्यपाल, मुख्यमंत्री आदि से कभी भी कम नहीं दिखलायी पड़ती ।

डॉ. के.एम.पणिक्कर ने लिखा है कि "जब स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत के राजनीतिक और सामाजिक जीवन में स्त्रियों ने जो स्थान प्राप्त किया उसे देखकर बाहरी दुनिया आश्चर्य में पड गई क्योंकि वह तो यह सोचने की अभ्यस्थ थी कि हिन्दू स्त्रियां पिछड़ी अशिक्षित और प्रतिक्रियावादी सामाजिक व्यवस्था में जकड़ी हुई हैं ।[42] भारत में जो महान परिवर्तन हुआ उसकी महत्ता यह थी कि भारतीय महिलाओं ने राज्यपालों, केबिनेट स्तर के मंत्रियों और राजदूतों के रूप में

यश प्राप्त किया । इस का कारण स्पष्ट करते हुए डॉ॰पणिक्कर ने लिखा है कि स्त्रियों की शिक्षा एवं उनकी राजनीतिक जागृति ने उस कुल्हाडी को तेज़ कर दिया है जिसकी सहायता से हिन्दू सामाजिक जीवन की जंगली झाडियों को साफ करना सम्भव हो गया है । इस देश में महिलाओं में राजनीतिक चेतना चुनावों में मतदाताओं और उम्मीदवारों के रूप में भाग लेना, राजनीति में सजगता, वचनबद्धता और सक्रिय सहभागिता जैसे राजनीतिक दृष्टिकोण को अपनाना, राजनीतिक कार्यवाही एवं व्यवहार में स्वायत्तता का निर्वहण करना और राजनीतिक प्रक्रिया पर उनका प्रभाव पड़ना प्रतिदिन बढते जा रहे है । लेकिन ग्रामीण महिलाओं की अपेक्षा शहरी महिलाएँ राजनीति में अधिक भाग लेती रही हैं । भारतीय राजनीति में स्त्रियों की कम सहभागिता के कारण महिलाओं की स्थिति-संबन्धी राष्ट्रीय समिति की रिपोर्ट में इस प्रकार बताया गया है - चुनावों का बढ़ता हुआ खर्च, हिंसा की धमकियां अथवा डर और चरित्र हनन ।

भारतीय राजनीति में महिलाओं की उपेक्षा के कारणों पर चर्चा करती हुई आशारानी व्होरा लिखती है कि प्रमुख कारण तो यह है कि भारतीय नारी से जिस प्रकार की शालीनता की अपेक्षा की जाती रही है उसे जिन नैतिक और मानवीय मूल्यों की संरक्षिका समझा जाता है, आज की राजनीति में उन मूल्यों का उल्लंघन और अवमूल्यन हुआ है । यह अवमूल्यन औसत भारतीय स्त्री की मानसिकता के अनुकूल नहीं है । ब्लैकमेल, उखाड-पछाड के अलावा वह व्यक्तिगत स्तर पर चरित्र हनन की गन्दी राजनीति की दलदल में फँसना नहीं चाहती । आज के विपक्ष की बात तो छोड ही दीजिए, उनकी अपनी पार्टी के पुरुष साथी भी महिला सदस्यों के बारे में बहुत निम्न स्तर पर बोलते सुनाई देते हैं ।[50] कुछ साहस दिखाकर महिलाएँ आगे बढती भी हैं तो उन्हें घर परिवार के लोग निरुत्साहित करते हैं ।

लगभग सभी बड़े राजनीतिक दलों के अपने महिला विभाग हैं । देश भर में जिला और स्थानीय स्तर पर उनकी शाखाएं भी हैं । उनके पास कार्यकर्त्ता महिलाओं की कमी नहीं होती पर उनका उत्साह और उपयोग भी अध्यक्ष और कार्यकारिणी के चुनाव तक या फिर चुनाओं के समय पिछली पंक्ति की समर्थक सहयोगी होने तक सीमित रहता है ।

सारांश यह है कि आज की सत्ता की कानून व्यवस्था ने भ्रष्टाचार को इतना बढावा दिया है कि ईमानदार व्यक्ति ही मिस फिट होकर नहीं रह गया, अपितु, श्रम कर्म, विचार व सांस्कृतिक मूल्यों का भी अवमूल्यन हो रहा है । समकालीन जीवन में राजनीति इतनी प्रबल और प्रमुख हो उठी है कि जीवन का कोई भी क्षेत्र उससे अप्रभावित नहीं रह सकता, जो इससे बचने की कोशिश करते हैं, वे भी पकड में आ जाते हैं । भ्रष्ट राजनीति और जनसाधारण में राजनीतिक चेतना के अभाव में लोकतंत्र की व्यर्थता का बोध प्रकट होता है । कहने को लोकतंत्र है किन्तु स्थिति जिसकी लाठी उसी की भैंसवाली ही है । लोक तंत्र में "लोक" की दुर्गति ही है । वर्तमान भारतीय राजनीतिक व्यवस्था कई दबावों से घिर कर रही है । परिणामत: प्रेम स्नेह करुणा, दया, सेवा जैसे मानवीय मूल्यों में दिखावा आ गया है । कृत्रिमता व्याप्त हो गई है । कथनी और करनी के अन्तर से सही व्यक्ति को पहचानना कठिन हो गया है । हर व्यक्ति ने असंख्य अनजाने मुखौटे में अपनी वास्तविकता को छिपाए रखा है ।

संक्षेप में कमलेश्वर ने राजनीतिक क्षेत्र की असंगतियों की ओर इशारा करते हुए जो लिखा है, सौफीसदी सही लगता है । जनतंत्र के नाम पर देश में मजाक चल रहा है । उसने नयी पीढी को सबसे अधिक विस्मृत किया । इस निहायत व्यावहारिक तरीके से चलनेवाले जनतंत्र ने पूरे देश को भीड में बदल दिया । भविष्य की जगह शून्यता,

जनतंत्र की जगह भीड, समाजवाद की जगह स्वार्थवाद और समवेत राष्ट्रीय दिशा की जगह भयानक निरुद्देश्यता यही वर्तमान दुनिया की विडम्बना है ।"[51]

इस माहौल में नारी संत्रस्त है और अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व और अस्तित्व के लिए संघर्षशील भी रही है । यद्यपि राष्ट्र के सर्वोच्च पद पर श्रीमती इंदिरा गांधी का आसीन होना महिलाओं की एक महान् उपलब्धि था । लेकिन वह तो वाकई एक अपवाद रहा, वर्तमान पुरुषप्रधान समाज में दुगने शोषण की शिकार बनकर वह दुर्दम पीडा झेल रही है ।

टिप्पणियाँ

1. श्रृंखला की कडियाँ - महादेवी वर्मा, पृ.76
2. The deterioration of the Indian woman started with the advent of manu and his strict Ethical code of what was right and proper for women. According to him women were not fit to be the equals of men but only his subordinates when education was denied to them under the new caste system,they came to be classed in the same category as shudras or slaves.
   THE INDIAN FEMALE ATTITUDE TOWARDS SEX,p.14
   - MAYA BLASE
3. मनुस्मृति - टीकाकार हरगोविन्द शास्त्री, 3156, पृ.113
4. आधुनिक हिन्दी मुक्तक काव्य में नारी - डॉ.सावित्री डागा पृ.123
5. श्रृंखला की कडियाँ - महादेवी वर्मा, पृ.38
6. हिन्दी के उपन्यासों में सामंतवाद - डॉ. कमला गुप्ता,पृ.103
7. Social status of North Indian women - ILLA MUKERJEE, p.149

8. हिन्दी उपन्यास : समाजशास्त्रीय अध्ययन - डॉ. चण्डीप्रसाद जोशी, पृ.113

9. हिन्दी उपन्यास में सामन्तवाद - डॉ.कमलागुप्ता,पृ.702

10. हिन्दुस्थान के निवासियों का जीवन और उनकी परिस्थितियाँ, पृ.170

11. हिन्दी उपन्यासों में रूढ़ी मुक्त नारी - डॉ.राजारानीशर्मा, पृ.29

12. हिन्दी उपन्यास में सामंतवाद - डॉ.कमलागुप्ता, पृ.105

13. वही, पृ.106

14. वही, पृ.392

15. वही, पृ.389

16. The most effective aspect of English education was the awakening of Indian woman themselves. They re-gained their long lost consciousness and began to compare their own restricted and over-burdened life with that of western woman who enjoyed freedom. With English education and use of a common language in the background Indian woman from all parts of the country alive to their age old sufferings, at the hand oforthodox society and were able to launch a crushed against pernicious social evils. In a nut shell, English education postulated social rejuvenation which brought about significant changes in the out look of the women themselves.
WOMEN'S MOVEMENT IN INDIA-PRATHIMA ASTHANA, p.19

17. Raja Ram Mohan Roy, the great reformer, Protested against the establishment ...... useful science.
WOMEN'S MOVEMENT IN INDIA - GIFT OF ENGLISH EDUCATION - PRATHIMA ASTHANA, p.17

18. INDIAN WOMEN'S BATTLE FOR FREEDOM, KAMALADEVI, p.98

19. भारतीय नारी दशा - दिशा - आशारानी व्होरा,पृ.14

20. The Indian women experienced an air of Freedom when a call of re-surgence came them from the west. The impact of democratic ideals rejuvenated women and they began to feel the stir of a new life. They aspired to attain the same status of dignity and freedom which they had once enjoyed in the past and belived this new aspiration was the search light of the alien civilzation —— Indeed, the impact of west ....important and nationally needed.

WOMEN'S MOVEMENT IN INDIA, p.19-20.

21. मो.क. गांधी महिलाओं से, पृ.26

22. हिन्दी उपन्यास में रूढीमुक्त नारी, पृ.35

23. नारी विद्रोह का भारतीय मंच - आशारानी व्होरा, पृ.62

24. वही, पृ.63

25. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी का समाज सापेक्ष अध्ययन - डॉ.कीर्ति केसर, पृ.214

26. विश्व इतिहास की झलक : भाग दो - जवहरलाल नेहरू, पृ.464

27. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी का समाज सापेक्ष अध्ययन - डॉ.कीर्ति केसर, पृ.104

28. The property was hold in trust by head of the family, and the other member had a share in the produce of the land. The earning of the members were also pooled by the head of the family, and each member was given a share, according to his needs. The head of the family was the law giver and other members usally obeyed his will.

INDIA A HISTORICAL SURVEY - K.A.N. SHASTRI & G. SRINIVASACHARI, p.63

30. अस्तित्ववाद और द्वितीय समरोत्तर हिन्दी साहित्य - डॉ.श्यामसुन्दर मिश्र, पृ.102

31. समकालीन हिन्दी साहित्य - वेदप्रकाश शर्मा अमिताभ, पृ.101

32. भगवती चरणवर्मा के उपन्यासों में युग चेतना - डॉ.ब्रजनाथप्रसाद शुक्ल, पृ. 67

33. सारा आकाश - उपेन्द्र नाथ अश्क, पृ.209

34. द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास - लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, पृ.81

35. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में सामाजिक परिवर्तन - डॉ.भैरूलाल गर्ग, पृ.77

35 अ. हिन्दी उपन्यास में सातवाँ दशक - डॉ.जयश्री बरहाटे,
पृ.111

36. Article 16 clause (1) and (2) guarantee equality of opportunity to all citizens in the matter of appointment to any office or any other employment under the state. No citizen can be discriminated against or be ineligible for any employment or office under the State.
THE CONSTITUTIONAL LAW OF INDIA,p.69

37. भारतीय नारी दशा-दिशा - आशारानी व्होरा, पृ.119

38. वही, पृ.125

39. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी का समाज सापेक्ष अध्ययन -
डॉ.कीर्ति केसर, पृ.212

40. श्रृंखला की कड़ियाँ - महादेवी वर्मा, पृ.93

41. आधुनिक हिन्दी प्रबन्ध काव्य में नारी, पृ.9

42. कामकाजी भारतीय नारी - डॉ.प्रोमिला कपूर,पृ.28

43. हिन्दी कहानी में जीवन मूल्य - डॉ.रमेशचन्द लावनिया,

44. संचेतना अंक 33 {1975} सं.डॉ.महीप सिंह
लेखक डॉ. हरदयाल, पृ.13

45. भैरवप्रसाद गुप्त के उपन्यासों में सामाजिक चेतना,पृ.150

46. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी का समाज सापेक्ष अध्ययन -
पृ.186

47.

48. द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास -
लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, पृ.42

49. हिन्दू सोसाइटी एवक्रास रोड्स - डॉ.के.एम.पणिक्कर,
पृ.101

50. भारतीय नारी अस्मिता और अधिकार - आशारानी व्होरा,
पृ.28

51. नई कहानी की भूमिका - कमलेश्वर, पृ.94

तीसरा अध्याय

हिन्दी उपन्यास में नारी के स्वरूप और भूमिका

तीसरा अध्याय

हिन्दी उपन्यासों में नारी के स्वरूप और भूमिका

उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचन्द के आगमन के पूर्व ही बंगाल में उच्च कोटि के उपन्यास लिखे जा रहे थे। हिन्दी में उन बंगला उपन्यासों का अनुवाद ही ज्यादतर होता था। पाश्चात्य सभ्यता के संपर्क और सामाजिक आंदोलनों के फलस्वरूप यद्यपि राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक क्षेत्र के परिवर्तनों का आभास हमें भारतेन्दु युग में ही मिलने लगा था, लेकिन युग सम्राट प्रेमचन्द के आगमन से ही हिन्दी साहित्य ने एक नया मोड लिया। प्रेमचन्द के पूर्व के हिन्दी उपन्यास अधिकतर कल्पना और रोमांस पर आधारित थे। प्रेमचन्द युग में कल्पना और रोमांस का स्थान यथार्थ ने ले लिया। पात्रों को विशेष व्यक्तित्व हासिल हो गया। साथ ही नये उपन्यासकारों को धीरे धीरे वह चेतना भी मिलने लगी जिसके बलबूते पर वे मानव जीवन को समझकर उसका वास्तविक और गम्भीर चित्रण करने की ओर प्रस्तुत हुए।

प्रेमचन्द युग दरअसल क्रांति का युग था । इस युग में पुरानी परंपराओं मान्यताओं और सौन्दर्य भावनाओं का अन्त हो गया । द्विवेदी युगीन नारी चित्रण पाठक के मन में अवश्य करुणा उत्पन्न करता था । छायावादी युग में नारी को मान्यता प्रदान करते हुए उसके अन्तर्मन को समझने का ज़बरदस्त प्रयास हुआ है । यों परंपरा से भिन्न होकर नारी की हैसियत में नींवाधार तब्दीली हो गयी । "प्रेमचन्द युग में इन दोनों दृष्टियों का मेल हो जाता है । एक ओर समाज में नारी की करुण स्थिति और दूसरी ओर उसकी नैतिक शक्तियों और दुर्बलताओं का चित्रण इस युग की विशेषता है । यह चित्रण प्रेमचन्द ने मर्यादावादी दृष्टिकोण से किया है ।"[1]

परंपरागत भारतीय साहित्य में नारी की जो तस्वीर दीख पड़ती है, वह पुरुष के सामने अपने आपको समर्पित करनेवाली आदर्श नारी की है । प्राचीन काल में आदर्श नारी केलिए नम्रता, विनयशीलता, आदि गुणों का होना अनिवार्य माना जाता था । इसलिए पुरुषों की इच्छाओं की पूर्ति केलिए अत्याचारों को सहनेवाली सीता के समान अपनी इच्छा को दबाए रखनेवाली नारी का आदर्श रूप साहित्य में प्रचलित था । प्रेमचंद के उपन्यासों में ही सबसे पहले यह आदर्श रूप विकृत हो गया । "प्रेमचन्द युग के उपन्यासकारों ने देखा कि सामाजिक दुरवस्था के कारण नारी की स्थिति अत्यधिक शोचनीय है । वह रूढियों, बंधनों आदि के बोझ से निष्प्राण रहे तो देश का आधा भाग प्रगति से वंचित रह जायेगा । इसलिए उन्होंने नारी जीवन की सारी विषमताओं का चित्रण इस प्रकार किया कि समाज की सहानुभूति मिले । पर उनके मनमें जो आदर्श थे वे प्राचीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था पर आधारित थे । इसलिए परिवर्तन तो चाहते थे लेकिन क्रान्ति नहीं ।"[2]

प्रेमचन्द के उपन्यासों की नारी

नारी से जुड़ी सामाजिक समस्याओं को ही सबसे पहले प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में स्थान दिया । उनके अनुसार "जो दलित पीड़ित और वंचित है चाहे वह व्यक्तिगत हो या सामूहिक, उसकी हिमायत करना साहित्यकार का फर्ज है ।"[3] सामाजिक समस्याओं के विचारक प्रेमचन्द जी के मन में भारतीय नारी की समस्याओं का उभर आना स्वाभाविक ही था । भारतीय नारी पूर्ण रूपेण अस्वतंत्र और अशिक्षित थी । अपनी रचनाओं में पर्दे के अन्दर बन्धन ग्रस्त और दुःखी नारी की मार्मिक समस्याओं का पर्दाफाश करना वे कभी भूले नहीं । लेकिन इस काम में वे अत्यंत आधुनिक नहीं है । इसका मुख्य कारण यही है कि उन्होंने भारतीय नारी को पवित्रता की लक्ष्मण रेखा का अतिक्रमण करने की अनुमति नहीं दी । डॉ॰इन्द्रनाथ मदान को लिखे गये अपने व्यक्तिगत पत्र में उन्होंने नारी संबन्धी अपनी मान्यता खुल्लम-खुल्ला व्यक्त की है "मेरा नारी का आदर्श है एक ही स्थान पर त्याग, सेवा, और पवित्रता का केन्द्रित होना । त्याग बिना फल की आशा के हो, सेवा सदैव बिना असंतोष प्रकट किये हुए हो और पवित्रता सीज़र की पत्नी की भांति ऐसी हो, जिसकेलिए पछताने की आवश्यकता न पडे ।"[4]

प्रेमचन्द के "निर्मला" से लेकर "गोदान" तक की नारी भारतीय परंपरा की लीक को पकड़ते हुए ही स्वतंत्र आचरण करती है । इसी वजह से गोदान में आधुनिक नारी का प्रतिनिधित्व करनेवाली मालती से भी बहतर रूप में भोली और अन्याय सहनेवाली गोविन्दी का चित्रण हुआ है । प्रेमचन्द समाज के हर क्षेत्र की समस्याओं से सचेत और संत्रस्त रहे थे । इसलिए उन्होंने समाज में प्रचलित दकियानूसी परंपराओं के बोझ से पिसती नारी का जीवन्त चित्रण अपने उपन्यासों में किया ।

इन समस्याओं से जूझते विकसित होता हुआ नारी का व्यक्तित्व उनके उपन्यासों में देख सकते हैं । नारी की विविधता को उभारनेवाली अनेक पात्र प्रेमचन्द की रचनाओं में विद्यमान हैं । वेश्या, गृहिणी, कलह प्रिया, आत्महत्या करनेवाली, विधवा, त्याग-संपन्ना क्रूर प्रवृत्तियों में मग्न, दरिद्र, धनी, अत्याचारों को रोकनेवाली, बदला लेनेवाली आदि जीवन की विविध सीढियों से गुज़रनेवाली सश सश नारी प्रेमचन्द की तूलिका से निकली है ।

निर्मला

"निर्मला" में वृद्ध पति की कामलोलुपता, तरुणी निर्मला को विवाहसूत्र में जोडकर रखती है । यही काम-पिपासा उसे अपने युवा पत्नी के प्रति सन्देहशील भी बनाये रखती है । निर्मला जिस व्यक्ति को आराम पहुँचाना चाहती थी, जिससे मिलकर वह हृदय के दुःख को थोडी देर केलिए भूल सकती थी, समाज उसको उसी से दूर रहने केलिए बाध्य करता है । और जिस शंकाशील वृद्ध पति से वह घृणा करती थी उसे प्रेम करने का आदेश देता है । निर्मला उससे मन ही मन घृणा करने लगती है फिर भी सतीत्व की रक्षा और कर्तव्य भावना से प्रेरित होकर वह पति का संदेह दूर करने केलिए अपने प्राणों की बाजी लगा देती है । नारी मन के पारखी प्रेमचन्द ने बडे सशक्त रूप से व्यक्त किया है "कर्तव्य की वेदी पर उसने अपना जीवन और अपनी सारी कामनाएँ होम कर दी थीं । हृदय रोता रहता था, पर मुख पर हँसी का रंग भरना पड़ता था, जिसका मुख देखने को जी न चाहता था, उसके सामने हँस-हँसकर बातें करनी पड़ती थी । जिस देह का स्पर्श उसे सर्प के शीतल स्पर्श के समान लगता था, उससे आलिंगित होकर उसे जितनी घृणा जितनी मर्मवेदना होती थी, उसे कौन जान सकता है । उस समय उसकी यही इच्छा होती थी कि धरती फट जायें और उसमें समा जाऊं ।"[5]

उसकी समूची लालसा जागृत होने से पहले ही पति का दम घुटने लगता है । इसके बावजूद भी निर्मला पति को परमेश्वर मानती है । यौन कुण्ठा से त्रस्त होने पर भी उसका विचार है - "वह बूढे हो या रोगी, पर है तो उसका स्वामी ही, कुलवती स्त्रियाँ पति की निन्दा नहीं करती, वह कुलटाओं का काम है ।"[6] लेकिन "निर्मला" की सुधा अपने रूप लोलुप पति को इतना फटकारती है कि पति आत्महत्या कर लेता है । बाद में सिंदूर को अपने हाथों पोंछनेवाली सुधा जीवन की गहरी वेदना के क्षणों भी विचलित नहीं होती, क्योंकि वह नारी के वैयक्तिक, पारिवारिक और सामाजिक दायित्वों के प्रति पूर्णत: जागरूक रहती है और उनका निर्वाह करती है । वह कहती है "ऐसे सौभाग्य से मैं वैधव्य को बुरा नहीं समझती ।" सुधा, सौभाग्य के प्रतीक ऐसे संबन्धों में विश्वास नहीं करती जहाँ विवाह के सामाजिक बन्धन को धर्म और नैतिकता के ऐसे शास्त्र से जकड दिया जाय कि नारी हर स्थिति में पति केलिए समर्पिता ही बनी रहे । वह शादी को प्रेम का बन्धन ही मानती है और प्रेम में एक के सिवा दूसरे केलिए कोई स्थान नहीं । वासना के कीडे पति से सुधा मुक्त हो जाती है । निर्मला की माँ कल्याणी और बहिन कृष्णा दोनों पुरुष के अधिनायक वृत्ति को नहीं स्वीकारतीं । बहिन कृष्णा निर्मला से पूछती है - "चन्दर इतना बदमाश है, उसे कोई नहीं भाता । । हम तुम तो बदमाशी भी नहीं करती । निर्मला की माँ कल्याणी और पिता के बीच कभी कभी मुठभेड होता है । जब पति कहता है कि "मैं काम कर लाता हूँ, जैसे चाहूँ खर्च कर सकता हूँ । किसी को बोलने का अधिकार नहीं है ।"[7] तब कल्याणी चुप नहीं बैठती, वह भी बोल उठती है - "तो ऐसी स्त्रियाँ और होंगी जो मर्दों की जूतियाँ सहा करती हैं ।" आप अपना घर संभालिए । ऐसे घर को मेरा दूर ही से सलाम, जहाँ मेरी कुछ पूछ नहीं ।

घर में तुम्हारा जितना अधिकार है, उतना ही मेरा भी । इससे जौ भर भी कम नहीं । आप अपने मन के राजा हो तो मैं भी अपने मन की रानी हूं । .... मेरेलिए पेट की रोटियों की कमी नहीं है । तुम्हारे बच्चे हैं मारो या जिलाओ ।"[8]

अपनी जवान बेटी के कारण वह इतना दु:खी है कि सोचती है दरिद्र विधवा केलिए इससे बडी और क्या विपत्ति हो सकती है कि जवान बेटी सिर पर सवार हो ...रूखा - सूखा खाकर निर्वाह किया जा सकता है । झोपडे में दिन काटे जा सकते हैं लेकिन युवती कन्या घर में नहीं बैठायी जा सकती ।"[9] इसलिए वह निश्चय कर लेती है बेटी की शादी जल्दी ही जल्दी करनी है । उनका विचार है - आयु कुछ अधिक है, लेकिन मरना जीना विधि के हाथ है । पैंतीस साल का आदमी बुड्ढा नहीं कहलाता । अगर लडकी के भाग्य में सुख भोगना पडा है, तो जहां जाएगी सुखी रहेगी, दु:ख भोगना है तो जहां जाएगी दु:ख झेलोगी । हमारी निर्मला को बच्चों से प्रेम है उनके बच्चों को अपना समझेगी ।"[10]

उम्र की असमानता पति-पत्नी के संबन्धों में कितना मानसिक वैषम्य स्थापित कर देती है यह निर्मला के ही उदरण से जाना जा सकता है । अवस्था भेद मिटाना उसके वश की बात न थी । निर्मला पति को प्रसन्न करने केलिए शृंगार करती थी तो "खण्डहर रूपी पति के सामने रत्न-जटित चित्रशाला जैसी लगती थी । और यदि शृंगार न करती तो पति यह समझते थे कि उनके बुढापे में दु:खी होकर उसने वैराग्य ले लिया है । दोनों ही परिस्थितियों में अपने आपको बेमेल पाकर निर्मला असहनीय मानसिक यातनाएं सहती है । जीवन के इस कठोर सत्य को वह यों व्यक्त करती है - "न वह जवान हो सकते हैं, न मैं

बुढ़िया हो सकती हूँ । जवान बनने केलिए वह न जाने कितने भस्म और रस खाते रहते हैं, मैं बुढ़िया बनने केलिए घी, दूध सभी छोड बैठी हूँ । लेकिन न उन्हें पौष्टिक पदार्थों से कुछ लाभ होता है, न मुझे उपवासों से ।"[11]

मृत्यु शय्या पर पडी निर्मला द्वारा प्रेमचन्द ने अनमेल विवाह के विरुद्ध यह घोषणा करवाई है - बच्ची को आपकी गोद में छोडकर जाती हूँ । अगर जीती-जागती बचे तो किसी अच्छे कुल में विवाह कर दीजियेगा । मैं तो इसकेलिए जीवन में कुछ न कर सकी, केवल जन्म भर देने की अपराधिनी हूँ । चाहें कुँवारी रखियेगा, चाहे विष देकर मार डालिएगा पर कुपात्र के गले न मढ़ियेगा, इतनी ही तो आप से विनय है ।"[12]

निर्मला समाज द्वारा शासित वह दुर्बल नारी है जो अपनी इच्छाओं को समाज की प्रचलित विचारधाराओं के अनुकूल डालने की भरसक चेष्टा करती है किन्तु परिस्थितियों के वैषम्य के कारण ऐसा नहीं कर पाती । उसमें साहस का अभाव है इसलिए वह किसी भी परिस्थिति से विद्रोह नहीं करती । ऐसी हालत में विकसित होनेवाली मध्यवर्गीय नारी के मानसिक वैषम्य और उसकी दुर्बलता का बडा सशक्त चित्रण निर्मला में संभव हुआ है ।

सुमन

"सेवासदन" में सुमन का विवाह दहेज की कमी के कारण गजाधर से हो जाता है । लेकिन निर्दयी पति के आगे आत्म सम्मान को अर्पित करना वह नहीं चाहती । आखिर परिस्थिति के भँवर में पडकर वेश्या बन जाती है । वह युवा सदन से प्यार करने लगती है, पर उसका प्रेम सफल नहीं होता क्योंकि सुमन अनमेल विवाह करके वेश्या

जीवन बितानेवाली है, उसका अपने से कम उम्रवाले सदन से प्रेम और विवाह अनैतिक है । एक बार वेश्यावृत्ति स्वीकार करने के बाद फिर उससे न बच पाने की स्थिति का वर्णन करना मात्र प्रेमचन्द का लक्ष्य नहीं है बल्कि समाज के स्त्री के प्रति एक तरफे नैतिक दृष्टिकोण की ओर संकेत करना भी है । सेवा सदन में प्रेमचन्द ने स्पष्ट रूप से कहा है कि "हमारे पुरुष प्रधान समाज में नारी चाहे सुमन जैसी विद्रोहिणी, रूप गर्विता एवं स्वाभिमानी हो, चाहे शान्ता जैसी शान्त, निरीह एवं समर्पण शील दोनों को ही समाज के कारण आक्रोश का भाजन बनना पड़ता है ।"[13]

सोफिया

"रंगभूमि" की ईसाई लड़की सोफिया निर्मला और सुमन की तुलना में निडर है । वह अपना प्रेम खुल्लम खुल्ला व्यक्त करती है । उसके प्रेम संबन्धों के अनेक प्रसंग, प्रेम के नये कीर्तिमान स्थापित करते हैं । सोफिया अपने हृदय की आसक्ति को यों प्रकट करती है - नहीं, लज्जा नहीं आती । लज्जा की बात ही नहीं है । वह मुझे अपने प्रेम के योग्य समझते हैं, यह मेरेलिए गौरव की बात है । ऐसे साधु प्रकृति ऐसे त्याग मूर्ति, ऐसी दु:स्साहसी पुरुष की प्रेम-पात्री बनने में कोई लज्जा नहीं .... यही वरदान था, जिसकेलिए मैं इतने दिनों तक शांत भाव से धैर्य धारण किए हुए मन में तप कर रही थी ... यह मेरेलिए लज्जा की बात नहीं वरदान की बात है ।"[14]

प्रेमचन्द प्रेम के मामले में धार्मिक भिन्नता की ओर ध्यान ही नहीं देते । इसलिए सोफिया कहती है - प्रेम केलिए धर्म की भिन्नता कोई बन्धन नहीं है । ऐसी बाधाएं उस मनोभाव केलिए है, जिसका

अंत विवाह है, उस प्रेम केलिए नहीं, जिसका अंत बलिदान है ।"[15] सभी बाधाएँ होने पर भी सोफिया निडर है, क्योंकि वह तो प्रेम को दुर्बलता के रूप में नहीं वरदान के रूप में स्वीकार करती है। सोफिया ऐलान करती है - "मैं तुम्हारी आँखों के एक इशारे पर इस दीवार को तोड फेंकूंगी । प्रेम इन बाधाओं की परवाह नहीं करता । यह सम्बन्ध नहीं, आत्मिक संबन्ध है ... ।"[16]

जालपा

"गबन" की जालपा प्रेमचन्द के उपन्यास संसार की अद्वितीय नारी है । जालपा को रामनाथ वही प्यार देता है जो एक मध्यवर्गीय पति दे सकता है । लेकिन भौतिक विलास की महत्वाकांक्षा जालपा में गहनों के प्रति रुचि बढाती है । राधा और शाहजादी के संवाद में प्रेमचन्द प्रेम और धन के इस संघर्ष को अधिक स्पष्ट कर देते हैं । प्रेम के सामने गहनों को कोई मूल्य नहीं । सच्चा प्रेम आत्मा को तृप्त कर देता है । प्रेम की मधुर स्मृतियों में प्रेम का संजीवन आनन्द भरा हुआ है । बूढे वकील साहब की पत्नी, जालपा से कहती है "अनुराग रूप या यौवन या धन से नहीं उत्पन्न होता ।"[17]

जालपा का विचार है कि आत्मनिर्भरता के अभाव में प्राप्त सुख सुविधा पुरुषों की सद्भावना और दया पर आश्रित है । सब प्रकार की सुविधा मिलने पर भी यह स्थिति अस्मिताहीन दयनीयता की है । किसी का आश्रित बनकर जीने की स्थिति । सुख सुविधाओं पर लात मारकर अपने ही कष्ट और श्रम पर निर्भर होने पर ही इस स्थिति से मुक्त हो सकता है । डॉ॰ चन्द्रभानु सोनवणे के अनुसार कोख के अंधेरे से कौमार, यौवन और वार्द्धक्य में क्रमशः पिता, पती, पुत्र से रक्षा की भीख माँगती मृत्यु के अंधकार में डूब जानेवाली नारी केलिए एकमात्र प्रकाश का दीप जालपा का आत्ममर्यादा से प्रदीप्त जीवन ही है ।"[18]

जालपा की सबसे बडी विशेषता यह है कि वह सेवासदन की सुमन की तरह क्षणिक विद्रोह करनेवाली नहीं और निर्मला की तरह घुट घुटकर मरनेवाली भी नहीं । यानी उसका विद्रोह तत्कालीन कारणों से प्रेरित नहीं है । वह प्रेमचन्द के साहित्य की अकेली नारी है, जिसने प्रतिगामी पति को देवता मानकर उसका अनुगमन करने से इनकार ही नहीं कर दिया बल्कि उसे अपना अनुगामी बनाकर छोड दिया । जालपा के हृदय परिवर्तन से कथा का विकास हुआ है । उसके मूल में जो क्रान्तिकारी सामाजिक बोध है, वह प्रेमचंद की और किसी नायिका में नहीं है ।"[19]

प्रेमचन्द ने नारी को सिर्फ प्रेरक शक्ति के रूप में ही नहीं बल्कि जीवन के हर क्षेत्र में पुरुष के साथ कन्धा मिलाकर काम करनेवाली साथी के रूप में भी देखा है । कर्मभूमि के नायक अमरकान्त को उसके जीवन में आनेवाली हर नारी प्यार करने लगी है । उसकी पत्नी सुनमना भोग विलास को ही जीवन की मूल्यवान वस्तु समझती है । गरीब और अनाथाश्रम में पली सकीना में प्रेम के मर्म को समझने की सामर्थ्य नहीं है । वह अमर से निस्वार्थ प्रेम की व्याख्या करती हुई कहती है -मुहब्बत खुद अपना इनाम है ।"[20] मुन्नी तो प्रेम के मोह में गद्गद् होकर अपने कलुषित शरीर अपने प्रेमी को सौंपना भी नहीं चाहती । इसलिए वह पति से कहती है "मेरे पीछे मत आओ । ..... पतिता के साथ तुम सुख से रह सकोगे ?" लेकिन पति उससे कहता है मुझे किसी की परवाह नहीं है । घर में आग लग जाय, मुझे चिन्ता नहीं, मैं या तो तुम्हें लेकर जाऊँगा या यही गंगा में डूब मरूँगा ।"[21]

झुनिया

"गोदान" की झुनिया के व्यक्तित्व में उपर्युक्त सभी नारियों की अपेक्षा विद्रोह भावना कूट कूट कर भरी है। प्रचलित अन्याय और अनीति के प्रति जो आक्रोश विद्रोह और ललकार उसमें पुंजीभूत हुए हैं, उसके आगे पुरुष चरित्र निस्तेज दिखाई देते हैं। झुनिया को स्वीकार करने केलिए जब गाँव के चौधरी होरी पर दण्ड लगाते है तब धनिया जो आक्रोश प्रकट करती है वह ऐतिहासिक प्रयोग बन गया है। होरी जिन पाँवों को सहलाते रहने में ही कुशल समझता है, धनिया उन्हें काट फेंकने पर उतारू है। सारी बिरादरी को ठोकर मारकर झुनिया को वह स्वीकार करती है क्योंकि उसका बेटा जिसकी बाँह पकड़कर लाया है वह अब उनके घर की लाज है। दिनकर की उर्वशी को मर्दानी औरत का जो विशेषण दिया गया है वह झुनिया पर भी लागू है।"[22]

प्रेमचन्द ने झुनिया के माध्यम से अतियथार्थवाद और आदर्शवाद के खतरों से बचाते हुए नारी चरित्र का पुनः सृजन किया है। फिर भी प्रेमचन्द अपने युग के प्रभाव से बच नहीं सके थे। घर और परिवार के इर्द-गिर्द लिपटीअपनी मध्यवर्गीय भावुक मानसिकता को वे स्वयं नहीं तोड़ सके। लेकिन यह सत्य है कि गोदान तक पहुँचते पहुँचते प्रेमचन्द का यथार्थ बोध इतना पैना अवश्य हो उठा कि अपना बनाया मिथक उन्होंने स्वयं धनिया द्वारा तोड़ दिया। धनिया अनपढ़ गँवार है, आर्थिक शोषण की शिकार है, लेकिन आर्थिक बौद्धिक और धार्मिक अभिजात्य के गढ़ों पर विध्वंसक प्रहार करती है। वह न दारोगा से डरती है न कानून से न कर्म से न बिरादरी से। वह गाँव के चौधरी दल नोखेराम पटेश्वरी दातादीन और झिंगुरी सिंह की लोलुपता को धिक्कारती है। दातादीन के ब्राह्मण अभिजात्य के आगे उसे अपनी

मेहनत की कमाई का गर्व है । वह कहती है - भीख मांगे । वह जो भिखमंगी की जात हो, हम तो मज़दूर ठहरे कहीं काम करेंगे वहीं चार पैसे पायेंगे ।"

धनिया के माध्यम से प्रेमचन्द ने अपने व्यक्ति और वर्ग की सीमा का ही नहीं अपनी संयम सीमा का भी अतिक्रमण किया है । धनिया में नये युग का प्रखर बुद्धिवाद भी है । सामाजिक आर्थिक व राजनैतिक चेतना से युक्त आज की नारी की प्रखरता उस समय की अनपढ महिला धनिया में दिखायी देती है । रोज़मर्रा छोटे-मोटे लडाई-झगडे में भी पति-पत्नीमेंएक दूसरे से अगाध प्रेम है । अन्त में कसाई की तरह अपने पति की लाश रखकर गोदान केलिए खडे होनेवाले ब्राह्मण दाता-दीन के मुँह पर होरी की कमाई के बीस आने का लोटा मारने केलिए वह साहस दिखाती है । धनिया होरी के ठण्डे निष्प्राण हाथों से गोदान कराने केलिए जीवित है, मानो पूँजीवाद के विकराल दांतों में निस्पन्द होती जाती भारतीय मनुष्यता का गोदान वह करवा रही है ।"[23] प्रेमचन्द की आस्था धनिया में जीवित है और मानवीय संघर्ष और जीजीविषा धनिया में अमर है ।

यों प्रेमचन्द की स्त्रियाँ नैतिक संबन्धों के नये सिरे से विचार करने की मांग करती है । डॉ॰ सावित्री मठपाल के अनुसार "प्रेमचन्द युग में नारी की नैतिकतासंबन्ध में नये विचार आने लगें । सदियों से भारतीय समाज नारी की परवशता और दासता पर आधारित था । पुरुष के चरणों पर अपना सारा विवेक, ज्ञान, तर्क और जीवन अर्पित कर देने में ही उसका कल्याण माना जाता था ।"[24]

"निर्मला" की निर्मला ने अन्याय के खिलाफ मरणासन्न स्थिति में आवाज उठायी, प्रतिज्ञा की प्रेमा सामाजिक सुधार आन्दोलन का का नेतृत्व करती है । "गबन" की जालपा, कर्मभूमि की सुखदा, मुन्नी,

सलोनी, गोदान की धनिया, झुनिया, आदि ज़मीन्दार एवं पुलीस के अत्याचारों का विरोध करती हुई आन्दोलनों में सक्रीय भाग लेती हैं। भारत के स्वतंत्रता संग्राम के समय गाँधीजी ने महिलाओं को राजनीति में भाग लेने केलिए प्रेरित किया था। प्रेमचन्द ने इस नवीन राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर अपने उपन्यास में पुरुषों के साथ राजनीतिक कार्यों में काम करनेवाली महिलाओं का चित्रण भी किया है। उनके नारीपात्र इस प्रकार के सामाजिक व्यक्तित्व के अधिकारी हैं। 'गोदान' की मालती की एक अलग हैसियत है। वह पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त आधुनिक नारी है। विवाह के बारे में उसका अपना दृष्टिकोण है, इसलिए मेहता से वह कहती है मित्र बनकर जीना कहीं सुकर है। मालती के ज़रिये प्रेमचन्द ने आधुनिक युग की कामकाजी महिलाओं की समस्याओं पर प्रकाश डाला है।

इस प्रकार प्रेमचन्द ने भारतीय नारी से जुडी हुई विविध सामाजिक समस्याओं को गहरी सहानुभूति के साथ देखा और जाति व्यवस्था एवं सामाजिक रूढियों को चुनौती देते हुए सक्रिय एवं ज़िन्दा दिल औरतों का बेहद जीवंत चित्रण भी किया है।

जैनेन्द्र के उपन्यासों की नारी

प्रेमचन्द के बाद हिन्दी उपन्यास ने स्पष्टतः एक नया मोड लिया। उपन्यास मनुष्य की मानसिक प्रक्रियाओं और संभावनाओं के उद्घाटन की ओर उन्मुख हो गए। नारी चरित्रों के चित्रण में भी नीवाधार परिवर्तन आ गए। परिवर्तन लानेवालों में प्रमुख थे जैनेन्द्र कुमार। जैनेन्द्र जी ने युग चेतना से प्रभावित होकर स्वतंत्र व्यक्तित्व और अस्तित्ववाली सजग नारी की परिकल्पना की जो परम्परागत सामाजिक बेडियों को काटने केलिए अक्षम रही।

जैनेन्द्र की औपन्यासिक नारियाँ वैयक्तिक स्वतंत्रता की समर्थक हैं। सुनिता, कल्याणी, मृणाल, कट्टो, भुवनमोहिनी आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

वैवाहिक संबन्धों के चित्रण में प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकार काफी आगे बढ़े हैं। पहले विवाह को नारी-जीवन का चरम उद्देश्य मानकर प्रेम की समस्या का अन्त विवाह में किया जाता था। किन्तु, जैनेन्द्र युग में विवाह को केवल एक सामाजिक गठबंधन के रूप में देखा गया। कहीं कहीं उसके प्रति विद्रोही भावना दिखाई देती है। साथ ही वैवाहिक जीवन में प्रेम की समस्या भी पहली बार चर्चा का विषय बनी।"[25]

जैनेन्द्र ने नारी चरित्र के संदर्भ में मनोवैज्ञानिक धरातल पर नवीन नैतिक मान्यताओं की खोज की है। सतीत्व से अधिक उनके "नारीत्व" को महत्व दिया गया। उनके शब्दों में "सभी पात्रों को मैं ने अपने हृदय की सहानुभूति दी है। दुनिया में कौन है जो बुरा होना चाहता है और कौन है जो अच्छा ही अच्छा है?"[26] इसलिए ही जैनेन्द्र के उपन्यास की सभी स्त्रियाँ हमारे समक्ष एक विचारात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत करती हैं, चाहे वह दार्शनिकता से बोझिल क्यों न हो। जैनेन्द्र का, विवाहित नारी के प्रेम की ओर विशेष रूप से ध्यान रहा। नारी की पतिव्रता को आँकने का मापदंड उन्होंने बदल दिया।

जैनेन्द्र की नारियों की सबसे बड़ी खासियत है कि वे एक की पत्नी और दूसरे की प्रेयसी बनकर आती हैं। उनके नारी पात्र सतीत्व की भूमिका पर गढ़ी गयी है, पतिव्रता की भूमिका पर नहीं। ये सभी उपन्यासों में तीसरे पात्र के रूप में आती हैं। उनका दृष्टिकोण अधिक स्वच्छन्द तथा स्वतंत्र है। पतिपरायण होते हुए भी इनके मन में अज्ञात

के प्रति एक लालसा है । कट्टो, सुनिता, मृणाल, कल्याणी, सुखदा, मोहिनी आदि के चरित्र इसलिए पुरुषों से अधिक विकसित है । सुषमा धवन के अनुसार उनमें हृदय का संघर्ष है, इडा और श्रद्धा की परस्पर होड है । बुद्धि उनमें पति तथा समाज की ओर झुकाती है, हृदय उन्हें प्रेमी तथा व्यक्ति की ओर ले जाता है ।[27]

जिस तरह प्रेमचन्द के साहित्य की मूल भावना धन की दुश्मनी थी, उस तरह जैनेन्द्र के साहित्य की मूल प्रेरणा उन मान्यताओं का विरोध करना है, जो बुद्धि की प्रतीक हैं । उनकी कट्टो (परख) सुनीता (सुनीता) सुखदा, भुवनमोहिनी, अनीता, आदि पात्र वैवाहिक जीवन का निर्वाह करती हुई भी पर-पुरुष की ओर आकर्षित हैं । ये नारियाँ पत्नीत्व के आगे प्रेम की महत्ता पर विश्वास रखती हैं । जैनेन्द्र के युग में नारी स्वतंत्रता और परिवर्तित जीवन मूल्यों ने वैवाहिक आदर्शों का परिवर्तन किया था । इसलिए उनके उपन्यासों में यौन नैतिकता के नये आयाम देख सकते हैं । आगे हम जैनेन्द्र के क्रांतिकारी नारी-चरित्रों का थोडा विस्तार से विश्लेषण करेंगे ।

सुनीता

जैनेन्द्र की क्रान्तिकारी सुनीता ने क्रान्तिकारी हरिप्रसन्न के सामने विवस्त्रा खडी होकर उसे उदात्त जीवन या वासनामूल प्रेम में किसी एक को चुन लेने केलिए कहा था । सुनीता के पति श्रीकान्त का मित्र हरिप्रसन्न के घर में आने के मुख्य दो कारण हैं । सुनीता श्रीकान्त के नीरस दाम्पत्य में बाहरी संपर्क की वजह नए रस की सृष्टि कर सके । दूसरा, अपना घनिष्ठ मित्र होने के कारण श्रीकान्त चाहता था कि हरिप्रसन्न मिथ्या व अहंभाव को तोडकर स्वाभाविक जीवन बिताने की ओर प्रवृत्त हो । जैनेन्द्र की सुनिता पढी लिखी है और

बड़ी सतर्क भी है । वह अपने बारे में, अपने आस-पास के वातावरण के बारे में जागरूक है । परिस्थिति के अनुसार स्वयं को ढाल लेती है, उसके व्यक्तित्व में लचीलापन है । हरिप्रसन्न की उपस्थिति में वह पहले घबराती है, लेकिन बाद में निडर होकर उसकी सेवा करती है । पर जब वह देखती है कि स्त्री को लेकर हरि के मन में कुंठा है तो वह उसे राह पर लाने केलिए कटिबद्ध हो जाती है । वह हरी से पूछती है "स्त्री फिर किसलिए है कि पुरुष को अपने से निरपेक्ष रहने दे और महा-प्रकृति को बन्ध्या ? क्योंकि दुनिया को रेगिस्तान नहीं होना है इसलिए क्या पुरुषों के इस जगत में विधाता ने हम स्त्रियों को नहीं सिरजा है ? .... नहीं नहीं, हरिप्रसन्न को खुला छुटा ही छुटा, एक ही कैसे रहने दिया जाये ।"[28]

आगे वह नारी के शाश्वत कर्तव्य की व्याख्या करती हुई हरी से कहती है "जब तक वह (पुरुष) सामने भागता है, हम पीछे पीछे हैं । हम से पार होकर वह नहीं जा सकेगा, स्त्री यह न सहेगी कि पुरुष उसके मार्ग स्पष्ट करता जाय । पुरुष इस दायित्व से भागना चाहेगा तो पीछे स्त्री में गिरफ्तार होकर फिर उसे आगे आगे चलना होगा । पुरुषों के इस अधिकार के आगे स्त्री कृतज्ञ है, किन्तु स्त्री का भी यही अधिकार है कि पुरुष को पदच्युत न होने दो ।"[29]

पति के अखण्ड विश्वास और सतत प्रेरणा से वह हरिप्रसन्न के साथ अपने को संयम रखती हुई उन्मुक्त निर्भय व्यवहार करती है । श्रीकान्त सुनीता और हरी को अकेले छोड़कर लाहौर जाता है, और सुनिता पर मित्र की देख रेख का भार सौंपता है । पर-पुरुष के साथ घर में रहने की कल्पना से उसका जी काँप उठता है । और पति उस पर इतना गुरु भार सौंप रहे हैं, यह देखकर उसका मन भर उठता है,

वह पति प्रेम में अपने आप को डुबो देना चाहती है । वह अकेले रहकर अपने दाम्पत्य प्रेम की गाँठ को और अधिक दृढ़कर लेना चाहती है । वह दाम्पत्य प्रेम को इस पार्थिव सामिप्य से ऊँचा मानती है । श्रीकान्त के यह कहने पर भी कि मैं तुम्हारा हूँ, वह संतुष्ट नहीं होती, वह यह सुनना चाहती है कि पति कहे कि "तुम मेरी हो । डॉ० शान्ति भरद्वाज लिखती है, कि प्रेम व्यक्ति को निर्बल बनाता है, हरिप्रसन्न को इसी निर्बलता से झिझोड़कर उसे कर्तव्य पथ पर अग्रसर करनेवाली प्रेरक शक्ति का नाम है सुनीता ।"[30]

हरिप्रसन्न यह चाहता है कि वह क्रान्तिकारी दल की प्रेरणा दायिनी देवी बने । पारिवारिक सन्तोष के इस भँवर जाल से मुक्त होकर राष्ट्र के मोर्चे पर खड़ी हो, और सुनिता यह अनुभव करती है कि राष्ट्र को समर्पित यह व्यक्ति भी प्रेम की दुर्बलता से कम पीड़ित नहीं है । वह नहीं चाहती कि हरिप्रसन्न इतनी दयनीय मौत मरे । परंपराओं के विरुद्ध चलने में भारतीय नारी का मन बार बार पूछ उठता है "सोच देखिए, हरी बाबु कहेंगे तो चलूँगी, क्यों न चलूँगी ? .... लेकिन क्या यह ज़रूरी है ।"[31]

बाद में प्रेमी के उन्नयन केलिए वह समाज, परिवार, विवाह संस्था के बन्धनों, मान मर्यादाओं और यौन-वर्जनाओं की अवहेलना करती है । अपने प्रति हरिप्रसन्न की चरम आसक्ति के क्षणों में तो वह औरभी रहमदिल बनकर सामने आती है । आसक्ति के प्रति उसका समर्पण है । निरावृत सुनीता हरि से यही कहती है कि मैं तो हूँ तुम्हारे सामने, ले, क्यों नहीं लेते हो ? .... तुम्हें काहे की झिझक है, बोलो, मैं ने कभी मना किया है ? तुम मरे क्यों ? मैं तुम्हारे सामने हूँ । इन्कार कब करती हूँ ? लेकिन अपने को मारो मत । हरि बाबु मारो मत, कर्म करो,

मुझे चाहते हैं तो मुझे ले लो ।"[32] यों जीवन का ध्येय और वासना की तृप्ति हरिप्रसन्न के सामने दोनों मार्ग खुले थे । सुनीता की यह चुनौती भरा समर्पण इतना आकस्मात और इतना अनपेक्षित था कि हरि केलिए उस स्थिति को स्वीकार कर पाना संभव नहीं था ।

सुनीता का व्यक्तित्व इस प्रकार अन्तर्विरोधों से भरा हुआ है । उसमें पत्नीत्व और नारीत्व का सम्यक विकास तो है, लेकिन वह पत्नीत्व से ऊँचा नारीत्व को मानती है । संपूर्ण नारीत्व की उपलब्धी ही उसका एकमात्र लक्ष्य है । इसकी प्राप्ति केलिए वह किसी भी प्रकार की बाधा को नहीं मानती, चाहे वह मन की हो या तन की । बुद्धिशालिनी बनकर वह विवाह को संस्कार मानकर शरीर को पतिकेलिए और प्रेम प्रेमी केलिए बाँटती है ।

सुनीता प्रेमी हरिप्रसन्न को गिरने से रोक देती है, और उसे हठात् नैतिकता के नये स्तर पर ले आती है । "सुनीता में हमें पहली बार नारी के व्यक्तित्व का एक ऐसा तेजोमय रूप मिलते हैं, जो तन से विवश होने पर भी तनिक भी झिझकता नहीं, वरन अपनी शक्ति से हरिप्रसन्न को वासना विमुख करने में सफल होता है । सुनीता का समर्पण इसलिए सत्याग्रह और अहिंसा का रूप ले उठता है, जिसकी वजह हरिप्रसन्न अनिर्णय की स्थिति में भाग खडा होता है । सुनिता के आदर्शवादी चरित्र के ज़रिये जैनेन्द्र ने नारीकेनैतिक बल और आस्थामय व्यक्तित्व का जो चित्र उपस्थित किया है वह अद्भुत है । पति के सुख केलिए सर्वस्व त्यागने की शक्ति रखनेवाली सुनिता हरिप्रसन्न के चले जाने पर चिन्तित होती है, यह सोचकर कि उसका जाना श्रीकान्त को प्रिय नहीं लगेगा । पर श्रीकान्त आदर्श पति और प्रेमी की भाँति एक वाक्य से सुनिता की सारी चिन्ता दूर करती है - "वट अबर क्वीन क्यान डू नो रोंग ।"[33] डॉ॰राजारानी शर्मा ने

इस संदर्भ में लिखा है कि जैनेन्द्र ने नारी को लेकर एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समस्या को उठाया है। हमारे समाज में नारी की देह को पवित्र माना जाता है। यहाँ जैनेन्द्र जी ने दिखाया है कि निर्विकार ढंग से इस देह को भी होम किया जा सकता है। नारी देह में सिमटी पवित्रता की धारणा ने नारी को रूढ़ियों में बाँधा है। इस मानसिक विकार पर अप्रत्यक्ष रूप में चोट की गयी है। अश्लीलता का प्रश्न वैयक्तिक है कोई भी चीज़ अपने आप में अश्लील नहीं होती।"[34]

कल्याणी

"कल्याणी" में जैनेन्द्र ने आधुनिक कामगार नारी की समस्याओं को उजागरित किया है। कल्याणी के जीवन की सबसे बड़ी समस्या यह है कि पत्नीत्व एवं निजत्व को कैसे सामंजस्य में रखा जाय। उसका विचार है - मैं अकेली अपने को भारी नहीं थी, ... मेरा विवाह हुआ, विवाह से स्त्री पत्नी बनती है। पत्नी यानी गृहिणी ... पत्नी से पहले स्त्री कुछ नहीं होती, बस वह कन्या होती है। पर मैं कुछ थी। निरी कन्या न थी डाक्टरनी थी। अब सवाल है मेरी शादी और मेरी डाक्टरी, मेरा पत्नीत्व और निजत्व परस्पर कैसे निभें।"[35] उसका पति असरानी प्रत्यक्ष में आधुनिक है, पर पत्नी के प्रति उसका विचार रूढ़िग्रस्त है। वह पत्नी को धनोपार्जन का साधनमात्र मानता है। उसकी सामाजिक स्वीकृति नहीं होती। इसलिए कल्याणी एक ओर पाश्चात्य शिक्षा-संस्कृति और नारी स्वातंत्र्य और दूसरी ओर आर्थिक समस्याओं के बीच संघर्ष का अनुभव करती है।

"परख" की कट्टो बिहारी से शादी करती है, लेकिन सत्यधन से प्रेम भी करती है। वह निस्वार्थ प्रेमी की साकार प्रतिमा है। वह अपने प्रेम का कोई प्रतिदान नहीं चाहती है।

मृणाल

"त्याग पत्र" की मृणाल वस्तुत: एक प्रतीक है, नारी के सामाजिक उत्पीडन और उसकी आंतरिक सहनशक्ति की । मृणाल आत्मपीडा को झेलती रहनेवाली नायिका है । मृणाल का बेमेल पति से विवाह हो जाता है, उसे इस पर कोई दु:ख नहीं है । अपने पूर्व प्रेम की कहानी सुनाने के कारण पति उसे घर से निकाल देते हैं । मृणाल का स्वाभिमान जाग उठा और ऐसे पति के साथ रहना वह नहीं चाहती । उसका कहना है - मैं स्त्री धर्म को पति धर्म ही मानती हूं । उसका स्वतंत्र धर्म मैं नहीं मानती । क्या पतिव्रता को यह चाहिए कि पति उसे नहीं चाहता, तब भी वह अपना भार उस पर डाले रहे ? वह मुझे नहीं देखना चाहते, यह जानकर मैं ने उनकी आँखों के आगे से हट जाना स्वीकार कर लिया ।"[36]

पति गृह से निकालने के बाद वह कोयलेवाले के आश्रय में रहती है, और कोयला वाला एक सीमा के बाद धोखा देगा यह जानकर भी वह उसे समर्पण कर देती है । पूर्वप्रेमी भतीजा प्रमोद कोयले वाले के साथ उसकी बुआ को देखकर उसे मुक्त करना चाहता है , क्यों कि कोयलेवाले के साथ बुआ को देखकर उसका आभिजात्य आहत हुआ है । यह भाव मृणाल को चिढाता है । वह प्रमोद की सहायता ज़रूर लेना चाहती है, पर उसके मनोभाव को बदलकर । इसलिए वह प्रमोद से कहती है - "प्रमोद सहायता की मैं भूखी नहीं हूं क्या ? लेकिन सहायता का हाथ देकर क्या मुझे यहाँ से उठाकर ऊँचे वर्ग में बिठाने की इच्छा है ? तो भाई मुझे साफ कह दो । सहायता मुझे इसलिए चाहिए कि मेरा मन पक्का होते रहे कि कोई मुझे कुचले, तो भी मैं कुचली न जाऊं और इतनी जीवित रहूं कि उसके पाप के बोझ को ले लूं और

सब केलिए क्षमा की प्रार्थना करूँ। प्रतिष्ठा मुझे क्यों चाहिए ? मुझे तो जो मिलता है, उसी के भीतर सान्त्वना पाने की शक्ति चाहिए।"[37]

मृणाल में अपार शक्ति निहित है। इसलिए ज़िंदगी का सामना करने के लिए वह तैयार है। गर्भवती मृणाल कोयले वाले को वापस उसके परिवार में पहुँचाने पर उतारू है। उसका कहना है - "मैं उसे उसके परिवार में लौटाकर ही मानूँगी। अब समय आया है कि उसे इस बात की अक्ल आ जायेगी, अब उसका मोह टूट गया है।"[38]

मृणाल का अहं समाज की परिपाटियों को अस्वीकार कर उन्हें नयी परिभाषा देता है और इस क्रांति का मूल्य वह निज के बलिदान से चुकाता है। मृणाल सहज समाज की उच्छिष्ट बन गयी है।"[39]

सुखदा

जैनेन्द्र की सुखदा परिवार और राजनीति के बीच घडी के पेण्डुलम की भाँति घूमती रहती है और अन्त में टूट जाती है। सुखदा क्रान्तिकारी दल में सम्मिलित विद्रोहिणी नारी है, पर परंपरागत सामाजिक मूल्यों को तोडने में असमर्थ है। यह आधुनिक नारी की विडम्बना है, जो विवाह और प्रेम तथा घर और बाहर का समन्वय करना चाहती है और अन्त में वह धोबी के कुत्ते समान न घर की बनती है न घाट की। सुखदा के माध्यम से जैनेन्द्रजी ने मध्यवर्गीय नारी की समस्या का चित्रण किया है। सुखदा में एक ऐसी कुण्ठित स्त्री का चित्रण है जो एक ओर पत्नीत्व और प्रेयसीत्व की उलझन में फँसी है, तो दूसरी ओर असाधारण अहमन्यता के कारण अतृप्त रहने से हीन ग्रंथी की शिकार बन जाती है। वह संपन्न परिवार की शादी शुदा नारी

होने पर भी क्रान्तिकारी बन जाती है । वह सार्वजनिक जीवन में प्रवेश करती है, और क्रान्तिकारी हरीश से परिचय बढाती है । हरीश उसे समझाता है कि "नारी एक शक्ति है । देशोद्धार में उसको सह भागी बनना है ।

पति कांत उसे पूरी स्वतंत्रता देता है । उसका कहना है - जो तुम्हारी ज़िंदगी है, उसे पूरी तरह स्वीकार करो । मुझे इसमें खुशी होगी । "तुम को तुम न रहने देकर मैं क्या पाऊँगा"[40] ।
लेकिन वह अपने क्लर्क पति से अलग स्वाधीन चली जाती है । पति से स्वतंत्र होने की इच्छा से अपनी स्वतंत्रता बुनने लगी थी । सुखदा को स्वामी की बातचीत में इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं दीखता था कि वह मुझे अधीन रखना चाहते हैं । मैं समझने लगी थी कि पत्नी पति की इच्छा के नीचे झुकती आयी है और यह भूल है । पत्नी पति के अधीन चले तो पति क्यों न इस प्रकार का दावा रखने का शादी हो जाये ।"[41]

सुखदा जैनेन्द्र के अन्य नारी चरित्र से भिन्न है । उसका विचार है "अपनी परिस्थिति और अपनी नियती की सब मर्यादाओं और बाधाओं को तोड़कर उपर चलना होगा, ऊपर, उपर । कुछ मुझे रोक न सकेगा । ऐसा मालूम होने लगा, जैसे जो है, सब तुच्छ है, शून्य है, मेरी उद्देश्यता के आगे सब विवश हो गया है । उस समय मेरे स्वामी, जड़ित और चकित मुझे अपदार्थ लग आये ।"[42]

सुखदा ने बाहरी जगत के प्रवेश के कारण घर की चारदीवारी लाँघ ली है । कांत हट गया और बाहर का प्रतीक लाल उसके मन में समा गया । लाल सुखदा से कहता है - जानते हैं कि स्त्री, स्त्री है और पुरुष, पुरुष है, बाकी ऊपरी है । लाल से उसका परिचय बढा तो उसे लगता है कि लाल में ऐसा कुछ है, जो कांत में नहीं है - अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व । लाल के इस व्यक्तित्व को केन्द्र बनाकर ही तो

सुखदा ने आत्म विकास की बाजी खेली । लाल सुखदा को लिखता है, "अब पारिवारिक नहीं सामाजिक संस्कृति चाहिए । परिवार स्थापित स्वार्थ बनता है और सार्वजनिकता में गाँठ पैदा करता है । हमारी संस्कृति ने हमें परिवार में जकड़ दिया है इससे हम पिछड़ रहे हैं । छोटे छोटे स्वार्थों के भँवर में चकराते रहे जाते हैं बढ़ नहीं पाते । बिखरे बने रहे हैं, राष्ट्र में एक होकर सहज इकट्ठे नहीं हो पाते । मूल में है इसके हमारा विवाह, जो प्यार को बाँधता है, खोलता नहीं । प्यार ही एक ताकत है, वह बँधा कि सब गया ।"[43]

सुखदा अपने प्रेमी लाल को समस्त विपत्तियों से सुरक्षित रखना चाहती है, यहाँ तक कि लाल का क्रांतिकारी दल उसे दण्डित करना चाहता है, तब वह अपने नारीत्व को समर्पित करके भी उसे बचाना चाहती है । डॉ॰ सुरेश सिन्हा के अनुसार जैनेन्द्र की नायिकाएं कर्तव्य से पति के साथ जुड़ी हुई है, प्रेम से अपने प्रेमियों के प्रति समर्पिता हैं । उनके प्रेम और कर्तव्य में यह संघर्ष चलता रहता है, जिसे अचेतन में उनके विवेक बुद्धि का भी संघर्ष कहा जा सकता है ।"[44]

<u>अनिता</u>

"व्यतीत" की अनिता के सहज स्नेह की झलक पाकर जयन्त का मन पुलकित हो उठता है । लेकिन अनिता का ब्याह दूसरी ओर हो जाता है । अनिता निडर भाव से पति से सब बताकर अपने प्रेमी केलिए अच्छी नौकरी की व्यवस्था करा देती है । प्रेमी जयन्त तो इनकार करती है । बाद में लाख कोशिश करके अनिता जयंत के जीवन को व्यवस्थापित करना चाहती है । अनिता के कहे अनुसार जयंत की शादी चन्द्रा से होती है, लेकिन वह उसे भी छोड़ता है । फौज से घायल लौटे जयंत के सामने अनिता अत्यन्त शान्त एवं संयम भाव से

उसकी इच्छा के आगे पूर्णतः समर्पित होने को तैयार हो जाती है। साथ ही वह उसे इस बात का बोध कराती है कि वह हमेशा सिर्फ अपनेलिए ही जीता आया है। जबकि मनुष्य को अपने अतिरिक्त दूसरों केलिए भी जीना होता है। अनिता से जीवन का सन्देश पाकर जयन्त विरक्त होकर सन्यास ले लेता है।

उदिता

"अनामस्वामी" की नायिका उदिता इलाहाबाद विश्व-विद्यालय की छात्रा है। उदिता के शिक्षक शंकर उपाध्याय का प्रभाव केवल उस पर ही नहीं समस्त युवा वर्ग पर है। उदिता उससे प्रभावित होकर विद्रोही विचारधारा को अपनाकर स्वयं अपने जीवन को बनाने का निर्णय लेती है। शंकर उपाध्याय से सहायता स्वीकार कर उदिता विदेश चली जाती है। उधर वह एक के बाद एक करके यौन तृप्ति का अनुभव करती है। वह यौन जीवन की पवित्रता को महत्वहीन मानकर एक ही समय दो दो पतियों की पत्नी भी बनती है। प्रेम हुआ टूटा, फिर हुआ टूटा। तीसरे प्रेम के बाद विवाह स्वीकृत हो गया। इस प्रकार किसी रोक टोक के बिना स्वच्छन्द मस्त जीवन बिताने का वह आदी हो गयी। भारत लौटने से वह इनकार कर देती है।

भुवन मोहिनी

"विवर्त" की भुवनमोहिनी शादी के पहले ही गरीब युवक जितेन्द्र से प्रेम करती है। भुवन मोहिनी शादी केलिए तैयार होने पर भी प्रेमी जितेन्द्र तैयार नहीं है क्योंकि भुवन अमीर है। भुवनमोहिनी ने बाद में बारिस्टर नरेशचन्द्र से विवाह कर लिया और उसका दांपत्य जीवन सुखी रहा।

कई वर्षों के अंतराल के बाद आतंकवादी जितेन्द्र घायल होकर भुवनमोहिनी के बंगले में शरण लेता है। मोहिनी अपने पूर्व प्रेमी को पुलिस से छिपाती है। उसकी सेवा करती है। मोहिनी के पति सब कुछ देखता हुआ भी अनजान रहा। नरेश का अजब स्वभाव है। मोहिनी को पहले दिन से ही उन्होंने स्वीकार किया है। कभी कुछ पूछा-ताछा नहीं, बाईस वर्ष की युवती के पास अपना इतिहास भी हो सकता है। अत: वर्तमान के पीछे काफी कुछ अतीत भी हो सकता है। बल्कि नरेश का मत है कि होना चाहिए। पर उस सब में विवाह के कारण पति नाम के व्यक्ति केलिए भी उलझन और उत्सुकता हो चले, यह अनिवार्य नहीं मानते।"[45]

पति का यह उदार व्यक्तित्व ही उनके परिवार को अटूट रखता है। जितेन्द्र के प्रवेश के बाद भी वे पहले जैसे ही निस्पृह हैं। यह निस्पृहता जितेंद्र केलिए चुनौती हो जाती है। नरेश मोहिनी की सुमरगता वह सहता नहीं इसलिए वह अमीरों का विरोध प्रकट करने केलिए मोहिनी का अपहरण करके उसके पति से पचीस हज़ार रुपयों की माँग करता है। अंतत: रुपये न मिलने के कारण जितेंद्र मोहिनी को छोड देता है, और स्वयं पुलिस के समक्ष आत्म समर्पण कर देता है। मोहिनी घर लौट आयी है। नरेश उससे कुछ पूछे बिना स्वीकार करता है।

जैनेन्द्र की विवाह और परिवार संबन्धी दृष्टि का केन्द्र बिन्दु है, नारी के प्रति उनकी आदर्शवादी मान्यता। वे समाज और परिवार पर पुरुष के प्रभुत्व के अंकुश में गढ़ी गयी उन सामाजिक मान्यताओं को सर्वथा अस्वीकार करते हैं जिनमें नारी को पुरुष से हीन और हेय प्राणी मानकर मात्र ताड़ना का अधिकारी कहा गया है।

जैनेन्द्र नारी को समाज का निष्क्रिय और अपेक्षणीय अंग नहीं मानते, वे उसे जीवन, परिवार समाज यहाँ तक कि संसार के निर्माण या विनाश में सक्रिय शक्ति मानते हैं । जैनेन्द्र के शब्दों में कहें तो "पुरुष कुछ नहीं बनता, बिगाड़ता, जो कुछ बनाती और बिगाड़ती है, स्त्री । स्त्री ही व्यक्ति को बनाती है, घर को कुटुम्ब को बनाती है, जाति और देश को भी । फिर इन्हें बिगाड़ती भी वही है । धर्म स्त्री पर टिका है, सभ्यता स्त्री पर निर्भर है और फैशन की जड़ भी वही है । एक शब्द में कहो - दुनिया स्त्री पर टिकी है ।"[46] डॉ॰ गणेशन के अनुसार तो, जैनेन्द्र के उपन्यासों में एक ही समस्या है नारी का सतीत्व तथा तत्संबन्धी मान्यताएं । उन्होंने जिस नारी का चित्रण किया है, वह भव्य है, पुरुष से अधिक मानसिक बल रखनेवाली है, प्रेम तथा अन्य सद्भावनाओं की अधिष्ठात्री है, आत्म शक्ति में अग्रगण्य है और यह सब होने के कारण बहुत कुछ अलौकिक और अस्वाभाविक भी है ।"[47]

जैनेन्द्र के पास विवाह संस्था और नारी के स्वतंत्र व्यक्तित्व की प्राचीन अनिवार्यता से जन्मे अंतर्द्वन्द्व का एक ही उत्तर है - उदार दृष्टिकोण, पति-पत्नी के बीच देह के संबन्ध भी परे जा सकने में समर्थ समरसता, तादात्म्य एक आत्मिक बंधन । यही कारण है कि जैनेन्द्र की नारी बाहर की चुनौती स्वीकार कर घर की चारदीवारी को लाँघती अवश्य है, पर जहाँ कहीं भी वे जाती है, "घर" उसके साथ जाता है ।

प्रेमचन्द की तरह जैनेन्द्र को आदर्शों की चिन्ता नहीं, अन्तर्मन की यथार्थता की ओर ही वे आकृष्ट हैं । बाहर से ओढी मर्यादाओं की अपेक्षा यथार्थता पर ही वे बल देते हैं । बाहरी मर्यादाओं की अपेक्षा भीतरी ईमानदारी को महत्व देनेवाले व्यक्तित्व ही जैनेन्द्र के उपन्यासों का केन्द्र बिन्दु है । इसमें स्त्री पुरुष का भेद-भाव बिलकुल नहीं है । उनके पात्र समाज की रूढिवादिता के विरुद्ध

विद्रोह प्रकट करते हैं। उनका अहं इतना सबल है कि वे समाज के बन्धनों में बंधकर अपनी स्वतंत्र सत्ता होम करना नहीं चाहते । जैनेन्द्र ने नारी स्वातंत्र्य को वरीयता दी थी और परिवर्तित जीवन मूल्यों के मुताबिक वैवाहिक आदर्शों में भी युगानुकूल तबदीली की थी । फलत: वे यौवन नैतिकता से जुड़े नये मूल्य स्थापित करने में भी सक्षम हो गए । जैनेन्द्र नारी के उस रूप को मान्यता नहीं देते जो हमारी सांस्कृतिक परंपरा को मान्य है । अनन्य सहिष्णुता से समस्त सामाजिक बन्धनों और अत्याचारों को सहती हुई निर्बल किन्तु ममतामयी नारी जैनेन्द्र केलिए अज्ञात है । .... पर पाश्चात्य सभ्यता की उस जागृत नारी को भी वे मान्यता नहीं देते जो पुरुष तथा समाज के बन्धनों को खोलकर बल्कि तोड़कर अपनी स्वतंत्रता की घोषणा करती है । अत: स्त्री का वह रूप भी जैनेन्द्र केलिए वर्ज्य है ।"[48]

जैनेन्द्र ने यद्यपि नारी जीवन के झुलसते संदर्भों को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास किया है, किन्तु स्वयं परम्परित संस्कारों से मुक्त न रह सकने के कारण वे नारी के पुरातन आदर्शों का तिरस्कार नहीं कर पाए हैं । उनकी औपन्यासिक नायिकाएं वस्तुत: समस्या व आदर्शों के बीच झुलती सी प्रतीत होती हैं । डॉ.सावित्री सहपाल के अनुसार जैनेन्द्र ने नारी जीवन को विशाल फलक पर नहीं देखा, नारी जीवन के नये मूल्य, नारी की आर्थिक परतंत्रता, नारी जाति का आधुनिक परिप्रेक्ष्य एवं जीवन दृष्टि आदि के प्रति जैनेन्द्र जी मौन ही रहे हैं ।"[49] नारी स्वातंत्र्य विषयक मूल्य-संक्रमण में जैनेन्द्र ने नारी का अहंवादी रूप चित्रित करते हुए यौनिक स्वच्छन्दता के स्तर पर उसे अहंवादी सिद्ध किया है । परिणाम स्वरूप उनके सभी औपन्यासिक नारी पात्र कट्टो, सुनीता, मृणाल, कल्याणी, अनिता, सुखदा, भुवनमोहिनी आदि नारीगत परम्परित मूल्यों की अवहेलना करते हैं और नवीन मूल्यों के चक्कर में घूमते प्रतीत होते हैं ।

उपर्युक्त अध्ययन से यह स्पष्ट है कि प्रेमचन्दीय नारीभावना से यद्यपि जैनेन्द्रजी दो कदम आगे हैं, लेकिन यह कदम ठोस एवं गहरा नहीं है। लेकिन जैनेन्द्र ने पहली बार हिन्दी उपन्यास को दृढ़ व्यक्तित्व से संपन्न और सामाजिक निषेधों से टकराने को उद्यत सशक्त नारी पात्र दिये। आधुनिक जीवन के घात-संघात के भंवर में फंसकर पारिवारिक घर-परिवार की लक्ष्मण रेखा को लांघने को विवश आज की नारी को नयी पतवार देना शायद जैनेन्द्र की वश की बात नहीं।"[50]

अज्ञेय के उपन्यासों की नारी

अज्ञेय के "शेखर एक जीवनी" और "नदी के द्वीप" में नारी चेतना का नया आयाम दृष्टिगत होता है। 'शेखर एक जीवनी' की शशि का अपूर्व एवं अनुपम व्यक्तित्व है।

शेखर के जीवन में इन्द्रधनुष के समान शशि आ जाती है, विवाहिता होने पर भी शशि उसे सब कुछ देती है। शशि के चरित्र में अज्ञेय ने प्रेम की तन्मयता और निष्काम समर्पण का अपूर्व उदाहरण प्रस्तुत किया है। लौकिक बन्धनों और वर्जनाओं को अपने उत्कट प्रेम प्रवाह में बहाती हुई शशि अपने प्रिय केलिए अपने जीवन को आहुति बना डालती है। बचपन से शशि के मन में अपने मौसेरे भाई शेखर के प्रति अनुराग उत्पन्न हो जाता है। शेखर की विलक्षण प्रतिभा और अदम्य व्यक्तित्व के प्रति उसकी श्रद्धा निरन्तर बढ़ती जाती है।

यद्यपि शेखर शशि का प्रेम पाने केलिए कोई प्रयत्न नहीं करता, तथापि शशि प्रारंभ से ही शेखर को अपना मानती है, और वय के साथ उसके इस एकान्त प्रेम का भी सहज विकास होता रहता है।

यह प्रेम शशि के व्यक्तित्व को तो तेजस्विता देता ही है, शेखर के जीवन में भी आमूल परिवर्तन ला देता है। विद्रोही, अशान्त, हठी शेखर शशि के सान्निध्य में अनोखी शान्ति का अनुभव करता है।

शशि पूर्णतः शेखर के व्यक्तित्व पर हावी है। शशि के अभाव में शेखर का अस्तित्व ही नहीं है। शेखर ने खुद कहा भी है। इसलिए कि मेरा {शेखर} होना अनिवार्य रूप से तुम्हारे {शशि} होने को लेकर है। शशि ने अपनी इच्छा के विरुद्ध विवाह किया, पति का दुर्व्यवहार सहा, और विवशता की सीमाएं तोड़कर आगे बढ़ी। वह शेखर को बचाने बढ़ाने में स्वयं मिट जाती है, पर इस आत्मोत्सर्ग में ही अपने नारी तत्व की सिद्धि का समाधान पाती है। शशि अन्य किसी भी व्यक्ति के साथ चाहे किसी रिश्ते में बंधी हो, शेखर के प्रति वह पूर्णतः समर्पिता है। वह शेखर से कहती है "शेखर मुझे बहिन, माँ, भाई, बेटा, कुछ मत समझो क्योंकि मैं अब कुछ नहीं हूं। एक छाया हूं - और अमूर्त होकर मैं - तुम्हारा अपना आप हूं, जिसे तुम ना ही दोगी।"[51]

शशि आदर्श गृहणी के अपने सारे प्रयत्नों के बावजूद भी असफल रही थी। परम्परागत जड़ सामाजिक संकुचितता के कारण शशि का पति रामेश्वर अपनी पत्नी के मुंह से शेखर संबन्धी बातें सुनकर ईर्ष्या से जल उठा था। परिस्थितियों से परेशान शेखर जब आत्महत्या करना चाहता था, तब शशि ने उसे बचा लिया था। उसकी इस मानसिक अस्वस्थ-स्थिति में इस अपरिचित नगर में शशि ही उसकी एक-मात्र साथी थी। ऐसी नाजुक स्थिति में शशि अपने भाई शेखर के घर पर रात भर रह गई, इससे ही रामेश्वरनेउसे चरित्र भ्रष्टा और पाप चारिणी कहकर घर से निकाल दिया था। फिर वह वापस शेखर के

पास आकर कहती है - "शेखर मैं पति द्वारा परित्यक्ता हूँ, मुझे कहीं स्थान नहीं है।"[52] जीवन की तुला पर प्रेम की उपयोगिता को तौलते हुए शशि एक स्थान पर कहती है "किसी उपन्यास में पढा था कि प्यार एक कला है, और स्वर्ग का दूसरा नाम है। और इसकी व्याख्या की गई कि एक व्यक्ति को इतना प्यार नहीं करना चाहिए कि जीवन में किसी दूसरे उद्देश्य की गुंजाइश न रह जाय कि जीवन एक स्वतंत्र इकाई है और यदि वह बिल्कुल पराधीन हो जाय तो कला नहीं[53]।

शेखर को बनाने में शशि अपने आपको मिटा देती है। शेखर के प्रति प्रेम के सामने दाम्पत्य जीवन भी उसे मूल्यहीन हो जान पड़ता है। शशि न माँ के साथ वापस जाना चाहती है, न अपने पति के घर।

शशि और शेखर दोनों ने इतना प्यार किया, लेकिन मात्र भावना का ही ताजमहल बनाया। शशि ने शेखर को पत्र में यही लिखा हम वर्षों से एक भवन बनाते रहे हैं, तुम और मैं जिसमें न तुम रहोगे, न मैं, किन्तु हम उसमें नहीं रहेंगे, इसी मात्र से वह कम सुन्दर नहीं रहेगा।"[54] और यही हुआ शशि की कविताओं का सार वही तो था - "अई वान्ट टू डाइ व्हेन यू लव मी"। और शेखर के प्यार का अहसास करती हुई शशि मर जाती है। डॉ॰ सुषमा धवन ने लिखा है "शशि में अनुराग तथा प्रेम का अद्भुत सम्मिश्रण है। इसलिए शेखर उसी के प्रति सर्वाधिक आभारी है। शशि मरकर भी शेखर की चिरन्तन प्रेरणा बनी रहती है। शशि की मृत्यु को व्यर्थ नहीं माना जा सकता। उसकी मृत्यु में स्नेह की विजय है, जीवन की गरिमा है[55]।

यह शशि के अनन्य और प्रबल प्रेम का ही प्रभाव है कि वह शेखर जैसे आत्म-रत व्यक्ति के मन पर भी व्याप्त हो जाता है।

शशि नारी मुक्ति पर सोचती है, भाषण देती है, अपमानित होती है। शेखर के साथ षड्यंत्रकारियों के दल केलिए काम भी करती है। शेखर उससे एक बार कहता भी है कि तुम्हारा ज्ञान मुझसे अधिक है, मुझसे गहरी चेतना है, संवेदना है, और तुम सबको मिटा रही हो मेरेलिए। जिस पर वह कहती है "स्त्री हमेशा से अपने को मिटाती आयी है।"

जैसे सूचित किया गया, जब शेखर आत्महत्या करने का असफल प्रयास कर घर लौटता है तो सामाजिक आचरण का विचार न करके शशि शेखर के पास रात भर केलिए रह जाती है। क्योंकि इस मानसिक अवस्था में वह उसे अकेला छोडना नहीं चाहती है। बाद में पति द्वारा दी गयी समस्त लाछनाओं को शशि के अन्दर की भारतीय नारी चुप-चाप सह लेती है। वह अकारण अत्याचार सहती है और जीवन की वेदना केलिए किसी को दोषी नहीं ठहराती है। वह शेखर केलिए भाई, बहिन, माँ, बेटी सब कुछ हो जाती है और उसे फिर एक बार शेखर बनाने केलिए सहर्ष टूट जाती है। मानसिक रूप में पति से जुड न पाती, इसलिए शशि विवश होकर उसे छोडकर शेखर के पास आ जाती है। अपने प्रेमी के साथ रहने में उसे समाज का भय नहीं है। यों परंपरागत वैवाहिक जीवन को तोडकर अपने प्रेम द्वारा जीवन का समर्थक बनाती है। "सचमुच शशि का चरित्र नारी की आन्तरिक मुक्ति का प्रयास है जो मानसिक यातना के बीच से संपन्न हुआ है।"[56]

दरअसल शशि अज्ञेय की सही पहचान है। उसमें विवेक तथा प्रेम का अद्भुत सम्मिश्रण है। वह मरकर भी शेखर की चिरंतन प्रेरणा बनी रहती है। अतः उसकी मृत्यु यथार्थ नहीं मानी जा सकती। उसकी मृत्यु में स्नेह की विजय है, जीवन की गरिमा है।"[57]

प्रेमचन्द और जैनेन्द्र के नारी पात्रों से भिन्न है अज्ञेय की शशि। वह न निर्मला के समान जीवन भर अन्याय सहती है और न जैनेन्द्र की सुनीता के समान निडर निर्भीक भाव दिखाती है। शशि अपने प्यार केलिए खुद मिट जाती है। शादी-शुदा होकर भी वह प्रेमी शेखर को बचाने और बनाने का प्रयत्न करती है। रात भी प्रेमी को सहारा देने के बाद पति के पास जाती है, जो एक पतिव्रता भारतीय नारी केलिए निषिद्ध है। पति द्वारा प्रताड़ित शशि वापस घर नहीं जाती। वह प्रेमी शेखर के साथ रहती है और शेखर को भार सी लगने लगी तो वापस पति के साथ नारकीय यंत्रणा सहने की साहस दिखाती है। सब सहने के बाद भी वह शेखर के प्रति उदार है। अज्ञेय की शशि जागृत नारी की प्रतीक है, जो परंपरा, रूढी, समाज आदि की कर्क-रेखा को लांघकर अपने प्रेमी केलिए मिट जाती है।

रेखा

"नदी के द्वीप" में रेखा का चित्रणकिसी की बहिन, बेटी या पत्नी के रूप में नहीं बल्कि स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में हुआ है। पति के समलैंगिक प्रेमी के प्रणावस्था में तंग आकर वह उससे अलग होकर जीती है। वह चाहती है कि दूसरों के लिए बोझ बने बिना नौकरी करके अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व बरकरार रखे।

व्यक्ति को दबाने वाले सामाजिक दृष्टिकोण को रेखा कभी नहीं मानती। इसलिए वह भुवन से कहती है - "भुवन तुम समाज की दृष्टि से देखो हो, वह दृष्टि गलत नहीं है। अप्रसंगिक भी नहीं है, निर्णायक भी वह नहीं है। व्यक्ति को दबाकर इस मामले का जो भी निर्णय होगा गलत होगा घृण्य होगा, असह्य होगा।"[58]

रेखा का दूसरों के साथ संबन्ध पुरुष सापेक्ष या स्त्री सापेक्ष नहीं है । दोस्ती के मामले में पुरुष या नारी इस बात पर कोई भेद भाव वह देखती नहीं है । वह पुरुषों तथा स्त्रियों के साथ स्वस्थ सूने संबन्ध जोड़ती है - चाहे वह चन्द्रप्रकाश हो या भुवन या गौरा हो । उसे संगीत, कला तथा काफी हाउस जाने का शौक है । कॉफी हाउस में समान स्तर के स्त्री-पुरुषों का ही मिलन होता है । एक प्रकार वह ऐसे लोगों का मिलन स्थल है जहाँ व्यक्तिगत सुख दुख का लेन देन हो जाता है, और किंचित निश्चिंत होकर पुन: शक्ति आर्जित करते हैं ताकि जीवन-संघर्ष सहनीय बन सके ।

"रेखा ने पति के रूप में नियति द्वारा दिया जहर जवानी में ही पी लिया । फिर भी वह टूटी नहीं । हमेशा वह दूसरों से बचकर चलने केलिए सतर्क है ताकि अपनी मानसिकता के दंश का आघात दूसरों को न लगे । वह अपने बारे में भुवन से कहती है - "मैं सोचती हूं और अवाक् रह जाती हूं, मेरे साथ यह कैसे घटित हुआ - मेरे जिस्मीसब वासना, सब आकांक्षा मर गयी थी जो स्त्री होना भी नहीं चाहती थी, माँ होना तो दूर ।" जीवन की इस अवस्था में वह अपने आराधकों के बीच भी एकान्त द्वीप पर अपने में लीन रहती है ।

अंतर्मुखी भुवन के सामने उसकी सुप्त पड़ी आकांक्षाएं एक और बार जागरित होती हैं । यह आकर्षण पूर्ण समर्पण तक पहुंचा है । जीवन में पहली बार रेखा "फुलफिल्ड" होती है । इसलिए वह भुवन के प्रति कृतज्ञ है । वह कहती है - भुवन जाने से पहले मैं एक बात कहना चाहती हूं "ऐ आम फुलफिल्ड" । अब अगर मैं मर जाऊँ तो परमात्मा के प्रति यह आक्रोश लेकर नहीं जाऊँगी कि मैं ने फुलफिलमेंट नहीं जाना । कृतज्ञ भाव लेकर जाऊँगी परमात्मा के प्रति और भुवन तुम्हारे प्रति ।"

फुलफिलमेंट की कल्पना अपने आप में आधुनिक है । रेखा अन्य स्त्रियों से भिन्न है । इसलिए वह केवल देना चाहती है लेने में संकोच करती है । वह बाद में भुवन से कहती है "अब जाने से पहले ही हट जाऊँगी । अपने वैयक्तिक लाभ केलिए दूसरों को नुकसान पहुचाना वह नहीं चाहती । जिन्दगी के हर मोड पर हर निमिष वह व्यक्ति के अस्तित्व की रक्षा चाहती है, इसलिए भुवन से कहती है आत्म-शैथिल्य ही पराजय है, हम दोनों को बराबर सतर्क सजग रहना है - क्योंकि हम दोनों ऐसे आत्मनिर्भर स्वत: पूर्ण हैं कि सहज ही बहकर मिटकर अलग हो सकते हैं - अपनी अपनी सीपियों में बन्द अन्तरंग अनुभूति के छोटे छोटे द्वीप और इस प्रकार बरसों जीते रह सकते हैं मौन शान्त, लेकिन एकाकी ।"[59]

संयम रेखा का प्राकृत स्वभाव है । जिस पुरुष को उसने पहली बार पुरुष के रूप में जाना था, जिसके निमित्त से ईश्वर के प्रति कृतज्ञ भाव जगा था, उसको छोड़कर चले जाना संयम और दृढ संकल्प की पराकाष्ठा है । उसकी दृष्टि में आत्मोपलब्धि के अभाव में जीवन अधूरा, बेमानी और तुच्छ है । इस जीवन मूल्य की खोज में लम्बे अरसे तक भटकती, बहती, अन्त में एक द्वीप में टिककर सब कुछ सदा केलिए भोगना वह नहीं चाहती । अपने व्यक्तित्व और स्वतंत्रता को बनाये रखने केलिए वह भुवन से कहती है - "नहीं तुम चले जाना भुवन, मुझे अकेली छोड़कर चले जाना । जीवन के सारे महत्वपूर्ण निर्णय व्यक्ति अकेले में करता है, सारे दर्द अकेले में भोगता है - और तो प्यार के चरम आत्म समर्पण का सबसे बडा दर्द भी ... मिलने में जो विरह का परम रस होता है - तुम जानते हो उसे ? समर्पण के धधकते क्षण में जब ज्ञान चीत्कार कर उठता है कि हम अलग ही है, देना संपूर्ण नहीं हुआ, कि मिटने में भी मैं मैं हूँ, तू तू है, मैं तू नहीं हूँ और हमारी माँग बाकी है .... इतना अभिन्न मिलन क्या हो सकता है कि

मांग बाकी न रहे सारी सृष्टि में रमा हुआ ईश्वर भी तो अकेला है, अपनी सर्वव्याप्ति में अकेला ।"[60]

रेखा अनुभव और जीवन में मिली हुई वेदना के बल पर अधिक शक्तिशाली बनी है । उसके इस रूप को देखकर भुवन गौरा को लिखता है "एक स्वाधीन व्यक्ति जिसका व्यक्तित्व प्रतिभा के सहज तेज़ से नहीं दु:ख की आँच से निखरा है । दु:ख तोड़ता भी है जब नहीं तोड़ता या तोड सकता तब व्यक्ति को मुक्त करता है ।" भुवन के प्रति गौरा की भावना जानकर भी उसमें स्त्री-सुलभ ईर्ष्या पैदा नहीं होती है। रेखा सहज भाव से गौरा से मिलती है और आश्वासन देती है कि भुवन का अहित वह नहीं करेगी । बाद में प्राण संकट में डालकर भी वह अपने वचन का पालन करती है । अपने गर्भवती होने की खबर वह भुवन को देती है । वह किसी भी प्रकार से डरती नहीं थी और अपनी सन्तान को जन्म देने की आकांक्षा उसके मातृ हृदय में उपजी थी । परन्तु भुवननेयह जानकर उसे विवाह करना चाहा तो उसे इन्कार कर रेखा कहती है - "मैं ने तुमसे प्यार मांगा था, तुम्हारा भविष्य नहीं मांगा था, न मैं वह लूंगी ।"

रेखा अपने प्रेम के पहले श्रेष्टतम उपहार को नष्ट करने का कटु निश्चय करती है । उसके निर्णय के पीछे कारणों की श्रृंखला है - विवाह में असुन्दर अनुभव, गौरा को दिया हुआ वचन, भुवन का अपनी भावना का प्रकट न करना दूसरे पर बोझ न बनने की इच्छा, भुवन का भविष्य आदि । इसलिए वह भुवन की अनुपस्थिति में गर्भपात केलिए दवा खाती है और अपने को असहाय वेदना में डाल देती है - वह भुवन से कहती भी है - "नहीं सहा जाता भुवन । इसलिए नहीं कि कष्ट बहुत है, इसलिए कि ऐसी लडाई लडते लडते थक गयी हूं जो व्यर्थ है और जो अनिवार्यत: व्यर्थता में ही समाप्त हो सकती है । .... मान लो कि

मैं दस वर्ष बाद मरती हूं - क्या उससे अच्छा नहीं कि अभी मर जाऊं ? क्या उससे अच्छा नहीं कि अभी मर जाऊं ? दस वर्ष बाद हम उदासीन अलग हो जायें - उससे हजार गुना अच्छा है आज मर जाना ।"[61] वास्तव में उसके व्यक्तित्व की टूटन भी उसके गुणों के कारण हुई है । डॉ० हेमन्तकुमार पनेरी के अनुसार "नदी के द्वीप" की रेखा समाज के अमानवीय नीति विधान के विरुद्ध शांत विद्रोह करती है। समाज की जंजीर और खोखली मान्यताओं के प्रति रेखा का प्रणय व्यापार एक चुनौती बनकर प्रस्तुत हुआ है । पर इस विद्रोह में परम्परागत मूल्य बाधक बनकर उपस्थित होते हैं । समाज से भयभीत होकर रेखा गर्भपात कराती है ।"[62]

रेखा जैसी आत्मनिर्भर स्त्री कहीं पैर टिकाने केलिए नौकरी करना चाहती है, विवाह भी एक समझौते के रूप में करती है । वह भुवन को लिखती है कि "मुझे कहीं टिक जाना होगा, स्थिर हो जाना होगा, मान लेना होगा कि पड़ाव आ गया - इसलिए नहीं कि मेरी आकांक्षा की दौड वहीं तक थी, इसलिए कि मेरी शक्ति की दौड आगे नहीं है ... ।" रेखा जैसी नारी की व्यथा का संबन्ध भौतिक असुविधा या स्थितियों से नहीं है । इस समस्त शोककथा का धरातल सूक्ष्म मानसिकता है, इसलिए डॉ० रमेशचन्द्र यद्यपि उसे आर्थिक सुविधा और मानवीय सहानुभूति देते हैं, तो भी उसकी ट्रेजेडी कम गहरी या कम महत्वपूर्ण नहीं होती । रेखा ने भारतीय नारी के आदर्श अर्धांगिनी रूप को व्यर्थ सिद्ध कर दिया है । हेमेन्द्र की पत्नी होते हुए भी वह भुवन से प्रेम करती है और डॉ० रमेशचन्द्र से पुनर्विवाह करती है । वह भुवन को लिखती है - यह क्या है भुवन ? बरसों में श्रीमति हेमचन्द्र कहलायी । उसके क्या अर्थ थे ? अब अगले महीने से श्रीमति रमेशचन्द्र कहलाऊंगी, उसका भी क्या अर्थ है ? कुछ अर्थ तो होंगे, अपने से कहती हूं पर क्या यह नहीं सोच पाती ... मैं इतना ही सोच पाती हूं कि मेरे लिए यह समूचा श्रीमतीत्व मिथ्या है, कि मैं तुम्हारी हूं ।

केवल तुम्हारी, तुम्हारी ही हुई हूँ और किसी की कभी नहीं हो सकूँगी ।

गहरी वेदनाओं से प्रताड़ित उसके हृदय में किसी उपलब्धि की, श्रेय-प्राप्ति की आकांक्षा नहीं है । आत्मनिर्भरता केलिए छोटी बड़ी नौकरियाँ करनी पड़ीं, इसलिए छोड़नी भी पड़ी कि वह घटिया और व्यावहारिक समझौता कभी नहीं कर पायी । डॉ॰ राजारानी शर्मा के अनुसार "पात्र पति का जलानेवाला दुःख और सभ्य समाज की लिसलिसी दृष्टि को सहती हुई रेखा अनिश्चित जीवन बिताती रही । रेखा की यह ट्रेजडी एक तरह से पुरुष समाज पर चोट भी करती है परन्तु उससे आगे जाकर कुछ शाश्वत भाव को जगाती है । उसके टूटने में भी नारी स्वातंत्र्य की विलक्षण शान है, गौरव है, गाम्भीर्य है ।"[63] दरअसल रेखा आधुनिक जागृत नारी का प्रतिनिधित्व करती है जो यह चाहती है कि उसे पुरुष के समान ही अपना अस्तित्व और व्यक्तित्व हो । वह बिलकुल पुरुष की जीतदासी बनकर जीना नहीं चाहती । उसके लिए बोझ नहीं बनना चाहती । अपनी कमज़ोरियों से अवगत होकर, अपना जीवन बनाने और बरकरार रखने की अदम्य आकांक्षा ही उसमें भरी हुई है । रेखा आधुनिक नारी की प्रतिनिधि है और उसका चरित्र जागरित नारी चेतना का अनुपम नमूना भी ।

यशपाल का नारी चित्रण

यशपाल हिन्दी उपन्यास साहित्य में एक हद तक नारी मुक्ति के मसीहा की भूमिका अदा करते हैं । उनके समस्त उपन्यासों में नारी मुक्ति की अन्तश्चेतना व्याप्त है । भारतीय नारी की मुक्ति यशपाल के प्रारंभिक उपन्यास 'दादा कामरेड' से लेकर अन्तिम उपन्यास

"मेरी तेरी उसकी बात" तक के सभी उपन्यासों का प्रमुख मुद्दा रही है। वास्तव में यह सहस्रफणवाली समस्या है जो सर्पराज की तरह समाज की प्रगतिशीलता पर कुण्डली मारकर युगों से समाज को ग्रस रही है।[64]" इस केन्द्रीय समस्या से जुड़े विविध आयाम प्रत्येक उपन्यास का केन्द्रीय विषय रहे हैं। "दादा कामरेड में" भारतीय नारी स्वतंत्रता की समस्या, 'देशद्रोही' में विवाह प्रथा की समस्या, 'दिव्या' और 'पार्टी कामरेट" में नारी स्वावलंबन की समस्या, 'मेरी तेरी उसकी बात' में पति और फ्रेण्ड की समस्या का चित्रण हुआ है।

"स्त्री जीवन की पूर्ति नहीं, जीवन की पूर्ति का एक उपकरण और साधन मात्र है।" इसी सामन्तवादी धारणा के कारण ही भारतीय नारी युगों से पराधीन उत्पीड़ित, शोषित एवं कुण्ठित रही है। समाज की नींव परिवार, और परिवार की नींव दाम्पत्य जीवन है। स्वतंत्रता एवं समानता के धरातल पर स्त्री एवं पुरुष के पारस्परिक संबन्ध हो और परिवार संचालन एवं सन्तान पालन में संयुक्त उत्तरदायित्व रहें। यशपाल की यही मान्यता है। उनके अनुसार विवाह प्रथा एक बुर्जुआ या पूँजीवादी धारणा है। वैवाहिक बन्धनों में भारतीय नारी युगों से शोषित, कुण्ठित, दलित एवं प्रताड़ित है। पुरुष के समान स्त्री को भी सहज विकास के अवसर व अधिकार दिलाने का प्रश्न आज भी हमारे समाज में है। यशपाल बन्धनहीन समाज की व्यवस्था का समर्थक है। उन्होंने भारतीय नारी की मुक्ति केलिए स्वावलंबन का संदेश दिया है।

यशपाल ने समाजवादी कथाकार होने के कारण स्त्री-पुरुष संबन्ध और नारी की स्वतंत्रता को समाजवादी दृष्टिकोण से देखा है। समाजवादी उपन्यासकार व्यक्ति को चाहे वह स्त्री हो या पुरुष केवल व्यक्ति के रूप में देखता है। स्त्री-पुरुष का समान हक है।

वह दोनों के संबन्ध को प्राकृतिक आवश्यकता और कर्तव्य का संबन्ध मानता है । डॉ॰ राजारानी शर्मा के अनुसार यशपाल ने नारी के बन्धनों, उसके भावों और कृतित्व का नितान्त भौतिकतावादी दृष्टि से विचार किया है । पातिव्रत्य प्रतिष्ठा, प्रेम में एकनिष्ठ समर्पण इत्यादि मूल्यों को यशपाल परिस्थिति से उत्पन्न रीति-रिवाज़ मात्र मानते हैं, और बडी निर्ममता से इन कल्पनाओं के इर्द-गिर्द लगी भावुकता के पर्दे को फाड देते हैं । असल में नारी पर लादे गये सभी बन्धनों, - जिनको समाज ने मूल्य के रूप में पूजवाया - का यशपाल वैज्ञानिक भौतिकवादी दृष्टि से विचार कर मखौल उडाते दिखाते हैं ।"[65]

पूँजीवादी समाज में स्त्री केवल पुरुष की संपत्ति मात्र है । पुरुष उसका शोषण करता है । समाजवादी विश्वास के कारण यशपाल ने अपने उपन्यासों के पात्रों द्वारा इन विचारों का उन्मीलन किया है । शैल, दिव्या, तारा, उषा, कनक आदि पात्रों को परंपरागत सामाजिक बन्धनों से उन्होंने मुक्त किया है । इतना ही नहीं नारी को परंपरागत रूढियों से मुक्त कर राजनीतिक क्षेत्र में पुरुष के समकक्ष काम करनेवाली स्त्रियों का चित्र भी मिलते हैं । यशपाल के 'पार्टी कामरेड' की गीता और 'मनुष्य के रूप' की मनोरमा राजनैतिक कार्य करती हैं ।

प्रेम के संबन्ध में यशपाल का यही विचार है कि प्रेम केवल जीवन का सहायक साधन है ।"[66] पूँजीवादी समाज में वह एक सौदा मात्र है । नारी पुरुष की आश्रिता और प्यार की आकांक्षिणी है । इन दोनों के अभाव में उसका जीवन, भार बन जाता है । इसी दृष्टि-कोण के कारण उन्होंने स्त्री-पुरुष के आकर्षण विकर्षण का विस्तृत चित्रण किया है ।

यशपाल के 'दादा कामरेड' की शैल अनेक पुरुषों से प्रेम करने में ही तृप्ति का अनुभव करती है । उसका विश्वास है कि इससे नारी के व्यक्तित्व का विकास हो जाएगा । किसी एक पुरुष के प्रेम में बंध - जाना ऐसा कार्य है जिससे पुरुष की स्वामित्व भावना को ही प्रश्रय मिलता है । ऐसे एकनिष्ठ प्रेम को नारी पुरुष की संपत्ति बन जाने के बराबर समझती है । इसलिए शैल कहती है "प्रेम द्वारा मैं अपने जीवन का विस्तार करना चाहती थी और वह मुझपर बंधन लगाकर मेरे जीवन को अपनेलिए संकुचित कर देना चाहता था । देखो चौदह, पन्द्रह बरस का लड़का भी मुझे अपनी संपत्ति समझना चाहता था ।"[67]

"दादा कामरेड" की दूसरे नारी यशोदा, नारी सुलभ सहानुभूति होते हुए भी पति के चरणों पर गिरकर गिडगिडाकर क्षमा नहीं मांगती । उसके मन में कभी कभी पति के प्रति चुनौती की भावना जाग्रत हो जाती है । वह सोचती है, वह पति के कार्यों में दखल नहीं देती, कहीं भी जाने पर उसके चरित्र पर संदेह नहीं करती तो फिर पति ही उसके चरित्र पर क्यों अविश्वास करता है ? .... संदेह आखिर क्यों ? मैं ने क्या किया है ? किस बात पर संदेह ? .... यह मेरा अपमान क्यों कर रहे हैं - मुझपर ज्यादती क्यों कर रहे हैं ? आखिर मैं ने किया क्या है ? यही न कि एक आदमी से मेरा परिचय का इन्हें पता लगा ? .... मैं ने इन्हें यह नहीं बताया कि मैं ने कांग्रेस में काम करने की बातचीत की है ? यह आठ बरस से कांग्रेस का काम कर रहे हैं ? मैं ने तो कभी इनसे नहीं पूछा कि वे क्या और क्यों कर रहे हैं ? इतनी सी बात पर संदेह .... केवल इसलिए न कि मैं स्त्री हूं । मानों स्त्री संदेह के काम के सिवा और कुछ कर ही नहीं सकती ।"[68]

यशोदा अपने मन के भाव अपने पति के सम्मुख प्रकट करती हैं - स्त्रियों पर पुरुष सदा ही अविश्वास रखता है । स्त्रियां इस विश्वास के योग्य नहीं कि वे घर के बाहर निकल सके तो घर में ही उनका क्या विश्वास है .... यदि आपको मुझपर विश्वास नहीं तो कहिए ।"[69]

इस प्रकार यशोदा अमरनाथ की आधिपत्य - भावना पर प्रहार करती है ।

"दादा कामरेड" की शैल पूँजीपति पिता की इकलौती बेटी है । वह साहसी निर्भीक और स्वाभिमानी नारी की प्रतीक है । इसलिए वह क्रान्तिकारी दल में भाग लेती है । स्वच्छन्द प्रेम में विश्वास रखने के कारण विवाह के पहले हरीश से गर्भवती होने से वह ग्लानि का अनुभव नहीं करती है । वह पुरुष की एकाधिकार-भावना को नहीं सहन करती है । इसलिए विवाहिता होकर एक व्यक्ति की निजी संपत्ति बनना वह नहीं चाहती । इस विचारधारा की हिन्दी की पहली नायिका शैल ही है ।

"मनुष्य के रूप" में पुरुष द्वारा नारी के शोषण का एक अन्य रूप मिलता है । सुतलीवाला अपनी शारीरिक अक्षमता जानते हुए भी मनोरमा से विवाह करता है । वह पत्नी के सुख-सन्तोष की चिन्ता के बिना केवल अपनी वासना की पूर्ति केलिए गृहस्थी चलाना चाहता है । वे अब बुढ़ापे की बढ़ी चली आती संध्या केलिए एक घर बसाने की योजना में थे ।" ऐसे वृद्ध पति की वजहसेयुवति मनोरमा के मन की सारी उमंग नष्ट हो जाती है । सुतली वाला अपने अर्थ लाभ केलिए अपनी स्त्री को व्यभिचार के मार्ग पर ले जाने से भी नहीं हिचकता । वह सेठ बदानियाँ और मनोरमा को होटल में अकेले छोड़कर किसी काम के बहाने बाहर चला जाता है । परन्तु मनोरमा सतर्क होकर सदाचारिणी नारी की भाँति घर लौट आती है और अपनी मनोव्यथा प्रकट करती हुई कहती है "मैं नहीं समझती थी, रूपये केलिए कोई आदमी इतना गिर सकता है ।"[70] पति की शोषण वृत्ति के कारण मनोरमा का वैयक्तिक जीवन नरक तुल्य हो जाता है । कम्यूनिस्ट पार्टी में काम करने के

कारण उसमें साहस की कमी नहीं है । शिक्षित सजग नारी होने के नाते वह कभी अपने भाग्य पर गिडगिडाती नहीं, वरन् तलाक द्वारा यह नारकीय यंत्रणा से मुक्ति प्राप्त करती है ।

यशपाल ने तलाक को बहुत महत्व दिया है । हिन्दू कोड बिल स्वीकृत होने के पूर्व ही भारतीय संविधान में तलाक केलिए सुविधा थी । आज की जागृत नारी इस विकट अवस्था को सहना अपराध समझती है । कामरेड नीता को जैसे ही मनोरमा की खबर मिली तो वह कह उठी "हे जुल्म, असह्य जुल्म ! लड़की के साथ । मनोरमा हर हालत में तुम्हें इस झंझट और गन्दगी से पल्ला छुड़ाना है ।"[71]

"दिव्या" में यशपाल ने नारी स्वतंत्रता की चिरन्तन समस्या को उठाया है । द्वन्द्व और संघर्ष की अग्नि में जूझती हुई दिव्या अपने व्यक्तित्व की स्वतंत्रता केलिए लड़ती है । संगीत, नृत्य कला आदि में प्रवीण राजनर्तकी मल्लिका की शिष्या है वह । वह सागल के युवकों का आकर्षण केन्द्र भी है । सागल के "मधुपर्व" के अवसर पर घटित घटना दोनों के परस्पर परिचय की भूमिका है । अन्याय के कारण जो पीडा उसे सहनी पडी उस कारण दिव्या को पूरी सहानुभूति भी है और इसलिए वह पृथुसेन की ओर अधिकाधिक आकर्षित होती है । युद्ध में जाने के पहले दोनों का शारीरिक सम्बन्ध हो जाता है । यहीं पर दिव्या आधुनिक हो जाती है । बाद में उसे पता चलता है कि पृथुसेन सीरो से विवाह करने केलिए तैयार है । कुमारी अवस्था में मातृत्व प्राप्ति का कलंक आचार्य धर्मस्थ के कुल गौरव का विचार, पृथुसेन की उपेक्षा से आहत अभिमान आदि के परिणाम स्वरूप वह प्रासाद छोड देती है ।

जीवन के थपेडों को सहकर वह दासों के सौदागर के हाथ पड जाती है जो उसे मथुरापुरी के एक ब्राह्मण को बेच देता है। अपने नवजात शिशु शकुल को दूध केलिए तडपते देखते हुए भी ब्राह्मण के पुत्र को दूध पिलाने केलिए वह विवश है। दिव्या अब सत्य से अधिक महत्वपूर्ण असत्य का पाठ सीखती है - अपने बच्चे केलिए वह दूध चुराती है। परन्तु शकुल को बेचे जाने की बात सुनकर वहाँ से भाग खडी होती है। आश्रय केलिए वह बौद्ध विहार का दरवाज़ा खटखटाती है तो उसे वहाँ भी शरण नहीं मिलती। वह महास्थविर से कहती है कि धर्म और संघ में अम्बापाली वेश्या को शरण मिली थी, आखिर उसे क्यों नहीं मिल सकती ? इस पर उसे जवाब मिलता है कि वेश्या स्वतंत्र नारी है, उसे शरण मिलती है, तुम्हें नहीं। वेश्या अधिक स्वतंत्र है, यह सत्य उसे वेश्या बनाने केलिए प्रोत्साहित करता है।

वेश्या होकर भी पवित्र रहना दिव्या की अपनी खासियत है। समाज और धर्म जब उसे शरण न दे पाये तो वह अपनी इच्छा से वेश्या बनना स्वीकार करती है क्योंकि वह स्वतंत्र नारी बनना चाहती है। मथुरा पुरी की राजनर्तकी बनने केलिए दिव्या तैयार हो जाती है। लेकिन उधर भी द्विज-कन्या होने के कारण गण के अनेक व्यक्ति उसका विरोध करते हैं। हताश होकर वह फिर जनपथ में आ जाती है। वह नगर के बाहर पान्थ-शाला में आती है और उधर रुद्रधीर, पृथुसेन और मारीश तीनों बारी बारी से दिव्या से अपने साथ चलने का निवेदन करते हैं।

दिव्या हारना नहीं चाहती। स्वतंत्रता की खोज केलिए उसने सुखी जीवन को त्याग दिया है। अब वह थक गयी है - अकेले चलना भार-सा हो गया है। ब्राह्मणवीर रुद्रधीर का ऐश्वर्य और महान पद का लोभ उसे छू नहीं पाता। दिव्या रुद्रधीर को इसलिए इनकार कर देती है कि वर्णाश्रम धर्म नारी को भोग्या मानता है, वहाँ सत्व-महत्व नहीं होता। वह कहती है - "दासी हीन होकर

भी आत्मनिर्भर रहेगी । सत्वहीन होकर वह जीवित नहीं रहेगी ।"[72] बौद्ध भिक्षु पृथुसेन के स्त्री-पुरुष भेद निरपेक्ष सन्यासी जीवन की शान्ति भी वह नहीं चाहती है क्योंकि श्रमण धर्म नारी को बाधा मानता है । जीवन से पलायन करना भी वह नहीं चाहती । वह मारीश को स्वीकार करती है, जो उसके साथ रहकर समान स्तर पर भावों और विचारों का आदान-प्रदान करेगा, जिसमें परस्पर आश्रय की अपेक्षा आश्रयदान का अहंकार नहीं होगा, शान्ति की प्रवंचना नहीं होगी । वह आश्रय और प्रेम का आदान प्रदान चाहता है । वह परलोक की नहीं सोचता, न वह जीवन को दुःखों की श्रृंखला मानता है । वरना यथासंभव अपनी चेष्टा और शक्ति से अपने जीवन को सुन्दर बनाने में विश्वास करता है । वह कहती है - मारीश देवी को राजप्रसाद में महादेवी का आसन अर्पण नहीं कर सकता । मारीश देवी को निर्वाण के चिरन्तन सुख का आश्वासन नहीं दे सकता । वह संसार के सुख-दुःख अनुभव करता है । अनुभूति और विचार ही उसकी शक्ति है ।"[73]

मारीश के समक्ष दिव्या का समर्पण उसके अनुभवों का परिणाम है, उसकी जीवन मूल्यों के प्रति जागरूकता है । अनुभूतियों की आँच में प्रतिक्षण झुलसा हुआ दिव्या का व्यक्तित्व परिपक्वता को प्राप्त होता है ।"[74] दिव्या के जीवन के इतने अधिक और इतने प्रकार के मोड़ देने में लेखक का उद्देश्य यही है कि वह उस युग में नारी की स्थिति के सभी पहलुओं का चित्रण कर सके । विप्रकुल में जन्म लेने के कारण दिव्या को दास पुत्र से विवाह करने की अनुमति नहीं मिलती, फिर अपने प्रेमी से गर्भवती हो जाने के कारण उसकेलिए समाज में स्थान नहीं मिलता और दासी बन जाने के कारण बौद्ध धर्म की करुणा भी उसकेलिए सूख जाती है । इन कटु अनुभवों के कारण वह समझ जाती है कि नारी केवल भोग्या है । वह पुरुष की आश्रिता है, उसका अपना कोई अस्तित्व नहीं और अपने जीवन पर भी उसका कोई अधिकार नहीं है ।

यदि उसे अपने अस्तित्व में रखना है तो उसे समाज परिवार कुल, धर्म की परवाह किए बिना स्वतंत्र रहना है । "मारीश और दिव्या उपन्यासकार के विचारों के प्रतिनिधि होकर आये हैं । दिव्या क्रांति तथा विद्रोह का प्रारंभ है तो मारिश उसकी पूर्ण आहूति । दिव्या की वैयक्तिक क्रान्ति का समाधान मारिश के भौतिकवाद में है । दिव्या के चरित्र में व्यक्ति परिवार, धर्म, पुरुष-सत्ता, पुरुष-दासता और पुरुष भोगता के प्रति नारी का निरन्तर विद्रोह प्रकट हुआ है । दिव्या वर्णवाद, अहंवाद के मुख पर एक थप्पड है । पृथुसेन की चारित्रिक अकर्मण्यता और विश्वासघात के कारण दिव्या को नारी की परवशता भयंकर अभिशाप जान पडी है ।"[75]

दिव्या कुमारी माँ थी । जिन्दगी के थपेडों में डूबती उतरती चरितार्थ करती चलती है कि मनुष्य परिस्थितियों का दास होता है । इतना सब होने के बाद भी वह अपना अस्तित्व अपनी अलग पहचान कायम रखती है । डॉ॰ त्रिभुवन सिंह ने ठीक ही कहा है कि "दिव्या भारतीय नारी की सच्ची प्रतिनिधि है जिसका निर्माण सामाजिक संघर्षों के बीच हुआ है । सामाजिक कुरीतियों के प्रतिकूल चलकर उन्हें मिटा देने की शक्ति तो उसमें नहीं है, किन्तु बहुत जल्दी वह परिस्थितियों से हार भी नहीं मानती ।"[76]

दिव्या कभी भी अपने आत्मसम्मान की बलि नहीं चाहती । दिव्या के इस चरित्र के संदर्भ में डॉ॰ सरोज गुप्ता कहती है कि दिव्या आत्मसम्मान और आत्मनिर्भरता की भावना से परिपूर्ण सामन्ती युग की नारी है, जिसने अत्याचारों को सहन करके शारीरिक शक्ति के बल से नियति की क्रूरता का दमन किया ।"[77] दिव्या में यशपाल ने सामंत युगीन नारी को आधुनिक दृष्टिकोण से चित्रित किया है ।

नारी-जाति पर अन्याय और अत्याचार करने की पुरुषों की प्रवृत्ति परंपरागत रूप में चलती आयी है । खुद पर होने वाले अत्याचारों का मुकाबला नारी को ही करना चाहिए, इस विचार से यशपाल की नायिकाएं प्रेरित हैं । "झूठा सच" की तारा अत्याचारी पति का त्याग करती है और पतिगृह का भी त्याग करती है । तारा तो पुरुषों से भी अधिक समर्थ नायिका है । विधि, भाग्य, भगवान आदि पर तारा विश्वास नहीं रखती । दुर्गति में फंसी नारियों के बारे में तारा कहती है "जान पड़ता था कि भगवान ने उन्हें भुला दिया था, परन्तु ये लोग भगवान को नहीं भुला सकती थी । भगवान मनुष्य की जितनी चिन्ता करता है उससे कहीं अधिक मनुष्य भगवान की चिन्ता करता है ।"[78]

पाप-पुण्य का हिसाब करके पारलौकिक जीवन का विचार तारा नहीं करती । तारा नालायक पति का त्याग करती है । वह विवाहिता होते हुए भी पुनर्विवाह करती है ।

तारा असद नामक मुसलमान युवक से प्रेम करती है । लेकिन परिवारवाले उसकी शादी दूसरी जगह तय कर देते हैं । यानी परिवार में दहेज केलिए पैसा न होने के कारण उसका व्याह एक दुश्चरित्र विधुर सोमराज के साथ निश्चित होता है । सोमराज के साथ उसकी शादी की तैयारी देखकर उसे लगा था कि उसका कफन तैयार किया जा रहा है । तारा के स्वतंत्र चिन्तन में यह सब अन्याय है । इसलिए घर छोड़कर असद के साथ भाग जाने की वह तैयारी करती है । परिवार, बिरादरी, विश्वास और संप्रदाय की रूढियों को लांघने को तारा तैयार होती है, पर असद तैयार नहीं होता । आखिर सोमराज से वह ब्याही हो जाती है । सुहाग रात में ही सोमराज उसके साथ नृशंस व्यवहार करता है । तारा उसे छोड़कर भाग जाती है । आगे चलकर नरोत्तम, नित्यानन्द तिवारी आदि युवकों ने उससे शादी करनी चाही ।

लेकिन तारा की एकाकी जीवन यात्रा संयम और उम्मीद के साथ चलती है । जब तारा के सामने शिक्षित युवक विवाह प्रस्ताव रखते हैं तो वह आत्मगौरव का अनुभव करती है । तारा में इससे अधिक आत्म-विश्वास पैदा होता है जब वह सेन्ट्रेल सेक्रेटेरियेट सर्विस में चुनी जाती है और उसकी नियुक्ति अंडर सेक्रेटरी के पद पर होती है । वह नारी कल्याण केन्द्र की अध्यक्षा के रूप में काम करती है ।

तारा के अनुसार संसार की सब भूल से बड़ी भूल बेमेल ब्याह की है ।"[79] संघर्ष केलिए सदेव तैयार रहनेवाली तारा स्वतंत्र विचारवाली नारी है । उसमें स्वाभिमान है, आत्मगौरव की भावना है, इसी कारण उसने दो बार प्राणत्याग करने का प्रयत्न किया । बेमेल विवाह के विरुद्ध खुद बगावत करती है । प्रेम के क्षेत्र में वह धर्म का बन्धन नहीं मानती वह पुरुषों के शोषण की शिकार नहीं बनी । अग्नि परीक्षा करनेवाली सीता जैसा आदर्श दिखाना वह नहीं चाहती । अधिकार देना और लेना दोनों एक साथ वह पसंद करती है । प्रेम न करनेवाले पति को छोड़कर अपने प्रेमी के साथ रहनेवाली शीलों को तारा सहारा देती है, और नये क्रान्तिकारी जीवन को चेतावनी देती है । असहाय नारी-जाति की चिन्ता उसके मन में सदेव है । तारा का हृदय पुकारता है - जो मैं ने भोगा है कोई और न भोगे ।"[80]

अनमेल विवाह, असफल प्रेम तथा बलात्कार आदि के कारण तारा का जीवन अस्त व्यस्त हुआ था पर अपने उस अतीत को भूलने में वह सफल निकली । बीती बातों से उसे मतलब नहीं । वह वर्तमान को मानती है । यही धारणा तारा को वर्तमान जीवन जीने का बल प्रदान करती है ।

यों तारा बहुत बडा संघर्ष करके, असीम धैर्य और हिम्मत से काम करके परिस्थिति के यातनाचक्र से बाहर निकलती है। डॉ• इन्द्रनाथमदान की राय ठीक है कि "तारा के चरित्र के माध्यम से यशपाल पवित्रता के अहंकार को तोड़ते हैं, सतीपन की धारणा को फोड़ते हैं, जड मूल्यों का विरोध करते हैं।"[81]

"झूठा-सच" की तारा बौद्धिक चेतना से संपन्न आधुनिक नारी है। तारा के चरित्र के माध्यम से यशपाल ने नारी स्वतंत्रता की वकालत की है। वह शोषित नारी का प्रतिनिधित्व करनेवाली आधुनिक स्त्री है। प्रगतिवादी चेतना की प्रतीक तारा यशपाल के सब से मज़बूत नारी पात्र है जो नारी शक्ति की प्रतीक है। परिश्रम, प्रतिभा, व्यवहारकुशलता, सहिष्णुता, साहस तथा दृढता आदि गुणों के सहारे तारा सफल ही नहीं पूज्या भी बन जाती है। वह भावुक शीलो को साहस और दुश्चरित्र सीता को नैतिक बल प्रदान करती है। डॉ•शैल रस्तोगी कहती है कि भारतीय नारी का यह प्रतीक जीवन का वास्तविक अर्थ खोज रहा है।"[82]

मेरी तेरी उसकी बात

यह दांपत्य जीवन पर केन्द्रित है। यशपाल को दांपत्य सामन्तवादी संस्कार लगता है। उनकी दृष्टि में पूँजीवादी समाज के दांपत्य में निहित एकाधिकार की धारणा रूढिग्रस्त है। इसलिए वे समाजवादी चेतना से अनुप्राणित होकर इस एकाधिकार पर प्रहार करते हैं और क्रांति का आह्वान करते हैं। व्यक्ति स्वातंत्र्य के साथ साथ यौन स्वातंत्र्य की वकालत भी वे करते हैं।"[83] नये मूल्यों की स्थापना केलिए रेसल की पुस्तक मैरेज एण्ड मोरलस को आधार बनाते हैं।

"मेरी तेरी उसकी बात" की नायिका उषा के विचार आधुनिक हैं। जीवन की सार्थकता समाज-सेवा समझनेवाली उषा केवल शारीरिक इच्छाओं की पूर्ति केलिए पति-पत्नी सम्बन्ध को मान्यता देती है। उषा की महत्वाकांक्षा विद्वान, स्वावलंबी स्वतंत्र व्यक्ति बनने की है। पति की गुलामी में रहती स्त्रियों के व्यक्तित्व का ह्रास हो जाता है, यही उषा की धारणा है। विवाहित होकर गुलाम बनकर रहनेवाली स्त्रियों की अपेक्षा "कुमारी" रहकर खुद का व्यक्तित्व कायम रखनेवाली स्त्रियाँ उषा की दृष्टि में अधिक बेहतर हैं।

निर्मल पंत नामक युवक से उषा का विवाह निश्चित हुआ था। दुर्घटना में उषा लंगडी हो गयी, इस गलतफहमी से निर्मल विवाह करने से इनकार करता है। उषा नाराज़ होती है। परन्तु अपना स्वाभिमान नहीं छोडती। इसलिए उसके विवाह की चिन्ता में ग्रस्त माँ से वह कहती है - मैं किसी के रहम की मोहताज नहीं ....।[84]

उषा समाजवाद को धर्म विरोधी नहीं मानती। उसका गहरा डॉ• अमर सेठ के प्रभाव से उषा समाजवादी विचारों की ओर आकृष्ट होती है। नारी के प्रति मज़हबी अन्याय से उषा जल्दी क्रुद्ध होती है। उषा के अनुसार "सभी समाज नारी को पाप का मूल हेय और अविश्वासी समझते हैं। मज़हबी लोगों का ख्याल है, परमेश्वर ने नारी को पुरुष की खिदमत और ज़रूरत केलिए तो बनाया है, लेकिन पुरुष को उसका विश्वास नहीं करना चाहिए।"[85] समाजवाद नारी को पुरुष के समान समाज का अभिन्न अंग समझता है। समाजवाद का यह सिद्धांत उषा को अच्छा लगता है।

समर्थ सहयोगी, सहकर्मी कामरेड अमर उषा के जीवन में आता है। अमर के कारण माँ उषा पर सन्देह प्रकट करती है और उसे डाँटती है। आत्महत्या के भ्रम में घायल होकर वह आस्पताल पहुँचती है। आस्पताल से घर लौटने में वह इनकार करती है। अमर से विवाह करने का निर्णय करके वह पिताजी को लिखती है - "यह कदम मैंने पूरी जानकारी से मात्र अपनी इच्छा से अपनी जिम्मेदारी पर उठाया है।"[86] ईसाई उषा हिन्दू अमर की जीवन-संगिनी बनकर अपने माता-पिता के विरुद्ध पहला विद्रोह करती है।

माँ-बाप की आश्रिता बनकर रहना उषा अपनी मजबूरी समझती थी। नौकरी करके आत्मनिर्भर हो, स्वतंत्र जीवन बिताने का ही उसका इरादा था। नारी की स्वतंत्रता केलिए आत्मनिर्भरता की आवश्यकता है, यह उषा खूब जानती है, इसलिए वह कहती है - सच बात यह है कि वाइफ, चाहे लाट गवर्नर की हो, रहेगी मोहताज। आज़ादी और इज्जत अपने पाव खड़े इन्सान को ....।"[87]

स्त्री पुरुष की मित्रता को उषा बुरा नहीं मानती। अमर के मित्र के साथ भी वह मैत्री जोड़ती है। अमर को यह मित्रता अच्छी नहीं लगती। लेकिन उषा आत्मविश्वास के साथ कहती है - हम दोनों के बीच तीसरे की कोई जगह नहीं।"[88] क्रान्तिकारी दल में काम करते पति की हरकतों का पता उषा को नहीं था। अस्पताल की आमदनी घटने पर वह पति के संसार में दाख़िल देने का निश्चय करती है। अपने अधिकार की रक्षा केलिए वह अमर से पूछती है -हमें कॉज और लक्ष्य का साथी बनाया था या केवल हाउस वाइफ ?" अमर की गिरफ्तारी के बाद नरेन्द्र उषा से मिलता रहा। अमर पहले से ही शक्की बन गया था।

अब उसका शक दृढ़तर हो गया । उषा अमर से पूछती है - सेक्स के अलावा सौहार्द मैत्री की कल्पना ही नहीं । बातों को क्या क्या रंग दे डाला है ।[89]

अमर और उषा के बीच का तनाव बढ़ जाता है । उषा पति का संदेह सह नहीं पाती । शक्की पति के साथ रहना उसकेलिए असह्य हो जाता है । आखिर अमर पूछता है - "स्पष्ट है तुम्हारा अनुराग अदम्य है । मैं तुम्हें असह्य । तुम्हारा क्या निर्णय है ? पति के तकाजे पर उषा का उत्तर है "अब फिर चुनना है तो इट इज नाट यू ।"[90] अमर को छोड़कर उषा चली गयी । पति की मृत्यु की खबर सुनकर वह कहती है - "लाइफ तो उनके साथ गयी । अब तो ज़िन्दा रहने की मजबूरी । विधवा बनकर आँसु बहाकर दूसरों की दयाग्नि से जीना वह नहीं चाहती । वह नया जीवन शुरू करती है ।

उन्नीस सौ बयालीस के आन्दोलन में उषा सक्रिय भाग लेती है । प्रभावशाली भाषण और जोशीले नारे लगाकर लोगों को वह उत्साहित करती है । सब नाते - रिश्ते को छोड़कर वह आज़ादी संग्राम में कूद पड़ती है । वह पिस्तौल तक संभालना सीखती है ।

उषा का क्रान्तिकारी आन्दोलन में भाग लेना किसी के कहने का परिणाम नहीं था, वह उसी का विवेक था ।[91] उसे इस बात का संतोष था कि वह अमर का कार्य आगे चला रही है । उषा बम्बई में आकर कमल शाह के उपनाम स्वीकार कर रहती है । उधर, पाठक से उसकी मुलाकात होती है । परिस्थितिवश पाठक और उषा एक ही कमरे में रहते हैं और परस्पर आकृष्ट होते हैं । उषा की विवशता है उसका पुत्र । पाठक उसका दायित्व स्वीकार करता है। उषा विवाह के बिना ही पाठक को सर्वस्व अर्पण करती है । वह गर्भवती होती है

लेकिन मजबूरन आपरेशन करना पड़ता है । फिर माँ बनने की शक्ति खोने की खबर से उसे गहरी पीड़ा होती है ।

हर तरह की गुलामी का विरोध करने केलिए उषा सदैव तैयार है । उषा की दृष्टि में देश की गुलामी से भी भयानक है स्त्री की गुलामी । उसके विचार में प्रगतिशीलता का अर्थ केवल अंग्रेज़ों को हटाना नहीं । गले में स्वयं डाले फंदों से आज़ादी नहीं । इस देश के लोग, खासकर औरत वैयक्तिक स्वतंत्रता को पाप समझे, आत्महनन को धनिष्ठ, उन्हें कौन स्वतंत्र कर सकेगा ।"[92]

अपने पुनर्विवाह की आलोचना करनेवालों को वह मुँहतोड़ जवाब देती है - "भारतीय नारी का अर्थ रूढ़िग्रस्त ब्राह्मण, क्षत्रीय, बनिया कायस्थ विधवा नहीं है । हिन्दु विधवा का केवल एक तप, धनिष्ठा से रंडापा निभाना । विधवा के मृत पति के साथ जल मरने के धर्म से इस देश का माथा ऊँचा । यहाँ के पुरुषों की लंपटता से देश का माथा नहीं झुकता ।"[93]

उषा यशपाल की सशक्त और साहसी नारी पात्र है । समझौता उसने जहाँ भी किया है केवल सन्तुलन केलिए और बराबर आन्तरिक संतुलन से उपलब्ध अतिरिक्त शक्ति के सहारे उसने लम्बी-लम्बी छलांग मार ली है । अपनी वैचारिक स्वतंत्रता और राष्ट्रीय उद्देश्य सिद्धि केलिए दोनों से मुक्ति उसके असीम आन्तरिक साहस का प्रमाण है । अमर के प्रति पूर्णतया समर्पित होने के बावजूद वह अपने विवेक और अपनी भावना के प्रति सजग है और उसमें उसका प्रबल आग्रह है ।"[94]

उषा ने हमेशा स्वावलम्बी, आत्मनिर्भर जीवन ही पसंद किया। उसकी दृष्टि से स्वतंत्रता और इज्जत जीवन की श्रेष्ठ बातें हैं। उसके अनुसार शोषितों के दो रूप हैं - पहला अंग्रेज़ों के शोषण में जकड़ा हुआ देश और दूसरा पुरुष जाति और अन्ध रूढ़ि परंपराओं द्वारा शोषित नारी। दोनों के चंगुल से मुक्त होने केलिए वह प्रयत्न करती है। इसी कारण कामरेड उषा बागी है। वह भाषण देती है - "बगावत दासता से पीड़ित प्रत्येक समाज का जन्मसिद्ध अधिकार है। ..... दासता से मुक्ति का एक मात्र ऐतिहासिक मार्ग शोषक शक्ति से बगावत है।"

डॉ.विवेकीराय के मत में परम्परा और प्रगति के छाया - प्रकाश में उगी उषा यशपाल की अनूठी सृष्टि है। वह नारी के बन्धन और मुक्ति की दारुण-न्याय-कथा है। समाज, धर्म और परंपराओं से परे उसमें शुद्ध मानवीय स्तर का राष्ट्रीय नारी-व्यक्तित्व है। उसमें क्रान्तिकारी युवा आग की ध्वंसोन्मुखता है तो सृजनशील नारी का अपार वात्सल्य और करुणा जल भी है। राष्ट्र को देखें तो वह क्रान्ति-कारिणी है, समाज केलिए विद्रोही, सहयोगियों केलिए प्रेरक शक्ति, पति केलिए पहेली पुत्र केलिए शुद्ध माता है।"[95]

यशपाल की सभी नायिकायें वर्ग प्रतिनिधि हैं। वह वर्ग नारी वर्ग है, जिसकी पीडाओं का स्वरूप भिन्न स्तरीय है। समाज में स्त्री को मानवी रूप प्राप्त करने में ये पात्र सहायक हैं। इन नायिकाओं का संघर्ष सोद्देश्य है। ये समाज में परिवर्तन लाने में अथक प्रयास करती हैं। इनमें सहनशीलता के साथ अन्याय के विरुद्ध लड़ने की शक्ति भी है, इसलिये ये विद्रोही भी हैं।

आत्म निर्भरता में यशपाल की नायिकाएं दृढ विश्वास रखती हैं । आत्मनिर्भर बनकर ही स्वतंत्रता का उपभोग किया जा सकता है, यही उनकी दृढ धारणा है । नारी को पुरुषाश्रिता दासी बनाकर रखती अन्ध परम्परा का त्याग करने की हिम्मत इन नायिकाओं ने जगह जगह पर दिखाई है । सभी नायिकायें बुद्धिवादी हैं । नारी को चंगुल में जकडनेवाले रीति-रस्मों में ये विश्वास नहीं रखतीं । इस कारण उनके व्यक्तित्व में साहस की मात्रा अधिक पायी जाती है। इन नायिकाओं में "समाज सापेक्षता" का विशेष गुण है । ये व्यक्तिगत अधिकार की न्याय-संगत मांग करती हैं और नारी के नाते प्राप्त सामाजिक कर्तव्य निभाने की तैयारी भी करती हैं । उपन्यास का मुख्य स्वर है -नये, अधिक और बेहतर की खोज ।

आत्मनिर्भरता और स्वावलंबन दासता से मुक्त होने केलिए अनिवार्य है । यह जानकर इन नायिकाओं ने आत्मनिर्भर और स्वावलंबी जीवन को स्वीकार किया है । स्वतंत्रता मानव जीवन का महान मूल्य है । इसी मूल्य की पूजा इन नायिकाओं ने की है । आत्मनिर्भरता केलिए कठिन से कठिन समस्याओं को झेलने की हिम्मत यशपाल की नायिकाओं में है । दिव्या, तारा, उषा, शैल आदि का जीवन स्वावलंबी है और आत्मनिर्भरता की ज्वलन्त मिसाल भी ।

मोहन राकेश के उपन्यासों में नारी चित्रण

आधुनिक युग में सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र के तीव्रगामी परिवर्तनों की वजह स्त्री-पुरुष संबन्धों में भी नींवाधार परिवर्तन आ गए । प्रेमचन्द और जैनेन्द्र ने परंपरा को पूर्णतः नकारने की कोशिश नहीं की थी । अज्ञेय एक पग और आगे बढा । उन्होंने नारी जीवन में प्रेम को खुले आम स्वीकार करने में कोई झिझक नहीं दिखायी । यशपाल जी ने नारी को समाजवादी चिन्ताधारा के अनुरूप स्थापित किया और उसे

समाज के सभी स्तरों पर लाकर खड़ा कर दिया । मोहन राकेश के ज़माने तक आते आते स्त्री और स्वतंत्र हो गयी । उसकी स्वतंत्र अहमियत को राकेश ने पति-पत्नी संबन्धों के परिप्रेक्ष्य में चित्रित करने की कोशिश की है ।

नीलिमा

नीलिमा आधुनिक नारी है, जो स्वतंत्र रहना चाहती है, मुक्ति चाहती है । उसे मालूम है दमघोंटू वातावरण में वह अपना विकास कभी नहीं कर पाती । वह अपनी प्रतिभा और योग्यता का उपयोग कर कुछ बनना चाहती है । हरबंस नारी पर पूरा अधिकार चाहता है और नीलिमा तो बन्धनों से घिरकर रहना नहीं चाहती ।

नीलिमा हरबंस से कटकर जीना चाहती है क्योंकि वह अनुभव करती है कि उसका "न होना" उसके "होने" से बेहतर है। एक दूसरे के कारण दोनों जो होना चाहते हैं, हो नहीं पाते । अपनी अपनी सीमाओं को पहचानने के बदले वे एक दूसरे को अपने व्यक्तित्व का विकास न होने केलिए दोषी ठहराते हैं । हरबंस एक महान उपन्यासकार बनकर कुछ पाना चाहता है और नीलिमा नृत्यकला में पारंगत होकर कुछ उपलब्धि चाहती है । दोनों एक भ्रम के शिकार हैं - वह भ्रम है अपनी प्रतिभा का । उनकी समूची विसंगति का कारण यह है । पति-पत्नी को एक दूसरे की उपलब्धि में सहगामी होना चाहिए । किन्तु होता यह है कि आज के समान अधिकारों के युग में पत्नी की उपलब्धि या व्यक्तित्व-विकास से पति अन्दर ही अन्दर क्षुब्ध होता है । अपनी पत्नी के सामने वह कुछ न हो पाने की यातना बर्दाश्त नहीं कर पाता है, इसलिए समझौते का सवाल ही नहीं उठता । नीलिमा हरबंस से कहती है "मैं जानती हूँ तुम्हारे अंदर बहुत ऊँची महत्वाकांक्षाएं हैं, जो

मेरी वजह से दूर नहीं रही है। मगर मैं कुछ नहीं कर सकती। मेरे अंदर अपना भी ऐसा कुछ है जिससे मुझे प्यार है और जिसे मैं छोड नहीं सकती।"[96]

नीलिमा नर्तकी बनना चाहती है। उसे पता नहीं कि वह बन सकती है या नहीं। लेकिन वह ज़रूर चाहती है खूब नाम कमावे। कमीं। वह इस आकांक्षा में इतना बढ गई है कि लौट जाना उसकेलिए असंभव है। नीलिमा पत्नीत्व से अधिक कलाकार के रूप में स्वतंत्र व्यक्तित्व की स्थापना केलिए जूझने लगती है और झुककर जीना चाहती है। हरबंस अपनी इच्छाओं को उस पर लादता है। उसे पहले पत्नी के रूप में देखना चाहता है, लेकिन नीलिमा कहती है - "मैं इस रास्ते पर इतना बढ आई हूँ कि अब मैं लौटकर उस तरह की गृहस्थिन नहीं बन सकती जैसी कि तुम मुझे देखना चाहते हो।"[97]

हमेशा आपसी ईमानदारी, भावात्मक लगाव और मानसिक सम्दृष्टि की बडी बडी बातें करनेवाला हरबंस जब पत्नी की उपलब्धि को, स्वतंत्र व्यक्तित्व के विकास को वह नहीं पाता है तो संबन्धों की कभी न पडनेवाली खाई शुरू होती है। चूँकि नीलिमा बौद्धिक स्वतंत्र विचारोंवाली नारी है। वह अपने व्यक्तित्व का स्वतंत्र विकास चाहती है। वह कहती भी है कि "विवाहित जीवन में दो व्यक्तियों का शारीरिक संबन्ध ही सबकुछ नहीं होता। हम लोग पति पत्नी है किन्तु पति-पत्नी में जो चीज होती है हम में कब की समाप्त हो चुकी है।"[98] पारिवारिक जीवन में उन्हें एकता नहीं मिलती जिसे वे दोनों मूल्यवान समझते है। नीलिमा शारीरिक संबन्ध की अपेक्षा मानसिक एकता को प्रधानता देती है।

पति-पत्नी जब अजनबी बन जाते हैं तब दोनों अपनेलिए और रास्ता खोजते हैं। हरबंस को पत्नी से प्यार नहीं मिला।

इसलिए वह आत्मिक मित्र की खोज में है जिससे उसका मानसिक संत्रास कम हो सके । घनिष्ठ मित्र की ज़रूरत नीलिमा भी अनुभव करती है । जैसे सूचित किया गया कि नीलिमा को बंधनों से घिरकर रहना पसंद नहीं है । वह जानती है कि पारिवारिक जीवन का मूल आधार परस्पर विश्वास और प्रेम है । जब उसका प्रत्येक सदस्य इस चीज़ को सही ढंग से नहीं समझ लेता शांति संभव नहीं । इसलिए वह कहती है "हमारा व्याह हुए तीन साल हो गए, मगर मैं तुम्हें आज तक नहीं समझ सकी । हरबंस का भी यही कहना है "तुम कभी मुझे समझ भी नहीं सकोगी ।"[99] वह उससे कटकर व्यक्तित्व संपूर्ण जीवन बिताना चाहती है । वह मधुसूदन से कहती है "अगर वह सचमुच यह चाहता है कि मैं उससे अलग हो जाऊँ तो अब उसे परेशान नहीं करूँगी । जितने ही दिन कट गए हैं, उतने ही दिन बहुत हैं । मैं अकेली रहकर भी किसी तरह ज़िंदगी काट लूँगी । मैं उसके ऊपर बोझ बनकर नहीं रहना चाहती ।"[100] उसके व्यक्तित्व का सबसे प्रबल पक्ष यह अहं है जिसका उसने किसी भी स्थिति में समझौता नहीं होने दिया ।

नीलिमा मैसूर जाकर कथक नृत्य का अभ्यास करती है । लेकिन उधर भी पति-पत्नी में संघर्ष होता है । वह कहती है "मैं दो साल तक कथक और छः महीने भरतनाट्यम का अभ्यास इसलिए नहीं करती रही कि मैं अंग्रेज़ बच्चों को जाँघिये और निक्करें पहनाया करूँ । अगर तुम मुझे जबरदस्त रोकोगे तो मैं तुमसे कह देती हूँ कि मैं वैसे ही चली जाऊँगी और कभी तुम्हारे पास लौटकर नहीं आऊँगी ।"[100] इस प्रकार कुछ बनने की इच्छा हमेशा उसमें रहती है । जिस मार्ग को उसने स्वेच्छा से ग्रहण किया है, उसे नष्ट करना उसकेलिए कठिन है । नीलिमा हरबंस को वह सब कुछ नहीं दे पाती जिसकी हरबंस माँग करता है । नीलिमा भी हरबंस से वह सब कुछ नहीं पाती, जो उसका बर्मी कलाकार उबान् उसे पेरिस में देता है । नीलिमा उसके बारे में

खुल्लम खुल्ला कहती है - "वह हर आदेश का इस तरह पालन करता था जैसे सिर्फ मेरा खरीदा हुआ गुलाम हो, मुझे उसका व्यवहार बहुत अच्छा लगता था ।"[101] नीलिमा को मालूम था, हरबंस का व्यक्तित्व मूल्यों के साँचे में ढला हुआ है । वह महत्त्वाकांक्षी पुरुष पूर्वाग्रहों से आबद्ध था । उसका पुरुषत्व कभी भी उदार बनने का तैयार नहीं था । वह स्त्री को उतना कुछ देना नहीं चाहता था, जो नीलिमा चाहती थी । हरबंस की इच्छा थी कि नीलिमा उसके चारों ओर घूमे, उसकी मुस्कान साज श्रृंगार एवं नृत्य सब केवल उसकेलिए हो । वह नीलिमा को सती साध्वी देखना चाहता था, लेकिन नीलिमा उससे कहीं कोसों दूर पर है ।

दोनों अपने अलग व्यक्तित्व या अस्तित्व को सुरक्षित रखना चाहते हैं । दोनों को इस बात पर चिढ है कि उनके व्यक्तित्व आपस में इस्तेमाल किये जा रहे हैं । दिल्ली का कलानिकेतन नीलिमा के भरतनाट्यम का प्रदर्शन आयोजित करता है। प्रदर्शन के पहले विशिष्ट मेहमानों को दावत देनी थी । नीलिमा खुद इसका भी इन्तजाम करती है । हरबंस को यह अच्छा नहीं लगता । जब नीलिमा अपने पति पर हीन भावना के शिकार का आरोप करती है तब हरबंस कहता है - तुम अपना प्रदर्शन करो, नाम कमाओ, और जो चाहो करो, मेरी तुमसे प्रार्थना है कि मुझे तुम इसमें एक औजार बनाकर इस्तेमाल न करो । मुझे चिढ है तो इसी बात से कि मुझे एक ऐसी चीज़ केलिए इस्तेमाल किया जा रहा है, जिसकेलिए मेरे मन में कोई उत्साह नहीं है । मुझे इस बात से नफरत है ।[102] यह सुनकर नीलिमा कुछ क्षण चुप रही, फिर तुनककर बोली "तुम्हें जिस चीज़ से नफरत है, वह मैं अच्छी तरह जानती हूं । और मेरा मुंह खुलवाओगे, तो मैं यह भी कहूंगी कि मैं तुम्हें अपने लिए इस्तेमाल नहीं कर रही, तुम मुझे अपनेलिए इस्तेमाल कर रहे हो ।

.... कुछ लोगों के साथ अपना संपर्क और परिचय बढाने केलिए उससे अपने छोटे छोटे काम निकालने केलिए, आज तक तुम किसे आगे करते आये हो ? अपनें विदेशी मित्रों से क्यों बार बार मेरी चर्चा करते हो ? क्यों बार बार उनसे मिलने केलिए ले जाते हो ? .... जहाँ नीलिमा तुम्हारे काम आ सकती है, वहाँ वह तुम्हारी पत्नी है, और तुम्हें उसे इस्तेमाल करने का पूरा हक है । मगर आज मेरी वजह से तुम्हें कुछ लोगों की दावत करनी पडी है, तो तुम्हारी आत्मा विद्रोह कर रही है कि मैं तुम्हें कीचड में घसीट रही हूं ।"[103]

अपने अपने अहं में उलझे, विवश स्थितियों में दोनों भटकते हैं । वे स्वयं नहीं जानते कि ये वास्तव में क्या चाहते हैं ? नीलिमा कहती भी है कि .... मैं अपने लिए एक सुख चाहती हूं जो एक छोटे से घर ही में मिल सकता है । डॉ॰ राजारानी शर्मा के अनुसार शायद नारी की संस्कारबद्ध विवशता से लेखक नीलिमा को मुक्ति नहीं दिला सका है इसलिए वह न तो हरबंस से संबन्ध विच्छेद करती है, और न ही दूसरे पुरुष के साथ अधिक दिन तक रह पाती है । बार-बार अपने नीड में लौट आती है ।"[104]

नीलिमा अपने वैवाहिक संस्कारों को पूर्णत: उतारकर फेंक नहीं सकी है । बौद्धिक धरातल पर यह विद्रोही व्यक्तित्व का बाना चाहे पहन ले, मानसिक धरातल पर वह गहरे भारतीय संस्कारों को छोड नहीं पा रही है । यह उसके उलझनों का महत्वपूर्ण कारण है । वह अपने अलग व्यक्तित्व को कायम रखने केलिए पति से टकराती हैं । लेकिन इसमें वह पूर्णत: सफल नहीं हो पाती ।

कामू के अनुसार जीवन के दो ही रास्ते हैं - आत्मसमर्पण या विद्रोह । आज का बुद्धिजीवी अहंवादी आत्मसमर्पण की बात भी नहीं सोच सकता और विद्रोह करने का उसमें साहस नहीं । इसमें संदेह नहीं कि राकेश ने, पुरुष के स्त्री का नैसर्गिक नियन्ता और अभिभावक बनने

की बलवती इच्छा के साथ ही, नारी नियति को भी काफी गहराई और सूक्ष्मता से पकडा है । आज की शिक्षित नारी अपने व्यक्तित्व का स्वतंत्र विकास चाहती है । पुरुष का अन्धानुकरण उसके जीवन का ध्येय नहीं ।

शोभा

शोभा अपने पति के साथ सात साल रह चुकी थी । उसकी मृत्यु के बाद, उसे "घर की जिंदगी" के बगैर अपने आप बहुत अधूरा लगता था, इसलिए परिवारवालों की इच्छा के विरुद्ध मनोज से शादी करने का निश्चय करती है ।

शोभा को अपने पहले पति उसे छोड़ता नहीं । मनोज के साथ रहती हुई भी वह अतीत में जीती है और महसूसती है कि वह किसी अकेली आदमी का घर संभाल रही है । मनोज केलिए भी शोभा किसी दूसरे की पत्नी ही बनी रहती है जिसके घर में वह बेतुके मेहमान की तरह ठहर रहा है ।

पति-पत्नी का यह तनावपूर्ण व्यवहार उनकी स्वाभाविक जिंदगी में गतिरोध उपस्थित करता है । कभी कभी उनके दिल में यही आशा रहती है कि किसी दिन कुछ ऐसा होगा जिससे यह गतिरोध छूट जाएगा । इस आशा तथा तनाव की स्थिति में ही दोनों सो जाते थे । शोभा बाएँ बिस्तर पर बाईं करवट, मनोज दाहिने बिस्तर पर दाईं करवट । कभी गलती से एक का हाथ दूसरे से छू जाता तो "सोरी" कहकर एक दूसरे की गलतफहमी दूर कर दी जाती ।

एक प्रकार का संस्कारजन्य अपराध बोध शोभा में है । उस में आत्म समर्पण की भावना नहीं है । शोभा खाली हृदय लाई थी, वह मनोज का दिल भर नहीं सकी । वह शारीरिक तृप्ति का साधन मात्र बनकर रह गई थी । साथ रह सकना लगभग असंभव था पर संबन्ध विच्छेद की बात दोनों अपने अपने कारणों से जुबान पर नहीं लाते थे ।"[106] खाना पकाने केलिए और महीने में चार दिन के यौन आवेग के निष्कासन केलिए मनोज को शोभा की आवश्यकता है । शोभा अपनी पुरानी जिन्दगी को पूर्णत: भूला नहीं पाती थी । इस कारण मनोज के साथ उसकी जिन्दगी एक शहीदाना जिन्दगी थी । "उस दूसरे का नाम वह जबान पर नहीं लाती थी । अपने सारे व्यवहार से यही प्रकट करने का प्रयत्न करती थी कि यह उसकी पहली शादी है - फिर भी अपने मन से वह जो थी खोई हुई ज़िन्दगी में ही थी ।"[107]

आन्तरिक घूटन और अलगाव की पराकाष्ठा अंधेरे बंद कमरे से अधिक इस उपन्यास में उभरकर आई है । मनोज और शोभा के संघर्ष को शीतयुद्ध का नाम दिया जा सकता है । शोभा के पहले पति की स्मृति बाधा के रूप में आकर दोनों को अलग, अलग प्रकार से चोटती है । शोभा उस स्मृति के कारण मनोज का पूरी तरह साथ नहीं दे पाती मनोज उसी स्मृति के आरोपण से यह महसूस करता है कि उसे मिलनेवाला प्रेम अधूरा है और वह अछूता भी नहीं, ओढी हुई आधुनिकता उनका साथ नहीं दे पाई ।"[108]

शोभा ने नयी शुरूआत की कोशिश की थी । यह नयी शुरूआत केवल उसकेलिए थी । मनोज को तो यही लगता था कि उस शुरूआत में उसकेलिए वही होना चाहिए था जो कि वह दूसरा था जिसकी वह सात साल आदी रही ।"[109] एक अलग दृष्टि से मूल्यांकन करें तो समझ में आ जाएगा कि मनोज और शोभा के प्रेम की असफलता का मूल कारण

वैयक्तिक विशिष्टता ही नहीं बल्कि सामाजिक परिवेश की विकृति भी है । प्रेम की असफलता, आत्मनिर्वासन और अकेलेपन की दारुण यंत्रणा की परिणति है। प्रेम के अभाव में न मानसिक तृप्ति रह जाती है और न शारीरिक यौन-तृप्ति । परिवेश की विद्रूपता से विवश होकर आदमी प्रेम के माध्यम से अपने बचाव की कोशिश करता है लेकिन असफल रहता है क्योंकि उसका अकेलापन और अलगाव कोई व्यक्तिगत समस्या मात्र नहीं बल्कि सामाजिक समस्या भी है ।"[110] यों उपन्यास का जीवन लड़खड़ाता, घिसटता चल रहा है । वहाँ वैयक्तिक दायरे को लाँघकर प्रेम सामाजिक समस्या बन गया है । ऐसा लगता है, प्रेम की यह त्रासद तरक्की, सामाजिक परिवेश की यंत्रणाओं की उपलब्धि है । व्यक्ति इसका छटपटाता माध्यम मात्र है ।"[111]

श्यामा

'अंतराल' में कुछ नाम हीन संबन्धों की तलाश है । 'अन्तराल' की श्यामा के साथ नीलिमा, और शोभा की विवशता नहीं है, फिर भी उसका जीवन रिक्त है । मन के अंधेरे से उबकर किसी तरह, सतह को पाने की छटपटाहट है । श्यामा के सम्मुख प्रश्न है कि शारीरिक आकांक्षा की पूर्ति सचमुच एक तृप्ति होगी या निराशा । श्यामा दो वर्ष अपने पतिदेव के साथ रही थी । इन दो वर्ष के अंतराल में देव के प्रति प्रेम की भावना कभी उसके मन में जाग्रत नहीं हुई । पति के साथ होने की आत्मीयता कभी भी महसूस नहीं की । वह, यह समझ गई कि पतिदेव को सिर्फ उसका शरीर चाहिए, वह केवल अधिकार भाव से उससे जुड़ा रहता है । उसकी मृत्यु के बाद श्यामा पति के स्मरण में तल्लीन नहीं रहती । उसने पढाई शुरू की, एम.ए. तक पढी । उसका परिचय कुमार से हुआ । दोनों ही स्त्री - पुरुष के बीच शारीरिक संबन्धों के

अतिरिक्त कुछ और खोजना चाहते हैं । वह जानती है कि व्यक्तित्व का आकर्षण शारीरिक आकर्षण से अधिक मन को खींचता है ।

कुमार के जीवन में लता को न पाने के कारण एक अभाव था । एक दूसरी लड़की से शादी करके इस अधूरेपन को भरने की कोशिश उसने की थी । यह समझौता छः महीने तक ढोया । वह समझ जाता है कि केवल सामाजिक रिश्तों के नाम ये जिये नहीं जा सकते । यह एक तरह आत्म प्रवंचना है । नफरत करने वाली संगिनी के साथ एक ही घर में बंधा रहने से बदतर है जानवरों की जिंदगी जीना । झूठे रिश्ते निभाने से उसे कभी भी खुशी नहीं मिलेगी ।

यों अनुभव के परिप्रेक्ष्य में श्यामा और कुमार अपने जीवन की रिक्तता को भरने और अकेलेपन को नकारने केलिए निकट आते हैं । श्यामा से मिलने कुमार टी सेंटर गया, लेकिन श्यामा नहीं आई । ऐसी मानसिक स्थिति में दोनों की मुलाकात दूसरी बार हुई । श्यामा सीधे उसके दफ्तर गई थी, और वहाँ से उसके घर । श्यामा अपने युवा शरीर में उठती हुई अनंत भावनाओं को दबाकर एक शहीदाना जिन्दगी बिता रही थी । कुमार की छाया में वह थोड़ा अपनापन महसूस कर सकती थी, उसके सान्निध्य में हर प्रकार की खुशियाँ प्राप्त कर सकती थी । एक प्रसंग ऐसा आया जो उसके भविष्य का निर्णय क्षण बन गया । कुमार का शरीर उसके बहुत निकट आया था, बस उसी क्षण उसको सबकुछ निश्चय कर लेना था । "बस यही क्षण था, यही उसने अपनी घुटती साँस को किसी तरह अंदर खींचा और घिर आए शरीर को पूरी शक्ति के साथ परे धकेल दिया ।"[112]

श्यामा शारीरिक संबन्ध से ऊब चुकी है । उसकी राय में किसी से बात करने में भी एक प्रकार का संबन्ध होता है, उसे नाम चाहे जो भी दिया जाए । कुछ क्षणों के लिए किसी की सांसों में बंध जाना प्यार नहीं है । इसलिए वह किसी के क्षण भर के आवेग का साधन बनकर जीना नही चाहती । उसका कहना है "मुझे नहीं लगता एक बार गृहस्थ जीवन के अनुभव से गुज़र लेने के बाद उस अनुभव को अपने जीवन में कभी दोहरा सकती हूं x किसी के साथ सकती हूं शायद ... पर उसके साथ घर नहीं बसा सकती ।"वह संबन्धों में उलझे बिना ही सब कुछ पा लेना चाहती है । इसलिए अपने साथ बलात्कार करने के भ्रम के बाद भी कुमार से कहती है यह मत सोचना कि इस घटना के कारण तुम्हारा तिरस्कार करके या तुम्हारे साथ जितना संबन्ध था उसे तोड़कर जा रही हूं । हो सकता है कि फिर भी कभी तुम्हें आने केलिए लिखूं । पर आओ तो कोई ऐसी वैसी बात सोचकर मत आना ।"[113]

यों दोनों पास रहते हुए भी अकेले हैं । एक अनाम जिन्दगी बनाये रखने केलिए दोनों अग्रसर होती हैं । श्यामा विधवा होने के कारण और कुमार प्रेम में असफल रहने के कारण अकेलेपन को झेलते हैं । दोनों अपने जीवन की रिक्तता को भरना चाहते हैं । इसी कारण दोनों एक दूसरे को चाहने लगते हैं । कुमार यह अनुभव करता है कि शारीरिक आकर्षण से हटकर एक और आकर्षण होता है । व्यक्तित्व का चुंबक आकर्षण जो शारीरिक आकर्षण से कहीं अधिक मन को खींचता है । श्यामा भी ठीक यही सोचती है कि अगर शरीर ही सब कुछ है तो इतनी सुन्दर हँसमुख लेडी डाक्टर बता ने क्यों आत्महत्या की ? इस प्रश्न का उत्तर देने में सारी बुद्धि और तर्क पीछे रह जाते हैं । उसका अन्तर मन बार-बार पुकार उठता है कि स्थूल शारीरिक संबन्ध के अतिरिक्त कुछ और है । उस कुछ और पाने केलिए ही श्यामा और कुमार दोनों बेनाम संबन्धों में प्रेम और शांति की खोज करते हैं । इस प्रकार प्रेम के वायवी स्तर को

बनाये रखते हैं। इसे इन्टेलेक्चुअल लव या "सब्लिमेशन" का नाम देना कुमार को अधिक समीचीन लगता है।

अंतराल में प्रेम का अन्वेषण है, उसकी सार्थकता की खोज और शारीरिकता को गौण मानने का साहस है। अपने वैयक्तिक अनुभवों के आधार पर श्यामा जान चुकी है कि प्रेम के नाम पर किए गए सारे कार्य व्यापार मन को वितृष्णा से भर देते हैं। वह प्यास को बुझाने के बजाय उसे अवांछित ठहराने की कोशिश करती है। श्यामा कुमार के साथ जीवन बिताना चाहती है और जीवन भर-पूर बनाना चाहती है। वह दूसरी मन:स्थिति से ग्रस्त है। वह कुमार से वासना-तृप्ति के साथ उसके परे की वस्तु भी पा लेना चाहती है।

इस प्रकार राकेश के हर पात्र के समान श्यामा भी दुविधा में है। वह दोराहे पर बेसहारा खड़ी है। वह कुमार को चाहती है, लेकिन अतीत उस चाह को दबोचता है। "अंधेरे बंद कमरे" में पति-पत्नी के बीच के तनावपूर्ण संबन्धों के साथ एकरसता भी दिखाई गई है, "न आनेवाला कल" में झेलने के अहसास और स्वीकृति से मुक्ति पाने की कामना है तो अंतराल में प्रेम की नयी शुरूआत की अधूरी दिशा निर्देशित की गयी है। इन सब का माध्यम बनी है राकेश की विशिष्ट नारी पात्र।

मोहन राकेश का नारी चित्रण

प्रेमचन्द, जैनेन्द्र, अज्ञेय, यशपाल आदि के चित्रण से भिन्न है। प्रेमचन्द ने नारी की सामाजिक व घरेलू समस्याओं को अपनाया और नारी की दु:खद अवस्थाओं का चित्रण प्रस्तुत किया। नारी को मर्यादा की सीमा के उल्लंघन का साहस नहीं दिखाया। जैनेन्द्र ने नारी के

घर बाहर की समस्या का चित्रण प्रस्तुत किया और तीसरे के आगमन से नारी जीवन में कोई विशेष खतरा नहीं दिखाया । अज्ञेय ने एक पग और आगे बढ़कर नारी के प्रेम केलिए बलिदान करने का भाव और उसकेलिए बोल्ड होकर जीने का चित्र प्रस्तुत किया । यशपाल ने तो अत्याचार से लड़नेवाली नारी का रूप और राजनीति में भाग लेनेवाली आदर्श निडर नारी का चित्र खींचा है । राकेश ने तो पति-पत्नी और प्रेमी-प्रेमिका के संबन्धों की विडम्बनाओं को उन्मीलित करने के उद्देश्य से अपनी नारी पात्रों की सृष्टि की है ।

प्रेमचन्द से लेकर मोहन राकेश तक के उपन्यासकारों के अध्ययन से पता चलता है कि इन महान उपन्यासकारों ने नारी के बदलते रूप और भाव को समाज समकक्ष लाने की भरसक कोशिश की है । अपने अधिकारों के प्रति जागरूक अपने व्यक्तित्व की महत्ता और मूल्यवत्ता से अवगत पति और परिवार के बन्धनों से अलग होकर परम्परा की लीक छोड़कर अपने स्वतंत्र निर्णय पर चलनेवाली नारी का चित्रण इन्होंने प्रस्तुत किया है । यह नारी का विद्रोही रूप है । इस विद्रोह के मूल में पुरुष के प्रति एक भीषण प्रतिहिंसा की भावना भी जुड़ी हुई है ।

टिप्पणियाँ

1. हिन्दी उपन्यास में नारी चित्रण - बिन्दु अग्रवाल, पृ.29
2. वही, पृ.29
3. प्रेमचन्द कुछ विचार
4. उपर्युक्त पंक्तियाँ प्रेमचन्द ने डॉ.इन्द्रनाथ मदान को 7 सितंबर 1925 लिखे पत्र में लिखी थी ।
   प्रेमचन्द एक विवेचन - डॉ.इन्द्रनाथ मदान, पृ.177
5. निर्मला - प्रेमचन्द, पृ.70

6\. निर्मला - प्रेमचन्द्र, पृ.101

7\. वही, पृ.32

8\. वही, पृ.32

9\. वही, पृ.54

10\. वही, पृ.55

11\. वही, पृ.35

12\. वही, पृ.206

13\. हिन्दी उपन्यास में प्रेम और जीवन - डॉ.शान्ती भरद्वाज, पृ.117

14\. रंगभूमि - प्रेमचन्द, पृ.98-99

15\. वही, पृ.99

16\. वही, पृ.10[illegible]

17\. गबन - प्रेमचन्द, पृ.146

18\. हिन्दी उपन्यास विविध आयाम - डॉ.चन्द्रभानु सोनवणे,

19\. हिन्दी उपन्यास में प्रेम और जीवन - डॉ.शान्ति भरद्वाज, पृ.276

20\. कर्मभूमि - प्रेमचन्द, पृ.103

21\. वही, पृ.182

22\. प्रेमचन्द की नारी दृष्टि - डॉ.विजेन्द्र नारायण सिंह, अनुशीलन : प्रेमचन्द विशांक

23\. हिन्दी उपन्यास विविध आयाम - डॉ.चन्द्रभानु सोनवणे,

24\. जैनेन्द्र के उपन्यासों में नारी - डॉ.सावित्री मठपाल,पृ.42

25\. हिन्दी उपन्यास में नारी चित्रण - बिन्दु अग्रवाल,

26\. भाषा सितंबर 1959 संपादक भगवत चरण जोहरी

27\. हिन्दी उपन्यास में प्रेमचन्द तथा उत्तर पेमचन्द काल 1955 तक सुषमा धवन, पृ.171

28\. सुनीता, पृ.74-75

29. सुनीता, पृ.58
30. हिन्दी उपन्यासों में प्रेम और जीवन - डॉ.शान्ति भारद्वाज, पृ.132
31. सुनीता - जैनेन्द्र, पृ.155
32. वही, पृ.235
33. वही, पृ.187
34. हिन्दी उपन्यास में रूढी मुक्त नारी - डॉ.राजरानी शर्मा, पृ.275
35. कल्याणी - जैनेन्द्र, पृ.70
36. त्याग पत्र, पृ.62
37. वही, पृ.73
38. वही, पृ.67-68
39. हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ - डॉ.शशिभूषण सिंह,पृ.195
40. सुखदा, पृ.52
41. वही, पृ.30-31
42. वही, पृ.93
43. वही, पृ.118
44. हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास - डॉ.सुरेश सिंहा,पृ.348
45. विवर्त, पृ.69
46. परख - भूमिका - जैनेन्द्र
47. हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन - डॉ.एस.एन.गणेशन, पृ.197
48. वही,पृ.207
49. जैनेन्द्र के उपन्यासों में नारी पात्र - डॉ.सावित्री मठपाल,पृ.75
50. हिन्दी उपन्यास में पारिवारिक संदर्भ - उषा मैत्री,पृ.70
51. शेखर एक जीवनी - भाग 2 - अज्ञेय, पृ.277
52. वही, पृ.174
53. वही, पृ.236
54. वही, पृ.242

55. हिन्दी उपन्यास - डॉ. सुषमा धवन, पृ. 244
56. हिन्दी में रूढ़ि मुक्त नारी - डॉ. राजारानी शर्मा, पृ. 40
57. हिन्दी उपन्यास - डॉ. सुषमा धवन, पृ. 244
58. नदी के द्वीप - अज्ञेय, पृ. 214
59. वही, पृ. 238
60. वही, पृ. 239
61. वही, पृ. 240
62. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास मूल्य संक्रमण - डॉ. हेमन्त कुमार पनेरी, पृ. 158
63. हिन्दी उपन्यासों में रूढ़िमुक्त नारी - डॉ. राजारानी शर्मा पृ. 288
64. यशपाल के उपन्यास साम्यमूलक अध्ययन - डॉ. शीलम वेंकटेश्वर राव, पृ. 346
65. हिन्दी उपन्यास में रूढ़ी मुक्त नारी - डॉ. राजारानी शर्मा, पृ. 84
66. मनुष्य के रूप - यशपाल, पृ. 183
67. दादा कामरेड - यशपाल, पृ. 45
68. वही, पृ. 144
69, वही, पृ. 146
70. मनुष्य के रूप - यशपाल, पृ. 221
71. वही, पृ. 226
72. दिव्या - यशपाल, पृ. 212
73. वही, पृ. 213
74. हिन्दी उपन्यास में रूढ़ि मुक्त नारी - डॉ राजारानी शर्मा, पृ. 284
75. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद - डॉ. त्रिभुवनसिंह, पृ. 287
76. वही, पृ. 291
77. यशपाल व्यक्तित्व और कृतित्व - डॉ. सरोजगुप्ता, पृ. 60
78. झूठा सच - यशपाल, पृ. 435

79. झूठा सच भाग दो - यशपाल, पृ.426
80. वही, पृ.392
81. आधुनिकता और हिन्दी उपन्यास - इन्द्रनाथ मदान,पृ.63
82. हिन्दी उपन्यास में नारी - डॉ.शैल रस्तोगी,पृ.202
83. यशपाल व्यक्तित्व और कृतित्व - डॉ.सरोजगुप्ता,पृ.80
84. मेरी तेरी उसकी बात - यशपाल, पृ.182
85. वही, पृ.209
86. वही, पृ.289
87. वही, पृ.257
88. वही, पृ.338
89. वही, पृ.405
90. वही, पृ.444
91. हिन्दी के मार्क्सवादी उपन्यासों की नायिकाएं - डॉ.एच.जी. गालुसे, पृ.124
92. मेरी तेरी उसकी बात - यशपाल, पृ.63
93. वही, पृ.629
94. हिन्दी उपन्यास उत्तरशती की उपलब्धियां - डॉ.विवेकी राय, पृ.44
95. वही, पृ.44
96. अंधेरे बंद कमरे - मोहन राकेश,
97. वही, पृ.235
98. वही, पृ.505
99. वही, पृ.89
100. वही, पृ.221
101. वही, पृ.305

102. अँधेरे बन्द कमरे, पृ.420

103. वही, पृ.420-21

104. हिन्दी उपन्यास में रूढ़ि-मुक्त नारी - डॉ.राजारानी शर्मा, पृ.25

105.

106. न आनेवाला कल, पृ.25

107. वही, पृ.15

108. मोहन राकेश का साहित्य - डॉ.शरतचन्द्र चुल्की मठ, पृ.93

109. न आनेवाला कल, पृ.13

110. मूल्य बोध की नई दिशाएँ - डॉ.एम.षण्मुखम, पृ.29

111. वही, पृ.30

112. अंतराल, पृ.211-12

113. वही, पृ.211

चौथा अध्याय

नारीवाद के परिप्रेक्ष्य में अस्सी तक के उपन्यासों का अध्ययन

चौथा अध्याय

नारीवाद के परिप्रेक्ष्य में सन् 1960-1980 तक के उपन्यासों का अध्ययन

बीसवीं सदी परिवर्तन का युग रहा है। हिन्दी उपन्यासों ने बन्धनों को तोड़कर नवीन भावनाओं, मूल्यों एवं मानसिकता को अपनाया। औद्योगीकरण और शहरीकरण ने हिन्दी के औपन्यासिक मूल्यों को परिवर्तित कर दिया था। जैसे हम ने देखा कि प्रेमचन्दोत्तर काल के उपन्यासों में नारी के वैयक्तिक एवं आर्थिक स्वतंत्रता को सबल समर्थन प्राप्त था। आधुनिक महिला उपन्यासकार एक कदम और आगे बढ़ी। उनके अनुसार नारी स्वतंत्रता का मतलब रहा - नारी के स्वतंत्र अस्तित्व और व्यक्तित्व की मान्यता उसके प्रति एक आदर व उदार दृष्टिकोण जो स्वस्थ, संयत और मानवीय भी हो, उसे सिर्फ भोग विलास और सौन्दर्य की पुड़िया न मानकर एक संवेदनशील आत्मा का दर्जा दिया जाय।

आज अनेक अनुकूल परिस्थितियों के कारण नारी की स्थिति में स्पष्ट रूप से परिवर्तन आया है। नारी अपने प्रति और अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हुई है। अब वह न तो ससुराल की

देहरी को केवल दो बार लाँघनेवाली बहू रह गई है और न ही हर तरह के पति को देवता माननेवाली पत्नी । स्त्री स्वतंत्रता की बातें नारी सुधार आंदोलनों तथा शिक्षा से आई नारी जागृति ने नारी के प्रति दृष्टिकोण को बदल दिया है । परिणामत: अनेक लेखिकाओं ने समाज में नारी की स्थिति के प्रति नवीनतम दृष्टिकोण अपनाकर उपन्यास लिखे हैं ।

स्वतंत्रता के पूर्व की महिला उपन्यासकारों में उषादेवी मित्रा का प्रमुख स्थान है । उषा देवी ने प्रेम के उदात्त स्वरूप को अपने उपन्यासों का आधार बनाया तथा यह दर्शाया कि नारी त्याग और बलिदान से प्रेरित होकर जीवन से प्रेम की निष्ठा बरकरार रखती है ।

स्वतंत्रता के बाद महिला उपन्यासकारों की संख्या ज्यादा बढ़ गई । इन लेखिकाओं ने अपने कृतित्व में अधिक साहस का काम किया । विषय वैविध्य भी इनमें मिलते हैं । स्वातंत्र्योत्तर काल में विशेष रूप से सन 1960 के बाद अन्य क्षेत्रों की तरह उपन्यास लेखन के क्षेत्र में भी महिलाओं ने जागरूक दृष्टि का परिचय दिया । इन्होंने पुरुष उपन्यासकारों द्वारा उपेक्षित पक्ष को चित्रित करने का प्रयास किया । इस युग के मशहूर महिला उपन्यासकार है - उषा प्रियंवदा, कृष्णा सोबती, शशिप्रभाशास्त्री, कृष्णा अग्निहोत्री शिवानी, दीप्ती खण्डेलवाल, मेहरुन्नीसा परवेज़, मृदुला गर्ग, मन्नु भण्डारी, मृणाल पाण्डे, सूर्यबाला, सुधा, रजनी पन्निकर, राजीसेठ, ऋता शुक्ल, मंजुला भगत, प्रतिभा वर्मा भक्तिकामोहिनी, ममता कालिया, निरुपमा सेवती आदि ।

इनमें कृष्णा सोबती, उषा-प्रियंवदा, मन्नु भण्डारी, शशिप्रभा शास्त्री, राजी सेठ, दीप्ति खण्डेलवाल, निरूपमा सेवती, मृदुला गर्ग आदि के उपन्यास नारीमुक्ति संघर्ष की गुणवत्ता के कारण विस्तृत अध्ययन की अपेक्षा रखते हैं । ये लेखिकाएँ नारी को उसके सहज मानवीय रूप में चित्रित करती हैं तथा नारी के स्वतंत्र अस्तित्व को दृढ़ता पूर्वक स्वीकार भी करती है ।

स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास लेखिकाओं की विचारधारा, उनका घटनाओं को देखने परखने का दृष्टिकोण तथा उन्हें चित्रित करने की प्रणाली में पर्याप्त परिवर्तन दिखाई देता है । पूर्ववर्ती लेखिकाएँ नारी के दीन हीन अबला रूप को चित्रित कर दबे स्वर में पुरुष की निन्दा किया करती थी और भाग्य वादिता को कोसकर अभिशाप्त जीवन जीने वाली नारी का चित्र प्रस्तुत करती थी । लेकिन परवर्ती लेखिकाओं ने स्पष्ट और दृढ़ स्वर में पुरुष की आलोचना की है । उन्होंने पुरुष से लोहा लेने का प्रयास किया है ।

जैसे हम ने विश्लेषण किया है कि प्रेमचन्दकालीन महिला उपन्यासकारों का क्षेत्र घर-परिवार तक सीमित रहा है । नारी के वैयक्तिक जीवन के द्वन्द्व को स्वर देने में वे सफल नहीं हो पायी । आज़ादी के बाद शिक्षित नारी के चिन्तन को नई दिशा मिली । भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन व सुधारवादी आंदोलन के फलस्वरूप नारी मानसिकता में भी परिवर्तन आया और वे अपने को पुरुष के समकक्ष समझने लगी । नारी के इस नये रूप भाव को लेकर साहित्यकारों ने अनेक रचनाएँ की हैं जिनमें महिला उपन्यासकारों की अपनी विशिष्ट भूमिका रही है । आज़ादी के बाद नारी जागरण के जो नये संदर्भ सामने आए, उनकी प्रमाणिकता को महिला लेखन ने पूरे आत्मविश्वास के साथ उभारा ।"

उन्नीस सौ साठ के आस पास आधुनिक नारी मुक्ति आंदोलन का सूत्रपात हुआ । जैसे बताया गया कि यह आन्दोलन स्त्री की व्यक्ति सत्ता केलिए आयोजित आन्दोलन था । इसलिए इस आन्दोलन से प्रभावित साठोत्तर महिला लेखन में नारी की व्यक्ति सत्ता को ऊपर उभारने का प्रयास हुआ है । तरह तरह से पुरुष समाज द्वारा प्रताड़ित होकर नारकीय जीवन बिताने केलिए मजबूर नारी में चेतना की लहर दौड़ी उसने अपनी कुण्ठा की केंचुल उतार फेंकी । नारी के मन में उठी व्यक्ति स्वातंत्र्य की भावनाने परंपरागत धारणा को तोड़ दिया ।

अपनी वैयक्तिक आकांक्षाओं के प्रतिरोध करनेवाली सामाजिक रूढ़ियों, मान्यताओं ठुकराने में उसे कोई हिचक नहीं रही । आगे हम एक एक करके सन् साठ के बाद की प्रमुख उपन्यासकारों के उपन्यासों का संक्षिप्त विश्लेषण करने की कोशिश करेंगे ।

कृष्णा सोबती

हिन्दी कथा साहित्य की बोल्ड लेखिकाओं में कृष्णा सोबती का नाम आता है । भाषिक और शैल्पिक प्रयोगों के कारण हिन्दी साहित्य में उनका अपना स्वतंत्र स्थान है । हिन्दी में नारी की निजी समस्याओं को विषय बनाकर अनेक उपन्यासों की रचना हुई है फिर भी इस क्षेत्र में कृष्णा सोबती को अधिक सफलता मिली है । सोबती ने नारी को स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में मूल्यांकित करके उसे पुरुष के समकक्ष स्थापित करने का प्रयास किया है । इस कारण उनके उपन्यास साहित्य क्षेत्र में बहुचर्चित भी हैं । वास्तव में कृष्णा सोबती ने एक स्त्री होकर स्त्रीको उद्घाटित करने तथा पुरुष को पहचानने का प्रयास किया है ।"[2]

नैतिक और सेक्स संबन्धी पुरानी मान्यताओं को जारी रखना कृष्णाजी की नारी पसंद नहीं करती। वह स्त्री को सेक्स और मौजूदा सामाजिक ढाँचे में सिमटकर रखना नहीं चाहती । वे अपनी स्वतंत्र स्थिति प्रमाणित करती है यानी वे सिर्फ समर्पिताएं नहीं हैं । उनकी नायिकाएं पाशों, मित्रों, रत्ती आदि समर्पिता भी है और ग्रहीता भी उनकी समर्पण भावना अपनी इच्छा की पूर्ति केलिए है । ऐसी नायिकाओं की सृष्टि और गठन हिन्दी उपन्यास साहित्य में एक दम नई है । नारी और पुरुष के शारीरिक संबन्ध को नैतिकता के दायरे से हटाकर यौन तृप्ति के लिए तडपती भारतीय नारी का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन और पुरुष के अत्याचारों से पीड़ित नारी चरित्र का चित्रण करने का साहस उन्होंने किया है । उनका विचार है कि दैहिक संबन्ध या यौन भावना का मानव जीवन को संचालित करने में निर्णायक योगदान है ।

इसके मुताबिक उन्होंने अभिव्यक्ति भी दी है । इसलिए उनकी रचनाओं में अश्लीलता का आरोप लगाया गया है । लेकिन जैसे डॉ॰भास्कान्त देशाई ने लिखा है, यह तो एक स्त्री द्वारा स्त्री की तटस्थ अभिव्यक्ति है ।"[3]

लेखिका के शब्दों में तथाकथित नैतिकता और धर्म के चौखटों के बाहर इन्सान की ज़िन्दगी का एक बड़ा हिस्सा फैला पड़ा है । उसकी उम्मीदें आस्थायें उसकी कमज़ोरियाँ प्यार और आर्थिक संघर्ष इन सबको किसी एक के नाम पर छोड़ देना उन्हें किसी दायरे से बाहर उन पर फैसले देना मुनासिब नहीं ।"[4]

कृष्णाजी के उपन्यासों में वर्णित नारी पूर्णतः आधुनिक नहीं हैं, यद्यपि उसी रूप का चित्रण तो नये उपन्यासों और नई कहानियों में देखने को मिलता है । उनकी नारी पात्र आधुनिक है, साथ ही परंपरागत भी । उनके उपन्यासों का मुख्य विषय नारी समस्याएँ ही हैं । नारी जीवन की बाह्य और आंतरिक उलझन को समझाकर उसे सही ढंग से अंकित करने की कोशिश उन्होंने की है । उपन्यासों के रचनाक्रम में काफी अन्तराल पड़ा है, जो नारी जीवन के क्रमिक विकास का पता देता है । "ऊपर से देखने में उनकी रचना के बीच चाहे जितना अन्तर और अन्तराल लगे, लेकिन ज़रा गहराई में जाकर देखने पर लगता है कि उनके पास एक निश्चित "थीम" है जो हर रचना में विकसित हुई है, आगे बढ़ी है। .... वह है नारी का क्रमशः स्वतंत्र होता हुआ व्यक्तित्व"।[5] उनके प्रारंभिक उपन्यासों में नारी की गुलामी का चित्र है तो बाद के उपन्यासों में उस नारी का चित्रण है, जो वास्तविक जगत की हाड़ - माँस से बनी है । उनकी अपनी भौतिक और मानसिक आवश्यकतायें हैं जिनकी पूर्ति के संदर्भ में वे किसी पाप बोध का अनुभव नहीं करती ।

डार से बिछडी

डार से बिछडी में भोली-भाली ग्रामीण कन्या पाशों का जीवन्त चित्र उभर आया है । पुरुष मेधा समूह में एक भोली-भाली कन्या का जीवन किस हद तक दीन होता है, पुरुष के अत्याचारों से नष्ट होती कोमल भावनाओं और प्रतिशोध केलिए असमर्थ मन की पुरुष वर्ग के प्रति घृणा आदि का बेहद सुन्दर चित्रण इस उपन्यास में हुआ है । नारी जीवन की संपूर्ण विडम्बनाओं का उन्मीलन सोबती का उद्देश्य रहा है ।

पाशों की माँ अपने मन पसंद व्यक्ति के साथ विवाह करके घर से भाग गयी थी । इसका ज़िक्र करके नानी, मामा-मामी सब पाशो को हमेशा पीटते थे । पाशो छोटी होने पर भी मामी, मामा एवं नानी द्वारा माँ को लांछित किए जाने पर विद्रोह केलिए सक्रीय हो जाती है । पडोस के लडके करीम से वह बातें करती है । हिन्दू परिवार की कन्या की यह हरकत कोई पसंद न करेगा । मामा उसे रोकता है एक दिन करीम के पास पाशो के एक रूमाल का टुकडा पाकर मामा उसपर झपट पडा । उन्होंने पाशों को आज्ञा दी कि, सुबह होने के पहले पाशो घर से निकल जाय । जीवन की संकीर्णता से ऊबकर पाशो घर की चारदीवारी लाँघना चाहती थी । अवसर पाकर स्वतंत्र वातावरण केलिए घरेलू फंदा निकालकर वह बाहर आती है । वह घर से निकलकर अपनी माँ के घर पहुँच गयी ।

वहाँ उसका स्वागत हुआ । लेकिन शेखजी उसे सेवक के साथ मित्र दिवानजी के घर भेजता है, फिर दीवानजी के साथ उसकी शादी होती है । दीवानजी के असामयिक निधन से वह विधवा बनती है । दीवानजी का भाई बरकत और उसकी माँ ने मिलकर सारी संपत्ति हडप ली । अन्त में बरकत ने पाशो को एक लालाजी के हाथों बेच दिया । उधर जाते ही द्रोपदी बनकर रहने केलिए वह मजबूर हो गयी ।

मानी लालाजी और उनके तीन पुत्रों की पत्नी बनकर उसे जीना पडा । एक दिन लालजी का मझला लडका उसे उठाकर ले गया । इसी बीच अंग्रेज़ों की लडाई शुरू हो गयी । मझला युद्ध में भाग लेने चला । फिर पाशो फिरंगियों के हाथ का खिलौना बन गयी । अंत में शरणार्थी स्त्रियों के साथ भाग गयी पाशो की अपने भाई बच्चे आदि से मुलाकात होती है ।

पाशो का चरित्र

शोषण के चक्रव्यूह में फसी नारी का त्रासद रूप पाशो में मूर्त हो उठा है । संयुक्त परिवार के परिवेश में जीती हुई पुरुष के शारीरिक बल और दंभ के बीच पिसती नारी की प्रतीक है पाशो । निर्बल होने पर भी सामाजिक रूढियों को तोडने का प्रयास भी वह करती है । स्वतंत्रता के पूर्व भारतीय स्त्री को पारिवारिक रूढियों में संपूर्ण रूप में ग्रस्त रहना पडता था । परिवार के पुरुष-सदस्यों के समान हंसने और बोलने तक की इजाज़त उसे नहीं थी । पर्दा तो स्त्री केलिए अनिवार्य माना जाता था । पाशो इससे भिन्न है । सामाजिक रूढी के विरुद्ध बातें करती है, और अपने कार्यकलापों में भी इस विद्रोह का परिचय देती है ।

समाज में जाति प्रथा को महत्वपूर्ण माना गया था । जाति से बाहर विवाह करने की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी । इस संदर्भ में पाशो की माँ अन्तरजातीय विवाह करके भाग जाती है । यह सामाजिक मान्यताओं के प्रति विद्रोह है । नारी मुक्ति आन्दोलनकारियों ने स्त्री को मन पसंद विवाह करने की स्वतंत्रता का प्रस्ताव रखा है । प्यार में, जाति, धर्म, परिवार, कुल को दाखिल करना अनुचित माना जाता है । नारी स्वतंत्रता वादियों के अनुसार शादी केवल वैयक्तिक मामला है । इसमें चुनाव का हक पुरुष के समान स्त्री को भी है । पुरुष नारी को उपभोग की वस्तु मानते हैं । अपने विवाह के बारे में बोलने की अनुमति

तक कन्या को नहीं दी जाती है । पाशो को भी ऐसी हालत का मुकाबला करना पड़ता है । माँ भी उसे विपत्ति से बचाने में असमर्थ पाती है।

पुरुष मेधा समाज के खोखलेपन को परत दर परत दिखाना सोबती का उद्देश्य है । पाशो जीवन भी पुरुष के कामुक व्यवहार का शिकार बनती है । अपने पति के घर में उसे गहने कपड़े सबकुछ मिलते हैं । लेकिन व्यक्तित्व की स्वीकृति नहीं है । विवाह के बाद स्त्री को अपना नाम तक बदलना पड़ता है । पाशो भी नाम बदलकर "मालन" बन गयी थी । स्त्री जीवन का एक मात्र लक्ष्य पुरुष को खुश करना है । पाशो की शादी के बाद पहले दिन ही मौसी उससे कहती है "चली चलायी है री मालन मेरे बेटे को खुश करना सीख । पाशो का कोई दायित्व नहीं है । दीवान की नयी नवेली आभूषणों से साज सजकर दीवान की भोग की चीज़ बनकर वह पड़ी रहती है । वह चली। छोड़ी पीढ़ी लेती पीढ़ी छोड़ चली ।"[6] पाशो के मन में पत्नी के अधिकारों के प्रति मोह नहीं है । इसकी कोई जानकारी भी उसे नहीं है । इसलिए वह पत्नी का जीवन-सेविका का जीवन मानती है "ऐसा न कहें दीवानजी मैं तो इस घर की चाकर ।"[7]

स्त्री अब भी शहशादी समाज के दायरे से नहीं बची है। दीवान जी के बाद वह अनेक पुरुषों की यौनासक्ति की शिकार बनती है । प्रतिशोध करने का श्रम तक वह नहीं करती । क्योंकि वह जानती है कि उसका यही क्रम है कि एक को छोड़कर दूसरे को अपनाना फिर दूसरे को छोड़ तीसरे को । स्त्री को हमेशा शोषण का शिकार बनना पड़ता है । विधवा होते ही बरकत उसकी संपत्ति हड़पता है, और पाशो का मान भी लूटता है । वह मौसी से इस बारे में बात करती है - और हाथ बढ़ा मेरा पल्ला खींच लिया, तो भी नहीं काँपी, न चिल्लायी ऐसी पड़ी रही कि पानी के मार से गली-गलाई काठ होऊ, पड़ी रही, ...

पड़ी रही उठी नहीं ।"[8]

नारी को संपत्ति माननेवाले पुरुष की सामाजिक नीति की ज्वलंत मिसाल है, उपभोग के बाद पाशो की बिक्री । बरकत अपने ऋण चुकाने केलिए पाशो को बिकता है । लालाजी के घर में भी यही शोषण अविराम रूप से ज़ारी है । लालाजी उससे कहता है, भाग, भरी यह घर बाहर द्रौपदी बनकर सेवा कर मेरे और बेटे की ।"इस विवशता के बीच वह सोचती है नारी कहा करती थी संभलकर री, एक बार थिरका पाँव ज़िन्दगानी धूल में मिलें देगा ।"[9]

पाशो की माँ के विवाह तथा उसके सुखपूर्वक जीवन बिताने का चित्रण इसका संकेत देता है कि अपनी मुक्ति केलिए नारी को स्वयं निर्णय लेकर काम करना है । पुरुष मेधा समाज की नारी दुर्दशाओं के सही चित्रण के द्वारा पाठकीय संवेदना को उभारना लेखिका का उद्देश्य है । सोबती यह भी चाहती है कि समाज के रूढ़ीबद्ध सामाजिक, और नैतिक मूल्यों की मज़बूत दीवारों पर दरारें डालें और उसके पतन का मार्ग प्रशस्त करें । वर्तमान सामाजिक परिवेश में नारी जीवन की यह विडम्बना है कि यदि एक बार वह गलत रास्ते की ओर जुड जाती है तो फिर वापसी नहीं होती । उसका सर्वनाश हो जाता है । सचमुच वह तूफान में उडी तिनके के समान कभी यहाँ कभी वहाँ भटकती रही । "पाशो" मानो व्यक्ति नहीं चीज़ है, पशु है, जिसे जो मन हो, सो उठाकर ले जाये जहाँ है वहाँ उसका घर संभाले, बिस्तर गर्म करे और वंश चलाने केलिए सन्तान दे ।"[10]

पुरुष की उन्मत्त ज़िन्दगी केलिए स्त्री का जीवन समर्पित है । इस जीवन में पुरुष स्त्री के अस्तित्व या व्यक्तित्व की कोई मान्यता नहीं देता है । जिधर भी हो, जिसके हाथ में हो स्त्री हमेशा यौन शोषण की शिकार बनती है । अपनी जान बचाने केलिए भागती पाशो को कहीं भी सुरक्षा नहीं मिलती ।

नारी मुक्ति आंदोलनकारियों का विचार है कि समाज और धर्म की व्यवस्था नारी की रक्षा नहीं करती बल्कि केवल उसे बेड़ियाँ पहनाती है और उसे पुरुष के हित केलिए सीमित दायरे में रखने का प्रयास करती है । लेकिन नारी को अपनी मुक्ति केलिए इन सब बेड़ियों को तोड़ना है । लेखिका का लक्ष्य नारी की चारित्रिक विशेषता बताना नहीं है । समाज की कुरीतियों के चित्रण के साथ नारी की दयनीयता तथा उसके व्यक्तित्व के प्रति उपेक्षा भाव रखनेवाले पुरुष प्रधान समाज के अत्याचारों का चित्रण करना है । पुरुष मेधा समाज की नारी दुर्दशा का सही चित्र प्रस्तुत करके समाज की नारी के प्रति भावना में बदलाव लाना भी सोबती का उद्देश्य है ।

मित्रो मरजानी

पंजाब की धरती के महत्व से ओत-प्रोत "मित्रो मरजानी" मानवीय मूल्यों पर गहरी आस्था प्रकट करता है । इसमें चित्रित प्रेम परंपरागत नहीं है । प्रेम का वासना रूप ही इसमें अभिव्यक्त है ।

यह उपन्यास पंजाब के एक मध्यवर्गीय परिवार की कथा पर आधारित है । गुरुदास और धनवन्ती का भरा पूरा परिवार है। उनके तीन लड़के हैं - बनवारी लाल, सरदारी लाल और गुलजारीलाल । सुहागवन्ती, सुमित्रावन्ती [मित्रो] और फूलवन्ती उनकी पत्नियाँ हैं। मझले लड़के सरदारीलाल की पत्नी है मित्रो । वह रूढ़ीग्रस्त परंपरा को नहीं स्वीकार करती है । भारतीय हिन्दू परिवार में परंपरा का पालन किये बिना जीना संभव नहीं है । उपन्यास की संपूर्ण कथा मित्रो को धुरी बनाकर घूमती है । अन्याय और रूढ़ियों से लड़कर आगे बढ़नेवाली मित्रो के रूप में लेखिका ने जिस निर्भीक दृढ वाचाल किन्तु कोमल नारी के चरित्र का निर्माण किया है वह हिन्दी साहित्य में अनूठा है ।

प्रस्तुत उपन्यास में मित्रो का व्यक्तित्व नये साँचे में ढला हुआ है । मित्रो के चित्रण के द्वारा कृष्णाजी ने उस नारी को प्रस्तुत किया है जो न प्रेम की बात सोचती है और न ही अपने व्यक्तित्व को नष्ट होने देती है । उसका प्रेम तो वासना में परिणित हो जाता है । हिन्दी साहित्य में मित्रो एक विवादास्पद नारी पात्र है जिसके बारे में कहा गया है "यह न तो रवीन्द्र की ओस जैसी नारी है, न शरत या जैनेन्द्र की विद्रोहिणी गृहिणी । इसे आदर्श का कोई मोह नहीं है । यह मात्र माँस मज्जा से बनी नारी है जिसमें स्नेह भी है, ममता भी, माँ बनने की हैंस भी और एक अविरल वासना सरिता भी । उसे न किसी आदर्श का मोह है और न समाज तथा ईश्वर का भय । वह नारी के सभी पुराने बिम्बों के खिलाफ एक नया आकर्षण है ।"[11] मित्रो का यह रूप नारी मुक्ति के अतिवादी स्वरूप का जीवन्त नमूना है ।

मित्रो का चरित्र

मित्रो का बचपन माँ के घर के विलासी वातावरण में बीता था । इसलिए ही उसमें यौवन की अमित प्यास भरी हुई है । फलत: पति पत्नी में सामंजस्य नहीं हो पाता । मित्रों रूढि ग्रस्त भारतीय कुलवधु के समान चुप बैठनेवाली नहीं है । दैहिक आवश्यकता को प्रकट करने में वह हिचकती नहीं । वह अपनी जेठानी से कहती है "सात नदियों की तारू, तवेसी काली मेरी माँ, और मैं गोरी चिट्ठी उसकी कोख पड़ी । कहती है इलाके के बड़ भागी तहसिलदार की मुहँदार है मित्रो । अब तुम्ही बताओ, जिठामी तुम जैसा सतबल कहाँ से पाऊँ लाऊँ ? देवर तुम्हारा मेरा रोग नहीं पहचानता । बहुत हुआ हफ्ते ... पखवारे ... और मेरी इस देह में इतनी प्यास है । इतनी प्यास कि मछली सी तड़पती हूँ ।"[12]

सरदारी लाल बीच बीच में मित्रो को पीटता है । लेकिन मित्रों सहमी होकर रोती नहीं । वह पति से क्रोध प्रकट करती है,—

और सास को भी घूरती हुई जवाब देती है । सरदारी की करतूत के बारे में सास कहती है "सुमित्रावन्ती इसे जिद चढी है तो तू ही आँख नीची कर ले । बेटी मर्द मालिक का सामना हम बेचारियों को क्या सोहे ।" यह सुनकर मित्रो की भूरी आँखों में और चमक आई और उसने एक दम बोल दिया "माँ जी बेटे की चिन्ता में तन न सुखाओ, इनकी करनी आप ही इसे काले पानियों भिजवाएगी ।"[13]

पति के साथ खुले व्यवहार करने में वह नहीं झिझकती । आधी रात मँझली की हँसी सुनकर ससुर हडबडा उठे और जाकर किवाड खुला तो वह देखते रह गये । मँझली बहू नंगी सिर बैठी चारपाई पर हिन-हिन हँसती थी और बडा लडका बनवारी छाती पर हाथ कसे खडा दाँत पीसता था । वह गरज उठे - सरदारी लाल तेरे होश ठिकाने है ? बहू से कह कपडा करो । और जाते जाते गुरूदास सिर हिला, हिलाकर कहने लगा - यह कलजुग है, कलजुग । आँख का पानी उतर गया तो फिर क्या घर-घराने की इज्जत और क्या लोक मरजाद ? मित्रो के इस भाव से चिढकर सास बडी बहू से कहती है "तेरी छोटी देवरानीके क्या रंग ढंग ? सगे संबन्धी दबे-दबे कहते थे, इस देश-दिशा का पानी अच्छा नहीं, पर मैं ही घर की दान देख भरम गई ।"[14]

मित्रो का यह निडर भाव आधुनिक स्वतंत्रता चेता नारी का है । आधुनिक नारी, जो नारी मुक्ति आन्दोलन के आदर्शों को अपनाने में तत्पर है । , आधुनिक नारी केलिए अपनी देहकी भूख जीवन को संतुलित करनेवाली वस्तु है । यह बात खुलकर किसी से भी कहने में मित्रो झिझकती भी नहीं । वह जेठानी से कहती है - "जिठानी, तुम्हारे देवर सा बगलोल कोई और दूजा न होगा । न दुःख सुख, न प्रीति प्यार न जलन प्यास बस आए दिन धौल धप्पा ... लानत मानत" कहते कहते एकाएक उनकी आँखों में कोई मद उतर आया । उसने गले की ओढनी उतारी । कुरता फिर सलवार उतार परे फेंक दी और हँस

हँस बोली बनवारी कहता है, मित्रो तेरी देह क्या निरा शीरा है शी ... रा ! उस नाग होने से कहती हूँ ... । अरे इसी शीरे में तेरी जान को डंक मारते सर्प की फौज पलती है ।"[15] कहकर माँझली फटाक बिछौने पर सीधी लेट गई । ऊपर कुछ ओढा नहीं । देख सुहाग के बदन सुइयाँ चुभने लगी । वह सोचती है इस कुलीरन की तरह जनानी को हया न हो तो नित-नित जूठी होती औरत की देह निरे पाप का घट है । मित्रो लेटी लेटी इतराई उठ बैठी । हाथों से छातियाँ ढँग मगन से कहा "सच कहना, जिठानी सुहागवन्ती, क्या ऐसी छातियाँ किसी और की भी है ।"[16] माँझली ने निर्लज्जता से बाँह फैला दी - मैं सदके - बलिहारी ! अपने जेठ की सती-सावधी नार पर । "जिठानी मेरे जेठ से कह रखना जब तक मित्रो के पास यह इलाही ताकत है मित्रो मरती नहीं ।"[17]

सरदारी के ठंढेपन की वजह मित्रो की माँ बनने की इच्छा पूरी नहीं होती । जेठानी गर्भवती होने के पश्चात् मित्रो अन्दर ही अन्दर टूट जाती है । सास उसे सहानुभूति जताती है । लेकिन मित्रो का जवाब - मेरे बस चले तो गिनकर सौ कोख जन डालूँ । पर अम्मा अपने लाडले बेटे का भी आड तोड जुटाओ । निगाडो उस पत्थर के बल में भी कोई हरकत तो हो । अम्मा तुम्हारे इस बेटे के यहाँ कुछ होगा मित्रो चूहडी के पोरों को धोवन पी अपना जन्म सफल कर लेगी ।"[18]

सचमुच सास की छाती पर बिना हथौडा मारे ही मित्रो ने कील ठोंक दी । जब धनवन्ती रात में उसे उपदेश देने को जागी तो वह बिना हिचक के पूछ उठी - सासूजी मेरे अगोचर ऐसी क्या आन पडी कि सोई पडी को जगा दिया ? फिर आँखों को चढा कर पूछा क्या दूध मलाई खिलाने आई हो माँजी ? सास जी ने उसे सहलाकर कहा तेरे भी गोद भर जाएगी एक दो महीना व्रती रहो । लेकिन उसने सास को व्यंग्य-भरा जवाब दिया - अपने कन्त से आनन्द पाने को महीना दो क्या मैं

पूरे चौबीस बरस व्रती रह लूँगी ।

परिवार की अन्य बहुएँ उसे स्वर्ग के बारे में बताकर मनमानी बर्ताव से हटाना चाहती है तो मुँह तोड जवाब देती है - "काहे का डर ? जिस बडे दरबारवाले का दरबार लगा होगा वह इनसाफी क्या मर्द - जाता न होगा ? तुम्हारी देवरानी को भी हाँक पड गई तो जग-जहन का अलबेला गुमानी एक नज़र तो मित्रो पर भी डाल लेगा । फिर जिठानी को चिढाने को कमान-से दो तेवर माथे पर चढा लिये और ठेंगा दिखाकर बोली-बस बस, जिठानी सुहागवन्ती । अपने भय भूत, डर धमकावे अपने ही पास रहने दो । वह जन्म-मरण का हिसाबी सयाना पादशाह तुम्हारा ही सगा सम्बन्धी नहीं, मित्रों का भी कुछ लगता है ।"[19]

हर भारतीय नारी के जीवन पर परंपरागत नैतिक मूल्यों का सहज ही बहुत बडा प्रभाव पडा रहता है । इन मूल्यों के शिकंजे से मुक्ति किये बिना नारी मुक्ति संभव नहीं है । मित्रो सामन्त सभ्यता और संस्कृति के नाम पर सदियों से नारी शरीर की नैसर्गिक इच्छाओं को बाँधे रखे पुरुष मेधा समाज केलिए एक चुनौती है । राजेन्द्र यादव के अनुसार मित्रों हिन्दी की अकेली कथा नारी है जो सदियों से नारी पर लादे गये संस्कारों संबन्धों, सुन्दर उपमाओं को ललकारती मुँह चिढाती और झुठलाती हुई अपनी मूलभूत ज़रूरत और ज़बान के साथ हमारे सामने आ खडी हुई है ।"[20]

मित्रो को अपने वैवाहिक जीवन में यौन तृप्ति नहीं मिली है । यौन संबन्ध शरीर की एक ज़रूरत और नारी-पुरुष आकर्षण से उद्भूत स्वाभाविक प्रवृत्ति है । लेकिन समाज ने इस भूख को अलग दर्जे का महत्व देकर अनेक प्रकार के नियंत्रण से संकुचित कर दिया है । मित्रो इस पारंपरिक नैतिक बोध से मुक्त है । प्राचीन भारतीय कुलवधु अपने जीवन में पतिव्रता धर्म को सबसे महत्वपूर्ण मानती हैं, लेकिन मित्रों को इस में विश्वास नहीं है । व्रतानुष्ठान के ज़रिये शरीर को शुष्क बनाने से

स्वर्ग हासिल होगा इस बात पर उसे तनिक भी भरोसा नहीं है । वह अपनी नैसर्गिक भूख से पीड़ित है । और यह बात सुनकर जेठानी, सास, माँ आदि से कहने में शरमाती, लजाती भी नहीं ।

इस दुर्दम काम वासना की पूर्ति हेतु वह सान्त्वना पाने और सलाह लेने के वास्ते माँ के पास जाती है । वह माँ से कहती है - "तुम्हारे जमाई से अच्छा बुरा बाँटने का मेरा तो ठेका नहीं ठहरा, बीबो, पर आज तू खुशी कर ले । .... बीबो मुझ गरीबनी से क्या होड ? तुम्हें तो नित नए रास-रंग और मित्रो बेचारी हर दिन अपने इसी एक निठल्ले के संग ।"[21] माँ सांत्वना देती हुई जवाब देती है - मेरी भोली मित्रो, मुझे तो अंग-अंग में प्यासी-तिहाई जापती है, फिर पुराने तमाशाई खिलाड़ियों की तरह आँखें घुमा पासा फेंका - अभी तो बुलाऊँ तेरी बगीची केलिए कोई माली ?" माँ से यह सुनकर मित्रों के मुँह में पानी भर आया । घरवाले का मान-गुमान सब उड़न-छू हो गए । सज़री आस पास से आँखें चमकने लगी । ओढ़नी तले दो पंछी मचलने लगे । और माँ पर आँख गड़ा हँसे से कहा आह हाय बीबो तुम्हारे मुँह गुलाब । पर घोड़े-से लदड तुम्हारे इस जमाई का क्या करूँ ?"[22] माँ केलिए यह बहुत आसान काम है, इसलिए कहा "यह झमेली तू छोड़ मुझ पर । अरी तेरी माँ खिलाड़िन ने बड़े बड़े बाग छका डाले ।"[23]

माँ बेटी का यह रिश्ता अनोखा है । सेक्स मुक्त अति आधुनिक नारी के रूप में ही दोनों का चित्रण किया गया है । यौन तृप्ति, अतृप्त स्त्री को इसका शमन करने में पर-पुरुष से बंधन सामाजिक रीति के खिलाफ है । लेकिन बेटी को खुश करने केलिए माँ उनको इस प्रकार का रिश्ता तय कर एक तरह से राडिकल बन जाती है ।

साज-सज से भरी मित्रो को देखकर सरदारी ने पूछा यह कजरियों वाला तेरा कैसा वेश ? लेकिन मित्रों डरती नहीं ... उसने गुस्सा जताकर कहा - "यह अपना घर नहीं, ढोलजानी, तुम्हारी टटल बटल नहीं कहीं

मेरी माँ के कानों जा पहुँची तो । आगे मित्रो ने दुगनी शोखी से कहा मनुख का चेला क्या बार बार गहिगा ? आज की रात बिसारे दो, ढोलन कि मित्रो तुम्हारी ब्याही परणाई है । फिर आँखों नचा घरवाले के नाक धुमा ली - बस आज तो यह समझो कि मित्रो सौगुर वाली लाली बाई है ।"[24]

स्वयं मित्रो के व्यक्तित्व में अन्तर्विरोधी परतें हैं । वह पति के प्रति सच्ची भी है, और नहीं भी, परिवार के प्रति सदय भी है और निर्मम भी । मित्रो सिर्फ उद्दाम औरत नहीं । इसमें परिवार के प्रति सहानुभूति ही नहीं दया और ममता भी भर पूर है । जब उसे मालूम हो जाता है कि अपने परिवार वालों का लाज कर्ज के कारण नष्ट हो जाएगा तब वह अपने आभूषण लेकर कर्ज उतारने का प्रयत्न करती है । वह आभूषण की थैली घरवाले के सामने रखकर बोली - यह दमड़ी दाँत परवान करो, लाल जी, कौन इस नाते के बिना मित्रो की बेटी कुँवारी रह जाएगी । अपवाद और आरोप पर वह मुँह तोड़ जवाब देती है । मित्रो चपल गर्वा किन्तु स्नेह प्रतिक्रिया नारी है । हँसी के आवरण में छिपी उसकी मर्मवेदना अधिक तीखी होकर उभरती है । मैं किस्मत जली क्या करूँ ? मेरा ढोल तो मुझसे बेमुख । मित्रो की सास उसकी जटिलता का सही मूल्यांकन करती है - इस लड़की का पार किसी ने नहीं पाया । अच्छी हो तो अच्छे से अच्छी और बुरी हो तो बुरों से भी बुरी । रो आए तो सभी हो अपना बचा - बचाया हाज़िर कर दे, रो आए तो ऐसी कौरवती कि घरवाले पर थू थू । .... क्या कहूँ .... बनवारी लाल, इस मुँह बोल नहीं जुड़ते ।"[25]

मित्रो समझती है कि नारी जीवन की सार्थकता अपनी देह को लुटाने में है । वह जीवन को पूर्ण रूप से भोगना चाहती है । केवल मित्रो में ही नहीं उसकी माँ में भी अतृप्त वासना व्याप्त है । माँ ने जीवन में अनेक पुरुषों के साथ बिस्तर बाँटा है और अपनी बेटी केलिये भी सारी तैयारी कर देती है । लेकिन हर दिन नये रास रचनेवाली माँ के प्रति

मित्रो के मन में घृणा होती है । मित्रो पुरुषों को अपनी ओर आकृष्ट कराना चाहती है । माँ उसे एक से बाँधा देखकर जल उठती है । वह अपनी बेटी को अपने प्रेमी के साथ रास रंग केलिए भेज देती है । मित्रो अपने बंधे पुरुष को छोड़कर अन्य पुरुष के साथ मौज करने में तैयार होती है, लेकिन माँ की वासनाओं की छाया बनकर अपनी भोग-कामना को खोना नहीं चाहती । उसकी एक मात्र शक्ति उसकी अपनी देह संपदा है, भरा यौवन है । यह सब होने पर भी उसका अपना अलग व्यक्तित्व भी है । अंत में वह अपनी वासनाओं को बचाये रखने में लगी है जिसके द्वारा उसका व्यक्तित्व बचता है । देह भोग के अपने जीवन दर्शन के अनुरूप जीने में वह व्यक्ति स्वातंत्र्य की आधुनिक निराली धारणा को चरितार्थ करती है । उसकेलिए सदा लड़ती भी है । मित्रो का चरित्र पारम्परित, पारिवारिक, नैतिक मान्यताओं को चुनौती देने में सफल है । मित्रों भले घर की भली बहू की धारणा को निरस्त करती ही नहीं साथ पुंसत्वहीन पति के अधिकार बल के सामने निडर भी रहती है ।

सोबती ने इस उपन्यास के मित्रो जैसी तेज़ हाड मांस से बनी नारी के द्वारा नारी की दैहिक आवश्यकता को सहज मानकर स्वीकृति दी है । मित्रों की माँ स्वयं अपनी विवाहिता बेटी की काम-तृप्ति केलिए अपनें प्रेमी की व्यवस्था करती है । माँ-बेटी का ऐसा संबन्ध - हिन्दी पाठकों को थोडा चौंकनेवाला ज़रूर है । डॉ॰ शंकर प्रसाद के मत में यौन संबन्धी शब्दों का उच्चारण करनेवाली मित्रो अपने में संकुचित रहनेवाली नारी नहीं बल्कि अपने को मुक्तांगना में स्वच्छन्द विचरण कर देनेवाली आधुनिक ग्रामीणा है ।"[26] नारी को संगमरमर की मूर्ति या मांस के दरिया के रूप में चित्रित करनेवाले साहित्यकारों के बीच इस प्रकार की निर्भीक औरत की सृष्टि बेजोड है और इसमें कृष्णाजी को पूरी सफलता मिली है ।

सूरजमुखी अँधेरे के

परम्परागत नारी चित्रण के विपरीत नारी मन का स्वतंत्र या स्वच्छन्द आलेखन कृष्णाजी की शक्ति है । इस उपन्यास में नारी जीवन की एक अछूती मनोवैज्ञानिक समस्या को निरूपित कर कृष्णाजी ने निश्चय ही एक साहस का काम किया है । 'मित्रो मर जानी' की मित्रो जहाँ जातीय जीवन की दृष्टि से अत्यन्त गरम है, वहाँ 'सूरजमुखी अँधेरे के' रविकता या रत्ती ने बरफ के ठण्डेपन को अपनाया है ।

आधुनिक स्त्री पुरुष के संबन्धों में निरन्तर द्वन्द्व की स्थिति बरकरार है । चर्चित उपन्यास एक आधुनिक कामकाजी अविवाहित औरत की कथा कहता है । रत्ती के जीवन में अनेक पुरुष आते हैं और चले जाते हैं । वह पुरुष की भोग्या या समर्पिता बनकर नहीं रहना चाहती । बल्कि अपना स्वतंत्र अस्तित्व कायम रखना चाहती है । बचपन में उसके साथ हुआ बलात्कार जीवन भर इसकेलिए निमित्त बनता है ।

यह अवांछित बलात्कार रत्ती के जीवन में अनेक समस्यायें उपस्थित कर देता है । सबसे बडी समस्या यह है कि उसकी वजह रत्ति "फ्रिजिड" या उत्तेजनाहीन हो जाती है । फलत: सारा जीवन एक "फटी जिन्दगी" बनकर रह जाता है । एक अत्याचारी निकम्मे पुरुष द्वारा किये हुए व्यवहार का बदला वह संपूर्ण पुरुष जाति से लेने की ठान लेती है । पुरुषों के प्रति, उसका भाव कठोर हो जाता है । असाधारण सुन्दरता एवं "स्मार्टनेस" के कारण वह पुरुषों को अपने मोह पाश में फसाकर अपनी ओर खींचती है और जब एकांत क्षणों में उसके बिलकुल पास आने के लिए छटपटाता है, तभी वह उन्हें बेसहारा छोडकर फरार हो जाती है । मानसिक स्तर पर यौन संबन्ध केलिए तैयार होने पर भी शरीर ठण्डा रह जाता है । वह सिर्फ एक चिथडा है । उसका तीखापन कडुवापन सब मर गये हैं । वह फीकी है । एक फीकी औरत । एक लडकी जो कभी लडकी नहीं थी । एक औरत कभी औरत नहीं थी ।

दर्जन से ज्यादा पुरुष रत्ती के पास आते हैं । लेकिन अंत में अपने को समझनेवाले सुधाकर के साथ वह शारीरिक संबन्ध केलिए कामयाब होती है ।

रत्ती का चरित्र

जैसे सूचित किया गया है रत्ती के मन में बचपन से ही घृणा जम गयी थी । घृणा का कारण अनजाने में अपने साथ किया गया अन्याय है । बलात्कार की शिकार होते वक्त वह नासमझ बालिका थी । पर जब भी उसे कोई गन्दी लड़की कहकर बुलाता या चिढ़ाता तो वह चिढ जाती थी, और उसे खूब मारती थी । कई बार स्कूल में और माँ-बाप के सामने उसकी शिकायत होती है ।

बचपन से ही अपने को बचाना, और अपनी हँसी उड़ानेवालों को सबक सिखाना वह खूब जानती थी । पाशी ने उसके साथ छेड़छाड़ की तो उसे गले से पकड़कर ज़मीन पर दे मारा । बार-बार पटक दिया कि पाशी न हो कोई पत्थर हो । भीड़ में से किसी ने रत्ती को अलग किया तो रत्ती ने जालिम आँखों से भीड़ को देखा और ठण्डे गले से कहा "फिर कभी ऐसा हुआ तो फाड़ डालूँगी । ... याद रखना अब छेड़ छाड़ की तो छोड़ूँगी नहीं समझे ।"[27]

रत्ती के कथन में ही उसकी निडरता और आत्मनिर्भरता दिखाई पड़ती है । जिस सड़क का कोई किनारा नहीं है - रत्ती नहीं है । वह आप ही अपनी सड़क का "डेड एण्ड" है । आखिरी छोर है । बहुत बार रौंदा है रास्ते पर पहुँचने की मंजिल न थी । फिर भी इन राहों पर चलना अच्छा है । रातों में किसी के पास न सोकर भी जीना अच्छा है । और भी अच्छा है इन पावों से चलना उतरना ।"[28]

वह समझती है कि प्यार होने पर शादी करने में बड़ों की इज़ाजत की ज़रूरत नहीं है । खान अंकल के बेटे आसद से उसे बेहद प्यार है

दोनों आपस में विवाह करना चाहते हैं। "एक दिन तुम्हारे मामा, मामा की इजाजत से .... मगर नहीं रत्ती उन्हें ज़रूर एतराज होगा। यह प्रस्ताव प्रेमी से सुनकर रत्ती ने प्रश्न किया "लाली पाँव की तरह क्या इस बात की भी इजाजत माँगने जाइयेगा आसद भाई। परन्तु आसद की मृत्यु के कारण उसका यह सपना, सपना ही रह जाता है।

बचपन का वह "बुरा काम" और आसद की मृत्यु का सदमा दोनों की वह शिकार बन गयी। इसलिए वह पूर्ण रूप से जवान होकर भी फ्रिजिड बनती है। उसके भीतर की नारी सुलभ कोमलता, भावनायें, सौकुमार्य सपने सब नष्ट हो जाते हैं। वह जड व शिलावत् हो गयी। उसके बहुत से दोस्त है - आसद जगतधार, रंजन, बाली श्रीपद, राजन, सुब्बा, वीरेश, मुकुल ओमी, दिवाकर आदि। अपने जीवन में कई पुरुषों से उसकी जान पहचान होती है, उनको तरसाती है, उनसे खिलवाड करती है, फिर बेकार चीज़ की तरह फेंक देती है। वह पुरुष मंडली में ठण्डी औरत के नाम से जानी जाती है। बाहर का यह कार्य उसे भीतर से और भी आतंकित, स्तब्ध बना देता है। रत्ती का यह चलन देखकर रीमा केशी से पूछती है "रत्ती की यह लडाई किससे है? केशी ने कहा किसी से नहीं रत्ती की खुद अपने से।

उसके संपर्क में आनेवाले सभी पुरुष उसके व्यवहार से निराश और हताश हो जाते हैं। यही उसकी विडम्बना है। इन सबके सामने पथरीली अहल्या बनकर वह रहती है, जो न पिघलती है, न टूटती है न छोटी होती है, न बडी। इस अमानवीय क्रीडा में उसे आनन्द आता है या नहीं, बता नहीं सकता। रत्ती अपने इस फटे बचपन के कारण अभिशाप्त हो इस विभीषिका में जलती है।

जैसे पहले ही सूचित किया रत्ती के जीवन में पुरुषों की कमी नहीं है। लेकिन किसी ने भी रत्ती को एक व्यक्ति के रूप में नहीं पहचाना। इसलिए उसका विद्रोह इनकार का रूप लेता है।

रत्ती जगत घर के कमरे में जाती है । वह समय का फायदा उठाना चाहता है । उसने रत्ती को घेर लिया और कहा "मीता है, पर मैं तुम्हें चाहता हूं .... तुम्हें रत्ती ।" रत्ती ने अपने को अलग कर दिया- जगत घर हम दोनों अच्छे दोस्त हैं, पर तुम और मीता ही एक दूसरे को प्यार करते हो ।"

अपने अस्तित्व को कायम रखने में वह हमेशा सतर्क रही । रंजन और रोहित दोनों उसके दोस्त हैं । दोनों रत्ती के साथ झगड़ा भी करते हैं । एक दिन रंजन से रोहित ने कहा पता नहीं तुम किस प्रकार इसे बरदास्त करती हो । रोहित रत्ती से अधिकार भाव से जब बातें करने लगा तो रत्ती ने धीरे से कहा - तुम मेरा गार्डियन नहीं हो .... तुम किसी भी दिन आज की सी बातें नहीं करोगे । मुझे किसके साथ कहाँ जाना चाहिए यह मेरे सोचने की बात है, किसी और की नहीं ।"[29] अगले दिन रोहित ने फिर रत्ती के पास आकर अपनी इच्छा प्रकट करता है - "मैं तुम्हें पाना चाहता हूं । यह सुनकर और रोहित की परेशानी देखकर सूखे गले से रत्ती ने कहा - पाने के लिए दोनों को एक दूसरे को चाहना होता है रोहित ।"[30] रोहित एकदम दिल से अपनी चाह को निकाल, फर्श पर फेंककर कहा - कौन चाहेगा तुम्हें ? तुम एक ठण्डी और मनहूस लड़की ।

रत्ती के जीवन भर पुरुष के प्रति आक्रोश भरा रहता है । समाज के ठेकेदारों ने जब उसे छेड़ा, ललकारा उसके सतीत्व को चुनौती दी तब उसने चंडी बनकर उनका सामना किया । रंजन और ओमी उसकी गैरहाज़िरी में यहाँ तक कहते हैं कि पहने हुए कपड़े के सिवाय तुम्हारे पास कोई गरमाहट नहीं । यह सब सुनकर वह पथरीली हो जाती है ।

बाली के बेटे की साल गिरह पर ओमी ने रत्ती को बुलाया । उस समय बाली कहता है "ऐ लड़की, यह क्या रंग ढंग तुम्हारे ... सीधे आँख उठाई और सामनेवाले के माथे पर ठोंक दी । लड़कियों की तरह

कुछ लजाना शरमाना सीखो । बातें बढाते हुए बाली ने रत्ती से पूछा यह तो बता लड़की, तू क्यों इतनी ठण्डी है ? हर बार रत्ती की छाती पर चोट पडती है और किसी पुराने बन्द किवाड को खटखटाती हो ।

डॉ॰ पारुकान्त देसायी ने सूचित किया है "जीवन के कटु सत्य का बेबाक चित्रण इस उपन्यास की प्रधान विशेषता है । रत्ती में एक सहज अनोखापन है और एक जालिम ठण्डापन भी । हर पुरुष उसके विषय में एक मृग तृष्णा पालता है और मोह भंग होने पर सोचता है कि वह औरत है भी या नहीं ? रत्ती पल पर जहर पीती है और अमृत की तलाश में घूमती है, पर उसे अमृत कहीं नहीं मिलता । सभी ओर से वही लैंगिक माँग मात्र मिलती है, उसके मन को छूने का प्रयत्न कोई नहीं करता ।"[31]

जगन्नाथ द्वारा साथ जीने का निमन्त्रण मिलने पर रत्ती सोचने लगी कि "मेरा जीवन एक लम्बी लडाई है । हर बार बाजी हार जानेवाली और हर बार हार न माननेवाली । हर बार अकेले जूझना । हर बार सिर उठा आगे देखना । हर मोड एक मोड पर भविष्य नहीं । भविष्य वह आँधी आनेवाला वक्त बना रहा जिसने रत्ती ने कभी साक्षात्कार नहीं किया । कुछ तो होगा .... कोई तो होगा जिसे मेरे इन्तज़ार है पर नहीं .... रत्ती का सिर्फ रत्ती का इन्तज़ार था ।"[32]

दर्पण देखकर वह खुद विचार करती है कि कितनी बार सुना कि इस देह में गरमाई नहीं आँच नहीं । कितनी बार सोचा वह ताप कहाँ है, वह आग जो इस जमे हुए को पिघला सके । कभी बेमटके तन में सुहानी आग उपजाती और सहज भाव बह-बह जाती उन कूल किनारों की ओर सबके होते हैं । सबको मिलते है । लेकिन यह पथरीली अहल्या चट्टान की तरह हर बार की टकराहट से न पिघलती है न टूटती है । न छोटी होती है न बडी ।

रत्ती ने राजन से साफ इनकार किया तो वह थर थर काँपने लगा - मुझे हमेशा शक था, तुम औरत हो भी कि नहीं'। रत्ती को मालूम हुआ कि श्रीपत की ओर से यह जिज्ञासा और आग्रह थी कि रत्ती में एक सहज अनोखापन है और एक जालिम ठण्डापन भी है। रत्ती समझ गयी कि श्रीपत सिर्फ एक व्यक्ति नहीं, एक पुरुष भी है और होने की स्थिति को सहूलियत से निभाना भी जानता है। श्रीपत में एक पुरुषोचित व्यवहार देखकर रत्ती उसे मन में पसन्द करने लगी। बाद में अपने घर में जाकर अपनी इच्छा जाहिर की तो रत्ती को मालूम हुआ यह भी सबके समान है। जब रत्ती ने इनकार किया तो श्रीपत कहता है तुम क्रूर और जालिम औरत हो। तुम जमे हुए अँधेरे की पर्त हो, जो कभी उजागर नहीं होगी।"

हर बार बाजी हार जानेवाली और हर बार हार न माननेवाली रत्ती अकेली जूझती आगे बढती है। उनके मन में यह आशा थी ..... कोई तो होगा जिसे मेरा इन्तज़ार है। दिवाकर जब उसे फोन पर बात करता है तो उससे कहता है कि "तुम ने अपने इर्द-गिर्द कँटीली तारें लगा रखी है। अन्दर खडे खडे बाहरवालों से कहा करती हो .... संभलकर इधर मत आना काँटे हैं काँटे। दिवाकर उससे चाह. भरे स्वर मे कहता है अपनी परिधि में आने दो रत्ति का। ऐसा कुछ नहीं चाहूँगा जो तुम न देना चाहो।"

आखिर उसे शैशव की ग्रंथि से मुक्ति मिलती है। वह अँधेरी पर्त दिवाकर के साथ संभोग में लीन होकर साक्षात्कार पाती है। उसकी मानसिक ग्रंथी दिवाकर नामक विवाहित पुरुष के द्वारा टूटती है और वह अपने आपको समर्पित करती है। उसे लगता है कि कहीं भी किसी भी रूप में जुडने के पहले उसे "नारी" बनना होगा। क्योंकि दिवाकर के पास रत्ती को खोज लेनेवाली नज़र थी। अब तक जिस केलिए वह तडपती रही भटकती रही वह सब दिवाकर में मिल जाते हैं। लेकिन उधर भी उसके

चरित्र का महत्त्व प्रकट होता है । साधारण स्त्री के समान उसे अपनाना वह नहीं चाहती । इसलिए वह कहती है - मैं जुड़े हुए को नहीं तोडूँगी । विभाजन नहीं करूँगी । मेरी देह अब प्रार्थना है दिवाकर ।"[33] अपनी कृतज्ञता अभिव्यक्त करती हुई वह कहती है "तुमने मेरा शाप धो दिया दिवाकर ।"

रत्ती की त्रासदी यही रही कि उसे किसी ने समझने की कोशिश नहीं की । वह इतनी संवेदनशील है कि वह दूसरे का घर उजाड़ कर अपना घर नहीं बसाना चाहती । वह इतनी साहसी भी है कि अपना संबन्ध गुमनामी के अँधेरे में रखने को तैयार हो जाती है । वह अपनेलिये कोई सामाजिक मान्यता नहीं चाहती । आधुनिक स्वतंत्र व्यक्तित्व संपन्न नारी अपने मन पसंद व्यक्ति के साथ जीने और रहने में हिचक नहीं दिखाती । उसे न समाज का डर है, न परिवार का डर ।

आज समाज में सेक्स के क्षेत्र में क्रान्तिकारी विचारधारा रखनेवाली नारियाँ हैं । वे सेक्स को नैतिक दृष्टि से नहीं देखती बल्कि शरीर और मनोविज्ञान की दृष्टि से देखती हैं । यह सेक्स-मुक्ति का बहुत बड़ा चरण है । रत्ती सेक्स की अनुभूति से स्वस्थ होती है । वह विवाह की सुरक्षा और आधार नहीं चाहती है ।"[34] बलात्कार की शिकार बननेवाली नारी पर समाज कलंक लगाता है, उसे दोषी ठहराता है, चाहे गलती उसकी नहीं हो तो भी । पुरुष हमेशा नारी की शरीर शुद्धि पर बल देता है, चाहे वह खुद मनमानी करता हो । इसलिए ही तथाकथित सामाजिक मूल्यों के प्रति स्त्री के मन में विद्रोह भाव जनमता है । यही विद्रोह पुरुष के सामने इनकार के रूप में प्रकट होता है ।

मानव जीवन में प्रेम और यौन विचार असभ्यता की बात नहीं बल्कि सभ्यता का रूप है । दोनों सीमित रूप में सभ्य समाज के संचालन केलिए अनिवार्य भी हैं । इसके बिना हमारे समाज का संतुलन बिगड़ जाएगा, कभी मानव पशु बन जाएगा । प्रेम और सेक्स की अनिवार्यता को

कृष्णाजी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से समझाया है । सेक्स के प्रति कृष्णाजी की दृष्टि निषेधात्मक नहीं है । सेक्स अब पाप बोध उत्पन्न करनेवाली क्रिया नहीं, एक वास्तविक और अनिवार्य आवश्यकता के रूप में स्वीकृत और समाहृत है । वह लेखक की कुंठा का चटखार नहीं, पात्रों की भौतिक और दैहिक अनिवार्य आवश्यकताओं की सहज माप है । औरतें अब औरतें हैं, वे झूठी सस्ती या वेश्या नहीं है ।"[35]

कृष्णा सोबती के उपर्युक्त वर्णित उपन्यासों में नारी मुक्ति आन्दोलन का प्रभाव ज़रूर पडा है । उनके उपन्यासों में इसका क्रमिक विकास भी हुआ है । राजेन्द्र यादव ने उनके उपन्यासों में विकसित होती आगे बढनेवाली एक "थीम" का संकेत किया है । सभी नारी मुक्ति आन्दोलनों का नीवाधार लक्ष्य भी पुरुष मेधा समाज में नारी की अलग हैसियत और व्यक्तित्व की स्थापना है । यह लक्ष्य सभी उपन्यासों में अभिव्यक्त है । सोष्यलिस्ट फेमिनिस्ट यह मानते हैं कि समाज में बुर्जुआ और मज़दूर का जो स्थान है वही स्थान परिवार में पुरुष और स्त्री का है । सामंती संस्कार स्त्री को केवल उपभोग की वस्तु और वारिश पैदा करनेवाली मशीन मात्र समझकर पुरुष की तनाशाही में उसे दबाता है । डार से बिछुडी की नायिका पाशो अपने ऊपर पुरुष के आधिपत्य को मौन होकर स्वीकार करती है । राजेन्द्र यादव बताता है "पाशो मानो व्यक्ति नहीं, चीज़ है, पशु है जिसे जो मन हो उठाकर ले जाये । जहाँ है वहाँ उसका घर संभाले बिस्तर गर्म करे और वंश चलाने केलिए सन्तान दे ।"[36] इसमें जातिवाद को नकारकर अपने प्रेमी के साथ भाग जातीपाशो की माँ वैयक्तिक स्वतंत्रता का इस्तेमाल करती नारी का उज्वल नमूना है ।

"मित्रो मरजानी में" मित्रो नारी के ऊपर लादी परंपरागत कुप्रथाओं, रूढियों के विरुद्ध हमेशा संघर्ष करती है । पति, सास, ससुर आदि के सामने निडर होकर खडी होती है और दैहिक भूख या यौन विचार को भी अभिव्यक्त करने में हिचकती नहीं है ।

आधुनिक नारी स्वतंत्र जीवन जीना चाहती है । हमारे संस्कार नर-नारी के संबन्ध को जन्म जन्मान्तर का अध्यात्मिकबन्धन मानते हैं । परंपरा पतिव्रता-धर्म का पालन कर एक-निष्ठ होकर जीना उसे सिखाती है । लेकिन आधुनिक युग में नारी-शिक्षा और पाश्चात्य देश में हुए नारी-मुक्ति-आन्दोलनों के प्रभाव के कारण आधुनिक महिलाओं के मन में विवाह संबन्धी परंपरागत धारणा में बदलाव आ गया है । आज उसके मन से पति-परमेश्वर का रूप गायब हो गया है, पतिव्रता-रूप को छोड़कर वह अधिकाधिक मानवी या व्यक्ति बनने की कोशिश कर रही है । शिक्षा, आर्थिक स्वावलंबन, नारी जागरण आदि के कारण वैवाहिक मूल्यों को नया आयाम मिला है । आधुनिकता का परिवेश, व्यक्तिवादी आदर्श आदि ने मिलकर रूढि ग्रस्त नारी जीवन को उलट फेर किया है । मित्रो और रत्ती दोनों इस प्रकार के ढाँचे में ढली हुई व्यक्तित्व संपन्न नारी है । मित्रो यौन तृप्ति केलिए पर-पुरुष को स्वीकार करने में तत्पर है ।

सूरजमुखी, अंधेरे के की नायिका बलात्कार से पीड़ित है । बलात्कार हिंसा का दूसरा रूप है - जिससे बलवान निर्बल को सताता है । मर्द हमेशा नारी को दबाने केलिए इसका इस्तेमाल करता है । बलात्कार के विरुद्ध औरतों का संगठन W.A.O.R. की अध्यक्षा बेट्टी लेकी के अनुसार बलात्कार नारी की स्वतंत्रता के हरण का प्रत्यक्ष प्रमाण है । वह यौनिक भोग नहीं यौनिक हिंसा है ।[37] रत्ती के माध्यम से लेखिका ने इस जुल्म के मनोवैज्ञानिक परिणाम को दिखाते हुए, उस जघन्य कार्य की नृशंसता को ही उजागरित किया है ।

विवाह नारी केलिए दो तरह अनिवार्य माना गया है - आर्थिक सुरक्षा और यौन तृप्ति । लेकिन रत्ती के जीवन के ज़रिये कृष्णा सोबती स्पष्ट करती हैं - इन केलिए शादी होने की ज़रूरत नहीं है । आधुनिक युग की देन है लेज़बियनिज़म और को-हाबिटाट । यह विवाह बन्धन के विरुद्ध है ।

सेक्स के बारे में उपन्यास में अभिव्यक्त विचार पश्चिम की नारी-मुक्ति के प्रभाव का परिणाम है । जैसे कहा जा चुका है वैवाहिक बन्धनों में बांधकर ही यौन-सुख की प्राप्ति हो सकती है । स्त्री का यह अभिमत नहीं है । वह अन्य राहों में चलकर नारी बनने केलिए तैयार हो जाती है । कतिपय संदर्भों में राडिकल फेमिनिस्टों ने पुरुष को स्त्री के दुश्मन की तरह देखा है । रत्ती के स्वभाव में भी इसकी झलक है । केट मिल्लट ने नारी मुक्ति केलिए स्वच्छन्द यौन भोग, वैवाहिक बन्धन का अस्वीकार आदि का जिक्र किया है । सोबती ने खुद अपने को पुरुषों के समकक्ष माना है । वे लिखती हैं जहाँ तक शरीर संरचना का प्रश्न है महिला व पुरुष हर हालत में भिन्न रहेंगे । किन्तु योग्यता के धरातल पर परखें तो नहीं समझती वे किसी तरह पुरुषों से कम पड़ती हैं ।[38]

उषा प्रियंवदा

कथा साहित्य को अन्तर्राष्ट्रीय आयाम देनेवाले कहानिकारों में उषा प्रियंवदा का नाम विशेष उल्लेखनीय है । उषा उन लेखिकाओं में है जिन्होंने ईमानदारी से आधुनिकता को स्वीकारा है । जीवन के यथार्थ और अनुभूत सत्यों को अभिव्यक्त करने में उन्होंने जिस साहस का परिचय दिया है वह सहज ही है । उन्होंने प्रामाणिकता के साथ अपने अनुभवों को रचनाओं में उतारने का प्रयास किया है। वर्जित सत्यों को भी साहस और सहजता के साथ प्रस्तुत करने की कोशिश भी हुई है ।

उषाजी ने आज के नारी जीवन की विसंगतियों पर सोचा, समझा और अपनी औपन्यासिक कृतियों में उन्हें आत्मसात भी किया । परिवर्तित संदर्भों, नई परिस्थितियों तथा उलझनपूर्ण मन:स्थितियों में नारी की साथ देने की प्रवृत्ति को उन्होंने उभारा है । और आधुनिक तथा परंपरागत संस्कारों के बीच जो सूक्ष्म द्वन्द्व है उन्हें भी सफलतापूर्वक चित्रित किया है । डॉ. किरणबाला अरोडा के अनुसार यद्यपि लेखिका अस्तित्ववादी

जीवन दर्शन से पूर्ण प्रभावित हैं जिसके फलस्वरूप उनके पात्रों में अनास्था भय और संत्रास बनाया रहा है, पात्रों में परिस्थितियों से उबारने का साहस भी नहीं है, फिर भी नारी की दुविधा और उसकी छटपटाहट का ऐसा सफल चित्रांकन अन्यत्र विरल है।"[39] प्रेम और सेक्स से मिले जुले सुन्दर चित्र उनके उपन्यासों में उभर आये हैं। इन चित्रों के माध्यम से लेखिका ने यह साबित किया है कि आज के युग में प्रेम की पवित्रता की अपेक्षा सेक्स पर ज्यादा बल दिया जाता है। इनकी प्रेम कहानियाँ परम्परागत रोमान्टिक बोध से छुटकारा पाने की दुविधा में हैं।

अमेरिका में रहकर अमेरीकी साहित्य पर शोधपूर्ण अध्ययन एवं अध्यापन के कारण उनका जीवनानुभव विस्तृत कहा जा सकता है जो पाश्चात्य देशों के प्रवाहों से प्रत्यक्षतः उन्हें प्राप्त हुआ है। इस व्यापक अनुभव का परिचय उनके लेखन से हुए बिना नहीं रहता।

अत्यधिक आधुनिक एवं आत्मनिर्भरता के कारण मिसफिट हो रही उच्च वर्गीय नारियों की उच्छृंखल प्रवृत्तियों पर भी उषा प्रियंवदा की विशेष लेखनी चली है। नारी के अन्तर्मन का स्पर्श कर उसकी मानसिकता एवं कुंठा को वाणी प्रदान कर उषाजी ने आज के समाज की एक महत्वपूर्ण समस्या को उजागर किया है। नारी जीवन को प्रधानता देते हुए आपने "पचपन खम्भे लाल दीवारें", "रुकोगी नहीं राधिका", तथा "शेषयात्रा" शीर्षक उपन्यासों का सृजन किया है।

<u>पचपन खम्भे लाल दीवारें</u>

"पचपन खम्भे लाल दीवारें" उषा प्रियंवदा का प्रथम लघु उपन्यास है। उनके संपूर्ण कथा-साहित्य में व्याप्त नारी-स्वतंत्रतावाद को इसमें एक विस्तृत आधार मिला है। मध्यवर्गीय परिवार, उनकी बढ़ती आर्थिक कठिनाइयाँ तथा पुरुष के साथ उन्हें झेलती हुई नारी का चित्र, यथार्थ की ज़मीन पर प्रस्तुत किया गया है।

उपन्यास की नायिका सुषमा सुन्दर और शिक्षित है । वह परिस्थितियों के भँवर-जाल में उलझी हुई एक इकाई है । वह कोलेज के महत्वपूर्ण पद को सम्भाली हुई है । किन्तु अकेलेपन की अनुभूति उसे हमेशा व्यथित करती है । सुषमा के चारों तरफ दीवारें है, दायित्व की, कुण्ठा की, अपने पद की गरिमा की और परिवार की । पारिवारिक बोझ के कारण वह शादी नहीं कर पाती । उसके सूनेपन का साथी बनकर नील उसके जीवन में प्रवेश करता है । उसके मन और शरीर में एक नयी चेतना का संचार होने लगता है । वह नील को अपनाना चाहती है । लेकिन बाद में उसकी व्यवहारिक बुद्धि उसे रोकती है और वह नितान्त अकेली ही जीती है।

सुषमा का चरित्र

सुषमा कोलेज के वार्डन और अध्यापिका है । वह उपर से देखने पर अपरंपरागत लगती है, परन्तु अन्तर्मन से परम्परा का पालन करनेवाली है । अकेले बैठकर वह कई बार सोचती हैकि यदि प्रतिकूल परिस्थितियों की वजह उसका विवाह न टाल गया होता तो आज उसके भी सब कुछ होते एकान्त शामों का साथी, घर मोटर, बच्चे । विगत जीवन की स्मृतियाँ उसे आन्दोलित करती हैं । वह नील से मिलकर प्रसन्न होती है । नील को वह अच्छी लगती है इस विचार से उसके अहं को संतृप्ति भी मिलती थी । जीवन में पहली बार उसे उन खोये हुए सालों का गम एक साथ महसूस होता है । पर फिर अनायास उन मोहक मादक बहाव में बहने लगती है ।

स्वतंत्रता-प्रेमी सुषमा अपनी बातों में किसी की परवाह नहीं करती । मिस पुरी तथा मिसा शास्त्री उसे बदनाम करने में किसी प्रकार की कमी नहीं बरती तो वह निर्भीक मुँह तोड जवाब देती है - "मैं किसी की परवाह नहीं करती । जब मीनाक्षी ने कहा तुम्हें छात्राओं के सम्मुख एक उदाहरण प्रस्तुत करना है तो उसने जवाब दिया - तो मैं

अपना काम ठीक करती हूं । मुझसे किसी को शिकायत नहीं है, फिर मेरे व्यक्तिगत जीवन में किसी को दखल देने का क्या हक है ? मैं वार्डन हूं, इसका मतलब यह तो नहीं है कि मैं हर समय गांभीर्य का नकली रोल चढाए रहूं ।"[40]

अपने जीवन की एकरसता से उकताई गई सुषमा की आंखों में नील के सान्निध्य के कारण ताजगी आ जाती है । अपने हर दिन के काम निबटाते हुए सुषमा के मुख पर आत्मविभोरता झलकती है । उसके हृदय में एक अलग झरना फूट पडा था जिसके जल मे वह सदा सिंचित रहती थी । इसलिए मीनाक्षी के कहने पर वह अचानक टूट पडी और कहा - "तुमसे एक प्रार्थना है कि अब मुझसे कभी न कहना और लोग मेरे लिए क्या कह रहे हैं ।"[41] सुषमा का यह निडर भाव आधुनिक स्वतंत्रतावादी नारी का है, जो साथी, परिवार, समाज, आदि को अपने व्यक्तिगत मामले में दखल करने नहीं देती ।

नील उसे प्रिय था, उसने यह बात स्वीकार कर ली थी । वह कहानियों की उस शापग्रस्त राजकुमारी की भांति थी, जो नील के स्पर्श से जाग उठी थी । सुषमा ने आश्चर्य से अपने व्यक्तित्व का जन्म होते देखा । लेकिन वह कभी भी अपनी जिम्मेदारियों से भागती नहीं है । वह बहुत ही कर्तव्यपरायण लड़की है । अपने घर की हालत उसे पता है । अपनी शादी की बातचीत के संदर्भ में वह मौसी से कहती है - पर इन सबको तो मदद की ज़रूरत है मौसी । पिताजी को पेंशन मिलती ही कितनी है ? उसमें तो दो वक्त दाल-रोटी भी न चले । मैं अगर न करूं तो किसके आगे हाथ फैलाएगी ।"

कई बार अपनी मां के इस रवैये से वह स्वयं उपेक्षित महसूस करती है । सोचती है "सो तो ठीक है, पर मेरा कहना है कि अपनी भी कुछ फिक्र करनी चाहिए ।"[42]

किसी तरह की बेईमानी वह पसंद न करती । इसलिए होस्टल की सुविधा से कुछ बनवाने की बात पर माँ से वह कहती है "अब यही तो सिखाओगी अम्मा, बहुत कुछ किया जिन्दगी में, यह बेईमानी नहीं की, लगता है तुम्हें बाल-बच्चों की खातिर यह भी करना पड़ेगा और आगे कहा - मैं कुँवारी रह गई तो कौन-सा आसमान फूट पड़ा । इन दोनों की भी अगर शादी न हो सकी तो क्या हो जाएगा ।"[43]

माँ कभी कभी उसे चेतावनी देती है - तुम फिजूल खर्च करती हो, जरूर हाथ दबाकर खर्च किया करो, नीरू की शादी भी तो करनी है यह सुनकर सुषमा ने तिक्त स्वर में कहा - पहले शादी तो तय करो वक्त आने पर रुपया हो ही जाएगा । और मन ही मन में कह उठी कुछ मेरी कर दी कुछ नीरू की कर देंगी ।"

आधुनिक शिक्षित नारी अब आर्थिक दृष्टि से पिता, या भाई पर निर्भर नहीं है, बल्कि कई बार परिवार में ज्येष्ठ पुत्र के न रहने पर उसे ही अपने परिवार का बोझ उठाना पड़ता है । उम्र का एक दौर तो यौवन सुलभ आदर्शवादी भावुकता में गुजर जाता है, परन्तु माता-पिता के काल कवलित हो जाने पर, साथी संगियों के आगे निकल जाने पर निर्मम एकाकीपन का अजगर समूचे अस्तित्व को निगलने लगता है ।

मनुष्य सातत्य चाहता है । हम अपनी वृद्धावस्था में अपने युवा पुत्र-पुत्रियों पोता-पोतियों या नातियों में अपने मन को रमा लेते हैं । परन्तु वह नारी जो किसी भी कारण से अविवाहित रह गई है, अपनी उत्तरावस्था में घुटन, पीड़ा एवं संत्रास की अंधेरी अन्तहीन सुरंग से गुजरती है । "वह महज एक कैक्टस का पौधा" बनकर रह जाती है।"[44] शनै: शनै: उसके भीतर स्निग्धता, कोमलता, सरसता सूखने लगती है और उस रिक्त स्थान में कर्कशता, कटुता भरने लगती है । सुषमा अभी इस स्थिति तक नहीं पहुँची, पर टूटने की शुरूआत हो गई है । वह अपने भयंकर भविष्य की परछाइयों को भाप चुकी है । सहेली मीनाक्षी ने उसे

समझाया कि सुषमा इस प्रकार मुट्ठियाँ खोलकर अपनी निधि को लूटते देखते रहना चाहती है । तुम्हें आत्म-पीडन से क्या सुख मिलता है ? तुम्हें जीवन में जो कुछ मिल रहा है उसे स्वीकार क्यों नहीं कर लेतीं । लेकिन सुषमा जवाब देती है - पैंतालीस साल की आयु में मैं भी एक कुत्ता या बिल्ली पाल लूँगी उसे सीने से लगा रखूँगी ... आज से सोलह साल बाद शायद तुम अपनी बेटी को लेकर इस कालेज में आओ तब भी तुम मुझे यही पाओगी । कालेज के पत्थर खम्भों की तरह स्थिर अचल ।"[45]

जब उसके सामने उसके अस्तित्व का प्रश्न उपस्थित होता है, तभी वह उसके सुहावने स्वप्न से बाहर निकलती है । नील चाहता है कि सुषमा उससे शादी कर ले । लेकिन सुषमा इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं कर पाती । उस समय वह जीवन से समझौता करके अपनी निर्मम नियति को मन ही मन स्वीकार कर लेती है ।

सुषमा प्यार केलिए सब कुछ बलि देने केलिए तैयार है । जब होस्टल की लडकियों ने उसके कमरे में झाँका तो उसके स्वाभिमान को ठेस पहुँची । इसलिए भौरी को भेजकर नील को बुलाया । नील आते ही उससे कहा - "मैं किसी की परवाह नहीं करती मुझे ... दुख यह है नील कि मैं ने इन लडकियों केलिए कितना किया । .... तुम्हारे सामने मैं क्यों इतनी विवश हो जाती हूँ, मैं सब भूल जाती हूँ, वह भारी पीडा और भारी कचोट मेरा मन इन सबसे कहीं दूर, दूर जाने को होता है थक गई हूँ ।"[46]

सुषमा में स्वाभिमान कूट-कूट कर भरा हुआ है । सुषमा सुनील के साथ जाने में राजी हो गयी थी । सुनील की जिन बाहों ने उसको घेर लिया था उससे उसे बडा सहारा सा मिला । लेकिन सुषमा ने थरथराते स्वर में उससे पूछा "तुमने कभी यह भी सोचा नील कि मैं तैंतीस साल के बाद भी अछूती और बेदाग तुम्हारी बाहों में कैसी आयी । उसके जीवन के कई ऐसे पहलू है, जिनके बारे में उसने सुनील तक

को भी नहीं बताया । उसके जीवन की काली छाया से दूसरों को भी नहीं बताया । उसके जीवन की काली छाया से दूसरों को भी ढक लेना वह नहीं चाहती थी । वह नील से इतना कहती है "पर नील पिछली ग्यारह सालों से मैं जिन्दगी से निरंतर लड रही हूं । ... मैं यह जताना चाहती थी कि यह नौकरी मेरेलिए बहुत कीमती है । निर्धन मैं भले ही रही होऊं, पर स्वाभिमानी भी बहुत रही । जीवन में कभी कभी ऐसे अवसर भी आये जब कि मैं अपने कोमल शरीर से धन और आराम पा सकती थी । पर वह मैं ने स्वीकार नहीं किया । एम.ए. पास करने के बाद मैं ने एक प्राइवट कालेज में नौकरी की । वहाँ के सेक्रेटरी किसी वस्तु का प्रलोभन नहीं दिया मुझे, पर मैं ने वह नौकरी छोड दी ।"[47]

पहली नौकरी छोडने पर माँ का गुस्सा बढ गया था । सब कुछ सोचकर उसके मन में सारे अन्याय के खिलाफ प्रतिशोध करने की भावना उमडती है । इसलिए वह नील से कहती है नौ साल से मैं इस कालेज में हूं नील पर यहाँ लोग किसी को जीने नहीं देते । इसलिए मैं तुमसे कह रही थी कि मेरी जिन्दगी खत्म हो चुकी है । मैं केवल साधन हूं । मेरी भावना का कोई स्थान नहीं । विवाह करके परिवार को निराधार छोड देना मेरेलिए संभव नहीं । मैं ने अपने को रोजी जिन्दगी केलिए ढल लिया है । तुम चले जाओगे तो मैं फिर अपने को उन्हीं प्राचीरों में बन्दी कर लूंगी ।"[48]

दुबारा नौकरी पाकर उसे लगा कि तूफान से बचकर उसकी जीवन-नौका एक शान्त बन्दरगाह पर आ पहुँची है । उसका विचार है हरेक का जीवन एक ऐसा अनुलंघनीय दुर्ग है, जिसका अतिक्रमण करना किसी का अधिकार नहीं है ।"[49]

सुषमा आधुनिक एवं व्यावहारिक औरत है । वह नील से पाँच साल बडी है । नील के बहुत बार आश्वासन देने पर भी वह उसकी बात नहीं मानती । वह मीनाक्षी से कहती भी है "प्रेमिका और पत्नी में

बहुत फर्क है । फिर मैं यह नहीं चाहूँगी कि नील के मन में कभी भी यह विचार आये कि उससे गलती हुई है । और बाद में वह नीलू से भी कहती है - "कभी तुम भावावेश में किये गये इस निश्चय पर पछता उठे तो ... तुम्हारी आयु ही क्या है ? मैं तुमसे इतनी बडी भी तो हूँ नील । हमारा विवाह कभी सफल न होगा । सदा यह विचार उठता रहेगा कि कही कोई बहुत छोटी, बहुत सुन्दर लडकी मुझसे तुम्हें न छीन ले ।"[50]

नील से विवाह न करने का प्रमुख कारण कुछ और ही है । लेखिका ने उन सभी सामाजिक व मानसिक कारणों को बताया है, जो उसके निर्णय को न्यायोचित ठहराते हैं । नील होस्टल में चर्चा का विषय बन चुका था । बात प्रिंसिपल तक पहुँची । प्रिंसिपल ने उससे अपने आप इस्तिफा देने को कहा । अन्यथा नील से कोई संबन्ध न रखे । यह सुनकर उनका अंग प्रत्यंग सुन्न हो जात हैं । आँखों के सामने जिम्मेदारियों की बोझ एक ओर है तो दूसरी ओर प्रेमी सुनील । वह सिर झुकाकर कन्धों पर न जाने कितना भार लिये आफीस से निकल आई । घर आकर वह रोई नहीं । बैठकर सूनी दीवारों को ताकने लगी - "नहीं मैं रोऊँगी नहीं" मैं यहाँ से चली जाऊँगी, कहीं और नौकरी कर लूँगी पर नील को अपने जीवन से दूर कर देना मेरे वश का नहीं ।"

बाद में उसकी व्यावहारिक बुद्धि जाग उठी । इसलिए वह नील से अपना कोई भी संबन्ध न करने का निर्णय लेती है । नील ने जब उससे शादी करने और नौकरी छोडने की बात की तो वह पूछती है "क्यों ?" नौकरी छोडकर और क्या करूँगी ? और क्या मैं .... मैं आई कान्ट मैरी यू , तुम जानते हो नील ... पहली बात तो नील यह है कि मेरी बहुत जिम्मेदारियाँ हैं । तुम से तो कुछ छिपा नहीं है । पक्षाघात से पीडित बाबू, दो बहनें, और भाई, सब मुझे ही करना है ।

सुनकर नील ने कहा "वे जिम्मेदारियाँ मेरी भी होंगी जैसा होता आया है । उसका स्वाभिमान उस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं कर पाता । इसलिए वह पूछती है मैं यह कैसे कर सकूँगी ? इतना भार मैं कैसे इन कंधों पर रख सकूँ । यह कालेज के ये खम्भे, मेरी डेस्टिनी है, मुझे यहीं छोड दो ।"[51]

और भी कितनी बातें ऐसी थीं कि वह नील को नहीं समझा पा रही थी । अगले साल उसका सीनियर ग्रेड में आ जाने का मौका था और वह प्रिंसिपल से मनमुटाव नहीं करना चाहती थी । सीनियर ग्रेड में आकर उसका वेतन एक दम सात सौ रूपये हो जाता और वार्डन शिप का भत्ता मिलाकर उसे आठ सौ रूपये मिलते । यह सुनकर नील ने कहा "मुझे लगता है सुषमा, कि तुम्हारा, परिवार तुम्हारा "अन्डयू" "एडवेन्टज" लेता है । तुम्हारे भाई बहन तुम्हारे माता पिता की जिम्मेदारी है, तुम्हारी नहीं ।[52] सुषमा का यह अन्तिम फैसला सुनकर नील ने कहा तुमने अपने ऊपर जो प्राइसलिस्ट चिपका रखी है, इतना सब देने को मेरे पास नहीं है ... लेकिन उसे नील की बातें पसंद नहीं आयी । इसलिए वह पूछती है "तुम कैसी बातें कर रही हो नील ।" सुनील को भी मालूम हो गया प्यार से बढकर उसमें व्यावहारिक बुद्धि ज्यादा है । इसलिए सुनील उसे उधर छोडकर कहता है - ठीक है तुम यहीं रहो इन पचपन खम्भों में बन्धी होकर । मैं तुम्हारे बहकावे में आ गया था । मैं सोचने लगा था कि तुम्हारेलिए मैं ही सबकुछ बन गया हूँ । मैं ने अब जाना कि तुम्हारे पास खूबसूरत चेहरे के अलावा एक बहुत व्यावहारिक बुद्धि और अपना भला समझनेवाला दिमाग भी है ।[53]"

सुषमा का पूरा व्यक्तित्व स्वस्थ है । वह अपनी जिन्दगी के निर्णय स्वयं लेती है तथा उनके परिणाम भी सहती है । सुषमा की स्थिति हमारे मध्यवर्गीय समाज का आकलन मात्र है । आज भी समाज में सुषमा जैसी अनेक नारियाँ मिलती हैं जो पारिवारिक प्रतिबद्धता में अपने वैयक्तिक सुख का बलिदान दे देती हैं । वह नील से विवाह करके नौकरी कर सकती थी, पर यह बात उसकी जैसी आधुनिक शिक्षित नारी

के स्वाभिमान के प्रतिकूल हो जाती । अत: सुषमा की परिणति किसी आदर्शवादी दृष्टि से बढ़कर यथार्थवादी जीवन दृष्टि का ही परिणाम है ।

इस उपन्यास में उषा जी ने भारतीय नारी के आन्तरिक संत्रास एवं स्वावलंबी चित्र उकेरा है । आधुनिक नारी स्वावलंबी है । अपने और अपने परिवार केलिए वह कोई प्रेमी या पुरुष का पैर नहीं पकड़ती । इसमें उषाजी ने सुषमा के माध्यम से समाज के सामने यह मिसाल पेश की है कि आज नारी मानसिक परतंत्रता से ग्रसित नहीं है । लेकिन उसकी यह मजबूरी है कि स्वतंत्र होने पर भी पारिवारिक दासता को वह नहीं छोड पाती । प्रस्तुत उपन्यास आधुनिक सभ्यता पर व्यंग्य है । आधुनिक सभ्यता भी उसी तरह खोखली है जिस तरह इस उपन्यास की नायिका का जीवनादर्श । उपन्यास स्वतंत्र भारत की संघर्षरत मध्यवर्गीय नारी का चित्रण करने में समर्थ है । वह स्वयं अपना निर्णय ले सकती है । शायद यह निर्णय परिस्थितिवश ही क्यों न हो । नारी अपना व्यक्तित्व खोज रही है । यह व्यक्तित्व केवल शादी-शुदा होने से नहीं शादी किये बिना भी अपने जीवन को आगे बढाने की रीति आधुनिक प्रगति शील नारी में पायी जाती है । इसकी ज्वलंत मिसाल है सुषमा । उसे अपने सामाजिक और आर्थिक जीवन में नये आयाम खोजने है । हालांकि नौकरी पेशा नारी आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी होकर भी पुरुष की आश्रिता है । नारी जो कल तक घर की चाहर दीवारी तक ही सीमित थी या जो केवल {पिता,पति,पुत्र} केलिए मात्र बोझ समझी जाती थी, आज अपने पैरों पर खडी होती जा रही है । यह भी नहीं, कई मध्यवर्गीय परिवारों की युवतियां संपूर्ण परिवार के भार को स्वयं ढो भी रही हैं । आज के समाज की इसी बदलती दिशा और नारी-मनोवृत्ति को लेखिका ने चित्रित किया है ।

खुद अविवाहित रहने का निश्चय भी उसके स्वतंत्र अस्तित्व की मिसाल है । वह व्यावहारिक औरत है । जिस प्रकार पुरुष अपने परिवार की परवरिश करता है, उसी प्रकार अपना दायित्व समझकर

वह परिवार का बोझ उठाती है । यह परंपरागत धारणा है कि नारी होने के नाते पारिवारिक शिकंजे में उसे रहना है, पत्नी, माँ, आदि पद को अलंकृत करना है । लेकिन सुषमा इससे भिन्न धारणा रखती है । इस दृष्टि से उसका चरित्र क्रान्तिकारी है ।

रुकोगी नहीं राधिका

"रुकोगी नहीं राधिका" में भी नायिका को ज्यादातर महत्व दिया गया है । नायिका राधिका सुषमा की तुलना में तेज़ और चुस्त है ।

राधिका की माँ की मृत्यु के बाद वह पिता के साथ रहती है । उसके पिता अठारह वर्ष एकाकी जीवन व्यतीत करने के बाद विवाह करते हैं । राधिका यह सह नहीं पाती । विमाता विद्या के आने के बाद वह अकेलापन महसूस करने लगी । इससे मुक्ति पाने केलिए और पिता से प्रतिरोध करने केलिए राधिका विदेशी पत्रकार डैन के साथ भारत छोड़कर चली जाती है तथा वहाँ नौकरी करती है ।

अमेरिका में पहले तो एक साल वह डैन के संरक्षण में रहती है परन्तु जब दोनों के संबन्ध में तनाव आ जाता है तो वह उससे अलग होकर अपनी कलात्मक संभावनाओं को विकसित करने का प्रयत्न करती है । इस प्रकार ढाई साल पढाई और नौकरी करने के बाद वह इतनी थक जाती है कि भारत लौटकर कुछ दिन तक आराम करना चाहती है ।

वह भारत वापस आती है । लौट आकर वह पारिवारिक संबन्धों को निभा नहीं पाती और दिल्ली चली जाती है । उधर अक्षय, मनीष आदि से उसका परिचय होता है और वह इस दुविधा में पड़ती है कि अक्षय व मनीष में से किसे स्वीकार करे । अन्त में वह मनीश को अपनाती है ।

राधिका का चरित्र

राधिका सचमुच दुविधाग्रस्त है । उपन्यास में राधिका के उन्मुक्त व्यक्तित्व को पूर्णत: स्पष्ट किया गया है ।

राधिका अपने जीवन के हर मोड पर स्वतंत्रता चाहती है । लेकिन इस दिशा में पहला आघात उसे अपने पापा से ही प्राप्त होता है । माता की मृत्यु के बाद राधिका अपने पिता पर पूर्ण अधिकार चाहती है । वह उसके व्यक्तित्व से अभिभूत है । तभी उसके पिता उससे भी उम्र में थोडी बडी विद्या से विवाह कर राधिका के मन में ग्रंथी उत्पन्न करते हैं।राधिका पिता का साथ छोडकर उसे दु:ख पहुँचाना चाहती है । पापा विरोध करता है और राधिका पापा से अपने व्यक्तिगत स्वतंत्रता केलिए लडती है । वह पापा से कहती है "आखिर लीक पकडकर चलना पापा ने ही सिखाया था ।"[54] वह पापा से खुलकर कहती है - "जो आप चाहते हैं वही, हमेशा क्यों हो ? क्यों मेरी इच्छा कुछ भी नहीं है ? मैं आपकी बेटी हूँ, यह ठीक है, पर अब मैं बडी हो चुकी हूँ और मैं जो चाहूँगी वही करूँगी ।"[55]

जीवन भर अपनी वैयक्तिकता को कायम रखने में वह सतर्क है । विदेशी पत्रकार डैनियल पीटरसन के संपर्क में वह अमेरिका जाती है । अमेरिका में डैन के मित्रों के बीच राधिका सब कुछ भूल जाती है । जीवन के एक नये अध्याय की शुरुआत पर वह उल्लसित थी । किन्तु वह डैन से विवाह नहीं कर पाती । डैन से राधिका जो प्रतीक्षा करती थी वह उसे नहीं मिला । शायद इसका दोष स्वयं राधिका पर है जिसको डैन उसे मुक्त करते वक्त सूचित करता है - "···· तुमने कभी, एक क्षण केलिए भी प्यार नहीं किया । राधिका तुम मुझमें अपने पिता ढूँढ रही थी, वही पिता जिसे त्रास देने केलिए तुम मेरे साथ चली आयी थी । पर मैं ने तुम्हारे पिता की जगह स्थापित नहीं होना चाहा, मैं तो स्वतंत्र

व्यक्ति हूं । .... और मैं तुम में अपना खोया हुआ यौवन ढूंढ रहा था । अपनी पत्नी को छोड़कर चले आने की कड़वाहट धोना चाहता था, पर शायद हम दोनों सफल नहीं हुए ।"[56] वह राधिका को स्वतंत्रता देती है, कहीं रहने और कहीं जाने की । वह फिर कहता है "तुम्हें नयी तरह से एडजस्ट करने में समय लगेगा । मैं तुम्हें रिजेक्ट नहीं कर रहा हूं, मुक्त कर रहा हूं । मैं तुम्हारे प्रति कृतज्ञ हूं कि तुमने अपने युवा जीवन का कुछ समय मुझे दिया । तुम बड़े होने की चेष्टा करो और जीवन से भागो नहीं, उसे दोनों हाथ फैलाकर ग्रहण करो ।"[57]

राधिका जीवन से पलायन करनेवाली नहीं है । ज़िन्दगी में जो कुछ उसे मिलता है उसे वह स्वीकारती है । उसे कोई डर नहीं है । डैन से तिरस्कृत होने पर "पर मेरा क्या होगा" यह प्रश्न बार बार उसके ओठों तक आ जाता है पर वह चुप रही । डैन के घर से चले जाने में राधिका के मन में यह भाव था कि "लो मैं ही तुम्हें छोड़कर जा रही हूं । दुःख, खेद, क्षोभ, खींच, रुलाई, आत्म भर्त्सना का एक भारी ढेर हृदय पर रखा हुआ था और ओठ भींचे हुए ।

एक बार जब डैन उसे "हिम कन्या सी जमी हुई और संगमरमर प्रतिमा" कहकर चिढ़ाता है तब भी राधिका एक कचोट के साथ समझ जाती कि "इससे अधिक वह और कह भी क्या सकता है ।"[58]

डैन के चले जाने के बाद वह प्रायः सोचती रही कि उसे कोई भी पुरुष आकर्षक क्यों नहीं लगता । उसे कोई भी पुरुष पिता के सम्मुख नहीं जँचेगा । उसके मन से डैन और पिता के प्रति घृणा धुल गयी । वह डैन के प्रति कृतज्ञ हो गयी कि डैन ने ही आँखों में उँगली चुभाकर हर चीज़ हर सत्य को सही परिप्रेक्ष्य में देखने को बाध्य किया । वह साधारण सी नारी की तरह रोना-कलपना या पाँव पकड़कर जीना नहीं चाहती । एक वर्ष बाद वह भारत वापस आ गयी ।

राधिका सुन्दरी है, वह आकर्षणीय भी है, मेधावी होने के कारण उसका व्यवहार सहज है और उसमें बेहद आत्मविश्वास भी है। देश लौटने के पश्चात् राधिका अक्षय के प्रति थोडी झुकती है, क्योंकि पश्चिम के जीवन तथा डैन के अनुभव से वह स्वच्छन्द यायावरी "प्लेय बॉय" टइप के व्यक्तियों से दूर रहती है। जीवन में सुरक्षा और स्थायित्व की प्राप्ति केलिए उसे अक्षय अनुकूल ज्ञात पड़ता है। परन्तु अक्षय जहाँ एक तरफ उसके मोहक व्यक्तित्व से उसके प्रति आकर्षित है, वहाँ वह उसके अतीत के प्रति शंकाशील भी है। उसके पुराने संस्कार उच्छिष्ट को स्वीकार करने में हिचकते हैं। राधिका का मनीश के साथ घूमना-फिरना उसके सन्देह को और भी बढा देता है। यही कारण है कि वह कलकत्ता जाकर राधिका को एक प्रकार से भुला देता है। एकाधिक बार वह राधिका के सम्मुख सांकेतिक भाषा में विवाह-प्रस्ताव भी रखता है। मनीश ने उससे पूछा "यह अक्षय ?" राधिका जवाब देती है "केवल एक मित्र इन्होंने मेरी बडी सहायता की है, बहुत देख भाल भी करते हैं। राधिका का जवाब सुनकर मनीश ने आगे कहा "तो तुम्हारा वह चारित्रिक पार्टन नहीं बदला। मित्रों में भी तुम अब पिता को ही ढूंढती हो .... यानी कि तुम पुरुषों में प्रेमी या पति नहीं, पिता ढूंढती हो। जीवन के संघर्षमय क्षण में डैन ने तुम्हें संभाला, तुम कृतज्ञता में उसके साथ रहने लगी, अब अक्षय देख-भाल कर रहे हैं, तो शायद उनसे विवाह कर लो, क्योंकि तुम जीवन में जिसे प्यार चाहती हो उसे पूरी तरह स्वीकार करने को प्रस्तुत नहीं हो।"[59]

मनीश का यह प्रस्ताव राधिका के व्यक्तित्व की विशिष्टता प्रकट करता है। इसी विशिष्टता के कारण ही राधिका जवाब देती है "मेरे जीवन में प्ले बॉय केलिए स्थान नहीं है। मैं संगी चाहती हूं, जिसमें स्थिरता हो, औदार्य हो जो मुझे मेरे सारे अवगुणों सहित स्वीकार कर ले मेरे अतीत को झेल ले।"[60]

राधिका ने अपने परिवार के दोनों पुरुषों पापा और बड दा को घोर व्यक्तिवादी, स्वार्थी, महत्वाकांक्षी पाया था । उसके अनुसार वे स्त्रियों का आदर करते थे, उन्हें स्वतंत्रता भी देते थे, पर वही तक जहाँ तक उनके द्वारा निर्मित सीमा रेखा न लाँघी जाय ।"[61] दूसरे प्रकार के पुरुष वे थे जो कि स्त्री को केवल भोग की वस्तु समझते थे, और मेधाविनी स्त्रियों से दूर ही रहते थे । तीसरा था अक्षय जैसे पुरुष जिसकी उदारता और शालीनता ने राधिका के मन पर प्रभाव छोडा था ।

पुरुष के मेधावी भाव को राधिका बिलकुल मानने वाली नहीं है , वह पुरुष चाहे पिता हो, भाई हो या प्रेमी हो । पापा की शादी की बात सुनते ही वह चौंक गयी । कभी कभी आधी रात तक पिता के कमरे में बैठकर वह विमाता को अकेले छोड़कर आनन्द लेती । वह घर छोड़कर जाने की धमकी तक देती है वह सोचती है - जा क्यों नहीं सकती । बी॰ए॰ का इम्तिहान दिया है, फिर नौकरी करेगी कहीं रिसेप्शनिस्ट या एयरहोस्टस या सेल्स गर्ल ।"[62] इससे पापा को कितना आघात पहुँचेगा, वह यह भी जानती थी, और उस समय वह यही चाहती थी कि, पापा को दुगुने वेग से आघात पहुँचाना ।

पिता ने उससे कहा दिया ' मै सभ्यता से व्यवहार करना सीख लो । तुम दोनों को साथ रहना है । पिता के कहने पर राधिका ने तीखे स्वर में पिता से कहा "मैं आप लोगों के साथ नहीं रहूँगी ।"[63] बेटी की मनमानी से घबराकर जब पिता उसकी शादी कराने की बात करतें है तब वह दृढ स्वर में कहती है "मैं अभी विवाह करना नहीं चाहती ।"[64] यह सुनकर बडदा क्रुद्ध होकर भला-बुरा कहने लगे तो वह भाई से कहती है "बहुत हो चुका । आपने अपनी इच्छाओं के सामने कभी मेरी खुशी का ख्याल नहीं किया । बस आप लोग मुझे अकेले छोड दें ।"[65]

राधिका के अनुसार "हमारी सभ्यता में स्त्री-पुरुष की मैत्री बहुत नैसर्गिक, अकृत्रिम समझी जाती है । यह जीवन साथी चुनने की एक पद्धति है । पर वही काम धन केलिए करना दूसरी 'केटेगरी' में आ जाता है और फिर हम लोग अपने आत्मिक ज्ञान को बधारते नहीं ।"[66] राधिका को सब कुछ परेशान करते हैं । इसलिए वह अनुभव करती है मेरे परिवार, मेरे परिवेश, मेरे जीवन की अर्थहीनता और मैं स्वयं जो हो जा रही हूँ एक भावनाहीन पुतली सी ।

डैन के बाद राधिका किसी पुरुष केलिए श्रृंखला में एक कडी नहीं रह जाना चाहती थी । वह तो एक-छत्र साम्राज्ञी बनना चाहती थी जैसा कि अक्षय के साथ संभव था । विद्या की मृत्यु के बाद पिता चाहते थे कि वह उसके साथ रहे । लेकिन जब राधिका को अपने जीवन की सुरक्षा की चाह हो गई तो मनीश को ही चुन लेती है । पिता को "शोक" देने केलिए उसने मनीश को स्वीकारा था । क्योंकि पिता को पता है राधिका मनीश जैसे व्यक्ति को नहीं चुनेंगी । यों अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा केलिए पिता के प्रभाव को पूर्णत: उपेक्षित करने केलिए, अक्षय का तिरस्कार कर वह "प्ले बाय" जैसे मनीश का हाथ पकडती है । पहले की तरह घर में रहने का,पिता का अनुरोध वह टाल देती है । क्योंकि वह स्वतंत्र है, अपना जीवन और भविष्य स्वयं गढ सकती है । इसलिए वह पापा से कहती है नहीं पापा, मैं जाना चाहती हूं । मनीश मेरे एक बन्धु"[67] यह उसकी किसी निश्चित खोज की दशा की ओर इशारा करता है ।

राधिका अपनी भीतरी विवशताओं का अनुभव करती है । सामंजस्य उपस्थित न कर पाने के कारण वह सकती नहीं । वह किसी भी मूल्य को पूर्णत: आत्मसात कर नहीं पाती । राधिका किसी महत्वाकांक्षा की खोज में कहीं भटकती है, कई पुरुषों के संपर्क में आती है, अनिश्चितता की धुंध में कस जाती है, और आखिर पडाव डालने का निश्चय करती है ।

वह सोचती है "पापा ने जब अपने जीवन की राह चुन ली तो, वह क्यों नहीं स्वतंत्र निर्मम हो अपनेलिए राह खोज लेती ।"[68] वह सखी से अमेरिका निवास के बारे में कहती है "मैं अपनी जिम्मेदारी पर गयी थी, किसी पर निर्भर होकर नहीं ।"[69]

'रुकोगी नहीं राधिका' में लेखिका ने नारी को नयी अर्थवत्ता प्रदान की है । इसकी नायिका राधिका 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' की सुषमा से अपने परिवेशगत संस्कारों के कारण अधिक मुक्त व विद्रोही है । वह परंपरागत मूल्यों और नैतिक आचरणों में विश्वास नहीं रखती - यहाँ तक कि अविवाहित होते हुए भी वह शरीर की भूख मिटाने और शराब पीने में संकोच नहीं करती । लेखिका ने उसके व्यक्तित्व को सब प्रकार के बन्धन तोड देनेवाली आज की नारी के विद्रोह का प्रतीक बना दिया है । वह भीतरी विवशताओं का अकेले अनुभव करती है ।"[70]

"पचपन खम्भे लाल दीवारें" की सुषमा जहाँ परिवार के उत्तरदायित्वों के बीच पिसती हुई नील को एक तरह से त्याग देती है, वहीं से राधिका की यात्रा, जिसे खोज भी कहा जा सकता है, प्रारंभ होती है । वह यात्रा विदेशी पत्रकार डानियल पीटरसन और अक्षय से होती हुई मनीश पर आकर रुकती है । किन्तु दोनों की स्थितियाँ भिन्न हैं । जहाँ सुषमा के अकेलापन की पीडा में उसका आर्थिक अभाव प्रबल है, जबकि राधिका में उच्चमध्यवर्गीय संस्कारों से परिचालित होकर अकेलापन को ओढती है । सुषमा की घुटन एक विवशता है तो, राधिका का घुटन फाशन है ।"[71]

नारीवाद का जबरदस्त प्रभाव राधिका पर पडा है । उसमें पिता से प्रतिशोध लेने की भावना है । उसकी हर हरकत में प्रतिशोध की भावना है, लेकिन इसके द्वारा उसका स्वतंत्र व्यक्तित्व ही उभर आता है । हर पुरुष के साथ संबन्ध जोडने पर भी पूर्ण रूप से वह अपने

को सौंपती नहीं, एक अलगाव रखती है । राधिका नई चेतना से संपन्न औरत है । उसकी वैवाहिक मान्यता नवीनता की सूचक है । वह निश्चय कर लेती है कि किसी अनजान पुरुष से सप्तपदी की रस्म पूरी करवाकर पत्नी बनना पसंद नहीं करेगी ।

सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनैतिक पुनर्जागरण के इस काल में नारी कहीं भी कोने में पडी मैले कपडों की गठरी नहीं । प्रत्येक क्षेत्र में उनका स्पष्ट योगदान सामने आया है । राधिका मानती है कि स्त्री और पुरुष के बीच नई अर्थवत्ता व्याप्त हुई है और दोनों के बीच समानता की भावना सर्वथा नये परिवेश में उपस्थित हुई है ।

आज नयी पीढी की नारी की विचारधारा में परिवर्तन होने लगा है, परन्तु पुरानी पीढी की नारी में अभी तक परिवर्तन नहीं हुआ है । उषाप्रियंवदा की राधिका ऐसी युवती है, जो अपने जीवन में किसी का हस्तक्षेप नहीं चाहती । आज की स्त्री यही चाहती है कि जिसके साथ जन्म-जन्म का रिश्ता जोड जाता है उसकी सही पहचान और चुनाव में नारी को भी स्थान मिलना चाहिए । इस प्रकार राधिका भी भाई, पिता, प्रेमी आदि पुरुष वर्ग के सामने खुल्लम खुल्ला मत प्रकट करती है । वह अपने जीवन की दिशा चुनने में खुद समर्थ हो गयी है । नारीवाद के अतिवादी रूप का प्रभाव उसमें खूब दिखाई पड़ता है ।

उषा जी ने राधिका के ज़रिये नारी के स्वतंत्र चेतना-मानस की अभिव्यक्ति दी है । उसने अक्षय, मनीश, डेन और राधिका के पापा, भाई, आदि वीर पुरुषों के संदर्भ में राधिका का विशिष्ट व्यक्तित्व का आकलन किया है । नारीवादियों पर यह आरोप है कि उन्मुक्त निर्बाध प्रेम भोगने और शरीर की भूख मिटाने केलिए ही नारी वैयक्तिक स्वतंत्रता प्राप्त करना चाहती है । लेकिन उषा प्रियंवदा ने राधिका के माध्यम से इस झूठे आरोप का कारगर जवाब दिया है । यहाँ राधिका स्वतंत्रता का

विकास चाहती है, अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व स्थापित करना चाहती है ।

मन्नू भण्डारी

आधुनिक युग के नवीन उपन्यासकारों में मन्नूजी का विशिष्ट स्थान है । उनकी अधिकांश रचनाएं नारी जीवन की समस्याओं को आधार बनाकर लिखी गयी हैं । स्वातंत्र्योत्तर नारी-जीवन में आये परिवर्तनों को मन्नूजी ने आत्मसात किया है । नारी मन की विवशता ही उनके उपन्यासों में बुलंद है । इनकी नारी देवी और दानवी दो छोटों के बीच टकराती पहेली नहीं, हाड मांस की मानवी भी है।[72]

यद्यपि उन्होंने, नारी मुक्ति आंदोलन का हलफ न उठाया है, तो भी उनके लेखन में नारी चरित्र की संघर्षशीलता है और वे पुरुष से जूझती भी हैं । वे अनवरत एक ऐसी खोज में रत हैं कि उन्हें नारी जाति के सही रूप का ज्ञान हो सके, नारी मात्र की आत्मा की आवाज़ को पकड सके, उसे सच्चे मानवीय धरातल पर प्रस्तुत करती हुई, उनकी जटिलतम गहराइयों में जाकर उनकी खोज करें । इसलिए उनकी समूची नारी-पात्र "नारी मुक्ति" की सशक्त गवाही पेश करती हुई दीखती हैं ।

आधुनिक नारी की पूरी गरिमा वास्तविक सम्मान और मुक्ति की ज़ोर मांग का उद्घाटन और उसकी रक्षा के प्रति मन्नूजी की समस्त चेतना सजग होकर व्यक्त दिखाई देती है । उनके उपन्यासों में सिर्फ इसका संकेत ही नहीं मिलता बल्कि वे सबकी, सच्चाई का खुलासा प्रस्तुत करती है । आज आधुनिक नारी अपने व्यक्तित्व के विकास तथा अस्तित्व की खोज में रत है ।

उनकी नारी-प्रधान कहानियों और उपन्यासों का चेतन स्वर परवर्तित लेखिकाओं से नितान्त भिन्न और महत्वपूर्ण है । मन्नूजी ने समाज के मूल अंतरविरोध को अपनी कहानियों में उजागर किया है । स्त्री के गौणत्व की अवधारणा आनेवाले अनेक वर्षों बाद भी शायद इस महादेश की नारी-जाति की असली तस्वीर होगी मन्नूजी की नारी पात्र । अत: इस पृष्ठभूमि में स्त्री मुक्ति की प्रथम शर्त है, ऐसे संघर्षशील प्रगति करनेवाली नारी पात्रों का सृजन, जो सबसे पहले इस मूल अंतर विरोध को चुनौती दे और पुरुष समाज को स्त्री यथार्थ की सही प्रकृति बताने का प्रयास करे । इस दिशा में मन्नूजी का प्रयास सराहनीय है ।

'आप का बंटी' की शकुन

शकुन साधारण औरत नहीं है । वह कालेज की प्रिंसिपल है । तरह तरह के लोगों से उसे मिलना पड़ता है और निर्णय लेने पड़ते हैं । वह तलाकशुदा है । उसके दस वर्ष का वैवाहिक जीवन कभी सुखी नहीं रहा था । इसका कारण एक हद तक उसका अहंग्रस्त व्यक्तित्व है । शकुन के बारे में बच्चा बंटी का विचार है "प्रिंसिपल की कुर्सी पर बैठ कर ममी का चेहरा अजीब रूप से सख्त हो जाया करता है । लगता है मानो, अपने असली चेहरे पर कोई दूसरा चेहरा लगा लिया हो । ममी के पास ज़रूर एक और चेहरा है । चेहरा ही नहीं आवाज़ भी सख्त हो जाती है ।

शादी के शुरू के दिनों में ही एक गलत निर्णय ले डालने का अहसास पति पत्नी के मन में बहुत साफ होकर उभर आया था । एक अजीब सी बेचैनी शकुन के मन में घुलने लगी । केवल बेचैनी ही नहीं, एक -चीख, एक हलका सा आक्रोश । सारी ज़िन्दगी शकुन को, शकुन के हर काम को उसके सोचने और उसके हर रवैये को गलत तो सिद्ध करता रहा है ।

शकुन बहुत स्वतंत्र है, शकुन बहुत डोमिनेटिंग है, शकुन यह है, शकुन वह है ।"[73] .... जो भी हो सात साल तक गलत होने के अपराध बोध को उसने किसी न किसी स्तर पर हर दिन ही झेला है । अब बंटी भी उसी तरह शकुन को गलत और अपराधी सिद्ध करने पर तुला हुआ है । लेकिन शकुन ने निश्चय कर लिया कि "शायद सारी जिन्दगी उसे गलत ही सिद्ध करता रहेगा ठीक उसी तरह जैसे ... पर नहीं वह सब कुछ पहले की तरह अपने ऊपर ओढ़ती नहीं चली जाएगी । बंटी उसके और अजय के बीच सेतु नहीं बन सका तो वह उसे अपने और डाक्टर के बीच में बाधा भी नहीं बनने देगी ।"[74]

शकुन और अजय के बीच समझौते का प्रयत्न भी दोनों में एक अन्डरस्टेंडिंग पैदा करने की इच्छा से नहीं होता था, अपितु दूसरे को पराजित करके अपने अनुकूल बनाने की आकांक्षा से होता था । दोनों एक दूसरे की हर बात हर व्यवहार को एक नया दाँव समझते थे । सात वर्षों में एक एक कर प्रगति की सीढ़ियाँ चढ़ने की आकांक्षा - विभागाध्यक्ष से प्रिंसिपल हो जाने के पीछे भी कहीं अपने को बढ़ाने से ज्यादा अजय को गिराने की आकांक्षा कार्यरत थी । अजय के किसी के साथ संबन्ध बढ़ाने की सूचना ने उसे तिलमिला दिया था । बाहर वह शान्त दिखायी देती है, लेकिन अन्दर ही अन्दर इसके प्रति वह घुटती रही । अपमान की भावना ने उस दंश को बहुत ज्यादा बढ़ा दिया था । आधुनिक काल की शकुन प्राचीन काल की श्रद्धा जैसी धैर्यवान तथा पति के सौ कसूरों को माफ करनेवाली नारी नहीं है । वह अजय को अपने ठंडे व्यवहार से झुकाना चाहती है । वह अजय से ऊँचा पद पाने की लालसा से ही कालेज की प्रिंसिपल बनती है, वह बंटी को अपने पास वात्सल्य भाव की अपेक्षा इस दृष्टि से अधिक रखती है कि बंटी के प्रति लगाव के कारण ही अजय को उसके पास आने को विवश होना पड़े ।

आधुनिक काम-काजी स्त्री स्वतंत्र है । पति से लांछित होने पर वह रोती बिलखती उससे क्षमा मांगती नहीं । शकुन में भी ऐसी

दृढता है । लेकिन सामनेवाले को पराजित करने केलिए जैसा सायास और सन्नद्ध जीवन उसे जीना पडा उसने उसे खुद ही पराजित कर दिया । सामनेवाला व्यक्ति दृश्य से हट भी गया और वह आज तक उसी मुद्रा में उसी स्थिति में खडी है । वह खुद सोचती है - "सात वर्षों में विभागाध्यक्ष से प्रिंसिपल हो जाने के पीछे भी कहीं अपने को बढाने से ज्यादा अजय को गिराने की आकांक्षा ही थी । वह स्वयं कभी अपना लक्ष्य रही ही नहीं । एक अदृश्य अनजान सी चुनौती थी, जिसे उसने हर समय अपने सामने हवा में लटकता हुआ महसूस किया था और जैसे उसका मुकाबला करते करते उसे जूझते-जूझते ही वह आगे बढती चली गई थी । पर इतनेपर भी सामनेवाला जब टूटा नहीं तो उसकी सारी प्रगति उसके अपने लिए ही जैसे निरर्थक हो उठी थी ।"[75]

दस्तखत करने केलिए जब वकील चाचा तलाक के पेपर लाता है तब शकुन यही सोचती है - एक अध्याय था, जिसे समाप्त होना था, और वह हो गया । दस वर्ष का यह विवाहित जीवन एक अंधेरी सुरंग में चलते जाने की अनुभूति से भिन्न न था । आज एकाएक वह उसके अंतिम छोर तक आ गई है । पर आ पहुंचने का संतोष भी तो नहीं है, धकेल दिए जाने की विवश कचोट भर है । पर कैसा यह छोर ? न प्रकाश, न खुलापन, न मुक्ति का अहसास । लगता है इस सुरंग ने उसे एक दूसरी सुरंग के मुहाने पर छोड दिया है । फिर एक और यात्रा वैसा ही अंधकार वैसा ही अकेलापन । उसे खुद अजय का सम्बन्ध भारी पडने लगा था । इसलिए वह खुद ही उससे मुक्त होना चाहती भी थी । फिर भी पेपर में दस्तखत करते वक्त मन में एक दंश सा हुआ । वह सोचती रही - "नहीं, अजय से कुछ न पा सकने का दंश यह नहीं है बल्कि दंश शायद इस बात का है कि किसी और ने अजय से वह सब कुछ क्यों पाया, जो उसका प्राप्य था । ... साथ नहीं रह सकते थे, इसलिए साथ नहीं रह रहे हैं, स्थिति तब भी वैसी ही रहती पर फिर भी कितना कुछ बदल गया होता । यदि अजय के साथ मीरा न होती

बल्कि उसके अपने साथ कोई होता ··· सच पूछा जाय तो अजय के साथ न रह पाने का दंश नहीं है यह वरन अजय को हरा न पाने की चुभन है यह जो उसे उठते बैठते सालती रहती है ।"[76]

बंटी के बारे में चाचा ने जब कहा कि उसे होस्टल भेजना है, तो शकुन को मालूम हो गया कि यह बात अजय की ली है । इसलिए उसने चाचा से कहा - सात साल से मैं अकेली ही तो बंटी को पाल रही हूं । उसका हित अहित मैं दूसरों से ज्यादा जानती हूं । और मन ही मन कहने लगी अपने और बंटी के बारे में वह पूरी तरह स्वतंत्र है, कुछ भी सोचने केलिए कुछ भी करने केलिए ।"[77]

इस तथ्य को शकुन के अहं-भाव की संतुष्टि का परिचायक माना-जाना चाहिए कि उसके डाक्टर जोशी से विवाह में बांधने के निश्चय के मूल में भी उसकी अजय को नीचा दिखाने की भावना ही क्रियाशील है । उसे याद हैकि पहले भी जब जब उसने जोशी के बारे में कुछ सोचा था, अनजाने और अनचाहे ही हमेशा अजय आकर उपस्थित हो गया था ··· केवल अजय ही नहीं, कहीं मीरा भी आकर उपस्थित हो जाती थी । उसे साफ लगता था कि जोशी या किसी का भी चुनाव उसे करना है तो जैसे अपनेलिए नहीं करना है, अजय को दिखाने केलिए करना है । ··· मीरा की तुलना में करना है । उसका हर बढ़ता हुआ कदम, उसकी हर उपलब्धि उसे कुछ पाने का अहसास कराती है । अजय बाद में मीरा से विवाह करके कलकत्ता में बस जाता है । इसलिए शकुन भी जोशी के साथ विवाह करने केलिए तैयार हो जाती है । जो शकुन अजय के साथ अहं के कारण स्पष्ट नहीं कर पाई, वही शकुन डा॰ के संपर्क में आने पर अनुभव करती है कि "अपने को पूरी तरह देकर निर्द्वंद्व भाव से समर्पित करके आदमी कितना कुछ पा लेता है ।"[78] जो कुछ वह अजय में नहीं पा सकी वह जोशी में पाती है ।

जब शकुन तलाक केलिए तारीख देने में हिचकती है तो वकील चाचा कहता है "मीरा इज़ एक्सपेक्टिंग" । शकुन सोचने लगी इसलिए चाचा को भेजा गया कि कोई भी रास्ता बाकी न रह जाए, शकुन के बच निकलने केलिए । तारीख भी जल्दी ही डलवानी है, बच्चा होने से पहले सारा रास्ता साफ कर ही लेना है ।[79] वह सोचने लगी कि वह फिर छली गई , वह फिर बेवकूफ बनाई गई । उसका रोम रोम सुलगने लगा ।

शकुन पुत्र बंटी को, अजय को "टार्चर" करने के हथियार के रूप में कभी उपयोग करती है, फिर भी अजय से मिलने घूमने-फिरने और खिलौनों की भेंट स्वीकारने में आपत्ति प्रकट नहीं करती है । बन्टी के मन में पिता के प्रति गलत बातें भी नहीं भरती है । अपने आत्म परीक्षण के बीच वह स्वयं स्वीकार भी करती है, कि उसका अतिरेक प्यार बंटी के स्वस्थ मानसिक विकास केलिए हानिकारक है । लेकिन जब अजय ने बंटी को होस्टल भेजना चाहा तो उसे मालूम हो गया कि शायद उसे भी अजय धीरे धीरे कब्जे में कर लेना चाहता है । वह जानती है अजय बंटी को बहुत प्यार करता है, पर अब से वह बंटी को मिलने भी नहीं देगी ।"[80] बंटी से न मिल पाने की वजह से अजय को जो यातना होगी उसकी कल्पना मात्र से उसे एक क्रूर सा संतोष मिलने लगा । बंटी केवल उसका बेटा ही नहीं है वह हथियार भी है जिससे वह अजय को टोरचर कर सकती है, करेगी ।"[81]

शकुन ने अजय से बदला लेने केलिए नई ज़िन्दगी शुरू करनी चाही थी । हस्ताक्षर कर पेपर देने के बाद वह खुद सोचती है - कम से कम अब तो वह इन सब से मुक्त हो जाए । उसे मुक्त होना ही है, एक नई ज़िन्दगी की शुरूआत करनी ही है । ... अजय को उसे दिखा ही देना है कि वह अगर एक नई ज़िंदगी की शुरूआत कर सकता है तो वह भी कर सकती है ।"[82]

डॉ॰ जोशी के परिचय मे उसकी ऐसी हालत होती है कि सही गलत की बात भी वह नहीं जानती, जानना भी नहीं चाहती । इस समय इतना ही काफी है कि जीवन में जितना भरा-पूरा वह इन दिनों महसूस कर रही है, उसने कभी नहीं किया । बल्कि आज अगर उसे किसी बात का अफसोस है तो केवल इसी बात का कि यह निर्णय उसने बहुत पहले क्यों नहीं लिया ? क्यों नहीं, वह बहुत पहले ही इस दिशा की ओर मुड गई ? किस उम्मीद के सहारे वह साल तक यों घिसटती रही ? सात साल का जीवन मात्र घिसटना ही तो था, घिसटना और तिल-तिल करके टूटना एक पुरुष के साथ जिन्दगी को यों भरा-पूरा बना जाता है, यह तो उसने कभी सोचा ही नहीं था ... अजय के साथ रहकर भी नहीं ।"[83]

डाक्टर जोशी के साथ रहने से उसे लगता है, साथ रहना भी कितने तरह का हो सकता है । सारी जिन्दगी साथ रहकर भी आदमी कितना अकेला रह सकता है और किसी का हल्का सा स्पर्श भी कैसे जिन्दगी को किसी के साथ होने का एहसास और आश्वासन से भर सकता है । शकुन को खुद कभी कभी आश्चर्य होता है कि उम्र के छत्तीस वर्ष पार करने पर भी मन में इन बातों केलिए कैशोर उम्रवाला उल्लास भी है और यौवनवाली उमंग भी । डाक्टर का साथ होते ही कैसे एकान्त की इच्छा हो उठती है और एकांत होते ही "उसे लगता है उम्र बीत जाने से ही कैशोर और यौवन नहीं बीत जाता । ये भावनाएँ तृप्त होकर भी मरती नहीं वरना और अधिक बलवती होकर आदमी को मारती रहती हैं ।"[84]

शकुन के प्रेम संबन्धी विचारों में नारी स्वतंत्रता की भावना जुडी हुई है । शकुन डाक्टर से पूछती है - क्या प्रेम सचमुच ही मात्र एक शारीरिक आवश्यकता और एक सुविधा-जनक एडजेस्टमेंट का ही दूसरा नाम है ।"[85] आधुनिक नारी केवल सहते रहना नहीं चाहती । वे मानती है कि अपना जीवन पीडादायक है तो उससे मुक्ति पाकर अपनी जिन्दगी को

दूसरे मोड पर ले चलने में कोई आपत्ति नहीं है । शकुन का विचार है "अजय ने तो अपनी स्लेट पर से उसका नाम, उसका अस्तित्व धो पोंछकर एक नई ज़िन्दगी शुरू कर दी है । शायद बहुत सुखी बहुत भरी पूरी । पर उसकी स्लेट को तो ... ।"[86]

शकुन का विचार है कि बंटी यदि सहज ढंग से अपने को उसके और डॉक्टर के बीच में से समेट नहीं लेता तो वह उसे अजय के पास भेज देगी । बंटी को दरार ही बनना है तो मीरा और अजय के बीच में बने ।"

शकुन की मानसिकता आधुनिक नारी की मानसिकता है । उसके सुख-दुख, समस्याएँ और संघर्षों को ही शकुन के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है । आधुनिक नारी का पहला शाप दोहरे स्तर पर जीने की बाध्यता है । दूसरा अभिशाप है, अपने व्यक्तित्व के प्रति सजगता के साथ साथ आत्मसम्मान के प्रति अतिरिक्त दक्षता । लेखिका ने शकुन के अन्तर्मन के द्वन्द्व का भी खूबी से उभारा है कि वह अपना द्वितीय विवाह अजय को नीचा दिखाने केलिए कर रही है, जबकि कभी वह यह भी सोचती है कि वह किसी दूसरे को दिखाने केलिए नहीं बल्कि आत्म-तोष केलिए ही विवाह कर रही है ।

नारी मुक्ति आन्दोलन के प्रभाव से भारतीय मध्यवर्ग का पारिवारिक जीवन एक जटिल स्थिति से गुजर रहा है। परिवार की स्वस्थता केलिए सहनशीलता, दूसरे की कमियों के बावजूद उसे सहने का कर्तव्य बोध आदि धीरेधीरे समाज से लुप्त होता जा रहा है । वैयक्तिक स्वतंत्रता तथा व्यक्तिगत सुख पाने की आकांक्षा तीव्र बनती जा रही है. । शिक्षित नारी आहुति देना नहीं चाहती है । वह परिवेश से जूझकर आगे बढना और नये सिरे से पुरुष के समान समाज का उपयोगी अंग बनकर जीवन गढना चाहती है, और यह क्षमता वह दिखाती भी है ।

सुमन भी नारी की पुरानी कल्पना से दूर आधुनिक व्यक्तित्व से लैस रूढि-मुक्त नारी की मिसाल बनकर हमारे सामने उपस्थित है ।

दीप्ती खण्डेलवाल

अपनी सशक्त रचनाओं द्वारा दीप्ती खण्डेलवाल ने हिन्दी उपन्यास क्षेत्र में क्रांति मचा दी है । इनके उपन्यास समाज के उच्च वर्ग पर आधारित हैं । आभिजात्य-वर्ग की आकांक्षाओं और कम-ज़ोरियों को चित्रित करने में लेखिका को विशेष सफलता मिली है । लेखिका में मानवीयता के प्रति बहुत गहरी आस्था है । नारी उत्पीडन के साथ उसके प्रतिशोध के चित्र भी उपन्यासों में उन्होंने खींचे है ।

स्वतंत्रता के उपरान्त भारतीय समाज में तेज़ी से जो नये परिवर्तन आने लगे थे उनका सही अंकन उनके उपन्यासों में देखा जा सकता है । स्पष्ट उद्देश्य के साथ रचित उनके उपन्यासों में युगीन समस्याओं का संवेदनापूर्ण चित्रण मिलता है । ये विशेषताएं दीप्तीजी को एक सफल उपन्यासकार के रूप में प्रतिष्ठित करती है । नारी-जीवन के नये नये रूपों को अंकित करने में और उनके जीवन की विविध स्थितियों को रूपायित करने में दीप्तीजी का योगदान आधुनिक कहानी-साहित्य केलिए एक वरदान है । उनके उपन्यास "कोहरे", "प्रतिध्वनियां", "पिया", "वह तीसरा" आदि बहु चर्चित हैं ।

कोहरे

कोहरे उपन्यास में लेखिका ने आधुनिक परिवार के बीच टूटते संबन्धों का चित्रण किया है। वास्तव में यह सुनील और स्मिता {मिमी} की कोहरे से आच्छादित जीवन-कथा है ।

सुनील कोलेज के अंग्रेज़ी विभाग का अध्यापक है । पत्नी मिमी हिन्दी में एम.ए. पास चुकी है । दोनों का सौन्दर्य अनोखा है ।

सिम्मी सुनील के जुपिटर जैसे शारीरिक सौष्ठव पर मुग्ध हुई थी । सुनील भी सिम्मी (सुमी) के मोनोलिज़ा जैसे मासूम रूप पर मुग्ध था ।

अभी तक की जिंदगी में सुनील की नज़रों में दर्जनों लडकियाँ चढीं, उतरी थीं । लेकिन सुमी के सौन्दर्य पर वह एकाएक मोहित हो गया । सुहाग रात्रि में ही सुनील ने उससे कहा कि यदि वह कविता लिखेगी तो सिर्फ उसकेलिए, गाना सुनायेगी तो उसकेलिए । यह सब उसे मंजूर करना पडा ।

किसी भी हालत में अपना आत्मविश्वास खो देना सुमी नहीं चाहती थी । लेकिन यह भाव सुनील को धीरे धीरे उसका अहं लगने लगा। प्रकट रूप में सुमी को कोई भौतिक या स्थूल अभाव नहीं था । प्रसिद्ध एडवोकेट पिता का इकलौता बेटा था । बंगला, कार, फोन, नौकर चाकर आदि के कारण समाज में मिली प्रतिष्ठा आदि सब कुछ सुनील के पास थे । किन्तु यह सब सुनील का था, जिसमें वह सुमी को भी जोड रखना चाहता था । एक और "पोजेशन" के रूप में । अपना कुछ भी उससे साथी के रूप में बाँटने को वह तैयार नहीं था ।

एक दफा रेडियो से एक प्रोग्राम का ऑफर आया तो सुमी ने सहज ढंग से मंजूरी दे दी । उसने सोचा कि सुनील को एक सर्प्राईस देगी । प्रोग्राम सफल निकला पर सुनील को यह बात अच्छी नहीं लगी । इसी बात को लेकर दोनों में मन मुटाव शुरू हुआ और सुमी को एक बार और मंजूरी देनी पडी । क्लब में, पार्टियों में उसे वह साथ ले जाता है, लेकिन केवल शो-पीस बनाकर ही रखता है ।

विवाह के दो वर्ष बीतने पर सुमी का मन शिशु को वक्ष से लगाने केलिए आतुर हो उठा । सुमी का नारीत्व, प्रियत्व और पत्नीत्व से अतृप्त होकर मातृत्व की माँग कर बैठा । पहले सुनील ने इनकार किया फिर राजी हो गया । "मेटेनिटी होम" से लौटे सुमी और रिंकी का शुष्क स्वागत देखकर उसे अधिक दुःख हुआ । उसे ठीक

मालूम हो गया कि मिकी को पाने केलिए उसे सुनील को खोना पडा । मिकी ने दोनों के फासले को घटाया नहीं बल्कि बढा ही दिया । मिस इरा घोष से उनकी निकटता इतनी बढ गई कि वह हर शाम सुनील के साथ उनके घर आने लगी । यह संबन्ध विसिटिंग रूम से "बेडरूम" तक आ गया तो मुम्मी चीख उठी । बात बढती बढती यहाँ तक पहुँची कि मुम्मी, मिकी को लेकर वापस माता-पिता की शरण में आ गयी । उसकी मम्मी ने उसका आत्म विश्वास बढाकर आत्म निर्भर बनाया । उसने तलाक किया । स्वयं नौकरी करके अपने को संभालने में वह सफल हो गयी । उसके बाद अपनी मम्मी की सलाह से पूर्वप्रेमी से शादी करके अपना भविष्य बनाने का साहस भी उसने कर दिखाया ।

मिम्मी का चरित्र

स्वतंत्रता और आत्मगौरव को हमेशा कायम रखने में मुम्मी सतर्क रही है । "वेडिंग नइट" के दिन मिम्मी को बाहुपाश में लेते सुनील ने कहा - मैं तुम्हारी इण्डिविजुएलिटी को मेन्टेन रखना चाहता हूँ । यह सुनकर उस रात में ही वह सुनील के कदमों पर झुकी थी । वह याद करती है - उन्हीं क्षणों जब सुनील ने भेंट के संदर्भ में मेरी इण्डिविजुएलिटी अर्थात् मेरे अस्तित्व को स्वतंत्र स्वीकार देने की बात कही तो मेरा उल्लास मेरा समर्पण का सुख दुगना हो उठा ।"[87]

बाद के दिन उसने एक बार कविता लिखी तो सुनील ने कहा .... लेकिन देखिए मेरी कबूतरीजी, आप कविता लिखेंगी तो सिर्फ मेरे लिए छपने छपाने केलिए नहीं । कहिए मंजूर । और उसने मंजूरी दे दी थी । इसी तरह रेडियो में गाना भी हुआ । इस प्रकार बार बार मंजूरी करने पर वह पति से पूछती है - "तुम तो मेरी इंडिविजुएलिटी को कायम रखना चाहते थे तुम्ही ने तो कहा था कि मेरे अस्तित्व को जीने दोगे ? वह सब क्या था ? ऐसे तो मैं घुट जाऊँगी । सुनील का

उत्तर था, कहा था लेकिन तुम मेरे ढंग से अपनी इंडिविजुएलिटी को बनाए रख सकती हो । अपने ढंग से नहीं ।"[88]

सुमी का भी अपना अहं है । अपने अस्तित्व और अहं पर चोट कराने का अधिकार वह पति को नहीं देती । उसके अनुसार पति होने के नाते सुनील को कोई विशेष अधिकार नहीं है । सुनील और उसकी शैक्षणिक योग्यता बराबर या टक्कर की है । दोनों का सौन्दर्य भी बराबर का है । लेकिन सुनील के मन में अपने सौन्दर्य पर गर्व है । इसलिए वह बार बार सुमी से कहता है "ब्यूटी लाइज़ नाट ओनली इन द थिंग्स बट इन द आइज़ ओफ द बिहोल्डर टू ।" इस प्रकार परोक्ष रूप में वह सुनील से शारीरिक सौन्दर्य में कम ठहरती थी, यह प्रस्ताव सुमी को पहले अभ्यर्थना सा ही लगता था । धीरे धीरे उसे लगा कि यह अभ्यर्थना नहीं अपमान है । "सुनील" ने सुमी जैसी साधारण रूप रंगवाली युवती से प्रेम और विवाह करके उस पर अहसान किया था । इसलिए सुनील कहता है "मान लो, सौन्दर्य हो ही नहीं, तो क्या तुम्हारी आँखें सौन्दर्य क्रियेट कर लेंगी या कुरूप को सुन्दर मानने केलिए तैयार हो जाएँगी ?" अपने प्रति पति की बात सुनकर वह सहमी नहीं रही । अपने को बचाने केलिए उसने कहा "मुझे अपने रूप रंग को लेकर कोई काम्पलेक्स भी नहीं था - जानती थी कि मैं अत्यन्त सुन्दरी न भी होऊँ, मुझमें एक विरल आकर्षण है । मेरे घुंघराले केशों में, मेरी काली आँखों की उज्वल दृष्टि में, मेरे फूलों जैसे कोमल अंग सौष्ठव में । मेरे यौवन में - मेरे सुरभित नारीत्व में ।"[89] सुमी का यह आत्मविश्वास सुनील को उसका अहं लगने लगा ।

मीठी मीठी बातों और बर्तावों में स्त्री को फँसाकर रखनेवाले पुरुष की होशियारी से सुमी घृणा करती है । स्त्री के व्यक्तित्व और गुणों का आदर न करके उसे बहलानेवाले सुनील से वह इस बात पर बार-बार झगडा भी करती है । उसे मालूम था सुनील सभ्य होने के नाते

उसे रेशमी पाशों से कसे जा रहे थे । किन्तु पाश चाहे रेशमी ही क्यों न हो, बन्धन का एहसास होता है । जब सिम्मी माँ बनने की ख्वाहिश जाहिर करती है तो सुनील उससे कहता है "लेकिन अभी जल्दी क्या है, लेट्स एनजॉय फार सम टाइम मोर । नारीवाद के समाजवादी और अस्तित्ववादी फेमिनिस्ट यह मानते हैं कि अब भी पुरुष मेधा समाज में मातृत्व जैसे स्त्री का अधिकार भी पूर्ण रूप से पुरुष के अधीन है । उसके "हाँ" और "न" के अनुसार, बच्चा कब पैदा होना है, कब न होना है का निर्णय होता है । इसलिए वे इस भाव का विरोध करने की बात करते हैं । सम्मी भी अपनी इच्छा के अनुसार माँ बनने को तैयार हो जाती है ।

सम्मी के निजत्व और व्यक्तित्व के कारण दिन ब दिन बढ़ता सुनील का "अहं" उसे असह्य होने लगा । सुनील उसे क्लब और पार्टियों में ले जाता, घर में भी मित्रों को आमन्त्रित करता और सम्मी से सज धज कर रहने की आज्ञा देता है । सुनील के इस बर्ताव के बारे में सम्मी की राय है कि "एक पोज़ेशन के रूप में जैसे मैं उनकी सम्पत्ति होऊँ, ड्राइंग रूम में, सजे खूबसूरत देश-विदेश की चीज़ें जैसी ही एक चीज़ ।"[90]

अपने पर किसी तरह की पाबंदी वह पसंद नहीं करती । इसलिए अन्य स्त्रियों से अलग पति का अमित दिखावा प्यार भी उसे घृणास्पद लगने लगा । क्लब और पार्टियों में उसे ले जाते समय सुनील उसके कन्धों से थामे रहता था, ताकि महिलाओं की आँखों में ईर्ष्या पैदा हो जाये । उसके लिए सुनील का यह बाहु पाश कैद के समान बनता जा रहा था । सम्मी याद करती है कि यदि वह महिलाओं से संपर्क बढ़ाने की कोशिश करती तो सुनील कहता "सिम्मी यू आर समथिंग रेयर, यू मस्ट मेन्टेन इट ।" सुनील की वह अभ्यर्थना सर्वाधिकार सुरक्षित का मेरे गिर्द कसता ऐसा पाश बनती जा रही थी कि मेरी साँसें घुटने लगी थी ।"[91]

सम्मी एक आज़ाद जीवन जीना चाहती थी । यह उम्रकैद उसे पसंद नहीं थी । इसलिए वह सोचती है सुनील के साथ मुझे बहुत आज़ाद

फील करना चाहिए था किन्तु मैं एक उम्र कैद के यातनाप्रद अहसास को झेल रही थी । केवल सुनील का मात्र सुनील का साथ मुझे एक दम अकेला कर गया था । वह मुझे, मेरे स्वयं से भी मिलने नहीं देते थे ... । मेरे स्वयं से जीवन अहसासों से मेरे निजत्व से ।" बात बात पर सुनील केलिए मंजूर कहकर बैठने वाली सुमी पति के बर्ताव से घृणा करती हुई आक्रोश करने लगी । यह जानकर कि उसे कुचलने केलिए पति तैयार है, वह सीता सावित्री बनकर नहीं बैठी रही । आधुनिक शिक्षित नारी पति के हर अन्याय को कभी भी सहन नहीं करती । इसलिए वह भी सुनील से आक्रोश करने लगी - "नहीं सुनील ! इट ईज़ टू मच ओन योर पार्ट । यह तुम्हारी ज्याददती है कि तुम मुझे कुचल ही देना चाहते हो ? क्या मैं इतनी साधारण हूं कि तुम मुझे ऐसे मिटा दोगे ।"

मिमी, पति का अनैतिक व्यवहार माननेवाली नहीं है । इसलिए पति का मनमानी व्यवहार देखकर वह चुप नहीं बैठती । पति को होश में लाने केलिए वह प्रयत्न करती है । इरा घोष और सुनील को अपने शयनगृह में देखकर वह चीख पडी - सुनील होश में आओ यह गैर कानूनी है । इल्लीगल, इट इम्स अन्टर एडलटरी, मैं तुम्हारी रिपोर्ट कर दूंगी ।"[92] आगे वह कहती है "नहीं अब और नहीं, मुझे मेरे हाल पर छोड दो ।" पति से अई मस्ट चैंज दिस ब्राट टू" सुनकर गिड गिडाकर पैर पकडने केलिए वह तैयार नहीं है । उसका आत्माभिमान उसे पैर पकडने नहीं देता है। इसलिए मिकी को लेकर वह लौट जाती है ।

सुनील ने तलाक का पेपर उसके द्वारा फाइल करने केलिए कहा तो वह तैयार नहीं होती । पुरुष के मेधा भाव को पूर्ण रूप से मानने केलिये वह तैयार नहीं थी । सुमी के पापा ने उससे कहा सुमी केलिए वह सुनील से माफी मांगने को तैयार है । लेकिन सुमी नहीं चाहती कि उसकेलिये उसके पापा किसी के सामने झुकें । इसलिए उसने चीखकर कहा ... "नहीं नहीं आप कतई माफी नहीं मांगेंगे और वह भी बिना किसी

गलती के. मैं आपको सुनील के सामने झुकने नहीं दूंगी ।[93] " वह सोचती है एक नारी से अधिक नारी मन ने उसका जीना मुश्किल कर दिया था । इसलिए वह अपने भविष्य को खुद झेलने का निश्चय कर लेती है । वह आग को आग से बुझाने निकल पडी थी । वह अति परंपरावादी भारतीय नारी बनना नहीं चाहती । उसकी मम्मी ने उसका साथ देने का आश्वासन दिया । लेकिन मम्मी सी निष्कम्प दीप-शिखा सी जलना उसकेलिए कठिन है । वह सुनील को इतनी आसानी से मुक्ति देना नहीं चाहती । डइवोर्स का केस सुनील ने फयल किया और सुम्मी पर चरित्रहीनता का आरोप लगाया । सुम्मी सुनील के आरोप से बिलकुल नहीं मुरझायी । वह जानती है पुरुष द्वारा संचालित शासित समाज की यह नीति है कि मनमानी पुरुष करे, और स्त्री पर कलंक लगाएं । अन्य स्त्रियों के समान वह "कोर्ट" से डरती नहीं और पिता से कहती है - मुझे जिन्दा रहने केलिए आर्थिक ठोस आधार भी चाहिए, मेरे साथ मिक्की भी तो है । मुझे बारिश से बचने के लिए छत् चाहिए, सर्दी से बचने केलिए कम्बल, मिक्की को दूध दवा और मुझे रोज़ दान पानी भी चाहिए ।"

सुम्मी में सुप्त पडी नारी भावना जागृत हो उठी । उसके भीतर की स्वाभिमानी नारी ने अपने ही हाथों से अपने आँसू पोंछ लिए। सुनील के मेधा भाव को पराजित करने केलिए सुम्मी ने भी प्रतिवाद में शस्त्र उठाया । वह भूखी आँखों से जिन्दगी की सचाइयों का सामना करने केलिए सन्नद्ध हो उठी । कोर्ट में सुनील के वकील द्वारा पूछे गये प्रश्नों के उचित जवाब देने में वह हिचकती नहीं । चरित्रहीनता के आरोप लगाकर प्रश्न पूछने के बाद जब सुनील के वकील ने पश्चाताप प्रकट किया तो वह जवाब देती है कि यह सुनील से जाकर कहे उसे इसकी परवाह नहीं है ।

वह पिता पर भी बोझ बनकर जीना पसंद नहीं करती । अपने पैरों पर खडी होकर आगे के जीवन को गढने का निश्चय कर लेती है

मम्मी की नीलकण्ठी अपराजेयता को एक उदाहरण मानती वह अपनी माँ-सी अपने हिस्से के जहर को आत्मसात करने का निश्चय कर लेती है। लेकिन वह मम्मी से थोडा परिवर्तन अपनाना चाहती है। इसलिए वह सोचती है - मैं कामायनी की श्रद्धा नहीं इडा हूँ, ... भावना नहीं प्रज्ञा हूँ। मात्र स्पन्दनमयी नहीं तर्कमयी भी ... मात्र समर्पिता नहीं अधिकारमयी भी हूँ।

नारी तकलीफें खुद उठाकर अपना जीवन जीने केलिए वह तैयार हो जाती है। कालिज में नौकरी मिलने के बाद उसकी माँ ने बचपन के मित्र प्रशान्त से शादी कराने के बारे में राय पूछी। वह सोचती है सुनील के साथ, संपूर्ण समर्पण के बाद भी, व्यक्तित्वहीन होकर उसे जीना पड़ा। इस प्रकार अस्तित्वहीन होकर पुरुष के अहं को सहकर जीने से बेहतर है नौकरी करके स्वयं अपने अधिकार के साथ जीना। वह निश्चय कर लेती है "यदि सर्वस्व दूँगी तो सर्वस्व चाहूँगी भी। अधिकार दूँगी तो अधिकार लूँगी भी। ... मम्मी का आदर्श आज भी अग्नि परीक्षा देती सीता हो सकता है। मेरी सीता अग्नि परीक्षा देगी तो लेगी भी, अर्थात् मैं जब चाहिए जिसे चुनूँ समान धरातल पर ही स्वीकार कर सकूँगी।"[94]

समान अधिकार और समान धरातल पर, प्रशान्त से चेतना के स्तर पर जुड़ने का प्रयास वह करती है। वह अपने भविष्य को किसी कल्पना की कसौटी पर नहीं, यथार्थ की कसौटी पर निर्ममता से कसकर देख लेना चाहती है। इस प्रकार वह प्रशान्त से अविलम्ब विवाह करने का निश्चय करती है।

सुमी के चरित्र में नारी मुक्ति आंदोलन का खूब प्रभाव पड़ा है। नारी मुक्ति आंदोलन की तीनों धारायें, नारी को घुट-घुटकर अपनी जिन्दगी बिताने की सलाह नहीं देती। अपने व्यक्तित्व को कायम रखकर, परिवार में उसे समान अधिकार और महत्व प्राप्त कराने में ये तीनों धारायें समान रूप से महत्व रखती है। नारी मुक्ति के राडिकल

आन्दोलनकारियों ने स्त्री को स्वतंत्रता केलिए बिना शादी किये जीने की, और शादी करने पर यदि दुविधा उपस्थित हो जाये तो तलाक लेकर आज़ाद जीवन जीने की सलाह दी है। सिम्मी भी घुट-घुटकर जीये बिना पति से तलाक लेकर अपना अलग जीवन गढ़ती है । पति के अनेक रखैलों में एक बनकर जीना वह पसंद नहीं करती । सुम्मी के संबन्ध-विच्छेद का प्रमुख कारण सुनील की कामुकता तथा सुम्मी को व्यक्तित्वहीन बनाकर रखने की उसकी कोशिश थी ।

टूटने के कोहरे में छिपकर भी, अपने को मज़बूत बनाने का प्रयत्न भी वह करती है । आज नारी अपने पति पर पूरा अधिकार चाहती है । सपत्नी के साथ जीना आधुनिक नारी नहीं चाहती । पति से उपेक्षित होने पर रोती बिलखती अपना जीवन गँवाने केलिए भी वह तैयार नहीं है । वह समझती है कि पुरुष के समान ही नये रिश्ते कायम कर भविष्य को उज्वल बनाने में ही जीवन की सफलता है । सुम्मी का चित्रण दीप्तीजी ने इसके अनुकूल किया है ।

किरणमयी देवी

सुम्मी की माँ किरणमयी देवी त्यागशील है । उसके मौन त्याग में भी अपार शक्ति निहित है। अगम्य गमन करते पति केलिए सुहाग व्रत का पालन करती माँ, बेटी केलिए एक विचित्र मिसाल थी । ससुराल से वापस लौटकर घर में रहते वक्त ही सुमी को माँ के असली रूप का पता चला था । सालों तक अपार दुःख हृदय में छिपाकर किरणमयी मौन प्रतिशोध कर रही थी ।

पति, हर बात पर उसे नीचा दिखाने की कोशिश करता है । मिसेस चौधरी की शादी की खुशी में घर में पार्टी अरेंज करने को किरणमयी पहले तैयार नहीं हुई । लेकिन हठीले पति केलिए उसे सब कुछ करने पडे । उस पार्टी में सब के सामने पिताने माँ का उपहास किया तो बेटी को

जीवन के कुछ और बातों का परिचय मिला । उसी दिन जीवन में पहली बार किरणमयी ने अपनी बेटी के सामने अपनी व्यथा और छिपा दर्द अनावृत कर दिये । वह सब सहनकर परिवार केलिए निष्कम्प दीप शिखा भी जलती रहती है। उसमें पारदर्शिता है । इसलिए उन्होंने बेटी की स्थिति को साफ साफ पहचान ली है ।

पुरुष मेधा समाज में स्त्री का अपने बेटे या बेटी पर भी अधिकार नहीं है । केवल जन्म देकर पालन-पोषण करने का अधिकार ही उसे मिलता है । बच्चे का भविष्य, पढाई, शादी आदि मामलों में आज भी पुरुष का एकाधिकार है । इसका प्रमाण है किरणमयी के अपने बेटे बेटी को साथ रखकर पढाई कराने की इच्छा और उसके पति का घोर विरोध । पति उससे कहता है "तुम्हारी तरह की व्रत उपवास रखकर, चौके चूल्हे में सिर देकर क्या मेरी बेटी जिन्दगी काटेगी ? क्या मेरा बेटा तुम जैसी किसी ढोल को गले से लटकाकर जिन्दगी भर बजाता रहेगा । अरे बच्चों का जमाने के साथ चलने दो उन्हें नये ढंग से जीने दो ।"

किरणमयी मौन होकर सब सहने पर भी अवसर आने पर पति से प्रतिशोध लेने में सफल होती है । परस्त्रियों से संबन्ध रखनेवाले पति का चरित्र वह वर्षों से सहती आयी है । लेकिन अपने पडोसी का दुःख समझकर वह अपने पति को घर में बन्द रखने में सफल होती है । किरणमयी पति को पडोस जाने से रोकती है तो वह जिद्द करता है, और कहता है मैं जाऊँगा, जरूर जाऊँगा, आज तुम मुझे नहीं रोक सकती । जल्दी ही किरणमयी ने धडाक से कमरा बन्द कर लिया । और दरवाज़े के सामने अकड़कर खडी होकर पति से कहने लगी - बताऊँ कैसी सती हूँ मैं ? समझ सकोगे ? मैं तुम्हारे नाम का व्रत रखती हूँ इसलिए कि तुम मेरे पति के नाम पर मेरे सामने हो, नहीं तो व्रत मैं अपने मन के नाम पर रखती हूँ, तुम्हारे नाम तो बहाना है ।"[95]

किरणमयी का इतना स्पष्ट बेबाक अप्रत्याशित उत्तर सुनकर मेजर और बेटी दोनों स्तब्ध रह गये। बेटी सिम्मी याद करती है - "मम्मी इतनी गहरी है, इसकी थाह मुझे नहीं थी। सदा एक मौन ओढ़ मेरी मम्मी इतना दर्द, इतना बोझ छिपाए होगी कौन जानता है।"

किरणमयी, अन्याय और अधर्म को सहने वाली नहीं है। वह डॉ. माथुर की व्यथा से इतनी अभिभूत हो गई कि उसे लगती है उसकी व्यथा अपनी व्यथा हो। वह अपनी बेटी से कहती भी है - "सिम्मी मैं माथुर भाई केलिए तेरे पापा को मनोरमा से दूर रखना चाहती हूँ। सोच लो कितना बडा अधरम है, यह कितना अन्याय कि एक औरत अपने पति को, घर को, बच्चे को बरबाद कर दे केवल अपनी खुशी केलिए, मौज केलिए। प्यार का मतलब क्या कई जिन्दगियों की बरबादी है? ... खुद जीने केलिए दूसरे को मार देना पाप है सिम्मी। अधरम है, अन्याय है। ... मैं इसी पाप से तेरे पापा को बचाना चाहती थी, बचा भी लिया था ... लेकिन अब लगता है कुछ भी नहीं बचेगा, न तू न मैं, न निशीथ, न तेरे पापा, न माथुर भाई।"[96]

चुप रहने पर भी उसकी शक्ति प्रबल है। धरम और करम में किसी को पीडा न देने की सीख वह पढ चुकी है। इसलिए वह बेटी से कहती है असली धरम तो मन का होता है।

बेटी के भविष्य की चिंता से वह तडपती है, दुःखी भी है। लेकिन उचित मार्ग चुनने केलिए सलाह देती है। बेटी के भीतर के लू के झोंका को मिटाने केलिए प्रौढ समझदार नारी की तरह वह कहती है - "सिम्मी बेटी डर मत, मैं हूँ न, मैं जो हूँ तेरे पास-तेरे साथ।"

जीवन में सच्चाई को स्वीकार करने की सीख किरणमयी बेटी को देती है। वह निडर होकर, बेटी को प्रशान्त के साथ नयी जिंदगी की शुरुआत करने का उपदेश देती है - "मैं जानती थी सिम्मी, शायद बात तुझे बुरी लगे, लेकिन मैं यह भी नहीं चाहती कि अब तू किसी भरम में रहे,

अब तो तुझे बहुत सम्भल-सम्भल कर इन भरमों से निकलना होगा, ... अपने को, जिन्दगी को, ज़माने को, सभी कुछ को नये सिरे से देखना, समझना स्वीकार करना होगा । अपने-अपने हिस्से का जहर हम सबको अकेले ही पीना पड़ता है ... मैं चाहूं तो तभी तेरे साथ हिस्सा नहीं बांट सकती ।"

किरणमयी की अपराजेयता को स्वीकार करती हुई बेटी उससे अपने हिस्से का जहर आत्मसात करना सीखती है । किरणमयी यद्यपि मौन होकर सब सहती है लेकिन समय आने पर पति से लड़ती भी है । लडाई भी अपने जीवन केलिए नहीं बल्कि परहित को ध्यान में रखकर करती है । दुराचारी पति को कमरे में बन्द रखकर उनके मार्ग में अचल गिरि की भांति वह खडी हो जाती है, और उसे चोट पहुंचाती है । मौन रहकर पति से प्रतिकार करना वह जानती है । बात-बात पर पति से वह लडती नहीं है पर अंत में निर्भीक होकर अन्याय का सामना करती है ।

प्रतिध्वनियाँ

यह उपन्यास यद्यपि शहर के सम्मानित मेयर नीलकान्त मेहत्ता और उनकी पत्नी अचला को आधार बनाकर लिखा गया है, फिर भी इस में और भी अनेक नारी पात्र हैं, जो पुरुष से निरन्तर जूझती हुई अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व को बनाये रखने की कोशिश करती हैं ।

मेहता को धन और यश का मणिकांचन संयोग मिला है । अपनी उन्नति केलिए शादी, बेटी, प्यार आदि को इस्तेमाल करने में उसे कोई हिचक नहीं थी । मध्यवर्गीय परिवार का नीलू स्कूल फस्ट आया था, पुरस्कार वितरण में शहर के लक्ष्मीपुत्र सेठ रायबहादुर मेहत्ता पधारे थे । मेहत्ता ने पुरस्कार वितरण के बाद नीलू को एकान्त में लेकर पूछा - मेरे बेटे बनोगे ? नीलू को कोई एतराज नहीं था ।

यों नीलकान्त रायबहादुर का दत्तक पुत्र बन गया ।

संरक्षक मेहता की यही चाह थी कि वह पढाई की पूर्ति करके उसके बिज़िनेस का संचालक बने । साथ पढनेवाली शुभा पटील से नीलू को प्यार है । लेकिन मेहत्ता की चल अचल संपत्ति कीवारीस होने के नाते उसकी बेटी अचला से उसे शादी करनी पडी । शुभा और पनमारी की दूकान, अचला और विपुल ऐश्वर्य में उन्होंने दूसरे को चुन लिया। उसने मेहता जी की दुहिता अचला को निर्द्वन्द्व भाव से स्वीकार कर लिया था । सुहाग के सेज में अचला प्रेमी की भेंट किताब लिए पति नीलकान्त का स्वागत करती है ।

बाद में नीलकान्त का संबन्ध अनेक युवतियों से होता है । अचला भी इस मामले में पीछे नहीं, दोनों के बीच कई कारणों से मनमुटाव होता है । दोनों ने दाम्पत्य में मनमानी करना शुरू किया । अचला अपने प्रेमी विनय से गर्भधारण कर लेती है । नीलकान्त अचला पर प्रतिबन्ध लगा देता है, पति पर गहरी चोट लगाने केलिए वह नींद की गोलियाँ खाकर आत्महत्या कर लेती है ।

अचला का चरित्र

अचला बहुत ही स्वाभिमानी, दृढ संकल्प और बहादुर स्त्री है । नीलकान्त के विचार में अचला स्वर्ण से निर्मित रत्नजटित प्रतिमा है, अर्थात् अतिमूल्यवान । उसके अनुसार अचला की देह में केवल स्वर्ण के मूल्य का ही सौन्दर्य था । उसका नारी मन भी ऐसा गंधित नहीं था कि उसकी गंध पति की साँसों में बस जाए ... वैसे स्वर्ण पुष्पों में मूल्य के अतिरिक्त रूप सौन्दर्य या गन्ध का आकर्षण होती भी कहाँ है ।"[97]

अचला सुहाग रात में ही सहमी, सिकुडी भारतीय वधू की पुरानी संकल्पना को तोड देती है । वह सुहाग कक्षा के सेज में अपने प्रेमी विनय की सप्रेम भेंट किताब पढती है । सद्य परिणीता होने पर भी

वह नीलकान्त के आने पर उठी नहीं, मात्र एक मृदुहास से उसने करवट बदल ली। लेकिन नीलकान्त की यही इच्छा थी "मैं अचला का घूँघट उठाना चाहता था, उसकी पलकों को नववधू की लाज से उठती गिरती देखना चाहता था ... सुहाग सेज पर बिछे सजे फूलों की साक्षी में पुरुष के अधिकार और नारी के समर्पण की गाथा दुहराना चाहता था।"[98]

नील के पूछने पर अचला ने निस्संकोच वह किताब पति की ओर बढ़ायी। प्रथम पृष्ठ पर एक हस्ताक्षरयुक्त समर्पण था "अचला को, जिसे मैं पा न सका विनय।"[99] नीलम मेहत्ता ने अपनी पत्नी से पूछा यह विनय कौन है ? यह सुनकर उसके मुख पर लाज की लालिमा नहीं, रोष की कालिमा बिखर गईथी, और प्रत्युत्तर में निस्संकोच अचला पूछती है, "वह गुजरातिन लड़की कौन थी ?" नीलम मेहत्ता सेज से फूलों की पंखुड़ियाँ नोचकर फर्श पर फेंकते हुए पुरुषोचित अधिकार से (जो अपनी नारी को चाहे वह प्रिया हो या पत्नी अछूता, समर्पित पाना चाहता है) पूछा पहले तुम बताओ वह कौन है ? और कहा - पुरुष स्त्री का पहला प्रेमी होना चाहता है, स्त्री पुरुष की अन्तिम प्रेमिका।" अचला ने उत्तर दिया "विनय मेरेलिए वही है, जो वह गुजरात्तिन तुम्हारेलिए है अर्थात् मेरा प्यार, और मेरा त्याग।"[100]

अचला का यह निडर भाव और स्वर की "प्रतिध्वनि" उस सुहाग कक्ष में ही नहीं नीलम मेहत्ता के वक्ष में भी किसी प्रबल घोष सी बज उठी। अचला ने उसे प्रथम रात्रि में ही समझाया कि उसके और अचला के बीच बाजी बराबरी की रही थी। उसकी नव परिणीता का स्वर नारी के समर्पण का नहीं, नारी के अधिकार का था।

अचला जानती थी कि उसका पति, नीलकान्त कालेज में अपनी सहपाठी शुभा से प्यार करता था। परन्तु जब उसे त्यागकर वह वैभव संपत्ति केलिए अचला से विवाह करता है तो वह इस स्थिति को बर्दाश्त नहीं कर पाती। वह यह भी जानती है कि उसे पैसे केलिए स्वीकार

किया गया है । इसलिए वह नील से खुल्लम खुल्ला कहती है "मेरा विवाह तुम से हुआ है, किया गया है, वैसे ही जैसे तुमने मुझसे विवाह करना चाहा नहीं था, फिर भी किया है, मैं श्री हरिश्चन्द्र मेहत्ता की एकलौती बेटी हूँ ना इस अपार वैभव की स्वामिनी । और तुम ने मेरा स्वामित्व इस ऐश्वर्य केलिए ही स्वीकार किया है, अर्थात् मेरा पतित्व ।"[101]

शादी-शुदा नारी में जो मर्यादा का पालन होना है उन सबों को तोड़कर वह पति से सौदे की बात करती है। इसकेलिए उसके मन में कोई डर नहीं है । वह पति से कहती है मैं तुमसे उस सौदे की बात स्पष्ट कर लेना चाहती हूँ जो आज से मेरे तुम्हारे बीच जीवन भर चला रहेगा । तुमने मुझे, मेरे लिए नहीं, मेरी स्थितियों केलिए, इस अपार ऐश्वर्य केलिए ... और मैं ने भी मात्र तुम्हें पापा के वैभव और ऐश्वर्य के उत्तराधिकारी के रूप में स्वीकार किया है । हम दोनों ने ही बराबर का सौदा किया है, अब हमें चाहिए कि उस सौदे को ईमानदारी से निभाएँ ।"[102]

अचला अपने संबन्धों में ईमानदार है । वह नील से स्पष्ट रूप से कह देती है, मैं ने विनय को भुलाने की कसम नहीं खाई है, वह याद आयेगा, इसके बदले मैं तुम भी अपनी उस गुजरातिन से संबन्ध बनाये रख सकते हो ।"[103] उसी दिन उसके पति ने यह स्वीकार कर लिया था कि उन दोनों में शरीर से परे कोई संबन्ध नहीं रहेगा, या चलेगा । रागिनी बेटी उनके तन की एकता की ही प्रतीक थी.... मन की नहीं ।

अचला सामाजिक दृष्टि से उसकी पत्नी, एक कुलवधु है । पर पति-पत्नी के बीच संवेदनहीनता की एक मजबूत दीवार है । यह संबन्ध नीलम के पौरुष पर प्रबल आघात था । उसे मालूम था अचला पर कभी अंकुश नहीं लगा पाएगा । कभी कभी नीलम मेहत्ता व्यंग्य करके उससे पूछता था "आपके कवि [illegible] के क्या हाल है । व्यंग्य के उत्तर में अचला वक्र चितवन से कह उठती "आपसे मतलब ? वह मेरी निजी मामला है ।"[104]

रागिनी के बाद एक पुत्र केलिए मेहत्ता का मन तरसा था । अचला से जब बात हुई तो वह कह उठी - "क्या मैं भी बच्चा पैदा करने की मशीन हूँ ? एक लड़की काफी है । मैं भी तो पापा की अकेली सन्तान थी ।"[105]

सहसा एक दिन अचला की तबियत खराब हो गयी । उसे कुछ भी पसंद नहीं आया । घर की बूढी दाई ने मेहता के कान में फुसफुसाया " मुबारक हो मालिक बेटिया फिर से माँ बननेवाली है । मेहता ने अचला से अपराधी भाव से पूछा सारी सावधानी के बावजूद यह कैसे हो गया । तुम तो मुझसे बहुत नाराज होगी । तुम फिर माँ नहीं बनना चाहती न । यह सुनकर अचला ने किसी भेद-भाव के बिना उत्तर दिया - "यह गर्भ तुम्हारा नहीं है ।"[106] अपनी पत्नी के मुँह से पर-पुरुष का संबन्ध सुनकर मेहत्ता ने आक्रोश के साथ पूछा तुम्हारा यह साहस! अचला ने निर्द्वंद्व भाव से मेहत्ता से पूछा -क्यों तुम वासना के आवेग में जया को गर्भवती बना सकते हो ... मोती बाई से इश्क फरमा सकते हो । और मैं जिससे प्रेम करती हूँ, उसकी सन्तान को गर्भ में धारण नहीं कर सकती ? इसलिए केवल इसलिए कि तुम पुरुष हो और मैं नारी । क्षमा करना कान्त, मैं ऐसी किसी भी बन्धन को नहीं मानती जो भीतर से नहीं, बाहर से बाँधते हैं । तुम से भी मैं केवल बाहर से बंधी हुई हूँ यह गर्भ विनय का है ।"[107]

अचला का स्वर निर्मम एवं तटस्थ था । नीलम का आक्रोश बर्फ सा ठंडा हो गया । नीलम मेहता इस नये प्रहार से आहत हो गया और वह एकाएक सोचने लगता है शुभ्रा से दिए गए घाव भूल सकता है, जया ने घाव दिए ही नहीं थे । उसे तो मैं ने घाव दिया था । मोती बाई से मिले घाव भी समय ने भर दिए । और इन तीनों से वह अचला के अपेक्षाकृत निकट था । लेकिन अचला से दिया घाव आज तक नहीं भरा । नीलम मेहता की बेटी रागिणी के साथ किसी और का शिशु भी एक छत्र के नीचे खेलेगा, बडे बनेगा यह सोचकर मेहत्ता को आत्माघात की इच्छा होने लगी ।

जिस सुहाग सेज पर मेहत्तामात्र का अधिकार जमा था, आज उस सेज पर किसी और पुरुष के अंश को गर्भ में धारण किए उसकी तथाकथित पत्नी लेटी थी। यह देखकर मेहत्ता ने कहा "आज से मैं दूसरे कमरे में सोऊँगा। इन्तज़ाम करवा देना।" लेकिन अचला ने कहा "सुनो, मैं विनय के साथ कुछ दिन केलिए बाहर जाना चाहती हूँ, यहाँ मेरी तबियत ठीक नहीं रही। यह सुनकर मेहत्ता ने आक्रोश के साथ कहा "बेशर्म औरत इतना करके भी सन्तोष नहीं हुआ। रंगेलियाँ मनाने केलिए और आज़ादी चाहिए। मेरी इजाजत नहीं मिलेगी। न अब मेरी इजाजत के बगैर तुम विनय से मिल सकोगी और गर्भ भी तुम्हें गिरवाना होगा।"[108]

अपने पति से यह सुनकर अचला ने अचंचल होकर कहा "कभी नहीं" यह गर्भ मेरे प्यार की निशानी है। बलात्कार तो मुझसे करते हो। शर्म तो तुम्हें आनी चाहिए कि जिससे तुम प्यार नहीं करते थे, उससे शादी की, उसकी संपत्ति केलिए। उन सारे सुखों केलिए जो उसके वैभव के साथ तुम्हें मिल सकते थे, मिल रहे हैं। बोलो तुमने सिर्फ एक सौदा नहीं किया और उस सौदे में मुझे भी नहीं हथिया लिया।"[109]

अचला असाधारण है। वह सारी पारिवारिक मर्यादाओं व मान्यताओं को बेरहमी तोड़ देती है। वह अपने पति के सम्मुख अपने पर पुरुष संबन्ध को बेबाकी से स्वीकार करती है। जब मेहता अचला से कहता है कि विनय को इधर आना नहीं चाहिए तो अचला अचंचल होकर कहती है "तुम विनय को आने से नहीं रोक सकते।" अचला का यह सतर्क भाव जो नील को पराजित करने मात्र केलिए था - वह सह नहीं सकता। वह आहत सर्प सा डसने केलिए फन उठाकर सन्नद्ध हो उठा। उस नारी को जो मात्र उसकी पत्नी थी, मानी जाती थी, किन्तु उससे प्यार न होने पर भी उसपर केवल अधिकार के नाते उसका पुरुष भाव, प्रतिशोध - पर उतर आया था।

अचला मन ही मन निश्चय कर लेती है कि मेहत्ता को दुनिया के सामने जलील करने का मौका कभी नहीं देगी । इसलिए नीलू को और एक प्रहार देकर, उसे पराजित करने केलिए नींद की गोलियाँ खाकर आत्महत्या कर लेती है ।

निडर, निर्भीक अचला में नारी मुक्ति का अतिवादी भाव देख सकते हैं । प्यार में बाधा डालनेवाले सब प्रतिबंधों का उल्लंघन करनेका आह्वान अतिवाद में है । शादी के बाद अचला अपने पूर्व प्रेमी से संबन्ध तोडती ही नहीं बल्कि और मज़बूत बनाती है । स्त्री होने के नाते वह अपने जीवन की उमंगों को छोडना ही नहीं चाहती । वह पति से निरंतर लडती रहती है । अपने को वह गौण नहीं मानती । उसका विचार है पुरुष का मनमानी करने से स्त्री को भी अपने सुख केलिए "पटरी" को बदलने में कोई आपत्ति नहीं है । अंत तक वह जितनी शान से जीती है उतनी शान से मौत को भी स्वीकार करती है । डॉ• राजारानी शर्मा के अनुसार "अचला अपनी स्थितियों से आधुनिकता के रास्ते पर रूढीन्मुक्त होकर यात्रा करने का प्रयास करती है परन्तु आखिर टूट जाती है । उसके सारे गुण उसे कहीं ढंग के रास्ते पर नहीं ले जाते । आखिर उसका, मृत्यु को गले लगाना एक प्रकार से उसकी पराजय है । यह ज़रूर है कि इस पराजय में भी उसने पुरुष समाज को नारी के प्रति अधिक वस्तुनिष्ठ बनकर विचार करने को झिझोडा है ।

शुभा

शुभा नीलम मेहत्ता की सहपाठी मेधावी छात्रा है । मेहत्ता के अनुसार शुभा में फूलों सा नैसर्गिक आकर्षण है । उसकी कमल पंखुडियों सी आँखें, नीली मानसरोवर झील की याद दिला देती है । "द ब्यूटी इन डइट" कोलेज में उसका उपनाम था ।

रसायनशाला में दोनों साथ मिलकर प्रयोग करते हैं । एक दिन प्रयोग का पारख नीचे छिटका तो मूल्य देने केलिए शुभा विवश हो

उठी । तब नीलू ने कहा "यदि तुम चाहे तो तुम्हारा सारा बोझ मैं स्वीकार कर सकता हूं । यह मेरी खुशकिस्मती होगी कि तुम्हारा यह चांदनी जैसा उज्वल भार मैं उठा सकूं ।"[110] लेकिन शुभ्रा ने कहा - "किन्तु कान्त सारा शहर जानता है कि तुम मेहता जी के भावी जामाद हो । उनकी सारी धन संपत्ति, ऐश्वर्य की अधिकारिणी पुत्री की तुलना में मैं कहाँ ठहर पाऊँगी कान्त ? क्यों मुझे छलते हो ? क्यों ऐसे सपने दिखाते हो जो सच हो ही नहीं सकते ।"[111]

शुभ्रा के शुभ कमलों जैसे चितवन के वे तीर, फूलों के शर होने पर भी नीलम के मानस की गहराई में, धंस चुके थे कि निकालने पर भी न निकले । उसकी वाणी, उस स्वर्ण प्रतिमा की तुलना में मेरा चांदनी जैसा भार कहाँ ठहर पाएगा .... । मेहत्ता को मालूम हो गया इस तीर को निकालने मे उसके हृदपिंड भी खंड खंड होकर बाहर आएगा और प्राण ही निकल जायेंगे । फिर भी मेहत्ता की अपार धनराशि के तराजू में तौलकर उसे अपनी प्रेमिका को धोखा देना ही पड़ा ।

सालों बाद नीलम मेहत्ता की ब्रिगेडियर कोहली और मिसेज़ कोहली से एक पार्टी में मुलाकात हुई । नीलू ने अपने मित्र कोहली से हाथ मिलाते वक्त देखा कि एक ओर शुभ नारी हाथ उसकी ओर बढा रही है । अभिवादन करते समय आँखों पर धूप का गहरा नीला चश्मा था, इसलिए उन आँखों को तो पढ नहीं सका, किन्तु खनकता स्वर नीलम मेहत्ता के चारों ओर सत सत स्वरों में प्रतिध्वनित हो उठा तो वह समझ गया कि वह शुभ्रा ही है ।

डानस के दौरान नीलम मेहत्ता ने शुभ्रा के साथ डानस करने का निश्चय कर लिया । शुभ्रा उसके साथ डानस फ्लोर पर उतर आई नीलू ने देखा, उन आँखों ने सम्मोहित करने से अधिक साहस कराना सीखा लिया था । शुभ्रा को खींचकर किसी एकांत में ले जाना और एक बार जी भरकर शुभ्रा के अहसासों को महसूस करने का अदम्य आग्रह मेहत्ताके

मन में था । वर्षों पश्चात उसे सामने पाकर वह होश खोने लगा था । उन्होंने डान्स के बीच उससे पूछा "क्या तुम अपना सौदा करोगी ?" उत्तर में शुभा ने कहा "तुम्हीं से सीखा है । नीलू को इस वाक्य ने कानों से लेकर हृदय तक चोट पहुँचायी ।

मेहत्ता ने उससे पूछा - तुमने फर्स्ट क्लास एम॰एस॰ की थी । इज्जत की ज़िन्दगी चुन सकती थीं । आत्मनिर्भर हो सकती थी । स्वयं इतना कमाकर जीवित रह सकती थी कि तुम्हें कोहली से यह सौदा करने की ज़रूरत न पड़ती ।"[112] यह सुनकर शुभा हँस पड़ी और कहा - "वेल सेड कान्त । मैं एम॰एसी॰ थी । इज्जत की जिन्दगी चुन सकती थी,.... आत्मनिर्भर हो सकती थी .... और इनके साथ कोई नौकरी करती चप्पलें चटकाती तुम्हारे नाम की माला जप सकती थी । जब तुम्हारी आँखों में समाई तस्वीर परफेक्ट हो जाती क्यों ? लेकिन क्या गलत किया मैं ने ? कौन सी कमी है मेरी इज्जत में ? तुमने राय बहादूर की बेटी से शादी की, मैं ने ब्रिगेडियर कोहली से, अगर और भी गम है, ज़माना मुहब्बत के सिवा .... तुम पर हावी हो सकता था, तो मुझपर क्यों नहीं ? जानते हो कान्त ... कोहली ने मेरी बूढी माँ और दोनों छोटे भाइयों को भी सपोर्ट किया, अब भी कर रहे हैं । माँ चैन से हैं । मेरे दोनों भाई पढाई पूरी कर चुके हैं, जल्दी ही सर्वीस में अपनी आँख के आँसू बहाने की तुलना में इतने होठों की हँसी पा लेना गलत है ... ?"[113]

शुभा व्यावहारिक नारी है। अपने प्रेमी की यादों में वर्तमान गँवाना वह मूर्खता समझती है । अपने उज्वल भविष्य बनाने केलिए वह भी प्रेमी कान्त के समान तत्पर थी । इसलिए डानस के दौरान वह बेबाक अपने मन की बात कह देती है। वह नीलू से कहती है "हटाओ पास्ट ईज़ पास्ट ... फारगेट इट । एन्ड लेट्स डानस एण्ड डान्स ।"[114]

पार्टी के बाद शुभा ब्रिगेडियर के साथ चली गयी । जाते वक्त अपने पूर्व प्रेमी को मुड़कर भी नहीं देखा । क्योंकि शुभा यह ठीक जानती थी कि मेहत्ता ने कभी भी अकला को पाकर उसकी ओर मुड़कर नहीं देखा था । शुभा में दिखाई देनेवाला यह बराबरी का भाव नारी की अहमयित का है ।

अपने प्रेमी की याद में रो - रोकर जीवन गँवा देनेवाली पुरानी प्लेटोनिक परंपरा से शुभा मुक्त है । नारी मुक्ति आंदोलन-कारियों का विचार है कि प्यार मनुष्य का जन्म-सिद्ध अधिकार है । इसमें लिंग-भेद की भावना की आवश्यकता नहीं है । एक से प्यार करके दूसरे से शादी करना कोई पाप की बात नहीं है । शादी-शुदा होने पर भी वह पूर्व प्रेमी के साथ डान्स करती है । उससे बराबर के सौदे की बात बताकर गहरी चोट पहुँचाती है और चली जाती है ।

शुभा नीलकान्त के आकर्षण में फंसकर उसकी मीरा बनकर विरह में तड़पते रहने की बात को धिक्कारती है । शुभा आधुनिक नारी मुक्ति विचारों से लैस पात्र है ।

गंगा

गंगा नीलकान्त मेहत्ता की माँ है । उसका पति उमाकान्त कस्बे का पंसारी था । अपनी आटा दाल की दूकान में तराजू पर वह केवल अनाज ही नहीं, ज़िन्दगी का हर पहलू हर मूल्य भी तौला करता था । उसके मन में हमेशा पत्नी के प्रति घृणा भाव था । वह सदा कहा करता था - "यह निहायत, निकम्मी अरे और कोई औरत होती तो अपना देखती, यह बेवकूफ तो सदा पराया देखती है । मैं न रोकूँ तो घरबार लुटा दे । .... क्या ज़रूरत है उस अन्धी बुढ़िया को रोज़ खाना देने की ? इसलिए कि मेरी आटे-दाल की दूकान है ... दूकान क्या इसके बाप की है ।"[115]

नीलम मेहत्ता को याद है कि उसकी माँ अपने दर्द भरे जीवन में कभी कभी मीठे मधुर स्वर में मीरा भजन गाकर आत्म विभोर होती थी । वह हमेशा गाया करती थी "हे री तो दरद दिवानी मेरे दरद न जाने कोय ... ।"[116] एक दिन जब पिता ने इस तरह का गाना सुना तो चीखा "वाह री मीराबाई तुझे किस किसन कन्हाई का विरह है ? सुन री मुझे यह गाना-वाना अच्छा नहीं लगता । मुँह बन्द करके रहा कर ।" पुरुष मेधा का यह स्वर सुनने के बाद वह गुनगुनाती तक नहीं थी । बेटा नीलू याद करता है - उसके बाद माँ कभी गाती भी तो दरवाज़े बन्द करके और दरवाज़े पर आहट होते ही अपराधिनी सी सहमकर चुप हो जाती ।

बेटा नीलू के अनुसार उसकी माँ में एक भोला सौन्दर्य था । बडी बडी आँखों में एक बंध लेनेवाला सम्मोहन । .... पिता उस सम्मोहन में स्वयं तो नहीं बंधा था । किन्तु उस सम्मोहन को कैद में रखना चाहता था । उसकी माँ बिना प्रतिवाद किए, कैद हो भी गई थी ... और उसकी बडी-बडी आँखों में किसी विवश बन्दिनी की पीडा, उसकी पलकों में कोई पिंजरबद्ध पक्षी उडने को कातर हो फडफडाहट करती थी । नीलम मेहत्ता याद करता है माँ उन्हीं फडफडाती पलकों से खिड़की सीखचों से आकाश को देखती, कभी कभी मुझसे कहती - दूसरे जन्म में मैं चिडिया बनूँगी रे नीलू । आसमान में उड़ती फिरती, गाती चिडिया पर पता नहीं, दूसरा जन्म होती भी है या नहीं ।"[117]

गंगा के तीन बेटों की मृत्यु के बाद नीलू का जन्म हुआ था । पति उन मृत पुत्रों केलिए, पत्नी को दोषी ठहराया करता था । वह कहा करता था - "इस करमजली का जाने कौन सा पाप मेरे बच्चों को खा जाता है । वरना मेरे भाग्य से तो प्रभु ने मुझे पूरे चार बेटे दिए थे । पति का आक्रोश सुनकर गंगा कभी कभी उदास हँसी हस पडती और कहती "अब ये भी कहो न कि इन चारों के जनने का दरद भी तुमने ही

सहा है ।"[118] प्रत्युत्तर में आग्नेय दृष्टि दिखाकर वह गंगा को चुप कराता था ।

गंगा अपने पति से मुकाबला करते वक्त चुप रहती । वह दिन ब दिन अधिक चुप हो गयी । लेकिन यह मौन भी कितना मुखर था । बेटा याद करता है - माँ जितनी चुप होती गई थी । उतनी ही शान्त तटस्थ, निर्भीक सी । पिता जितना अधिक चीखने चिल्लाने लगे थे उतने ही अधिक अशान्त, अस्थिर भयभीत हो उठे थे । प्रकट में माँ उनसे डरती थी, किन्तु मुझे लगने लगा था, अप्रकट में धीरे-धीरे वे माँ से डरने लगे हैं ।"[119]

गाँव से अपना परिचित कान्हा भूखा आया तो गंगा ने उसे घर में खान-पान दिया । उसे कुछ देने केलिए गंगाने जल्दी ही पति की दूकान जाकर पहली बार जिन्दगी में पति महाराज से कहा - "सुनो जी कन्हा आया है, भूख प्यास से बेहाल । उसका सारा परिवार भूख से दम तोड रहा है । उसे महीने भर की रसद दे दे ।" सदा पति का उपदेश चुप-चाप माननेवाली गंगा के आदेश का स्वर उसके पति को अपरिचित सा लगा । मेहत्ता जल्दी ही दूकान बन्द करके घर चले आया और उसने बूढे कान्हा को बुरी तरह प्रहार किया । कान्ह को पीटते देखकर गंगा डरती नहीं रही बल्कि वह पति को प्रबल वेग से धक्का दिया, वह गिर पडा । क्रुद्ध मेहत्ता ने पत्नी को पीटकर बेहोश किया और पास खडे बेटे से कहा "होश आने पर कह देना कि मर जाए । जब गंगा को होश आया तब वह खुद कहने लगी मर जाऊँगी । और उसने मरकर भी दिखाया ।

गंगा ने निश्चय कर लिया कि पति की मनमानी सहकर दम तोडकर जीने से बेहतर है, मृत्यु का वरण करना । उसकी मृत्यु, जीने के डर से या पति के डर से नहीं हुई । क्योंकि वह बार बार कहा

करती थी - नील रे तेरे खातिर ज़िन्दगी, जैसे भी जान पडे ज़िन्दगी मेरे लाला" कान्ह को वह प्यार करती थी । अपने प्रेमी की दयनीय दशा में, उसकेलिए कुछ पति से मांगने में वह डरती नहीं । आत्मघात कर वह अधिक साहसी निकली क्योंकि होश हवास में अपने प्राणों पर खेलना कायरता नहीं, साहस ही है ।

जया

जया अचला की प्रिय दासी है । वह बाल विधवा थी । किसी समारोह में जाने की तैयारी में अचला के श्रृंगार में तत्पर जया को नीलम मेहत्ता ने पाइप पीने का बहाना बनाकर कनखियों से देखा, मानो वह अचला को देख रहा हो । उसको मालूम हो गया अचला में जया के से नैसर्गिक सम्मोहन का अभाव था । इस प्रकार तब से जया के रूप और गन्ध ने मेहत्ता को पागल बना दिया । और उसने जया को पाने का निश्चय भी किया ।

अचला से पराजित, अपमानित मेहत्ता के मन में जब काम उन्मत्त होने लगा तो उसने जया की ओर बढना चाहा, और उसका कदम कभी कभी जया की कोठरी की ओर बढा । पहली बार निद्रामग्न जया भय से कांपने लगी थी । नीलकान्त के अनुसार "शुभा के साथ मेरा संबन्ध वायवी रहा आया था । अचला के साथ वह तन के ठोस धरातल पर, पति-पत्नी के संबन्ध के रूप में उतर चुका था ... किन्तु मेरे भीतर का पुरुष अतृप्त था । दैहिक सुख से परे वह किसी नारी-समर्पण का ऐसा प्यासा हो उठा था कि किसी नारी देह के साथ नारी मन को भी पूर्ण बांध लेने केलिए उन्माद की सीमा तक आतुर हो उठा था ।"[120]

जया के पास जाते समय नीलम मेहत्ता के मन में उससे किसी विरोध का भय न था । और प्रतिरोध की आशंका भी न थी ।

उनका विचार था कि "एक मामूली औरत, एक लेखिका, जिसे वह खरीद सकता था ... उसका मुँह मोतियों से बन्द कर सकता था । उसकेलिए एक ही मुट्ठी काफी होगी । इस विचार के साथ वह जया के पास गया और उससे कहा "तुम जितना मांगोगी, दूँगा ।" सुनकर जया ने कहा मैं जितना नहीं, जो मांगूंगी दोगे ? मेहत्ता ने फिर पूछा "क्या चाहिए तुम्हें ? मालकिन की जगह ?"

नीलम मेहत्ता के इस खरीददाराजी में उसे पराजित करती हुई जया ने कहा "न मुझे सोना चाँदी चाहिए, न मालकिन की जगह, मुझे तो सिर्फ आप चाहिए मालिक, स्वामी के रूप में ... । मैं पढ़ी लिखी नहीं, दो टेक की फूटे भाग की मारी औरत हूँ जैसे मिट्टी की हांडी.... लेकिन मालिक, मिट्टी की हांडी चूल्हे पर बार बार नहीं चढ़ती । आप जबर्दस्त नहीं, खुशी से मुझे अपना लीजिए .... मैं बाल विधवा हूँ न । मुझे अभी तक किसी ने मैला नहीं किया है । .... अब आप के छूने के बाद मैं उमर भर किसी को हाथ नहीं लगाने दूँगी, बस इतना चाहती हूँ ।

निरीह अनपढ नारी जया से यह सुनकर नीलम मेहत्ता स्तब्ध सा रह गया । फिर उस रात प्रथम बार उसका पुरुष, उसका पौरुष, उसका अधिकार बोध, सब तृप्त हो गए । मेहत्ता कहता है - मुझे आशा नहीं थी कि उस अपढ निम्न स्तर की नारी में इतना विवेक, इतना समर्पण होगा ... नारी प्राणों की इतनी चेतना होगी ....।"

नीलम मेहता जया के पास मात्र वासना तृप्ति केलिए जाता रहा था किन्तु जया के एकान्त समर्पण ने उसकी वासना को ऊँचा उठा दिया था । "शुभा, अचला, जया तीन नारी अस्तित्व मेरे जीवन में आए । मेरे तन मन को झंकृत किया और कैसा आश्चर्य है कि इन तीनों में से सबसे दुर्बल प्रतीत होनेवाली जया सबसे प्रबल निकली ।

शुभा के सम्मोहन और अचला के आकर्षण के बीच अतृप्ति से भटका मेरा पुरुष मन जया को आलिंगनबद्ध कर आकंठ तृप्त हो गया था । मैं ने जया को नहीं, जया ने मुझे जीत लिया था, किन्तु शुभा, या अचला के समान मुझे पराजय बोधों से दग्ध नहीं विजेता के मस्तक पर चन्दन तिलक जैसी अनुभूति दी थी .... ।"[2]

अचला पापा के हंटर से जया को पीट, पीटकर पूछती रही थी कि "बता किसका पाप है ये ? बता नहीं तो जान ले लूँगी ।" पीट के दर्द के आधिक्य से जया के दाँत भींच गये लेकिन उसने मेहत्ता का नाम नहीं बताया । अचला ने उसे कुलटा कह कर घर से निकाल दिया ।

लगभग दस वर्ष बाद बंगाल के अकाल ग्रस्त गाँव में अन्नदान के दौरान मेहत्ता की फिर जया से मुलाकात हो जाती है । जया अपने पुत्र तरुण को उसके हाथ में सौंपकर चैन से मरने की आशा प्रकट करती है ।

जया निडर निर्भीक नारी है । वह मानती नहीं है कि प्यार करना गलती है । निडर भाव से उसे भोगने की अनुमति वह देती है । पुरुष मेधा या पुरुष शक्ति के सामने वह गिडगिडाती नहीं । अनपढ होने पर भी सभ्य समूह की पढी-लिखी औरत से बेहतर वह अपने विचारों को प्रकट करती है । अपने प्यार केलिए आराम से जीने की आशा तक उसे छोडनी पडी, फिर भी अचंचल होकर सब सहती है, और बेटे तरुण को जन्म देकर परवरिश करती है । जया के व्यक्तित्व का यह करिश्मा है कि उसने बाल-विधवा की मजबूरियों को जबरदस्त पार करने का अदम्य साहस दिखाया ।

मोतीबाई

मोती बाई एक वेश्या है । वह नारी सौन्दर्य की साकार मूर्ति है । मोती बाई के कोमल कपोलों पर चूमकर मेहत्ता अपने संघर्ष की

थकान उतारता और फिर युद्ध केलिए सन्नद्ध हो जाता । मेहत्ता के अनुसार "शुभा मेरा सपना थी, अकला मेरा यथार्थ । जया मेरी एक दुर्बलता । मोती बाई में मेरे सपने यथार्थ और दुर्बलता एकाकार हो उठे थे ।"[122]

संपूर्ण नारीत्व की मूर्ति है वह । मोतीबाई ने मेहत्ता से कहा था - मैं कल का कोई वादा नहीं कर सकती मेरे मालिक । बस सामने खडे लमहों में जीती हूँ ... । इस वक्त, इन लमहों में मेरे पास जो कुछ है भरपूर ले लो कल की कौन जाने ? मेरा वादा क्या, मैं भी न रहूँ तो ।"

मेयरशिप के दुबारे चुनाव में भी राजामन मोहन राव को पराजित करने केलिए मेहत्ता तत्पर हो उठा । मेहत्ता की कामनाओं का मृग निरन्तर दौड में है । मेहत्ता को सब कुछ खरीदने का शौक था । इसलिए उसका विचार हो गया मोती बाई को भी खरीद कर सकेगा । एक दिन जब नीलम मेहत्ता "मोती महल" की सीढियाँ चढ रहा था, उसके पैरों से राजा मनमोहन राव सीढियाँ उतर रहा था । मेहत्ता क्रोध से काँपने लगा ।

विलास कक्षा में प्रवेश करते ही प्रबल आक्रोश मे मेहत्ता ने पूछा "क्यों राजा मनमोहन इधर आया ?" मोती ने उत्तर दिया "मेयर शिप के चुनाव केलिए मदद लेने । आप तो जानते हैं, शहर के बडे-बडे, आपकी इस नाचीज़ बंदी के कदम चूमते हैं । राजा मनमोहन राव खुद मेरी मुट्ठी में है । अब आप भी फरमाइए मेरे हुज़ूर कि पासा किसकी तरफ फेकूँ ।"

मेहत्ता को मोती का और किसी से संबन्ध रखना पसंद न था । उस पर काबू डालने की कोशिश देकर मेहत्ता से मोती ने पूछा - मैं ने कब कहा कि मैं आपकी फरमावदार बीती हूँ .... । आप भी हजूर फाहश को देवी बनाने के चक्कर में वक्त जाया किया करते हैं ।

आइये मेरे पहलू में । पहलू को गर्म कीजिए कीमत दीजिए, चले जाइये । इस पहलू में टिकने की या इसे खरीदने की कोशिश मत कीजिए ।"[123]

यों कहती हुई मोती बाई में न कामुक अपेक्षा था, न शर-बिद्ध मृगी का आहत भाव । वह अपनी निर्मम, नग्न सच्चाई लिए मेहत्ता की ओर अपलक देखती रही थी । मेहत्ता मोती की उन आँखों का वह निर्मम भाव देखकर स्तब्ध रह गया । इस घटना के बाद नीलकान्त मेहत्ता प्राणहीन हो गया । मोती बाई के शब्दों ने ऐसा प्रबल आघात दिया था । मोती बाई ने मेहत्ता को ज़िन्दा ही कब्र में ढकेल दिया । मेहता सोचता है "फूलों सी वह कोमल नारी ऐसा वज्रप्रहार भी कर सकती है कि मुझ जैसा सबल अस्तित्व मरते मरते बचे किन्तु मैं मरूँगी नहीं ।"

वह मेहत्ता से पूछती है "क्या आप मुझे अपनी बीवी का दरवाज़ा देने केलिए तैयार हैं।"[124] मोती की वाणीने फिर उसे चोट पहुँचाया और कहा यह कैसे हो सकता है । तुम्हें मालूम नहीं कि मैं शादी-शुदा हूँ । समाज में मेरी भारी इज्जत है । मोती ने जल्दी ही कहा "मैं जानती थी आप यही कहेंगे । सिर्फ आपके मुह से सुनना चाहती थी । आप मोती महल में ही मोती बाई को मुक्ता बनने के ख्वाब देख सकते हैं, उसे अपनी कोठी की सीढ़ियाँ चढाने की इजाजत नहीं दे सकते ।"[125] यह कील मेहत्ता की छाती पर गढाकर वह ज़ोर से हँस पडी । मेहत्ता को लगा वह पागल हो गयी है । मेहत्ता ने उससे पूछा क्या तुम होश में हो ? उसने कहा घबराइये नहीं हजूर मोती बाई इतनी कमज़ोर नहीं कि पागल हो जाए, या कोई पागलपन कर बैठे । देखनेवाले ने शायद उसे इतने होश दिए है कि यह चाहे भी तो पूरे होश नहीं खो सकती ।"[126]

यों केवल रूप यौवन का व्यापार करनेवाली एक वेश्या मोती बाईने भी मेहत्ता के अहं को चोट पहुँचायी । पुरुष अपने अहं के कारण सोचता है - सब खरीदना आसान है । लिबरल फेमिनिस्ट और

राडिकल फेमिनिस्ट मानते हैं "प्यार" केवल पुरुष का जाल मात्र है । यह स्त्री को फँसाता है । इसलिए एक के प्यार में बँधकर रहना उचित नहीं है । मोती बाई भी सिर्फ मेहत्ता की बनकर जीना पसंद नहीं करती । वेश्या होने पर भी वह पुरुष के मेधा भाव को सहन नहीं करती है ।

राग्गिणी

नीलम मेहत्ता और अचला की इकलौती बेटी है राग्गिणी । अनिच्छा के बावजूद भी उसे पिता द्वारा चुने गए वर को स्वीकारना पडा । लेकिन वह पिता से अपनी राय खुल्लम खुल्ला बता देती है ।

राग्गिणी का वर राजीव है । राजीव का पिता मनमोहन राव मेहत्ता का प्रतिद्वन्द्वी है । इसलिए मेहत्ता ने इस प्रतिद्वन्द्विता को एक रिश्ते में बाँधकर समाप्त करने का निश्चय किया । इस प्रकार राग्गिणी और राजीव की शादी हो गयी । राग्गिणी ने शादी की बात सुनकर घृणा के साथ पिता से पूछा - पापा मैं तो आपकी अकेली बेटी हूँ न, कानून भी जो मुझे पाएगा, आपके राज पाट को भी पाएगा इतना मैं भी जानती हूँ ।"[127]

उसे अपने प्रेमी से शादी करने की बेहद इच्छा थी । उसकी संपत्ति पर मज़ाक उठानेवाले पिता से वह पूछती है "तो क्या आप उस दो टके के क्लर्क को अपने वैभव का एक हिस्सा देकर वैभवशाली नहीं बन सकते ?"

ससुराल जाने के लिए तैयार राग्गिणी को मेहत्ता ने अपने ही हाथों से हीरों की पायल पहना दी तो उसने कहा - "आखिर पापा आपने मुझे उमर कैद ही दी है ।"

इन नारी पात्रों के चित्रण के ज़रिये उपन्यासकार दीप्तीजी यह खुल्लम खुल्ला बताना चाहती हैं कि पुरुष कभी अपने पौरुष पर आघात नहीं सह सकता । उसका अहं हमेशा प्रबलतम है । नारी से वह उसके नारीत्व पर आघात को समर्पण और त्याग के नाम पर, सहने की अपेक्षा रखता है । अपने समाज में पुरुष केलिए वासना के उन्माद भी क्षम्य रहे हैं, नारी केलिए प्यार की पूजा भी नहीं । यदि विवाह की वेदी पर स्त्री पुरुष जीवन भर केलिए परिणय बन्धन में बाँधते भी है, तो वह बन्धन पुरुष केलिए बहुत शिथिल होता है, स्त्री केलिए शिकंजे जैसा कठोर । ऐसे शिकंजों में त्याग, कर्तव्य और बलिदान के नाम से नारी घुट-घुटकर दम तोड़ती रही है - युग-युगों से । पुरुष तो स्वतंत्र आखेटक सा जीवन भर आखेट के रोमांच केलिए स्वतंत्र रहा आया है । प्रकृति ने भी तो नारी के साथ समान रूप से न्याय नहीं किया । जिस शरीर सुख को स्त्री-पुरुष समान रूप से भोगते हैं, वह पुरुष केलिए मात्र आनन्द तक सीमित है, स्त्री केलिए नाजायज मातृत्व अभिशाप तक बन सकता है । कभी भी नाजायज शिशु के पिता को नदी या तालाब में डूब मरने या गले में फाँसी का फंदा लगाने की आवश्यकता नहीं पड़ती । यह विवशता तो नारी की ही होती है क्योंकि यह प्रकृति की देन है, साथ समाज भी उस पर दबाव डालता है ।

आज नारी समूह इस शिकंजे को तोड़ने में सफल हो गया है । चाहे वह अचला जैसी उन्नत कुल की हो या मोती बाई, जया जैसी निचले स्तर की, वे पुरुष का मेधा भाव बिलकुल पसंद नहीं करती । यद्यपि वर्तमान परिवेश में समानता की हैसियत नामुमकिन है । फिर भी असमानता के विरुद्ध लड़ने और जीवन को सौदा बनाने की पुरुष मेधा समाज की व्यापारिक दृष्टि के विरुद्ध विद्रोह करने की क्षमता उन्होंने हासिल की है ।

वह तीसरा

यह दीप्ती जी का लघु उपन्यास है । अहंग्रस्त रंजिता और संदीप का विसंगतिपूर्ण जीवन ही इस उपन्यास का विषय है ।

संदीप एक कम्पनी में एक्सिक्यूटीव पद पर काम करता है । संदीप की माँ की अकाल मृत्यु हो गयी । पिता ने दूसरी शादी किये बिना ही उसकी परवरिश की । एम.कोम. पास होते ही उसे नौकरी मिली । बचपन से ही वह जिद्दी है । इसलिए नौकरी मिलते ही पिता ने एक अच्छे परिवार की लड़की रंजिता से उसकी शादी तय की ।

शादी के बाद रंजिता के पापा ने दोनों को हनिमून केलिए नैनिताल में एक महीने ठहरने का प्रबन्ध कराया । नैनिताल में पूरे एक महीने दोनों ने "राधा-कृष्ण" बनकर समय व्यतीत किया, लेकिन रंजित के मन में उधर ज्यादा दिन और ठहरने की इच्छा थी । संदीप के सहमत न होने के कारण दोनों घर वापस आये ।

नैनिताल में रहते वक्त ही रंजिता को मालूम हो गया कि उन दोनों के बीच भी वह तीसरा (अहं) गुंथे प्राणों और आलिंगन-बद्ध भुजाओं के बीच दुधारी नंगी तलवार सा लटकता रहता है ।

घर आते ही गृहप्रवेश के दिन सामने खडे लाल फूलों वाले गुलमोहर को साक्षी बनाकर संदीप ने कहा यह लाल रंग हमारे प्यार का सिंबल है । हमें इसे पूर्ण रूप से निभाना है, "इस गुलमोहर की कसम रंजिता, हमारा प्यार ऐसा ही लाल रहेगा। संदीप के होंठों से ऐसी भावुकता में डूबी बात सुनकर रंजिता हंसी नहीं थी । क्योंकि उसे उसकी वह भावुकता सच लगी थी ।

उस दिन खाना संदीप की मर्जी से ही बनाया गया था। पहला कौर उन्होंने अपने हाथों से रंजिता को खिलाया। फिर उसे लेकर ड्राइव केलिए निकल पडे थे। ड्राइव के बीच में भी दोनों के बीच "वह तीसरा" आकर उपस्थित हो गया। आधी रात तक ड्राइव करके दोनों घर पहुँचे। और विवाह के केवल दो मास बाद, उस रात में दोनों, अपनी-अपनी परिधि में डूबे सोये थे। नींद के बिना करवटें बदली वह हनिमून की यात्रा के बारेमेंसोचती पडी हुई थी। सुहाग-सेज पर अपने पुरुष के पार्श्व में मेरी नारी चेतना है। ओह नारी चेतना नहीं, केवल नारी-देह। देह के सत्य प्राणों का सत्य कहाँ बन पाते हैं। देह के सत्य से प्राय: प्राणों का छलावा बन जाते है। फिर कस्तूरी मृग सा बराबर मन अपनी ही सुगंधी को कहीं और ढूंढता भटकता रहा जाता है, जैसे मैं प्यार के सारे अर्थ संदीप में ढूंढने लगी थी। शायद संदीप भी ऐसा कर रहे थे। पल भर केलिए वह तैयार नहीं थे। प्यार को हम अधिकार का नाम दे रहे थे। और अपने अपने अधिकार की रक्षा केलिए चुनौती बने एक दूसरे के सम्मुख तनकर खडे हो गये थे। वे और मैं संदीप और रंजिता, ... प्रेमी और प्रेमिका ... पति और पत्नि आदम और हव्वा।"

दोनों के बीच बात-बात पर नोक झोंक होने लगी। जिन होठों से रस निकलता था उन्हीं से विष उगलने लगा। रंजिता सोचती है कि रस मे विष का यह विद्रूप शायद हर दंपति का सच होता है।

विवाह की वर्षगांठ पर आपस में उपहार दोनों ने बाँटा लेकिन वह खुशी भी और एक झगडे में समाप्त हुई। संदीप को रंजिता द्वारा लाया सूट बहुत कीमती लगने लगा। और रंजिता को संदीप द्वारा लायी साडी पसंद नहीं आयी। संदीप का रंजिता से यह प्रश्न कि सूट केलिए पैसा कहाँ से मिला है, उसे भाया नहीं। इसलिए उसपर काँटा चुभाने केलिए मौका वह भी ढूंढती रही। झगडे के अन्त में संदीप ने कहा अब आप मेजर सिन्हा की एकलौती बेटी नहीं, गरीब संदीप वर्मा की एकलौती बीवी है। संदीप वर्मा आकाश में नहीं, ज़मीन पर

जीता है । बजट के हिसाब से मैं दो सौ से ज्यादा साडी पर खर्च नहीं कर सकता था ... फिर तुम सूट का कपडा भी ले आयी ।"

शादी की पार्टी के बहाने प्रमोशन केलिए दफ्तरवालों को पार्टी दी जा रही है, इस जानकारी से रंजिता की सारी खुशी नष्ट हो जाती है । संदीप ने पत्नी से कहा भी "परसों पूरे स्टाफ को बुला ले, तो बहुत अच्छा रहेगा । कम्पनी में कुछ चेंजेज़ होनेवाले है । मैं चाहता हूँ कि अपना एक ज़ोरदार इंप्रेशन क्रियेट हो जाये । एक पन्थ दो काज हो जाएगी ।

रंजिता को पति का इस प्रकार का अहसान पसंद नहीं आया । इसलिए अकेले चुप-चाप सेलिब्रेट करने में वह तत्पर हो गयी । वह कहती भी है, हम चुपचाप सेलिब्रेट करेंगी । किसी एकान्त कोने में जहाँ तुम होगे और मैं । लेकिन संदीप मानने केलिए तैयार नहीं था ।

एक दिन अचानक रंजिता ने सोचा, एकाएक आफिस पहुँचकर संदीप को सरप्राइज़ दूँ । दफ्तर में संदीप के केबिन का दरवाज़ा खोलते ही उसने देखा संदीप और टाइपिस्ट मिस रूबी किसी बात पर हँस रहे थे । संदीप के होठों पर मुक्त हँसी थी । रंजिता को देखकर संदीप हतप्रभ हो गया । काबिन से बाहर निकला तो रंजिता ने कहा "शायद तुम मिस रूबी को माइंड कर गयी हो इट्स नथिंग रंजिता, नथिंग एट आँल ।" इस बात को लेकर दोनों के बीच मन-मुटाव फिर से शुरू हुआ । रंजिता को लगने लगा - मेरे पति पुरुष, एक यथार्थ था । वह यथार्थ कटु और कुरूप भी हो उठा था । उसे मालूम हो गया कि इस प्रकार के पति के साथ जीवन बिताना मुश्किल है । इसलिए वह पति से अलग होकर मुक्त जीवन जीने का निश्चय लेती है ।

रंजिता का चरित्र

रंजिता अति आधुनिका है । वह अपने व्यक्तित्व को महत्व देती है । वह चाहती है कि अपने व्यक्तित्व की भावनाओं की भी कद्र हो । शुरू शुरू में वह भी अन्य स्त्रियों के समान अपने पति से समझौता करती है, लेकिन छोटी-छोटी बातों से उनके बीच दरार बनती, बढ़ती चली जाती है ।

रंजिता और संदीप एक दूसरे से बेहद प्यार करते थे । लेकिन जैसे सूचित किया जाता । कुछ दिनों बाद दोनों में अहं सिर उठाने लगता है । हनिमून केलिए नैनिताल में रहते वक्त ही रंजिता को मालूम हो गया कि संदीप में अहं प्रबलतर है रंजिता को संदीप की व्यंग्य-भरी वाणी और उसके डैडी के उल्लेख ने आहत कर दिया । वह मन ही मन सोचने लगी "डैडी ने कम तो नहीं दिया था । नैनिताल के दो टिकटों के साथ दो हज़ार का चेक देना भी थे न भूले थे । ऐसी कमी तो संदीप के पास भी नहीं थी । उसे लगा उड़ते विहग को पहला तीर लगा और उसे धरती बुला रही ।

अपने पति के अहंभाव को वह सहनेवाली नहीं है । सद्य परिणीता होने पर भी, चोट पहुँचने पर उसने संदीप से पूछा "तो ऐसा क्यों कहते हो ? चलो, लौट चलें । तुम जहाँ भी होंगे, मेरेलिए नैनिताल ही होगा । यों कहती हुई उसने संदीप के वक्ष पर सिर टेक दिया, उन धड़कनों में डूब जाने केलिए । लेकिन संदीप उसे परे सरकाकर उठ खड़े हुए । वह सोचती है - वह परे सरकाना कठोर नहीं था । वह कोमल भी नहीं था । बस एक यथार्थ जैसा था, जैसे हम खा चुकने पर थाली सरका देते हैं । चाहे वह थाली रत्न जटित क्यों न हो पुरुष का थाली सरकानेवाला यह दृष्टिकोण उसे पसंद नहीं था । वह उसे पुरुष मेधा व्यक्तित्व की आत्माभिव्यक्ति मानती है ।

वह हमेशा अपने अधिकार के प्रति सतर्क रहती है । अपनी राय खुलकर प्रकट करने में कोई हिचक उसमें नहीं है । गृहप्रवेश की वेला में जब संदीप ने रंजिता से "वेल्कम रंजिता, मैं अपने घर घर में तुम्हारा स्वागत करता हूँ कहा तो रंजिता ने जवाब दिया नहीं, अब यह घर तुम्हारा नहीं, मेरा है ।"

उसी प्रकार ससुराल में पहले ही दिन भोजन के बारे में नौकरानी ने रंजिता से पूछा तो रंजिता को राय प्रकट करने का मौका दिये बिना संदीप ने कहा "सुनो अम्मा, जो मैं कहूँ वही बनाओ । अभी बहूरानी को आराम करने दो । रंजिता को संदीप के स्वर की सख्ती अच्छी नहीं लगी थी । इसलिए उसने पूछा "क्यों, आज खाना मेरी मर्जी से नहीं बन सकता ?" दोनों ने आपस में छेड़ना शुरू किया तो संदीप ने कहा "नो आरग्यूमेंट प्लीज़ । आई हेट आरग्यूमेंट्स" और बीच बीच में वह रंजिता से कहा करता था "बी प्राक्टिकल रंजिता" । डेडी वाज़ ए फेलियर इन लाइफ आइ आम ए सक्सेस ।"

भोजन के बाद संदीप उसके साथ ड्राइव केलिए निकला । ड्राइव करते हुए संदीप कहता है, मैं तुम्हें कार चलाना सिखा दूँगा । सुविधा होगी । रंजिता को पहले ही कई जख्म लग चुके थे । संदीप को कोई जख्म लगाने का मौका वह भी ढूँढ रही थी । इसलिए वह जवाब देती है - "शायद तुम भूल गये कि डेडी के पास भी कार है और कार चलाना मुझे आता है ।"[129] सचमुच वह जवाब रंजिता से छूटा पहला तीर था और निशाने पर बैठा था । संदीप ने जल्दी कार की स्पीड तेज़ कर दी । उस रात शयन कक्षा में, विवाह के केवल दो मास बाद सहसा रंजिता ने देखा था कि कोई तीसरा उन दोनों के बीच स्पष्ट हो उठा है । वह याद करती है - नीले प्रकाश से नहायी कक्षा में एक ही शय्या पर हमारे शरीर, हमारे धड़कते मन किसी कड़वाहट से सिक्त होने लगे थे । कौन उड़ेल दिया था वह कड़वाहट ? उस नीले प्रकाश के सम्मोहन को कौन तोड़ गया था ? वही तीसरा, न जो संदीप में और मुझमें एक

जैसा प्रबल था - हमारा अहं ... हमारा ईगो .... हमारा स्वयं से प्यार । हम एक दूसरे से प्यार करते थे, यह सच था । लेकिन हम स्वयं से अधिक प्यार करते थे, यह उससे भी बडा सच था ।"[130]

रंजिता के व्यक्तित्व में प्रगतिशील तत्व बलशाली है । अंधश्रद्धा और विश्वास उसके व्यक्तित्व में नहीं है । एक दिन दाई माँ ने उससे कहा "बहुरानी हमारा भैया है न, बडे जिद्दी है। माँ नहीं थी न । उसी जिद अब तक है। तुम नम जाओ नहीं, तो ई भैया तूफान खडा करि है । दाई माँ से यह उपदेश उसकेलिए निरर्थक निकला था । क्योंकि रंजिता का स्पष्ट विचार है - "मेरा अस्तित्व घास सा नगण्य नहीं था । क्यों झुकूं मैं ? इस देश में पुरुष ने नारी को सदा सताया है । धर्म के नाम पर, अधिकार के नाम पर, फिर प्यार के नाम पर भी । किन्तु युग बदल चुका है । प्यार और अधिकार के अर्थ भी तो बदल गये हैं ... और मैं इस युग की हूं, दाई माँ के युग की नहीं ।"[131]

हर दिन हर बात पर दोनों के बीच मन-मुटाव बढता रहा । आपस में झुकाने की प्रवृत्ति की ज्यादती चलने लगी । रंजिता, संदीप की आंखों में गुलाब ढूंढ रही थी ... किन्तु संदीप की आंखों में कैक्टेस उग गये थे । गुलाबों केलिए पागल उसकी आंखों में वे कैक्टेस चुभ-चुभ जाते और आंखें आहत होकर रह जातीं । दर्प और अधिकार की दुधारी तलवारें दोनों में समान होने के कारण - दोनों की एकात्मकता में जुडी बाहें, घात प्रतिघात करने लगती । संदीप ने गृहप्रवेश के दिन जिस गुलमोहर को साक्षी बनाकर उसके लाल रंग को अनुराग का सिंबल चुना था, वही लाल रंग आज प्रतिशोध के प्रतीक के रूप में तब्दील हो गया है । और बार बार उसके मन में ऐसी इच्छा आई कि संदीप से पूछूं "तुम ने कौन सी कसम खायी है, प्यार की या प्रतिशोध की ।"

रंजिता में इतना अहं है कि छोटे मोटे काम के संदर्भ में भी पति के सामने झुकना वह पसंद नहीं करती । प्यार के वास्ते भी वह समझौते केलिए तैयार नहीं । वह यही चाहती है कि उसे भी वही हेसियत मिले जो पुरुष को मिलती है "कार की चाबी दे आना, मुझे झुकना जैसा लगता .... और मैं झुकूंगी नहीं, मेरा निश्चय था । संदीप के होठों पर मेरा अधिकार है, संदीप के वक्ष पर मैं अपना खूबसूरत सिर टेक सकती हूं, टेकती भी हूं .... और संदीप को भी इस खूबसूरत सिर का गर्व होना चाहिए कि यह उसके वक्ष पर टिकता है । किन्तु यह सिर संदीप के कदमों में झुके, यह नहीं होगा । क्या संदीप मेरे कदमों में झुके हैं, झुकेंगे ?"[132]

एक दफा संदीप इस इच्छा से आफीस से लौटता है कि रंजिता उसे सहलाकर सांत्वना दे और इस विचार से रंजिता को बुलाया भी है । रंजिता के आने पर वह कहता है - जानती हो, आज आँफीस में कितनी चखा-चख हो गयी । मैं भी झुकनेवाला नहीं हूं । साले मेरा बिगाड़ क्या सकते हैं ?" संदीप का आहत दर्प बोल रहा था । रंजिता के मन में भी गम था । इसलिए सांत्वना दिये बिना उसने भी एक व्यंग्य किया हो, तुम क्यों झुकोगे ? उसका विचार है - हां मेरी बारी थी न, मैं संदीप की चोट को सहला सकती थी । मैं उनके आहत दर्प पर मरहम लगा सकती थी । मैं उन्हें वक्ष में समेट सकती थी । लेकिन मैं ने ऐसा किया नहीं, कर नहीं सकी .... या करना नहीं चाहा । उस क्षण तो प्रतिशोध केलिए पागल हो उठी नागिन की तृप्ति के अतिरिक्त मैं ने कुछ नहीं किया । संदीप कई बार डस चुके थे । आज डसने की बारी मेरी थी ।" रंजिता का व्यंग्य सुनकर संदीप उछलकर उठ बैठे और पूछा "व्हाट् डु यू मीन" यानी मुझे झुकना चाहिए ? लेकिन रंजिता ने उसे छोडा नहीं, उसने जवाब दिया, क्यों तुम तो भावना को नहीं, यथार्थ को मानते हो, फिर यह आत्मसम्मान क्यों ? तुम्हारी नौकरी को नुकसान पहुंचा सकता है । उसके स्वर में दंश ही दंश थे .... प्रतिशोध केलिए पागल उठी नागिन के दंश ।

रंजिता के अनुसार परस्पर समझने का काम केवल स्त्री का नहीं है । इसलिए जब संदीप के उनसे रंजिता डीयर, मुझे समझने की कोशिश करो, कहने पर जवाब देती है "तुम भी यह कोशिश क्यों नहीं करते ? जब संदीप शिकायत करता है "तुम में बहुत ईगो है, तो वह भी पूछ उठी और तुम में नहीं है ? । उसके अनुसार "समझना" और "ईगो" दिखाना केवल पुरुष का अधिकार नहीं है । इसमें स्त्री का भी अधिकार है । इसलिए वह भी हर मौके का सदुपयोग करती है ।

संपत्ति के बारे में और उसके उपयोग के बारे में भी उसके विचार में राडिकल और सोष्यलिस्ट नारी मुक्ति भावना दिखाई पड़ती है । शादी के बाद नारी, नौकरीपेश हो या न हो पति के धन में साझेदारी का हक उसे है। रंजिता की यही मान्यता है । इसलिए विवाह की वर्षगांठ पर वह पैसा लेकर संदीप केलिए नये सूट खरीदती है । सूट का कपड़ा देखकर संदीप ने मुँह बिचका दिया और पूछा "तुम्हारा कोई अलग बैंक बैलेन्स तो है नहीं । लेकिन रंजिता ने बदले में पूछा क्यों जो तुम्हारा है, वह मेरा नहीं क्या ? मेरा तुम्हारे सब कुछ पर अधिकार नहीं क्या ?" [134]

रंजिता हर समय पति के अहं को झुकाने में तत्पर रहती है । पुरान पन्थी "पति परमेश्वर" वाली भावना उसमें नहीं है । वह मानती है कि साझे-दारी में पति-पत्नी संबन्ध अच्छा रहता है । बदला लिए बिना वह रहती नहीं । इसलिए रंजिता ने जब उसकेलिए लायी साड़ी के बारे में पूछा तो वह कहती है - साड़ी अच्छी तो है, लेकिन सिर्फ 190, हमारी पहली वेडिंग एनिवेर्सरी है । कुछ भारी सी लाते ।" सचमुच रंजिता प्रतिघात कर रही थी कि संदीप समझे नश्तर का दर्द कैसा होता है । झगड़ा समाप्त करने केलिए मज़ाक में संदीप ने सिर झुका दिया । संदीप की अदा पर उसे खुशी आ गयी फिर भी उसने झुके सिर को वक्ष से सटा लिया कुछ समय केलिए मुग्ध होकर ठहर गयी ।

आधुनिक सभ्यता में पुरुष मेधा समाज की यह नीति है कि पुरुष की पदोन्नति केलिए नारी का भी उपयोग करना। रंजिता को पति की तरक्की केलिए यह नीति अच्छी नहीं लगी। जब संदीप ने पार्टी के सक्सेस की खुशी में उसे बिस्तर पर खींच लिया तो वह पूछ उठी किसकी है यह खुशी, रंजिता की ... या प्रमोशन की। वह इस प्रकार की चोट बर्दाश्त नहीं कर पा रही थी। वह सोचती है कि उस तीसरे का वशीकरण हमपर इतना हावी हो चुका था कि हम अपनी अपनी परिधि में बुत बन गये थे • पत्थर के।"[135]

पति के साथ परस्त्री का खुला व्यवहार उसे पसंद नहीं है। एक दिन अचानक संदीप के दफ्तर पहुँची रंजिता पति के केबिन में मिस स्वी को देखकर क्रुद्ध हो उठी। संदीप के होठों पर स्वी के लिपस्टिक देखकर वह सब समझ गयी। पत्नी को अचानक देखकर संदीप हतप्रभ हो गया पुरुष की मनमानी आदत सहकर आजीवन सती साध्वी बनकर रहना, रंजिता पसंद नहीं करती है। भारतीय नारी की पुरानी नारी संकल्पना रंजिता के व्यक्तित्व से तनिक भी मेल नहीं खाती। भारतीय नारी समर्पण का पर्याय समझी जाती है, किन्तु रंजिता समर्पण करना नहीं जानती। आधुनिक रूढि मुक्त, स्वतंत्र नारी कभी भी शीलावती नहीं बनेगी। नारी स्वतंत्रता, और नारी शिक्षा के कारण आज की स्वतंत्र, अस्तित्व संपन्न नारी के समान रंजिता का विचार है "अगर कुछ देना है तो ज़रूर कुछ मिलना भी है। वह तो निरन्तर इस कोशिश में है कि पति के समान उसे भी अधिकार मिले। पति को झुका कर उसके अहं पर आहत करने में वह कोई कसर नहीं छोड़ती। पति से जो कटु अनुभव मिलता है, उसी प्रकार उसे वापस देना अपना अधिकार समझती है। पति के सामने टिमटिमाकर जीना उसे पसंद नहीं है। पति की अनुगामी का नहीं पति की सहधर्मिणी का भाव उसे पसंद है।

जैसे बताया गया है, रंजिता के चरित्र में ज्यादतर नारीवाद का राडिकल भाव उभर आया है। साथ सोष्यलिस्ट फेमिनिज़म का प्रभाव भी है। रंजिता पति की संपत्ति पर समान अधिकार के बारे में बताती है। राडिकल फेमिनिस्ट वैवाहिक बन्धनों में परस्पर प्यार, सम्मान आदि के अभाव में घुटकर जीने में विश्वास नहीं रखते। इससे मुक्ति केलिए उन्होंने अविवाहित जीवन, विवाह विच्छेद आदि मार्ग दिखाया भी है। रंजिता भी पति से तंग आकर उससे अलग हो जाती है।

शशिप्रभा शास्त्री

शशि प्रभा शास्त्री हिन्दी महिला उपन्यास लेखिकाओं में एक सशक्त हस्ताक्षर है। उनके उपन्यास नारी जीवन की समस्याओं को आधार बनाकर लिखे गए है।

नौकरी-पेशा नारी की समस्याओं पर कई उपन्यास लिखे गए हैं, लेकिन शशिप्रभा जी ने नौकरी पेशा नारी के जीवन के अछूते आयामों को खुलकर पाठकों के सामने रखा है। आधुनिक नारी स्वावलंबी होकर भी पुरुष से परिचालित है। पुरुष के साथ उसकी जिन्दगी में कुछ ऐसे क्षण आते हैं, जब उसे बडी भयंकर स्थिति का सामना करना पड़ता है। एक ओर अपनी स्वतंत्र दृष्टि के कारण वह न तो किसी की आश्रिता बनकर रहना चाहती है, न रहने दी जाती है। ऐसे समय वह निर्ममता से संबन्ध विच्छेद करने केलिए तैयार हो जाती है, और यों करती हुई वह बिलकुल नहीं घबराती है। कभी कभी संबन्ध विच्छेद किए बिना कुमारी माँ बनकर रहने में वह डरती भी नहीं है। लेकिन इसके बाद भी कई समस्याएँ उसके सामने आती हैं। जिनसे जूझना उसकेलिए असंभव तो नहीं, कठिन ज़रूर हो जाता है। शशिप्रभाजी ने इस ओर अपनी लेखनी चलायी है।

नारी और पुरुष अपनी अपनी जगह पूर्णत्व की खोज में प्रगतिशील है, किन्तु खोज की हर दिशा उनके व्यक्तित्व को खंडित कर रही है। इस खोज में आधुनिक नारी के कई चित्र उभर रहे हैं। ये चित्र शशिप्रभा शास्त्रीजी के उपन्यास नावें "कर्करेखा" और "परछाइयों के पीछे में" मिलते हैं।

पुरुष आज भी अपने पूर्वाग्रहों का शिकार है। वह स्त्री को अपने अनुसार ही चलाना चाहता है। स्त्री-पुरुष की इस विसंगति पर शशिप्रभाजी ने "नावें" में पर्याप्त प्रकाश डाला है।

आज नारी अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व की खोज में है। किन्तु वह उसे प्राप्त नहीं कर पा रही है। इस स्थिति को शास्त्रीजी ने "कर्करेखा" में चित्रित किया है। जहाँ माता-पिता परिवार और अन्त में पति के संस्कारों में दबी यह कमज़ोर लड़की अपने प्रेमी के साथ हो, सकने का साहस नहीं कर सकती।

आज भी नारी गार्हस्थ्य के पिंजड़े में फँसी हुई है। पति की खुशी में खुशी और उसके दुःख में दुःखी। नारी उसके हाँ में हाँ मिलाने को विवश है। आधुनिक नारी के इस अभिशाप को परछाइयों के पीछे में अभिव्यक्ति दी है।

नावें

मालती का चरित्र

मालती कालेज की अध्यापिका है। वह हमारे समाज की उन लड़कियों में से एक है, जो नौकरी करके परिवार का दायित्व को वहन करने केलिए मज़बूर है। वह बहुत ही भावुक है। उसका अपना व्यक्तित्व है। जिन्दगी की राह खोजने केलिए वह आतुर है। इसलिए

अपने परिवार की देख-रेख का बोझ उठाती हुई अपने जीवन जीने का निश्चय कर लेती है ।

मालती में परम्परागत मान्यताओं के प्रति विद्रोह की भावना उभरती है । प्रेम या प्यार करना व्यक्ति का मौलिक अधिकार है । मालती सोमजी के साथ शादी के बिना रहने में कोई हिचक या डर नहीं दिखाती । लेकिन जब उसे पता चलता है कि वह माँ बननेवाली है तो शादी का प्रस्ताव रखती है और सोम की दूसरी पत्नी बनने केलिए तैयार भी हो जाती है । लेकिन रखैल का पद ही सोमजी ओफर करता है तो वह साफ इन्कार करती है । नारी सुलभ क्रंदन किये बिना वह सोमजी से विद्रोह प्रकट करती है । सोम ने अपनी करनी का प्रायश्चित्त रुपये और अन्य सुविधाएँ प्रदान कर पूरा करना चाहा तो वह इन सब का इन्कार करती हुई कहती है - "पर अगर आप का यही निर्णय है । तो मुझे आपकी ज़ुरूरत नहीं है । सोमजी, आपने मेरे साथ बहुत उपकार किए है, पर उन उपकारों को सहने की शक्ति अब मुझमें नहीं रही है, मुझे क्षमा कीजिए ।"[136]

मालती सीधी-सादी औरत है, लेकिन पुरुष मेधा के सामने हाथ पसारकर गिडगिडाकर भीख माँगना वह नहीं चाहती । अपने भविष्य को तिलांजली देना भी वह नहीं चाहती । इसलिए अपनी स्थिति समझते ही उसने नयी जगह नौकरी केलिए आवेदन भेजना शुरू किया । तब सोम कहता है "कुछ करना ज़ुरूरी है, मौज से रहो, खाओ-पिओ, काम करो ।" लेकिन मालती ने जवाब दिया - "मैं स्वतंत्र जीवन बिताना चाहती हूँ, इस तरह बाँधकर आप की कृपा पर अवलंबित रहने की, चाह अब मेरे मन में नहीं रही है ।"[137] वह स्वतंत्र जीवन जीने केलिए तैयार हो गयी । सोम ने उसे समझाया कि क्षणिक आवेश में कुछ करना ठीक नहीं है । उसकी हालत अब नाज़ुक है, इसलिए अब उसे सहारे की आवश्यकता है । घरवालों को पता दिये बिना गर्भ को गिराना ही उचित है । फिर भी उसने निडर होकर सोम से कहा "मैं उचित सहारा ढूँढने

जा रही हूँ । इस अस्थाई में रहकर क्या करूँगी ।" उसका विचार है यदि कोई कार्य हुआ तो उसके परिणाम से क्यों मुकरा जाए ?

आधुनिक व्यक्तित्व संपन्न नारी की सोच और साहस उसमें है । उसे न तो रखैल की तरह रहना मंजूर था और न ही गर्भ गिरवाना। आधुनिक युग में नारी शिक्षित होने एवं नारी पर आधुनिक शिक्षा का प्रभाव पड़ने से उसमें व्यक्तित्व का स्वतंत्र विकास होता है । अब वह पुरुष की आज्ञाकारी दासी नहीं रही, अपितु जीवन यात्रा में भागीदार बनकर समाज में अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व की माँग कर रही है । इसलिए कुँआरी माँ बनने में कोई अधार्मिकता या अनैतिकता का एहसास नहीं करती । समाज द्वारा कलंक या लांछन लगाने के विचार से वह डरती नहीं । वह निडर होकर सोम से कहती है "मैं इस गर्भ को नष्ट होने देती, सब की आँखों में धूल झोंकती और अपनी आत्मा को धीरे-धीरे मरने देती । वह आखिर सोम को छोड़कर अपनी माँ के पास चली जाती है ।

माँ और पूरे घरवालों के सामने परित्यक्ता होने पर भी उसका मन झुकना नहीं जानती । माँ से तिरस्कार पाकर भी उसका अहं जागृत हो गया । वह सोचती है - क्यों गिरती मैं अपना गर्भ ? इन लोगों के लिए जो उजाले में गर्भ को ठेकेदार बने फिराते हैं, और अंधेरे में किसी की भी कमाई खा लेने में ज़रा भी हिचक नहीं करते । एक दिन भी बेटी की खबर नहीं ली, उसके मन की बात न पूछी, नोच खसोटकर खाते रहे और जब उसकी खुद की आवश्यकता पड़ी है तो ठुकरा कर दिया ।"[139]

अपने भविष्य का गठन वह खुद करने लगी । उसका विचार है कि वापस जाने पर सोम उसे स्वीकार करेगा । लेकिन उसे मालूम है कि ऊपर से वे कुछ भी न कहें पर मन में तो कहेंगी ही कि थूककर फिर चाटने आ पहुँची है । इस प्रकार भीख माँगकर, अनिश्चित अवलंबित ज़िन्दगी जीने का विचार उसमें नहीं है । इसलिए स्वतंत्र और मुक्त जीवन जीने

केलिए किसी को पता दिये बिना वह बदायूँ चली जाती है । उधर रेखा निगाम की सहायता से उसे घर बसाने का मौका मिलता है । उधर भी सोम उसे अपनाने पहुँचा तो वह सोचती है - जब इतना कुछ घटित हो ही गया है, तो दुराव, छिपाव के जीने से अपने मन के धागे टूटते हैं । एक रखैल की जिन्दगी वह क्यों जिये ? मान की रक्षा केलिए यहाँ अपने से भी भाग आयी है ।"

वह किसी पर निर्भर रहना नहीं चाहती । जब बेटी नीलू को स्कूल में दाखिल करने की बात आती है तो प्रश्न उठता है कि पिता के नाम के "कोलम" में क्या लिखा जाए । बच्ची की भरती केलिए पिता का नाम लिखना है । उसके मन में पुरुष मेधा समाज के इस कानून के प्रतिघृणा आयी । वह सोम का नाम लिखना नहीं चाहती । वे रेखा निगाम से कहती है - मेरा इतना ही कसूर है कि मैं ने उनके द्वारा निर्धारित जिन्दगी को स्वीकार नहीं किया । उसके बाद मैं ने उनसे भी कुछ नहीं कहा, लड़की केलिए कभी एक पैसे की माँग नहीं की, किसी प्रकार का दावा नहीं किया । ... यहाँ आकर भी उन्होंने मेरी इज्जत मिट्टी में मिला दी । इस हालत में भी, उनका नाम लिखाऊँ कभी नहीं ।"

कपटी लंपट सोमजी से बचने और उसके अहं को चोट पहुँचाने केलिए वह विजेश से शादी करती है, और नीलू के पिता का नाम विजेश रखती है । आधुनिक शिक्षा होने के नाते मालती अधिक सशक्त है । उसमें अपने अधिकारों के प्रति झुकना नहीं, तनकर खड़ी होने की सीख है ।

मालती को प्रस्तुत करके शशिप्रभा शास्त्रीजी ने समाज और परिवार द्वारा तिरस्कृत व सतायी हुई नारी का जीवंत चित्र प्रस्तुत किया है । समाज द्वारा सताने पर वह समाज के सामने तनकर खड़ी होती है । वह दिखाती है कि पुरुष के "अहं" के समान ही नारी का भी अपना कुछ मान सम्मान होता है । लेखिका लिखती है .... संसार से वह डरी नहीं, इसलिए सीधी माँ की दहलीज पर जाकर खड़ी

हो गई , माँ के ललकारने लताड़ने पर भी उसे चिन्ता नहीं थी ।"[140]

आगे उसकी आत्मनिर्भरता को प्रकट करती हुई लेखिका कहती है -"वहाँ से हटकर वह सीधा तनकर सारे जगत का सामना करने केलिए खुले आसमान के नीचे फिर अपनी डोंगी लेकर चल पड़ी । वर्षा, आँधी तूफान, किसी की परवाह किए बिना ।"

मालती के चरित्र में नारी मुक्ति आन्दोलन की तीनों धाराओं का प्रभाव पड़ा है । नारी मुक्ति के अतिवाद में, माँ बनने केलिए शादी करने की मान्यता को चुनौती दी है । उनके अनुसार मातृत्व केलिए शादी करने की अनिवार्यता नहीं है । बच्चे को जन्म देना है या नष्ट करना है यह बताने का अधिकार पुरुष का नहीं खुद स्त्री पर निर्भर है । मालती भी अपने नाजायज बच्चे को जन्म देकर राडिकल हो जाती है । उसमें अपने अस्तित्व के प्रति गर्व है । अपने वैयक्तिक मामले में किसी को दखल देने का अवसर वह नहीं देती । समाजवादी फेमिनिस्ट नारी शोषण को वर्ग शोषण मानती है । मालती भी सोमजी के शोषण को पुरुष द्वारा समूची नारी जाति का शोषण मानती है और उससे जलदी से जल्दी बचने का प्रयत्न करती है ।

नीलिमा

नीलिमा मालती की बेटी है । उसका व्यक्तित्व निर्भीक व निडर है । माँ मालती ने बड़ी सतर्कता से उसे पाला पोसा है । माँ मालती की सतर्कता के बावजूद भी बेटी अपने परिवार की निज स्थिति समझने में समर्थ हो जाती है ।

नीलिमा, मालती से बढ़कर अति आधुनिक और निडर है । उसका सबूत है, उसके द्वारा माँ केलिए भेजा गया पत्र । उस पत्र में बेटी माँ की गलतियों की बखिया उधेड़ देती है । माँ से खुलकर बातें करने की

कोई हिचक उसमें नहीं है । इसलिए वह माँ को लिखती है - "मैं तुम्हारे बराबर हो गई हूँ । बेटी के अनुसार माँ की जिन्दगी गलत रास्ते पर गुजर रही है । वह माँ से बताती है - "इसी मंजिल पर पहुँचने की कोशिश में तुमने अपने को एक बिलकुल गलत रास्ते पर डाल लिया है, एकदम कृत्रिम अस्वाभाविक ढोंगी जिन्दगी जीने की तुम्हारी एक अजीब सनक जिसे तुम हमेशा सही ही समझती रही।"[141]

वह अपनी माँ को अपनी दोस्त समझती है । माँ की व्यथा और अन्दाज़ा समझकर ही वह माँ से बताती है कि जिसकेलिए माँ ने सब सहा, उस बेटी को भी उसके त्याग, तप से कुछ भी नहीं मिला। उसके अनुसार माँ के साथ, माँ की तरह की एक शून्य जिन्दगी वह भी जीती रही ।

नीलिमा जीवन की पवित्रता स्वच्छन्दता आदि को कोई कीमत नहीं देनेवाली है । उसे समाज द्वारा आरोपित ये सब बातें केवल ढोंगी लगती हैं । इसलिए वह माँ से पूछती है "यह पाकपन स्वच्छन्दता पवित्रता आखिर है क्या चीज़ ? मेरे जन्मदाता सोमजी के साथ अगर परिस्थितिवश तुम्हारा संबन्ध संपर्क हो भी गया तो क्या हुआ ? तुम उसे अस्वाभाविक विचित्र घृणास्पद क्यों मानती रही ? विवाह के अवसर पर यज्ञ की लपेटों के मध्य कुछ मंत्र पढ देने मात्र से ही वह क्रिया पवित्र कैसे बन जाती है ? उसके अभाव में वह घृणास्पद अनैतिक और अपवित्र क्यों बनी रहनी चाहिए ?"[142]

समाज जिस संबन्ध को कलंक समझता है, उसे, नीलिमा कलंक नहीं मानती । उसकेलिए वह केवल एक साधारण सी बात है । नीलिमा के इस बर्ताव में राडिकल नारीमुक्ति आंदोलन का प्रभाव नज़र आता है । राडिकल आंदोलनकारियों के अनुसार प्रेम और यौन संबन्ध में कोई बाधा डालने में समाज का हक नहीं है । वह व्यक्ति का निजी मामला है ।

आधुनिक नारी की तरह सोचने में पुत्री माँ से एक दम आगे है । जिस सामाजिक व्यवस्था से माँ को डर है, उसेबेटी थोथी बातें कहती है । "मैं इस सबके बारे में सोच रही हूँ और इसी निष्कर्ष पर पहुँची हूँ कि ये सब थोथी बातें हैं । पण्डितों के खाने कमाने के ज़रिए, कहीं कुछ गलत सही नहीं है । क्या हुआ, कैसे हुआ, इन सब चीज़ों पर पछतावा, विषाद ग्लानि सब व्यर्थ है । सत्य है वर्तमान, सिर्फ वर्तमान उपस्थिति संबन्ध और उसका भली प्रकार निर्वाह ।"[143]

माँ की इस प्रकार की प्रवृत्ति की प्रतिक्रिया ने नीलिमा को एक नया कदम लेने पर विवश कर दिया । इसलिए वह माँ को पता दिये बिना अपने भविष्य को गढ़ने और उसमें थोथे पाखण्डपूर्ण व्यवहार के न आने में सतर्क रहती है । आधुनिक नारी स्वतंत्र जीवन जीना चाहती है । हमारे देश में विवाह को नर-नारी के जन्म जन्मान्तर का आध्यात्मिक बन्धन माना गया है । उसमें स्त्री केवल एक ही पुरुष की धर्म पत्नी बनकर जीना समाज में मान्यता का प्रतीक है । लेकिन नीलिमा माँ की रीति और रूढ़िग्रस्त विचारों को बिलकुल पसंद नहीं करती । वह प्रगतिवादी है । माँ के दर्शन को वह कृत्रिम कहती है । उसका विचार ज्यादा राडिकल है । इसलिए वह कहती है "तुम्हारे उस घिसे-पिटे कृत्रिम दर्शन से मुझे चिढ़ हो गई थी कि बच्चे माँ-बाप के पति-पत्नी जैसे संबन्धों को देखेंगी-जानेंगी तो क्या सोचेंगी कहेंगी और कि माता-पिता के गलत-सलत कदमों के बारे में, जिसे तुम अनैतिक समझा देती हो हरगिज़ नहीं जानना चाहिए, कैसे भी हो एकदम ढोंगा ।"[144]

सब तरह के पाबंदों को तोड़ने की शक्ति नीलिमा में है । माँ ने उसे अधिक संयमित रखना चाहा, लेकिन बेटी उसे तोड़ने में तल्लीन रही । माँ से प्रतिशोध लेने केलिए उसने अपने प्रेमी की खबर शादी होने तक नहीं दी । शादी संपन्न हो गयी तो खत लिखकर

माँ से खुल्लम-खुल्ला सब बताती है । वह विवाह से पहले अजय के साथ अकेली घूमती रही थी । वह माँ को लिखती है - तुम्हारी ओर से मुझे बाँधकर रखने की कोशिश, जबरदस्ती सही राह पर चलाने की तुम्हारी ललक के विरुद्ध यह एक प्रकार की प्रतिक्रिया ही थी ।"[145]

माँ के आदर्श को झूठा साबित करने केलिए बेटी अतीव तत्पर है । इसलिए माँ की मान्यताओं को झूठी सिद्ध करना बेटी अपना फर्ज मानती है । इसलिए उसने खुद "रजिस्टरी" शादी की ।

नीलिमा के मन में माँ की जिन्दगी में लगे कलंक का कोई पाप बोध नहीं है । वह आधुनिक जागृत नारी की प्रतीक है । इसलिए वह माँ से पूछती है - "क्यों छिपा तुमने मुझसे वो सब कुछ ? अम्मी वे सब बहुत छोटी छोटी बातें है, पैर में ठोकर लग जाना जैसी । क्या ठोकर की वह चोट जिन्दगी भर पलती रहती है ? तुमने मुझसे जितना कुछ छिपाने की कोशिश की, मैं उतना सब कुछ जानती रही ।" बेटी कभी भी माँ को अभियुक्ता नहीं मानती । उसके अनुसार माँ में कोई बुराई नहीं है । उसने अजय से पहले ही निडर होकर उसके जन्म के कलंक के बारे में बता दिया था । अजय ने उसे इसलिए स्वीकार किया कि वह एक स्वाभिमानी साहसी माँ की बेटी है ।

माँ से बढ़कर दुनियादारी का एहसास नीलिमा में है । इसलिए आखें ऐन मौके पर माँ-बाप के हर काम पर निगाह रखी, और अपने माँ-बाप के संसार को तोड़ने से बचाया । वह माँ का ध्यान आकृष्ट करने केलिए लिखती है -"मुझे दुःख है अम्मी, तुम ने अपने को अब भी अकेला बना रखा है, तुम अम्माजी को अपने साथ लेकर नहीं चलती हो । चिट्ठी समाप्त करती हुई नीलिमा माँ से एक नई ज़िन्दगी की शुरुआत की आशा करती हुई लिखती है - "मेरे बारे में चिंता मत करो अम्मी, मैं बहुत सुखी हूँ । सुखी नहीं भी हो जाऊँगी तो जीने का सही ढंग मैं जानती हूँ ।"[146]

परछाइयाँ के पीछे

अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष समाप्त हो गया । नारी उत्थान के काफी नारे लगाए| अधिकार और सुविधाओं के नाम पर नारी सन्दर्भित अनेक कानूनी और गैरकानूनी प्रस्तावों को पारित होते देख आशा की एक किरण लहक उठी । इन सबके बावजूद भी नारी की स्थिति बेहतर नहीं हुई है । नारों और आवाजों ने समस्या की सिर्फ सबसे ऊपर पर्त को छुआ है, वह भी केवल प्रदर्शनार्थ । निचली सतह अब भी ज्यों की त्यों सूखी दरकी हुई बीहड़-बंजर ही बनी हुई है । पुरुष की सनकों और उसकी पाशविक विलास-प्रिय मूल प्रवृत्ति के आगे आज भी नारी कितनी परतन्त्र लाचार और विवश है, यह दिखाने का प्रयास ही इस उपन्यास में हुआ है ।

सुमित्रा का चरित्र

उपन्यास की नायिका सुमित्रा टेलिफोन ओपरेटर है । वह महिपाल की पत्नी और तीन बच्चों की माँ है । उसके मन में अपने पत्नीत्व और निजत्व निभाने का अर्न्तद्वन्द्व बहुत तीव्र रूप से उभर कर आता है । उसका पति शक्की स्वभाव का है । वह बार बार किसी न किसी रूप में उसकी बेइज्जती करता है । लेकिन सुमित्रा आम नारी की तरह पति के निष्ठूर व्यवहार चुप होकर सहती नहीं । अपनी शक्ति के अनुसार पति से टक्कर लेकर वह अपनी ज़िदगी बनाती है ।

पति के पुरुषत्वहीन व्यवहार उसकेलिए असहनीय है । पहली बेटी के जन्म पर पति ने जब शक प्रकट किया और कहा "इसके बाप को तुम वहीं कहीं अपने एकचेंज में तलाश करो तो उसका मन पति के प्रति घृणा से भर गया । इसलिए वह अपनी माँ से कहती है "न बाबा नहीं'

उस अत्याचारी के पंजे से बड़ी मुश्किल से छूटकर आई हूँ । अच्छे भले हाल में मुझे भेजता, विदा करता तो ज़रूर कुछ इलाज कर गलती मैं समझा, पर अब तो कभी नहीं, कभी भी नहीं; मैं भी दिखाऊँगी कि तुम्हारी कृपा के बिना भी मैं अपने बच्चे को पाल सकती हूँ ।"[147]

सुमित्रा स्वावलंबी नारी है । शादी शुदा होने के नाते पति के घर में रहकर अन्याय या आत्मपीडा से जीवन बिताने में वह विश्वास नहीं रखती । पति का व्यवहार पीडादायक होने पर वह पुराने भारतीय संकल्प, जो एक पतिव्रता केलिए अनिवार्य है, तोड़ती है । वह सोचती है कि इस प्रकार जीने की अपेक्षा पति से अलग कर रहना ही बेहतर है । इसलिए वह माँ के पास लौट आती है । जब उसे पता चलता है कि शादी के बाद बेटी के प्रति माँ का कर्तव्य भी कृपा मात्र बन जाता है तो वह माँ से कहती है - "माँ मैं तुम्हारे सिर पर बोझ बनने नहीं आई हूँ ।"[148] वह नौकरी के लिए कोशिश करती है लेकिन नौकरी न मिलने पर एक होटल में रिसेप्शनिस्ट बनकर जीने का प्रयत्न करती है ।

अपनी दुर्दशा में भी अन्याय सहना उसकेलिए नामुमकीन है । किसी से भी अपनी बात कहने में वह डरती नहीं । होटल के मालिक और बेटे जब उसके साथ बदतमीज़ी करते हैं तो वह उसका मुकाबला करता है । और अपनी दुर्दशा की परवाह किये बिना उस नौकरी से इस्तीफा दे देती है । उसे मालूम हो गया कि पुरुष मेधा समाज में जीने केलिए स्त्री को पुरुष के मेधा भाव को स्वीकार करना है । लेकिन उससे यह संभव नहीं है ।

नारी शोषण के खिलाफ वह खूब आवाज़ उठाती है । पति से समझौता करने केलिए उसे विवश करनेवाली माँ से वह कहती है - चुप करो माँ, उसकी बात आज के पीछे मेरे सामने मत करना । उस चंडाल की अब मैं शक्ल भी नहीं देखना चाहती । आएगा भी तो मैं ने

कह दिया, मुझे उसके साथ नहीं जाना ।"[149] पति के व्यवहार को याद करके सारे पुरुष वर्ग के प्रति उसमें घृणा पैदा हो जाती है । वह सोचती है "पुरुष कितने क्रूर होते हैं, अपनी इल्लत स्त्रियों पर डालकर निर्द्वन्द्व हो जाते हैं ।"[150]

स्त्री-पुरुष संबन्धों के प्रति उसका रुख रूढिमुक्त है । पति-पत्नी संबन्धों में वह समानता उदारता और साझेदारी की आशा रखती है । नारी-शोषण के बारे में उसका विचार है कि राम के काल से ही यही रीति चली आई है, कि पुरुष किसी न किसी ओट में नारी को त्रास दे, उसे निष्कासित करे और खुद सिंहासन पर सजा-धजा न्यायमूर्ती बना बैठा रहें - सर्व पूजित निश्चिंत निर्द्वन्द्व । उसे लगता है वह भी सीता है, पति के द्वारा लाछित प्रताड़ित निष्कासित । उसके कलेजे में एक हूक सी उठती उसका कसूर क्या है ? नारी का भाग्य विधाता ने एक विशेष लेखनी से ही क्यों लिख दिया है ? बीच बीच में वह सोच बैठती "नारी केलिए पुरुष का आश्रय क्या इतना ही ज़रूरी है ।"[151]

समाज की पैनी आँखों से उसे कोई डर नहीं है । माँ का हमेशा इस ओर ही ध्यान है । इसलिए वह माँ से पूछती है - अगर आदमी को औरत को इस तरह सताने का हक है, तो बदला लेने केलिए औरत के पास क्या कोई हथियार नहीं होना चाहिए । जब तीसरे बच्चे के पितृत्व से महिपाल ने इनकार किया तो वह पति से विद्रोह करने के लिए तैयार हो गयी । सुमित्रा मन ही मन कहने लगी "कसाई, नीच चंडाल दुष्ट हरामी का तू होगा ... यह मेरा नहीं है । तेरा नहीं तो किसका है कुत्ते । हर बच्चे के बारे में इसने यही ढोंग दिखाए हैं ।"

रोती, कलपती, कोसती जिन्दगी बिताने केलिए वह तैयार नहीं है । वह एक तरह अस्तित्व संपन्न नारी बनने की सोच में है ।

इसलिए उसने अपनी ज़िंदगी से एक तरफ समझौता सा कर लिया था । अपने होठों पर एक हँसी चिपका ली थी । उसका विचार है कि "जबरन, जब कुछ खो ही गया है तो रोना किस बात का । वह मुस्कराती नाजुक, शिफोन की रंग बिरंगी साड़ियों में बन्धी रही । अपने काम की टेबिल पर वह फूल को सजा लेती और दिन भर अपने को खुशबू से भरे रखती । खुशबू मुस्कान और ताज़गी की गाड़ी खींचने केलिए उसने ये नकली पहिये लगा लिये थे जो खासा काम दे रहे थे । वह खुद भूल गई कि वह एक परित्यक्ता स्त्री है, कि उसकी ज़िंदगी में कहीं कोई मिठास नहीं है, कि उसे इसी तरह रुक रुक कर झुकते हुए चले रहना है ।

कामकाजी नारी के रूप में उसका अलग ही रूप उभरा है । एक अलग व्यक्तित्व सामने आता है । किसी भी पुरुष के साथ समझौता करने में वह तैयार नहीं है । अपने को खुश करने केलिए कहीं से प्यार का आदान वह नहीं करती । स्त्री होने के नाते पुरुष का मनमानी बर्ताव चुपचाप सहने के लिए वह तैयार नहीं है । इसलिए ही कला के पति अशुतोष से आगरा सैर के बीच वह झगडा करती है ।

महिपाल से समझौता करने केलिए वह तैयार नहीं है । पति द्वारा अपनी गलती को स्वीकार करने पर वह कहती है "नारी केलिए शायद कुछ भी मुश्किल नहीं होता । जब पति ने पर-स्त्री गमन की खबर इतने उल्लास और उत्साह से बतायी तो वह सोचती है - पुरुष शायद इसी में अपना बडप्पन समझता है, अपने काले करनामों कृत्यों का बखान करने में उसे कोई झिझक या सकुचाहट नहीं होती । पुरुष केलिए जैसे सब कुछ माफ हो, स्वाभाविक हो और नारी केलिए लीक से एक सेंटी मीटर भी बाहर चला जाना दंडनीय - अशोभन महापाप ।"[152]

पति से यह सुनकर वह निश्चय कर लेती है कि पति अब उसका कुछ भी नहीं लगता । कुछ भी कहने सुनने का सवाल नहीं उठा । दिन ब दिन पति का उसके प्रति आचरण असहनीय होने लगा तो परिवारवालों ने उसे उपदेश दिया तो पति के खिलाफ कोर्ट पर जाना है । सुमित्रा तैयार नहीं होती । वह निडर होकर कहती है "अब मैं ने सोचा है, अपनी मुसीबतों को मैं खुद झेलूँगी, उनका निबटारा मैं खुद करूँगी ।" पति से लडने केलिए वह पूर्ण रूप से तैयार होती है । वह बच्चों को देखने चली जाती है ।

आधुनिक अस्तित्व संपन्न नारी अनुगामिनी मात्र नहीं है। उसे भी पति और उसकी सारी संपत्ति पर समान हक है । सुमित्रा भी यही विचार रखती है । फोन या पत्र के बिना जब सुमित्रा पति के घर आती है तो पति पूछता है "इसे क्या सराय समझ रखा है या होटल ? वह जवाब देती है - मैं ने इसे न होटल समझा है, न सराय, अपना घर समझा है, और इसलिए मैं अपने आप चली आई हूँ ।

पति के साथ रहते वक्त पति उस पर कठोर नियंत्रण रखता है । लेकिन वह पति द्वारा निर्धारित सब पाबन्दों को तोड देती है । पडोसियों से बातें करने तक में पति ने जब पाबंद लगाया तो वह अपने तीनों बच्चों के साथ सब बंधनों को तोडकर भाग जाती है । उसका विचार है कि औरत ने ही आदमी को सिर पर चढाया । नौकरी पेश स्त्री को घर बाहर का काम संभालना है । फिर भी इन मर्दों का मिजाज नहीं बदलता । ऐसे आदमी के साथ समझौता करने का सवाल ही नहीं उठता । इस तरह के पुरुषों को औरत ही सबक सिखा सकती है । तभी वे राह पर आएँगे । सुमित्रा अपनी हालतों से घबराये बिना हिम्मत से काम करने केलिए तैयार हो जाती है ।

यानी आधुनिक नौकरी पेश नारी मुक्त और स्वावलंबी होने के नाते पुरुष के सेवा भाव को मानने केलिए तैयार नहीं है । सुमित्रा भी

महिपाल के मैथा भाव को बिलकुल नहीं मानती । वह कोई समझौता किये बिना ही पति से तलाक लेना चाहती है । तलाक के बारे में बातें होते वक्त अचानक बड़ी बेटी माला का आगमन उसे पुन: सोचने को बाध्य कर देता है । उसे मालूम हो गया कि बाप ने बच्ची तक को वासना का शिकार बना रखा है । इसलिए अब उसे छुटकारा नहीं, उसके साथ रहकर ज़रूर उसे कुछ सबक सिखाने का निश्चय कर लेती है । वह सोचती है अलग रहने से महिपाल की विजय और बच्चों का नाश हो जाएगा । इसलिए आखिर वह पति के साथ रहने का निश्चय कर लेती है ।

सुमित्रा का अपना स्वतंत्र अस्तित्व है । अन्याय के खिलाफ वह आवाज़ उठाती है । अपने पास आनेवाले हर एक पुरुष के मैथा भाव को वह ठुकराती है । परिवार में अपने स्थान खो देना वह नहीं चाहती । अपना उचित स्थान बनाये रखने केलिए वह भरसक प्रयत्न करती है । वह परंपरा के शिकंजे में नहीं रहना चाहती । पति परमेश्वर की ज्यादतियाँ चुपचाप सहना उसके वश की बात नहीं है ।

कला

कला सुमित्रा की पुरानी सहेली है । वह अति आधुनिका है । जीवन में मौज उठाना ही उसका मकसद है । समाज व परिवार की पैनी दृष्टि की परवाह उसे बिलकुल नहीं है । उसका विश्वास है कि अपनी खुशी केलिए जो भी कर्म करना है उसी में सफलता है । इसकेलिए परंपरा, संस्कार आदि को तोड़ना है तो तोड़ना ही पड़ेगा ।

अपनी सखी सुमित्रा की दर्दभरी कहानी सुनने पर वह उससे कहती है - ऐसे आदमियों को इसी तरह की सजा मिलनी चाहिए । अपने आपको जलते मरते क्यों रखा जाए ? ऐसे पतियों को खूब पाठ पढाना चाहिए, खूब पक्का जिससे वे भी याद करें ।

वह अपनी सखी को पति के साथ आग्रा भेजती है । जाते वक्त पति से कहती है सुमित्रा को सब तरह खुशी देनी है । कला के इस तरह के बर्ताव में अतिवादी नारी मुक्ति आंदोलन का प्रभाव पडा है । अतिवाद में नारी कहीं से भी अपनी इच्छा की पूर्ति करने में आपत्ति नहीं रखती । व्यक्ति को स्वच्छंद जीवन जीने का अधिकार है । आगरा से लौटकर जब सुमित्रा ने कला के सामने क्रोध प्रकट किया तो ज्यादा राडिकल बनकर कला कहती है - तू कुछ नहीं चाहती, पर मैं चाहती हूं, तू खुश रहे । आखिर तू ने क्या बिगाडा है कि तू इतनी सजा भुगते । मैं ने तुझे कितनी बार समझाया कि तू अपनी जिंदगी की राह बदल पर तू मेरी सुनती है ? औरत हो तो क्या आखिर मन तो औरत का भी होता है ।"[153]

अपने पति को कुछ समय केलिए सखी को उधार देने की प्रवृत्ति अतिवादी है । कला इसमें कोई बुराई नहीं देखती । वह सुमित्रा से कहती है "क्या भूल गई कि बचपन में हम लोग अपनी हर चीज़ का एक दूसरे के साथ हिस्सा बांट करते थे, तू मेरी सालवारें को पहनती थी और मैं तेरी ... ?" कला के अनुसार कपडे बदलने में और आदमी बदलने में कोई फर्क नहीं है । आगे वह कहती है ... "यूज़ करने केलिए तू आधा हिस्सा क्या पूरा हिस्सा ले लेने केलिए स्वतंत्र है । यूज़ कर मुझे क्या आपत्ति हो सकती है ।"[154] सुमित्रा के इनकार करने पर वह कहती है कि सुमित्रा यदि ठंडे दिल से विचार करें तो वह पायेगी कि उसकी बात गलत नहीं है । मैं अपना पति तुम्हें दे रही हूं इसलिए तुम्हें खुशी होना चाहिए ।

कोई भी स्त्री यह नहीं चाहती कि अपना पुरुष दूसरे से खुला बर्ताव करे । लेकिन कला प्रदर्शन के मद में अपने पुरुष तक को भी दूसरे को सौंपने की आधुनिकता दिखाती है । अतिवादियों का विचार है कि पुरुष के समान मौज मस्ती करने का अधिकार स्त्री को भी मिलना है ।

कला भी इस प्रकार के राडिकल आदर्शों को अपनाती हुई जीवन बिताती है ।

शादी नारी जीवन में आमूल-चूल परिवर्तन लानेवाली महत्व पूर्ण घटना है । वैवाहिक जीवन नारी को सुख की चोटी पर बिठा देता है या दुःख की खाई में धकेल देता है । महिला उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में विस्तार से इन सच्चाइयों की चर्चा की है ।

शशिप्रभा शास्त्री जी के नारी पात्र ऐसे हैं जो रूढ़ि वादी विचारों का तिरस्कार कर नये सिरे से अपना जीवन बनाती है । समाज के और पति के अत्याचारों के खिलाफ वे लड़ती हैं, और अपनी इच्छा के अनुसार जीवन बिताती है । "नावें" की मालती और नीलिमा कर्करेखा की तनु और परछाइयाँ के पीछे की सुमित्रा और कला आदि ऐसी ही औरतें हैं, जो उनकी प्रगतिशील चेतना से लैस हैं और किसी भी हालत में घुटनें टेकना नहीं चाहती । शशिप्रभा शास्त्री के नारी पात्र पुरुष वर्ग की दासता से मुक्ति पाने केलिए विद्रोह कर उठते हैं । सुमित्रा पति को छोड़कर भागती है, मालती लम्पट प्रेमी सोम से बचकर भागती है, तनु भागती तो नहीं लेकिन तनकर खड़ी होती है । इनका अपने पति से तलाक देना, दूसरा विवाह करना, अथवा एकाकी रहने का विचार, परम्परागत विवाह की सामाजिक मान्यताओं के खिलाफ विद्रोह ही है । अपने मन-पसंद व्यक्ति से कोई धूमधाम के बिना विवाह कर नीलिमा अधिक प्रगतिशील बन जाती है । डॉ॰ भगवानदास वर्मा के अनुसार नारी और पुरुष अपनी अपनी जगह पूर्णत्व की खोज में प्रयत्नशील हैं, किन्तु खोज की हर दिशा उनके व्यक्तित्वों को खंडित कर रही है । इस खोज में आधुनिक नारी के कई चित्र उभर रहे हैं । परम्परागत वर्जनाओं से आधुनिक नारी जैसे जैसे मुक्त हो रही है, नवीन समस्याओं का सामना करने लगी है । आर्थिक स्वावलम्बिता और मानसिक स्वतंत्रता के कारण वह अपने जीवन को अच्छा या बुरा बनाने केलिए स्वतंत्र है ।

किन्तु इस आत्मनिर्भरता का यह मतलब नहीं कि वह बिना पुरुष के संपर्क के जीवन व्यतीत कर सकती है । पुरुष के साथ रहना उसकी प्राकृतिक आवश्यकता है, चाहे वह परम्परागत पत्नी धर्म का निर्वाह करती हो । इस आवश्यकता की पूर्ति केलिए उसे कई विपरीत स्थितियों का सामना करना पड़ता है । विचित्र बात यह है कि आधुनिक स्त्री, चाहे कितनी ही स्वतंत्र हो अब भी पुरुष संस्कार का प्रभाव स्त्री के मानसिक संगठन का हिस्सा बन कर रह गया है । इस मानसिक गुलामी से मुक्ति पाना इतनी जल्दी संभव नहीं है । दूसरा कारण यह है कि पुरुष अब भी स्त्री के स्वतंत्र व्यक्तित्व का हिमायती होकर भी, स्त्री को पुरुष संस्कार से मुक्त नहीं होने देता ।"[155]

"फेमिनिस्टों" के अनुसार नारी दासता का प्रथम कारण है उनकी आर्थिक परावलंबिता । आज तक पुरुष वर्ग ने नारी पर जो रोब जमाया है, उसका कारण नारी की आर्थिक निम्नावस्था है । नारी की आर्थिक स्थिति पिता, पति, या भाई पर निर्भर रही है । फलतः नारी दीन असहाय या भोग्या ही रही है । उसे असहाय समझ कर उसके सब अधिकार छीन लिए गये । अतः नारी को आर्थिक स्वतंत्रता दिये बिना नारी जीवन का उद्धार होना असंभव है । शशिप्रभा शास्त्री जी की नायिकायें आर्थिक रूप में स्वतंत्र हैं । उन्हें स्पष्ट मालूम है कि आर्थिक स्वावलंबन के बिना पुरुष वर्ग के शोषण और दासता से नारी की मुक्ति असंभव है ।

कुमारिकाएँ - कृष्णा अग्निहोत्री

अपनी कृतियों में नारी शोषण की खिलाफत करती कृष्णा अग्निहोत्री ने अनेक कोणों से सामन्तीय मानसिकता से ग्रस्त पुरुष समाज पर तीखी चोट की है । यदि पुरुष यह समझ ले कि नारी का भी उसके समान ही जीने का अधिकार है तो जिस स्तर पर उसका शोषण हो

रहा है, उससे कुछ हद तक मुक्ति मिल सकती है । पर इस केलिए जिम्मेदार कारणों को समाप्त करना ज़रूरी है । अपने उपन्यासों के ज़रिये कृष्णाजी ने इस पर ज़ोर दिया है कि रूढियाँ और परम्पराएँ अर्थहीन हो गयी हैं । उनसे छुटकारा पाना ज़रूरी है । इसके साथ ही उनका मानना है कि नारी इतनी आधुनिक भी न हो जाये कि अपनी संस्कृति को, अपने कर्तव्य को भूलकर उच्छृंखल रूप ले ले, वरन उसे अपने अधिकार क्षेत्र का उचित ज्ञान हो, कहीं भी शोषण हो तो उसके खिलाफ एकजुट होकर आवाज़ उठाये । अपनी अस्मिता और अधिकार तथा पहचान कायम करने केलिए ज़रूरत के मुताबिक संघर्ष भी करें । आधुनिक समाज में भी लड़के-लड़की का अन्तर बना हुआ है । सदियों पुरानी बात अब भी समाज में चालू है । लड़का होने पर आतिशबाजी से खुशी और लड़की होने पर मातम मनाये जाते हैं । इसी भेदभावना ने विवाह का रिवाज़, जीवन संगिनी के वास्तविक अर्थ को भुला दिया है । विवाह करना एक सामाजिक समझौता और अनिवार्यता है । इसलिये लड़की से प्रत्येक समझौते की अपेक्षा की जाती है । परिवार और समाज उससे यही चाहते हैं कि पत्नी सुन्दर हो .... सुशील हो पढ़ी-लिखी भी हो और पति के साथ हर विपरीत परिस्थिति में भी समझौता कर सकती हो । इसके साथ जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति केलिए दहेज लाने में भी कामयाब हो । वैवाहिक जिन्दगी, जीवन का अभिन्न अंग है । इसलिए प्रत्येक आम लड़की को यह जिन्दगी जीने की सुशिक्षा प्रदान करना सामाजिक कर्तव्य है ।

आज की कुमारियों में यह अवधारणा आ गयी कि समय व स्थितियों के साथ अब धर्म, शील और नैतिकता की परम्परावादी मान्यतायें खोखली बेबुनियाद होती जा रही है । बेबुनियाद तथ्यों केलिए अपना व्यक्तित्व छोडना अन्याय है । इन झूठी मर्यादाओं और गलत अपेक्षाओं से सुलह न कर यदि लड़की कुमारी रहना चाहती है तो समाज के अधिकांश

तत्व उसे तोडने लगते हैं । उसकेलिए मनमानी परिभाषायें निर्मित हो जाती है । यदि समाज व परिवार इतने सक्षम नहीं कि वे अपनी बेटियों को सुरक्षा दे सकें तो उन्हें क्या अधिकार है कि परिस्थितियों से जूझती इन अविवाहित लडकियों का मज़ाक उठाए, उन्हें कुंठित करें । अविवाहित लडकियों का जीवन कुंठितकरना एक असामाजिक कार्य है ।

इन सामाजिक तत्वों से छटपटाती आज की कुमारिकाओं की आवाज़ अब प्रखर एवं विद्रोही होती जा रही है । वे अपने अस्तित्व के लिये संघर्ष करेंगी, नये मोड़ बनायेंगी और ज़िन्दगी की झूठी मान्यताओं विचारधाराओं केलिए अपने आपको कुरबान नहीं करेंगी । सामाजिक तनाशाही के बीच जीती कुँआरी लड़की सन्यासी नहीं होती । उसकी अपनी शारीरिक एवं मानसिक आवश्यकताएँ है और जिन्हें स्वस्थ ढंग से पूरा करते रहने की उसकी लडाई का मूर्तरूप है "कुमारिकाएं । इस लडाई में कभी उन्हें सफलता और कभी असफलता मिली है । ज़िन्दगी के इस विरोधाभास में जीती भारतीय कुमारिकाओं की समस्यात्मक जिन्दगी को कृष्णा अग्निहोत्री ने "कुमारिकाएँ" के ज़रिये स्वर देने का प्रयास किया है ।

संक्षिप्त कथानक)

शुचिता और श्रीधर अपनी बेटी के साथ रहते हैं । शुचिता मध्यवर्गीय परिवार की थी । उसके घर के सब लोग उतने पुरातन पंथी और अंधविश्वासी नहीं थे । परन्तु उसकी ससुराल के सभी लोग भगवान पर अन्ध श्रद्धा रखनेवाले और सन्यासियों के चक्कर में फंसे रहने वाले हैं । उसका पति श्रीधर घर में सबसे छोटा था । लाड प्यार से वह बिगडा हुआ था । उसकी हर बुरी-अच्छी बात की पूर्ति उसकी माँ कर देती थी । इसलिए शुचिता पति को संपूर्ण निष्ठा से प्रेम देकर भी अपूर्ण जीवन जी रही थी । लेकिन विवाह के बाद की इन अतृप्तियों

ही में जीना स्त्री की मर्यादा और नैतिकता है जिन्हें अस्वीकारने की हिम्मत अभी तक शुचिता नहीं कर सकी थी । हिम्मत की बात तो अलग, शायद पति से अलग रहकर जीने की उसने कल्पना तक नहीं की । ढोंगी सन्यासी की पूजा के बारे में श्रीधर और पत्नी के बीच मन मुटाव पैदा होता है । अपनी पत्नी से स्वामीजी के चरण दबाना श्रीधर का लक्ष्य रहा । लेकिन वासना के कीडे स्वामीजी की पूजा करने में वह विमुख रही ।

पुत्री जन्म के बाद जब शुचिता पति के घर पहुँची तो उसके स्वागत केलिए स्वामीजी भी उपस्थित थे । बेटी पूजा को उन्होंने चार तोले सोने की जंजीर तक पहनाई और वर्ष भर के भीतर ही पूजा को वृन्दावन ले आने की बात तय की । शुचिता इसके विरोध में बहुत हाथ पैर पटका परन्तु, श्रीधर ने नहीं माना । परिस्थितियों की आँधी के कारण उसे जाना ही पड़ा ।

सभी घरवालों के साथ वह स्वामीजी से मिलने जाती है तो स्वामीजी उसे कुछ पिलाकर बेहोश कर देते हैं और उसे मृत घोषित कर देते हैं । उसके पति और घर के अन्य लोग पुलिस केस से डर कर उसे छोड़कर भाग जाते हैं । होश में आने पर शुचिता को लगा कि वह अब पहलेवाली शुचिता नहीं रही है । स्वामीजी रासलीला कर चुके थे । वह वहाँ से भाग आती है । मानसिक रूप से वह विक्षिप्त हो गयी थी । पति से वापस बुलाने का अनुरोध करती हुई पत्र भेजा तो उसने लिख भेजा "मेरी पत्नी अब जीवित नहीं", उसका क्रिया कर्म हो गया है, जो होगा वह उसका कुरूप भूत होगा, जिसकी मुक्ति भागवत् पूजा में ही हो सकती है ।

जीवन में अनजाने में मिले धोखे से मुक्ति पाने केलिए वह यमुना में कूद पड़ी । उधर से आगरा के पागलखाने में पहुँची । अस्पताल में

उसकी मुलाकात डॉ॰ विक्रांत से होती है । डाक्टर की सांत्वना से वह जीवन संग्राम में फिर से उतरने का निश्चय कर लेती है । निष्ठुर पति से लड़कर अपनी बेटी को वापस लेने के साथ ही पति से संबन्ध विच्छेद भी कर लेती है । बाद में वह नर्सिंग पढ़कर नर्स बन जाती है । फिर अपनी और बेटी की भलाई केलिए उसी डॉक्टर से विवाह भी कर लेती है ।

शुचिता का चरित्र

शुचिता मध्यवर्गीय परिवार की लड़की है । वह सब तरह की रूढियों, अंधविश्वासों और अनाचारों से मुक्त होना चाहती है । इस केलिए वह आवाज़ भी उठाती है । शुचिता को पति का व्यवहार बिलकुल पसंद नहीं है । पति का विचार है "पढ़ी लिखी से शादी नहीं करनी चाहिए । यह प्रस्ताव सुनकर उसने पति से पूछा - "और पढ लिख कर तुम अंधविश्वासी हो, अपने स्वामीजी के चरण धोकर पीते हो कि शायद चरणामृत से सोना निकल आये ।"[156]

वह पतिव्रता होकर, पति के मनमानी बर्ताव को चुप-चाप सहनेवाली नारी नहीं है । पति आधी-रात तक लड़के-लड़कियों के बीच महफिल में बैठकर संगीत का मज़ा लेते रहता है । इसके बारे में शुचिता ने प्रश्न किया तो निस्संकोच पति ने कहा - ठीक है लूँगा मज़ा... तुम्हारी तरह बेसुरी पत्नी के साथ रहने से और क्या होगा । जवाब में शुचिता ने कहा था "और तुम्हारे जैसे नीरस पति के कारण मैं क्या जेलखाने में मरती रहूँ ।"[157]

शुचिता पत्नी के अधिकार केलिए लड़नेवाली औरत है । उसका विचार है कि शादी शुदा होने के कारण स्त्री का पति के साथ रहना पत्नी का अधिकार है । सास के साथ चूल्हा-चक्की में फंसकर जिन्दगी

बर्बाद करना उसे पसंद नहीं है । इसलिए जब श्रीधर का यह कथन सुनकर कि सास के अंकुश में रहेगी तो जबान इतनी तो न फैल जाती, सुचित्रा जवाब देती है - क्यों नहीं "शादी तो तुमसे नहीं हुई थी..... "माँ से हुई थी, इसलिए शादी के बाद तुम्हारा चेहरा तो चौबीस घंटे में एक ही बार देखती थी और सारे दिन उनके चेहरे को देखकर मैं ने दो वर्ष निकाल दिये थे । दिन भर यह पढ़ी लिखी औरत रसोई घर की गीली लकड़ियों में उलझी रही है । कहने को तुम सब भाई ओवरसीयर, रेलवे इन्स्पेक्टर और खाद्य अधिकारी । सब के सब माँ की आड में पत्नियों पर नाजायज दबाव रखते हो ।"[158]

अंधविश्वास और अनाचार नारी को जकड़नेवाली कड़ी है । सुचित्रा अंधविश्वास और अनाचारों से कोसों मील दूरी पर हैं । इसलिए उस घर की सभी व्यवस्था उसे असह्य थी । अपनी मर्जी के अनुसार जीने केलिए वह तड़पती है, लड़ती है । वह पूछती भी है "अपनी मर्जी से न हँसूं, न बोलूं और न किसी को एक कप चाय पिला सकूं ? यह क्या जायज बात तुम्हारी ।"[159]

परिवार में क्रूर व्यवहार करनेवाले ढोंगी सन्यासी के प्रति उनके मन में कोई आदर न था । बल्कि घृणा थी । इसलिए वह पति से कहती है - "परन्तु तुम सब मुझे बाध्य नहीं कर सकते कि मैं उनपर श्रद्धा करूं, रात में उनके चरण दबाऊं और चरणामृत पीऊं ।

बीच में पति उसे जताता है कि देखो सुचित्रा, पढ़ने-लिखने का यह अर्थ नहीं कि तुम धर्म पर से श्रद्धा हटा दो या दूसरों की श्रद्धा का मज़ाक बनाओ ।" पति की जबरदस्त कोशिश करने पर भी वह अपने व्यक्तित्व खो देना पसंद नहीं करती । वासना के कीड़े स्वामीजी की उपासना में वह विमुख थी ।

शुचिता को मालूम हो गया कि पति के घर में बहू केलिए एक ओर मर्यादाओं का बोझ था तो दूसरी ओर अंधविश्वासों का घेरा। लेने को वहाँ सब कोई, देने को न भावनाएँ न स्नेह और वह यह समझती है कि जिंदगी का दूसरा नाम आदान-प्रदान है। सगे और खून के रिश्ते भी बिना आदान प्रदान के नहीं टिकते। उसके मन में ससुरालवालों के प्रति आदर भावना है। उनकेलिए प्रत्येक कर्तव्य को निभाना अपना धर्म मानती है, परन्तु ऐसा लगता है कि जैसे वह बंजर धरती में पानी देती आ रही है। परिवार वालों के इस तरह के विचारों के प्रति उसकी प्रतिक्रिया है कि "कब तक एक तरफा किसी को बांधकर उससे काम लिया जा सकता है।"[160] इस वास्ते कई बार वह भीतर से सटकती है। आखिरकार वही हार मानकर मोर्चे से भाग खडी हो जाती।

शुचिता स्वावलंबी नारी है। दूसरों की मेहनत की कमाई खाने में उसे कोई रुचि नहीं है। जीने केलिए स्वावलंबन का मार्ग वह स्वीकार करती है। स्वामीजी द्वारा दिखाये धन के पीछे लालच होकर जानेवाले पति से वह कहती है "अपनी मेहनत की कमाई का सुख ही अलग होता है।"[161]

पति जब उसे खुद ही स्वामीजी को सौंपाकर भाग जाता है तो वह डरती नहीं। ढोंगी फकीर के डेरे में अपना जीवन खतरे में पडा है, यह समझकर भी उसने अपने पति की खबर पूछी। स्वामीजी का यह जवाब है जिस व्यक्ति में अपनी असली वस्तु संभाल रखने की शक्ति नहीं वह उसे खो देता है। यह सुनकर शुचिता बोल उठी - "और दूसरे की अच्छी चीज़ पर बुरी नज़र लगाकर उसे कपट से प्राप्त करनेवाले को ठग और धोखबाज कहा जाता है स्वामीजी।"[162]

उसे ठीक मालूम हो गया कि स्त्री को लांछित करके ही पुरुष सदियों से उसे कमज़ोर बनाता आया है। शील भंग के बाद समाज व परिवार उससे घृणा करेंगे। उसे सामाजिक प्रतिष्ठा नहीं मिलेगी

और फिर एक अच्छी स्त्री नहीं बन पाएगी । उसे अपनी ज़िंदगी की लडाई स्वयं लडनी है । अपने बीते हुए इतिहास से नया इतिहास बनाने की हिम्मत जुटाकर वह ढोंगी सन्यासी के फेरे से बाहर निकलने केलिए यमुना में कूदती है । लेकिन बक्कर आग्रा के पागल खाने पहुँच जाती है । वहाँ डॉ॰विक्रान्त से सांत्वना पाकर नये जीवन जीने का निश्चय कर लेती है ।

वह अपने लम्पट, कपटी पति से प्रतिद्रोह करती है । कोर्ट में खुद बयान भी देती है । यों समाज में पुरुष की नारी के प्रति जो रुख है उसे खुलकर दिखाती है । पुरुष मनमानी करता है और स्त्री पर चरित्र हीनता का आरोप लगाता है । इस सामाजिक नीति पर वह प्रहार करती है । लड-झगडकर अपनी बेटी को वापस लाती है और पति से अलग होती है ।

बेटी के साथ वह अपने मायका छोडकर डॉ॰विक्रांत के नर्सिंग होम में रहने लगती है । उसका यही विचार है कि हर स्थिति में उसे जीना है, अच्छी तरह जीना है, किसी पर बोझ नहीं बनना है । श्रम करके, संघर्ष करके जीने को वह तैयार हो जाती है । इस प्रकार वह खुद को संभालने लगती है । आत्मनिर्भर होने केलिए वह नर्सिंग सीखती है और अस्पताल में काम करने लगती है । स्वावलंबन के मार्ग में बेटी को आगे बढाने का निश्चय कर लेती है । पुरुष से प्रताडित लांछित होने पर भी उससे लडकर वह अपने भविष्य बनाने में समर्थ बनती है । यों कृष्णा अग्निहोत्री ने शुचिता को आधुनिक रूढि-मुक्त नारी के रूप में चित्रित किया है । नारी मुक्ति का पूर्ण आयाम उसके चरित्र में उतार आया है ।

वन्दना

वन्दना उपन्यास की एक और नारी है जो कालेज की अध्यापिका होने पर भी परिवार केलिए अपना जीवन बलिदान करती है । कुमारी होने के कारण उसके हर चलन में परिवार या समाज की पैनी दृष्टि पडती है, जो उसे बिलकुल पसंद नहीं । इसलिए हर मौके पर वह किसी से भी मुँह तोड जवाब देती है । परिवार से जब वह अकेले बाहर जाती तो उसे भर्त्सना मिलती है । दादी, बीच बीच में उससे कहती है "ये कौन से लक्षण है भला । इज्जतदार घराने की लडकियाँ कहीं इस तरह बिना बताये घर से देर तक बाहर रहती है । यह सुनकर वन्दना चिल्ला उठती है - "तो कौन सा पहाड टूट पडा माँ । क्या लडकियाँ केवल गेरुए वस्त्र पहनकर भजनपूजा केलिए होती है ? यदि ऐसा हो तो तुम नौकरी करो मैं रसोई घर संभाल लूँगी ।"[163]

किसी का अपने स्वातंत्र्य पर हाथ लगाना वह ठीक नहीं समझती । इसलिए माँ के "पढी लिखी होने के कारण रौब दिखाती है" "कमाने का अर्थ यह तो नहीं कि तुम आवारागर्दी करती रहो" - कहने पर वह माँ से पूछती "मैं ने ज़रा समय विभा के साथ गुज़ारा तो तुम्हें आवारा दिखने लगी । और अभी तक राजू को बाहर से नहीं लौटा उसका क्या कहोगी ?"[164] उसके हर प्रस्ताव और अदा पर स्त्री पुरुष-बराबरी की भावना है ।

कुँआरेपन पर उसे कोई विशेष महत्व या खतरा महसूस नहीं होती । कुँआरी होने के नाते जीवन से विमुख होकर सिमिटकर चार दीवारों में बन्द रहना उसकेलिए नामुमकीन है । महिला विद्यालय की मीटिंग के बाद वन्दना मूवी देखने चली तो दस बजते ही मकान मालिक ने घर का ताला लगाया । आवाज़ देने पर मालिक ने कहा आप तो कुँआरी है, भला रात-बिरात इस तरह समय कुसमय देखे-बिना लौटना कहाँ भलापन है । हम लोग परिवारवाले है । हमारे यहाँ ऐसा नहीं

चलेगा । यह सुनकर वन्दना एकदम खींच गई "क्या नहीं चलेगा ? कुंआरे रहना क्या इतनी बडी सजा या अपराध है कि उसके कारण ज़िन्दगी ही न जी जा सके ? कुंआरेपन कोई ऐसी स्थिति है कि कुंआरों को अच्छा कहलाने केलिए केवल घर ही में रहना आवश्यक है ? भला घूमना फिरना मस्त रहना क्या बुरा काम है, जो किसी के भी भलेपन को खंडित करता है और वह मन ही मन सोचने भी लगी यह तो अजीब बात है वो अपना कमाती अपना खाती है, और बातें सुनाने केलिए प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र है । कुआरेपन की चादर क्या इतनी सफेद है, बेवा जैसी कि जो चाहे छींटा डाल दे ।"

वन्दना के चरित्र में "बोलडनस" है । यह "बोल्डनस" ने उसे पूजा की माँ शुचिता से मिलाया । कुंआरी रहनेवाली वन्दना को डॉ॰ विक्रांत और शुचिता के परिचय ने एक हद तक सुरक्षा प्रदान की । अकेली रहने का उसे कोई गम नहीं है । वन्दना के घरवाले को इसका पता चला कि लोग उसे डॉ॰ विक्रांत की रखैल कहते हैं । माँ उसे घर बुलाकर पूछती है - ऐसे में तेरी छोटी बहन की शादी कैसे होगी ?" तो वन्दना ने जवाब दिया क्यों माँ तुम तो बहुत महान हो न । तब बताओ, मेरी चिंता तुम्हें क्यों नहीं होती ? छोटी-सी सीमा तक के विवाह की बात तुम्हारे दिमाग में खलल डालती रहती है । अब तो सीमा बहुत छोटी नहीं । चलो न कुछ दिन मेरे पास तो रहो और उन सारी असुविधाओं को भोगो, जो एक अकेली लड़की को भोगनी पडती है ।"[165]

पुरुष के मेधा भाव से वह घृणा करती है । उसके कामुक भाव में छिपे पशुत्व के प्रति वह रोष भी प्रकट करती है । अपनी छोटी बहिन सीमा का कुंआरपन जब बलात्कार से लूट गया तो वन्दना में रोष जाग उठा । वह कहती है "सीमा का कुंआरपन यदि बलात्कार से लूट गया तो इसका दोषी सीमा तो नहीं है, और यदि लूटनेवाला खुश है तो लूटने की दुःख भरी अभिव्यक्ति ज़िन्दगी देकर ही तो नहीं

की जानी चाहिए । वन्दना का विचार है कि पुरुष अपने जिस्म के एक हिस्से के प्रयोग के बाद न तो अपना कुँआरापन खोता है और न ही उसे इतना मानता है । निरंतर उसके उपयोग के बाद भी वह आत्महत्या की बात तक नहीं सोचता । तब इन स्थितियों में शरीर के इस प्रयोग के बाद लड़की ही क्यों इतनी क्षुब्धा हो जाय कि ज़िन्दगी ही खत्म करे । वह सीमा को तो यही समझाती कि अब "यदि शरीर पर कुछ दाग ज़ुबरदस्ती किसी ने लगा दिया है तो मन की कमज़ोरी से उसे गहरा मत बन दृढ़ता के साबुन से उसे धो, पोंछ दे और समय के साथ सामान्य ज़िंदगी जीने का होसला उत्पन्न करती रह । .... समय के साथ घाव भरता ही है ।"

इस घटना से वन्दना यह सबक सीख लेती है कि "स्त्री को अपने साथ बीती इस ज्यादती के विरोध में डटकर खड़ा रहना चाहिए । गुमनामी ओढ दफन होने से बुराई दबेगी तो नहीं ।"[166]

बहिन की मृत्यु के बाद परिवारवाले वन्दना से डरने लगे । उसकी कुँआरापन मिटाने केलिए तीन बच्चेवाले मिलट्री इंजनीयर का रिश्ता पक्का करने में उत्सुक माँ से वन्दना कहती है - वैसे भी सुना है, उनके तीन बच्चे हैं । इतनी गुज़र गई और गुज़र जायेगी । कुँआरेपन ही भला । ... अच्छा हो कि मेरेलिए अब शादी की बात न सोचें, मेरी पसंद बन गई है और अब उससे हटकर जीना कोई मायने नहीं रखेगा ।"[167] वन्दना यों अपनी इच्छानुसार जीने केलिए परिवार छोड़कर वर्किंग विमेन्स होस्टल में रहने का निश्चय कर लेती है ।

जब भाइयों ने घर का बँटवारा किया तो वन्दना का अलग कमरा भी छीन लिया । परिवार की बेटी के प्रति यह अन्याय उसकी समझ में न आया। बेटे को पूर्ण अधिकार देनेवाले न्याय और मान्यता के प्रति वह माँ से कहती है - "यह सब करने का अधिकार इन सबको नहीं

माँ .... तुम्हारे रहते ये सब हुआ और तुम चुप चाप रहे ? आखिर घर मालकिन तो आप ही हो मेरा कमरा तो बडे भैया को लेने का हक नहीं था न ।"[168] माँ की यही प्रतिक्रिया है कि लडकियों का घर तो ससुराल होता है वन्दना । तुम्हारे भाइयों ने तुम्हारी शादी केलिए स्कूल में पढानेवाले एक लक्चरर को ढूंढा है । पहली पत्नी मर गयी है । दो छोटे छोटे बच्चे हैं । वह शादी केलिए तैयार है । लेकिन वन्दना शादी केलिए तडपनेवाली दकियानूसी लड्की नहीं है । वह शादी को परिवार का मामला नहीं मानती, बल्कि निजी मामला समझती है । निजी मामले को तय करने का अधिकार उसका अपना है । इसलिए वह माँ से कहती है - "पर मैं बच्चोंवाले से शादी नहीं करूँगी । वह स्कूल में है । कम से कम कुछ तो मेरा स्टैण्डर्ड है ही ।

माँ के अनुसार कुँआरापन शाप है । इसलिए बताया कि "अब भी मना करोगी तो तुम्हारी शादी नहीं होगी और मेरी आत्मा पर यह बोझ लदा ही रहेगा कि तुम कुँआरी हो । उसका यही दृढ विश्वास है कि अयोग्य व्यक्ति से शादी करके अपने को वह पूरी तरह नहीं मार सकती । यदि फेर पडने से शादी हो जाती है तो तुलसी के पौधे से ही फेरे पडना भी एक तरीका है, ताकि कुँआरापन उतर जाये ।"[169]

अपने बारे में समाज परिवार या अन्य किसी का हस्तान्तरण वह मानती नहीं । अपने वैयक्तिक मामले में और किसी की दखल अंदाज़ी वह उचित नहीं मानती । वह कहती भी है - "जब समाज का मेरे प्रति कोई दायित्व नहीं, न मेरी मानसिकता का वह हिस्सेदार है और न ही मेरी सुरक्षा की उस पर कोई जिम्मेदारी है तो उसकी थोथी मान्यता केलिए मैं कुण्ठा नहीं पाल सकती । स्वस्थ ढंग से जीने केलिए मैं स्वस्थ व्यक्तियों से यदि सीमासहित सम्पर्क रखती हूं तो वह मेरी आवश्यक अनिवार्यता है । इससे कहीं कुछ बिगडता नहीं ।"[170]

वह हमेशा केलिए घर से विदा लेती है । और अपनी शेष ज़िंदगी होस्टल में रहकर मज़े से जीने का निश्चय कर लेती है । ज़िंदगी भर कुंआरी रहती हुई, समाज के सामने शादी शुदा ज़िन्दगी से इतर एक वैयक्तिक ज़िंदगी वह प्रस्तुत करती है ।

गुड्डी

गुड्डी डॉ॰ विक्रांत की इकलौती बेटी है जो सारे सुख सुविधाओं के बीच में भी कुंआरी रहती है । उसकी मम्मी की मृत्यु के बाद वह स्वतंत्र जीवन बिताती है । जब उसकी स्वतंत्रता, सीमा पार करने लगी तो डॉ॰ विक्रांत उसे चेतावनी देता है । लेकिन उसे अपने व्यक्तिगत मामले में और किसी का हाथ लगाना पसंद नहीं था । जब पिता बेटी से पूछता है "तुम आजकल किसके साथ रोज़ घूमती हो ? तो वह जवाब देती है - अब मैं बड़ी हूं । अपनी सहेली के यहां भी क्या नहीं जा सकती । ... मैं कोई बहाना नहीं बना रही । अपने मिलने जुलने वालों के साथ खुलकर बोलना या समय पर उनके साथ कहीं चला जाना कोई बुरा काम तो नहीं है ।"[7]

गुड्डी छोटी है लेकिन वह अपनी इच्छा के अनुसार जीना चाहती है । जब बेटी की बात से हैरान होकर पिता कहता है कि बहुत बढ़कर बात करना इतनी कम उम्र में तुम्हें शोभा नहीं देती । 'दो चार वर्ष ठहर जाओ तब अपनी मरजी से जीना । तो गुड्डी का यही सवाल है, "पर मैं अभी भी अपनी मरजी से क्यों नहीं जी सकती ?"

गुड्डी में नारीवाद के अतिवादी रूप की झलक है । उसने हमेशा मनमानी ढंग से जीने की रीति चुन ली है । हमेशा लड़कों के झुण्ड में रहना, सिगार पीना, मज़े में रहने के जो जो तरीके हैं सबसे अभ्यस्त होना उसकी आदत सी हो गयी है । और अंत में उसकी रीति

यहाँ तक आ गयी कि पुरुष को छोड़कर सरिता नामक लड़की के साथ बेवकूफियों में समय काटने में पसंद करने लगी । नारी मुक्ति के अतिवाद में लेसबियन वादियों की ऐसी समलैंगिकता की स्वतंत्रता की बात भी आती है ।

डॉ• विक्रांत ने उसकी शादी तय की । पहले वह मानती नहीं, लेकिन बाद में उसने अनुमति दे दी । शादी में लड़केवाले अपने पिता के "ब्लायक मेल" करने की रीति वह पसंद नहीं करती । उसकी चरित्रहीनता के नाम पर बारात आने के बाद पचास हज़ार रुपए की माँग से उसका नारी मन तिल मिला उठा । वह सोचने लगी कि जब तक पचास हज़ार रुपए रहेंगी गुड्डी चरित्रवान रहेगी, खत्म होते ही वह बदमाश बन् जाएगी । सजी-धजी गुड्डी फटी आँखों से सब कुछ देखती रही और उसने पिता से कहा - मैं अब शादी नहीं करूँगी, और आप को भी प्रतिष्ठा के विरुद्ध सुनने का अवसर नहीं दूँगी । .... पर आप मत मारना पापा, कुछ दिन वन्दना दीदीवाले होस्टल में रहूँगी, शायद इन सबके साथ मन लग जाए ।"

यों गुड्डी अपने व्यक्तित्व और अस्तित्व को गिरवी रखे बिना, पत्नी हुए बिना स्वतंत्र रूप से कुँआरी बनकर जीने का निश्चय कर लेती है । उसने भी उस होस्टल में जाने का निश्चय ले लिया जहाँ त्रस्त कुमारिकाएँ नई अभिलाषाओं व संघर्ष के नए मोड़ों से गुज़रने केलिए कटिबद्ध बैठी थीं ।

कृष्णा अग्निहोत्री के इस उपन्यास के तीनों पात्रों में नारी स्वतंत्रतावाद की अमिट छाप है। सुचिता और वन्दना में तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था को चुनौती देकर अन्याय के खिलाफ जी तोड प्रयत्न करने की शक्ति और क्षमता है । आधुनिक नारी शादी को अपने जीवन का एक मात्र लक्ष्य नहीं मानती । रूढ़िग्रस्त होकर किसी बूढ़े से शादी

करने से बहतर कुँआरी रहकर जिन्दगी का मजा लूटना वे चाहती है । रात में अकेले चलना, खुलकर बातें करना, आदि में वन्दना कोई आपत्ति नहीं देखती । अपने व्यक्तिगत मामले में दखल करने का अवसर वह किसी को नहीं देती । उसके बोलडनस में नारी मुक्ति का सही ढंग उभरता है ।

गुड्डी में नारीवाद का अतिवादी रूप है । मनपसंद लड़के के साथ घूमना, सिगार पीना, आदि अतिवादी तरीकों को उसने आत्मसात किया है । समलैंगिकता की ओर भी वह आकर्षित होती है । विवाह वेदी पर अधिक धन की लालच में पीछेवाले खड़े हो गये तो वह प्रतिज्ञा लेती है कि आजीवन कुँआरी बनकर रहेगी । किसी न किसी प्रकार शादी करने केलिए वह सहमत नहीं होती । उसके इस रूप में नारी के आत्मगौरव की भावना है जो पुरुष पैसा के सामने अर्पण करने केलिए तैयार नहीं है ।

मेहरुन्नीसा परवेज़

उसका घर

सामाजिक विसंगतियों और विषमताओं को तीखी व बेबाक अभिव्यक्ति देनेवाली मेहरुन्नीसा परवेज़ वर्तमान समय की सशक्त लेखिका है । उन्होंने जिस साहसिकता के साथ स्त्री पुरुष संबन्धों को नये दृष्टिकोण से उपस्थित किया वह अपने आप में अजूबा है। इनके उपन्यासों में स्त्रियाँ लिजलिजी भावुकता के वशीभूत हो अपना जीवन नष्ट नहीं करतीं वरन् जीवन को देखने का इनका नज़रिया बौद्धिक और तटस्थ है । लेखिका ने आधुनिक संस्कृति और सभ्यता को बारीकी से रेखाङ्कित करते हुए बौद्धिक तरों से समस्या का निदान ढूँढा है । नारी जिसका घर, परिवार कार्यालय सभी जगह शोषण हो रहा है,

उसे बोल्डनेस के, दृढ आत्मविश्वास की सख्त ज़रूरत है जिससे वह लड सके, अपनी पहचान कायम कर सके । उनकी नायिका रूढिग्रस्त अन्य नारियों की भांति टूटती बिखरती नहीं, वरन काफी आत्म संघर्ष के बाद दृढ होकर अपना रास्ता स्वयं चुन लेती है।

प्रेम के नाम पर नारी के शोषण के भी अनेक रूप मिलते हैं । पुरुष अपनी शक्ति एवं चातुर्य से नारी का विषम परिस्थितियों में लाभ उठाना जानता है। शोषण केलिए मुख्यत: पुरुष समाज तो दोषी है ही फिर भी कुछ सीमा तक नारी की परिस्थितियां भी दोषी हैं । क्योंकि स्त्री अपनी परिस्थितियों से समझौता कर विद्रोह नहीं करती, अत: वह भी दोषी मानी जा सकती है । "उसका घर" में मेहरुन्नीज़ा परवेज़ यह बताना चाहती है कि जब तक नारी सजग होकर अपने अस्तित्व की रखवाली नहीं करती तब तक उसका शोषण जारी रहेगा । वर्तमान व्यवस्था में नारी को जीना है तो इस व्यवस्था को संगठित होकर बदलना ही होगा ।

कथावस्तु

"उसका घर" में एक परिवार के टूटने-बिखरने की मार्मिक कहानी कही गई है । उपन्यास की नायिका एलमा की मर्मकथा के साथ उसकी स्त्री सहज आदत और अंत में सब सहकर भाई से विद्रोह करके अपने व्यक्तित्व की स्थापना इस उपन्यास की विशेषता है । एलमा के अलावा उसकी आन्टी और बहिन भी निजी व्यक्तित्व प्रकट करनेवाले पात्र है ।

नायिका एलमा को दमे की बीमारी का बहाना बनाकर पति उसे त्याग देता है तो वह अपने घर में भाई-भाभी के पास आकर रहने लगती है । थोडे ही दिनों बाद पाती है कि उसका भाई ही उसके सौन्दर्य का, रूप का व्यापार कर रहा है । वह मिस्टर आहूजा के साथ

उसे छूमने डाक बंगले में रात बिताने केलिए भेजता है । भाई उसे अप्रत्यक्ष रूप से प्रोत्साहित करता है तथा बदले में उससे अपना काम निकालता है, रुपया भी ऐंठता है । शुरू में तो एलमा को पता नहीं चलता पर जैसे ही उसे पता चलता है, वह नौकरी ढूंढना शुरू कर देती है । अन्त में मद्रास में जब उसे नौकरी मिल जाती है तो वहाँ से वह चुप-चाप चली जाती है । इस प्रकार वह भाई द्वारा सौंपी नारकीय यातना से छुटकारा पाने केलिए आर्थिक रूप से स्वावलंबी बनती है ।

एलमा के अलावा उसकी आन्टी और बेटी रेश्मा भी निजी व्यक्तित्व प्रकट करने वाले पात्र है । रेश्मा एक हिन्दू युवा से प्यार करती है । लेकिन माँ उसकी शादी "क्रिस्चियन" युवा के साथ कराना चाहती है । रेश्मा शादी के बगैर अपने प्रेमी के बच्चे की माँ बननेवाली हो गयी तो माँ क्रुद्ध होकर उसे घर से निकालने की धमकी देती है। रेश्मा इसकी परवाह किये बिना बच्चे को जन्म देती है और परवरिश करती है । माँ की मृत्यु के बाद ही अपने प्रेमी के साथ जीने का निर्णय लेती है ।

एलमा का चरित्र

"उसका घर" उपन्यास की नायिका है ऐलमा । वह पढी लिखी, खूबसूरत युवती है । ऐलमा शादी शुदा है । उसका पति उसमें दमे की बीमारी का आरोप लगाकर तलाक लेना चाहता है । पति उससे इतना कहकर घर वापस लौटता है "मेरा, लम्बा दौरा है, तुम चाहे तो भाई के घर हो आओ । दो माह में पति के बगैर घर में चुप बैठने से भाई के घर आना अच्छा समझकर वह वापस आती है । लेकिन बाद में चिट्ठी लिखकर पति ने उसे समझाया कि मामला अदालत न ले जाकर परिवार में ही उसका निर्णय करें । पुरुष मेधा समाज की चालाकी से अनभिज्ञ ऐलमा अपने भविष्य की ज्वलंत सच्चाई सुनकर दुःखी नहीं हुई । वह निडर

भाव से सामना करने का निश्चय करती है । उसकी आन्टी ने उससे कहा मेरे ख्याल में मामला अदालत में ले जाना चाहिए । यह उसकी गीदड धमकी है, हम क्यों मानेंगी ।"

ऐलमा अदालत में गये बिना ही तलाक स्वीकार कर लेती है । क्योंकि उसकी दृष्टि में "यह तो दिल के संबन्ध होते हैं । पत्नी को भीख में मांगा हुआ अधिकार कभी सुख नहीं देता । जब उनके मन से ही उतर गई । मैं तो हठात् वह अधिकार अपनाऊँगी नहीं । [illegible] रही अदालत जाने की बात तो पति पत्नी में यदि दरार पड ही जाए तो दुनियां की कोई अदालत उसे नहीं जोड सकती । मैं ने सोच लिया है, मैं तलाक स्वीकार कर लूंगी ।"[172]

उसका "तलाक" शब्द से डरनेवाला व्यक्तित्व नहीं है। बचपन से ही किसी पर भी जबरदस्ती करना वह पसंद नहीं करती । उसके अनुसार वैवाहिक जीवन में जो दरवाज़ा एक बार बन्द हो, उसे फिर खोलने का प्रयत्न व्यर्थ है । इसलिए वह निडर होकर पत्र द्वारा तलाक की स्वीकृति लिख भेजती है । आम नारी की तरह जल्दी ही मुरझानेवाली नहीं है वह । तलाक देकर ऐलमा अधिक दुःखी होगी और कुछ कर बैठेगी । बहिन का यही विचार है । लेकिन बहिन से वह कहती है "शायद तुम्हें शक है मैं कुछ खा-पीकर आत्महत्या न कर लूं.है न ? नहीं रेश्मा तुम्हारी दीदी इतनी कच्ची नहीं है, वह जिंदगी के चलैंज को सहर्ष स्वीकारेगी । तुम जाओ और ऐसी मूर्खतापूर्ण बात आइन्दा मत सोचना ।"[173]

ऐलमा को अधिकार के प्रति पूरी सतर्कता है । उसके अनुसार भीख में मांगा हुआ प्यार प्यार नहीं, नफरत होता है । पति-पत्नी का संबन्ध हृदय से होना है । अदालत जाकर क्या करेगी ? वह आन्टी से खुलकर पूछती है - माना वह मुझे तलाक नहीं दे पायेंगी, पर उस घर में अदालत जाने के बाद मेरी स्थिति क्या होगी सोचो ?" ऐलमा को

ठीक मालूम था कि जहाँ पति-पत्नी के बीच एक बार तलाक शब्द उठ जाये वहाँ जबर्दस्ती समझौता करना बेवकूफी है । यानी यह जान बूझकर दोनों की हत्या करना है ।

वह तलाक करके चुप चाप सिकुड़कर घर में बैठने के खिलाफ है । तलाक करने से स्त्री का जीवन नष्ट हो जाएगा, ऐसा विश्वास उसे नहीं है । वह ठीक ठाक पोशाक पहनकर बाहर घूमने चली जाती है । एक दिन चलती चलती उसकी दृष्टि रोज बेकरी पर पड़ी । उसे आश्चर्य हुआ एक महिला के नाम पर उस गाँव में दूकान चल रही है । उस महिला के साथ परिचय और साहस की वजह उसमें हौसला बढ गया ।

भारतीय मध्यवर्ग का पारिवारिक जीवन एक जटिल स्थिति से गुज़र रहा है । परिवार केलिए आवश्यक संबन्धों में सहनशीलता, त्याग, बलिदान दूसरे की कमियों के बावजूद उसे सहने का कर्तव्य केवल स्त्रियों का दायित्व समझा गया है । इसका और एक नमूना है ऐलमा के भाई द्वारा उसकी पदोन्नति केलिए बहन को बोस के साथ खुले-आम घूमने और मज़ा उठाने केलिए भेजना । लेकिन वैयक्तिक स्वतंत्रता तथा व्यक्तिगत सुख पाने की आकांक्षा के कोण अधिक नुकीले बनते जा रहे हैं । इसलिए ऐलमा अपने साथ किये अन्याय का प्रतिशोध करने में सजग हो उठी । धीरे धीरे उसे मालूम हो गया, भाई का सहारा केवल सहारा मात्र नहीं है । उसका भाई ही उसके सौन्दर्य का, रूप का व्यापार कर रहा है । अर्थात् अपनी बहिन की लाज का दायित्व जिस भाई पर निर्भर है वह उसे अपनी तरक्की केलिए उपयोग कर रहा है ।

जैसे ही ऐलमा को सब का पता चलता है, वह खुद अपने पैरों पर खडे होने का निश्चय ले लेती है । पुरुष द्वारा किये गये शोषण के खिलाफ खडी होती उसका रूप समाजवादी नारी मुक्ति आंदोलनकारियों का है । समाजवादी फेमिनिस्ट नारी के वैयक्तिक व सामाजिक शोषण के खिलाफ है । ऐलमा भी भाई के पंजे से मुक्त होने केलिए नौकरी की तलाश करती है, और उसे मद्रास में नौकरी मिलती है तो किसी को पता दिये बिना, गाँव छोडकर चली जाती है। इस प्रकार भाई से

विद्रोह प्रकट करती है ।

पुरुष मेधा समाज में नारी हमेशा शोषण की शिकार बन जाती है । मेहरुन्नीज़ा परवेज़ जी ऐलमा के द्वारा इसका हूबहू उद्घाटन करना चाहती हैं । ऐलमा पहले पिताके स्नेह और संरक्षण से प्रवंचित हो गयी । यौवन में पति द्वारा प्रताड़ित, आरोपित फिर वापस भाई के घर शरण लेती है । समय आने पर भाई भी बहिन का शोषण करने में कोई कमी नहीं दिखाता । इस प्रकार पुरुष मेधा समाज में आज भी नारी केवल एक चीज़ के रूप में स्थान पाती है । उसके जीवन का भविष्य और अस्तित्व पुरुष समाज पर निर्भर है । यदि उसे अपना अस्तित्व और भविष्य कायम रखने है तो खुद सतर्क रहना पड़ता है, संघर्षों से गुज़रना है ।

रेश्मा

रेश्मा ऐलमा की आन्टी की बेटी है । वह ऐलमा की तरह अधिक संवेदनशील नहीं है । रेश्मा का व्यक्तित्व विद्रोही है । अन्याय और अधर्म के प्रति आवाज़ उठाना वह अपना फर्ज समझती है । अपनी माँ की इकलौती बेटी होने के कारण वह हठीली भी है ।

माँ उसकी शादी एक क्रिस्ट्यन लड़के के साथ कराना चाहती है । लेकिन वह हिन्दू लड़का देव से प्यार करती है और उसे शादी करना चाहती है । देव और रेश्मा विवाह के बिना साथ रहते थे । रेश्मा के मन में इस तरह के जीवन बिताने में, माँ, परिवार, समाज आदि का कोई डर नहीं है । उसकी माँ यह नहीं चाहती कि हिन्दू लड़का दामाद बने ।

रेश्मा हठी और मुँहफट लड़की है । उसकी माँ यह नहीं चाहती थी कि जिस लड़की की खातिर वह पूरा जीवन खो रही है वही विद्रोही निकले । माँ उसे कभी कभी मारती, पीटती समझाती रही ।

रेश्मा सब सह लेती है । लेकिन अपने अटल निश्चय से हट नहीं जाती । वह कई दिन माँ से बिगड़कर गायब रहती भी है । वह माँ से खुल्लम-खुल्ला बताती है कि दुनिया की कोई ताकत उसे क्रिश्चयन नहीं बना सकती । जब माँ ने उससे कहा मैं क्रिश्चयन के अलावा किसी से भी रेश्मा की शादी करने को तैयार नहीं । हाँ दोनों क्रिश्चियन हो जाए तो अलग बात है ।" पर इस पर रेश्मा की प्रतिक्रिया है "मम्मा, तुम जबर्दस्ती धर्म-परिवर्तन करवाना चाहती हो ? ईश्वर और धर्म दोनों मन से होता है, जबर्दस्ती से नहीं । जब मैं खुद क्रिश्चयन नहीं हूँ तो तुम मेरे पति का कैसे धर्म-परिवर्तन कर सकती हो ? किसी के धर्म परिवर्तन पर पाँच हज़ार का जुर्माना है ।"[174]

शादी के पहले ही वह देव के साथ रहती है । उसे इस पर कोई लाज नहीं है । माँ बनने की जानकारी उसे अधिक आनन्द प्रदान करती है । सधैर्य बच्चे को जन्म देने केलिए तैयार भी होती है । जब रेश्मा ने बच्ची को जन्म दिया तो उसकी माँ रोयी, चिल्लाई भूख हड़ताल पर बैठी, पर रेश्मा पर कोई असर नहीं पडा । माँ ने धमकी दी कि रेश्मा बच्ची को लेकर घर नहीं आ सकती । रेश्मा ने जवाब दिया कि "मम्मा मैं तुम्हारी गीदड-धमकी से नहीं डरती । मैं तुम्हारे घर नहीं आऊँगी, पर तुम मेरा चेहरा जीवन भर नहीं देख सकोगी । अन्त में माँ बेटी के आगे हार गई थी और रेश्मा बच्चे को लेकर घर आ जाती है ।

प्यार करना स्त्री का अधिकार है । राडिकल नारीवादियों की तरह रेश्मा भी यह मानती है । अपनी शादी देव से हो जाएगी इसमें उसे तनिक भी सन्देह नहीं है । वह बिलकुल इस पर घबराती नहीं । इसलिए वह ऐलम्मा से कहती है "दीदी तुम तो घबरा जाती हो, भला कहीं माँ-बाप के ठुकराए आशिर्वाद से जीवन बना है ? जाने मामा मुझे श्राप दे दें, मैं तो देव को इस घर के दामाद का सम्मान दिलाऊँगी और खुद मैं सम्मान से विदा होकर जाऊँगी ।"[175]

देव के प्रति वह सच्ची और वफादार है । प्यार पाने में जो जो तकलीफें झेलनी पड़ती है वह सब झेलती है । कोई भी पीड़ा उसे पीछे हटाती नहीं । देव से मिलने के वास्ते माँ से मार खाने पर वह दीदी से कहती है "देव की एक मुलाकात का कितना सुन्दर इनाम मुझे बर्दाश्त करना पड़ता है दीदी । रेश्मा कई दिन के इन्तजार के बाद अपनी माँ की मृत्यु के बाद देव से विवाह कर लेती है । इस प्रकार उसकी बच्ची को पिता का साया मिलता है और रेश्मा को घर भी ।

वह ऐलमा को भी अपने प्रति किये अन्याय के खिलाफ लड़ने की प्रेरणा देती है । ऐलमा को कोर्ट जाने का उपदेश नहीं देती है । ऐलमा के भाई से भी वह कभी कभी लड़ती है और भाई के पंजे से मुक्त होने की प्रेरणा भी उसे देती है । अपने वैयक्तिक जीवन और मामलों में दूसरे का हस्तक्षेप वह नहीं चाहती । अपना भविष्य खुद गढ़ना वह जानती है । नारी मुक्ति के राडिकल भाव को हाबिटेशन, को मान्यता देता है । रेश्मा भी शादी किये बिना प्रेमी के साथ रहती है, कुमारी माँ बनती है, और बच्ची का पालन-पोषण करती है ।

नारी समस्याओं के समाधान का यह रूप उपन्यासों में अधिक स्वीकृत हुआ है । इस समाधान का रूप उपन्यासकारों की परिस्थितियों के अनुकूल होने के कारण अधिक युक्ति संगत प्रतीत होता है । इस कारण एक ओर नारी न्यायालय के झंझट एवं अनिश्चय की स्थिति से बच जाती है, तो दूसरी ओर उसे घर परिवार में अत्याचार सहते रहने को विवश भी नहीं होना पड़ता । ऐलमा के अन्तर्मुखी सहनशील स्वभाव का फायदा उठाकर उसका भाई उसे अपने बोझ को खुश करने का साधन बनाता है । पति से परित्यक्ता ऐलमा अपने नीच भाई से छुटकारा पाने का यही एक बहाना समझ घर छोड़कर नौकरी करने मद्रास चली जाती है । समस्या का यह अन्त लेखिका परवेज़ जी की विचारधारा की ही अभिव्यक्ति है । यह नारी स्वतंत्रता उन्मीलन की सही मिसाल है ।

मृदुला गर्ग

उसके हिस्से की धूप

हिन्दी की बोल्ड लेखिकाओं में से एक है श्रीमती मृदुला गर्ग । वे सहानुभूति न चाहती और न ही बाँटती भी है । स्वाभिमान उसमें कूट कूट कर भरा है । वे सत्य के एक अंश को लेकर उसे "ग्लोरिफाय" नहीं करती । जीवन में दुराव छिपाव वे जानती ही नहीं और अपने लेखन को भी उन्होंने उसी के अनुरूप ढाला है । जीवन की वास्तविकताओं पर आधारित होने के कारण मृदुला जी के उपन्यास जीवन की विविध समस्याओं से भी जुडे हुए हैं । वे स्वयं लिखती है - "घटित अनुभव चाहे मेरा हो चाहे किसी और का उससे उत्पन्न मानवीय पीडा मेरी अपनी होती है और वही सृजन करवाती है । एक के बाद एक अनुभव होता है, पीडा फैलती गहराती है । एक अनुभव में दूसरा धुल मिल जाता है । एक पीडा दूसरी को जन्म देती है । मौजूदा सामाजिक व्यवस्था में अपने और दूसरों के प्रति हुए अन्याय के लिए जो कभी न समाप्त होनेवाला रोष है जीवन में जो मुझे गहरे छूता है, व्यथित करता है, नकाबिले बर्दाश्त होता है, उसने जो जीवन दृष्टि मुझे दी है, वही मेरी मानवीय अंतरात्मा की पूँजी है ।"[176]

मृदुला जी के इसी कथन को सार्थक करते हैं उनके उपन्यास । परंपरागत भारतीय समाज में स्त्री-पुरुष संबन्धों में स्वतंत्रता खासकर, नारी स्वातन्त्र्य का सवाल सदा ही अनदेखा किया जाता रहा है । मृदुला गर्ग का उपन्यास "उसके हिस्से की धूप" परम्परागत ही नहीं, बल्कि आधुनिकता के घिसे-पिटे वैचारिक चौखटे से भी बाहर निकलकर यह सवाल उठाता है कि स्त्री-पुरुष संबन्धों का आधार क्या है ? प्रेम अथवा स्वतंत्रता ? क्या इन संबन्धों का सत्य सिर्फ मनोगत है अथवा इनके समानान्तर कोई दैहिक सच्चाई भी है ?

मृदुला गर्ग का यह बहुचर्चित उपन्यास यद्यपि एक त्रिकोणात्मक प्रेम कथा है, लेकिन प्रेम इसकी समस्या नहीं है - समस्या है स्वतंत्रता, जो स्त्री-पुरुष दोनों केलिए समान रूप से मूल्यवान है । प्रेम अगर व्यक्ति की स्वतंत्रता और उसके वैयक्तिक विकास को बाधित करता है तो वह अस्वस्थ है । लेखिका ने इस विचार को गहराई से, जितेन, मधुकर और मनीषा जैसे पात्रों द्वारा प्रस्तुत किया है ।

कथा

बैंगलोर के सेन्ट जोसफ कोलेज में अंग्रेज़ी विभाग में सुधा सिद्दण्णा और हिन्दी विभाग में मनीषा राय काम करती है । दोनों आत्म मित्र है, और साहित्य लेखिकायें भी । सुधा कुमारी है और मनीषा की शादी जितेन से हुई है, वह बैंगलोर के बड़े बिज़िनसमान है । जितेन के हमेशा फाक्टरी, बिज़िनस आदि की सोच में रहने की वजह अपनी पत्नी के प्रति प्यार होने पर भी उसके साथ बिताने, वक्त कम ही मिलता है । मनीषा के मन में जितेन के प्रति ईर्ष्या है, वह क्यों उसके समान व्यस्त नहीं हो पाती ?

मनीषा अकेलेपन की शिकार बन जाती है । काम में व्यस्त होने के बाद रात को जब कभी जितेन घर पहुँचता तो पत्नी को सोता हुआ मिलता है । पत्नी तो अपने आपको उपेक्षित महसूस करती है । वह सोचती है जितेन को उसकी प्रतीक्षा में कभी एक क्षण भी नहीं खोना पड़ा । उसने जब भी मनीषा को चाहा है, वह उसे अविलम्ब मिल गयी है । लेकिन मनीषा का हृदय जितेन की उपेक्षा से भरा है । वह जिस तरह का प्यार चाहती है जितेन उसे नहीं दे पाता है । मनीषा अपने ही कालेज के मधुकर के साथ प्यार का आदान-प्रदान करने लगती है । अन्त में वह जितेन से संबन्ध विच्छेद कर मधुकर से विवाह कर लेती है ।

मधुकर से शादी करके अपने संकल्प के दाम्पत्य को प्राप्त कर सकती है, यह विचार भी धीरे धीरे नष्ट होने लगा । मधुकर के साथ भी कुछ समय के बाद वह ऊबने लगती है । पहले भ्रूण का तीन मास के बाद गर्भपात हो गया और डॉक्टर के अनुसार अगले शिशु की योजना दो साल केलिए स्थगित कर दी गयी । वैसे भी वह मातृत्व को खास महत्व नहीं देती थी । पहले मधुकर की जो बातें उसे अच्छी लगती थीं, बाद में वह उनसे ऊबने लगी । अचानक चार साल बाद जब नैनिताल में जितेन से मुलाकात हो जाती है तो वह फिर पुरानी यादों में खो जाती है । उसे लगता है कि जीवन में केवल जितेन ही उसे ऐसा आदमी मिला जिसने उसे इन्सान माना है । तटस्थ होकर, गुना, परखा और समझा कि यह जितेन की उदासीनता नहीं परिपक्वता है । वह रिश्तों को दूसरे पर हावी नहीं होने देता है । वह होटल में उससे मिलती है । उसके साथ रहकर अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व अनुभव करती है । जितेन के साथ होटल में उसे यौन तृप्ति भी होती है । आगे वह रचनात्मक कार्य की ओर मुड जाती है ।

मनीषा का चरित्र

उसके हिस्से की धूप की नायिका "मनीषा एक सुदृढ औरत है । उसका अलग व्यक्तित्व निखर आया है । मनीषा पढी लिखी है । अपने दाम्पत्य में एकरसता का अनुभव वह बिलकुल सहन नहीं करती । अन्य स्त्रियों के समान चुप होकर अन्तर्मुखी बनकर, सिमटकर जीना वह नहीं चाहती । उसका विचार है "जितेन समय को पके फल की तरह दोनों हाथों में थमाता और निचोड निचोडकर उसका इस्तेमाल करता है । इतना कि एक चूसी गुठली के अलावा कुछ नहीं बचता, जो वह उसे अर्पण कर देता है । कभी कभी उसके मन में ऐसी इच्छा होती है - चिल्लाकर उससे पूछे क्यों हमें कभी इकट्ठे कहीं बैठकर इधर उधर की मामूली बातें नहीं कर सकते ? क्यों हम एक-दूसरे से यूँ कटे-कटे इस आलीशान कोठी की चारदीवारों में पडे सड रहे हैं ? क्यों तुम समझ नहीं सकते कि समय

मुझे पल पल करके खाता जा रहा है।[177] " बीच बीच में जितेन उपदेश देता है - समय का इस्तेमाल करना चाहिए वर्ना वह सचमुच इन्सान को खाने लगता है। मैं तुम्हें कुछ भी करने से नहीं रोकता, कोई और नौकरी करना चाहिए तो कर लो।" वह जानती है ये सभी बातें सही और निर्विवाद हैं। इनसे उसकी बेचैनी घटने के बजाय बढ जाती है।

मनीषा स्वतंत्र अस्तित्व चाहती है। उसके अनुसार पति को पत्नी के अस्तित्व का बोध होना चाहिए। इस बोध से ही पूर्णता की प्राप्ति होगी। इसलिए मनीषा अपनी सखी सुधा से कहती है "जितेन केलिए मेरा कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है।[178] " मनीषा धीरे धीरे पति का तिरस्कार करने लगी। जहाँ उसे प्यार मिला उस ओर वह मुड गयी। वह सह कर्मचारी मधुकर की गाडी में सवारी करने लगी। और बात बढ-बढ कर उसके साथ जीवन गाडी चलाने का निश्चय कर लेती है।

प्रेम के बारेमेंउसका अपना संकल्प है। उसके अनुसार विवाह एक दूसरे को चाहकर करना है। "प्रेम साधारण से साधारण मनुष्य को भी महान बना देता है। एक दूसरे को पाने की सच्ची ललक हममे कठोर साधना करा देती है, बडे से बडा आत्मत्याग। माँ-बाप पंडित-पुरोहित ने मिल-जुलकर मंगल नक्षत्रों के तले अग्नि की साक्षी दे, दो इन्सानों के दुपट्टे बाँध दिये एक शय्या पर जीवन पर प्रेम का नाटक रचता है। असली में यह एक तरफ धोखा मात्र है।

मनीषा जीवन में विविधता चाहती है। इसलिए उसने मधुकर से कहा "विविधता में ही जीवन का आनन्द है। वह मधुकर के साथ स्वच्छन्द रूप से विहार करती है। उसके मन में गलती का एहसास बिलकुल नहीं है।

मनीषा अत्यन्त निडर निर्भीक नारी है। यह निडरता उसे भारतीय पतिव्रता पत्नी के शिकंजे से बाहर निकालती है। इसलिए वह निडर होकर सोचती है, इस तरह छिप छिपकर मिलकर अपनी आत्मा का हनन करने से ही कहीं अच्छा है, जितेन से तलाक माँग लेना और

मधुकर के साथ जीवन का पुनरारंभ करना । वह यह भी जानती है कि अपनी खुशी का बलिदान करके यदि वह उसके पास रह गयी तो इससे उसका कोई लाभ नहीं होगा । इसलिए उसने निडर होकर पति से कहा "मैं तुम से तलाक चाहती हूँ। मैं मधुकर से प्यार करती हूँ और उससे विवाह करना चाहती हूँ ।"[179] जब उसके पति ने चौंककर पूछा "यह सच है" या मज़ाक तो उसने जवाब दिया "सच मेरे जीवन का सबसे स्पष्ट और अनश्वर सच ।" वह प्रेम और आकर्षण में फर्क देखती है । इसलिए जितेन से कहती है - विवाह का अर्थ प्रेम नहीं होता और न साथ सोने का । मुझसे प्रेम करते तो इतने शान्त भाव से मुझे मधुकर की बाहों में छोड़कर मद्रास चले जाते ।"[180]

अपनी इच्छा के अनुसार काम निपटाने की ताकत उसमें है । वह पति से खुल्लम खुल्ला बताती है "तुम रोकने पर भी मैं रुकती नहीं । तुम क्या दुनिया की कोई ताकत मुझे नहीं रोक सकती । केवल चार महीनों के रिश्ते केलिए वह दो वर्ष के वैवाहिक संबन्ध को तिलांजली देती है । जितेन ने उसे जब इस बारे में अवगत कराना चाहा । जितेन से हिसाब की बात सुनकर वह कहती है "आदमी को दिन और महीने के हिसाब से नहीं जाना जाता । उसे मैं दो सप्ताह में उतना जान गयी थी, जितना तुम्हें दो वर्ष में भी नहीं जान सकी । और वह मुझे दो दिन में ही उतना जान गया था जितना तुम दो वर्षों में नहीं जाने ।"[181]

मनीषा अपने निर्णय पर टूटी रहनेवाली है । जितेन को तलाक देने का मन नहीं था लेकिन मनीषा अपने निश्चय पर अडिग रही । इसलिए वह जितेन से कहती है - तुम अगर तलाक न देना चाहो तो मत दो, हम ऐसे ही रह लेंगी । जहाँ तक बदनामी का सवाल है , वह मेरी होगी तुम्हारी नहीं, तुम्हें जो दुःख या परेशानी होगी, उस केलिए मुझे अफसोस है, पर अपना निर्णय मैं नहीं बदल सकती ।"[182]

आगे वह कहती है - मेरी तुम्हारे लिए यही प्रार्थना है कि एक न एक दिन तुम भी उस प्रेम को जान लो, जो तुम्हारी आत्मा को पोर-पोर आनन्द से परिपूर्ण कर दे, जीवन का हर क्षण सहर्ष की बूंदों से भिगा दे ।

मनीषा को पुरुष का आधिपत्य भाव जब महसूस होने लगा तब से वह अपना अस्तित्व बरकरार रखने की कोशिश करती है । अपने अस्तित्व को कायम रखने केलिए वह मधुकर से भी लड़ती है । मधुकर द्वारा खींची गयी लक्ष्मण रेखा को लांघने में सफल भी निकलती है । जितेन से तलाक मिलते ही मधुकर ने कहा चलो वह समस्या भी हल हो गयी । अब तो अगले तीन सालों में तीन बच्चे पैदा करके दुबारा परिवार नियोजन के बारे में सोचा जाये क्यों ? लेकिन मनीषा अपने जीवन को इसी तरह टुकड़े टुकड़े कर रहना नहीं चाहती । वह सोचती है - केवल माँ बनने से कुछ नहीं होता । समय को भरने का एक और साधन मिल जाता बस ।"

एक दिन जब अचानक नैनिताल में जितेन से उसकी मुलाकात हुई । मधुकर से ऊबा उसका मन बीच बीच में जितेन से मिलने केलिए तड़पता रहा । वह निडर होकर जितेन के साथ होटल में यौन तृप्ति का अनुभव भी करती है । जितेन मधुकर, फिर जितेन, ये मनीषा के जीवन में उस ज्वार के समान आये । जो जब भी आता है, समुद्र को उथल पुथल उद्वेलित मथित कर उसका रूप रंग ही बदला डालता है, पर जिसका उतरना उतना अवश्यम्भावी होता है जितना उसका चढ़ना ।

पुरुष के अहं को मनीषा सहती नहीं । पुरुष होने के नाते घर का मालिक बनकर मनमानी करने का अधिकार उसे अच्छा नहीं लगता । इसलिए वह मधुकर को भी इस ओर जाने का मौका नहीं देती । जब वह लिखने की मूड में बैठी थी तब उससे पूछे बिना दोस्तों को घर में खाने केलिए आमन्त्रित करने पर मनीषा उससे झगड़ा करती है । वह पूछती है - "आज कैसे होगा । मुझे पूछ तो लेते । इस वक्त में बिलकुल नहीं कर सकती । मधुकर पूछता है "दो दोस्तों को घर में बुलाने

केलिए तुमसे पहले से आज्ञा लेनी होगी ।

मेहमानों के बीच मधुकर ने मनीषा के लिखने का मज़ाक उठाया तो मनीषा के तन बदन में आग लग गयी । वह पुरुष के अहं पर चोट लगाने को तैयार हो गयी । किसी तरह अपने को रोककर सपाट स्वर में बोली "लिखूँगी यह सब, जो मेरे भीतर इतने दिन तक खदबदाता रहा है । लिखूँगी अपने में निहित इस व्यक्ति की कहानी, जो बिना लिखे और अपने भीतर मुझसे रखी नहीं जा सकेगी ।"[183] वह जानती है, अकेले अपने में शिशु का जन्म जीवन का लक्ष्य नहीं हो सकता पुरुष के अहं केलिए यह उतना ही आवश्यक है जितना स्त्री के । हर इनसान के भीतर, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष एक चाह बनी रहती है, निस्स्वार्थ भाव से स्नेह देकर किसी का प्रतिपालन करने की, अपने स्मृति चिह्न स्वरूप कुछ अपना ही अंश पीछे छोड जाने की । इसलिए वह प्रतिज्ञा ले लेती है - लिखूँगी शिशु को गर्भ में लेकर ही लिखूँगी एक उपन्यास और अगले दिन फिर जितेन से मिला । घर आकर मधुकर से कहा -

- "तुम मुझे लेखिका

मानो न मानो मधुकर कुछ फर्क नहीं पडता । मैं लिखूँगी, अवश्य लिखूँगी, और वह जो मुझे परितोष दे सके उससे और कोई नतीजा न भी निकले कम से कम मुझे तसल्ली तो होगी कि जो कुछ मैं कर सकती थी, मैं ने किया ।"[184]

मनीषा में नारी मुक्ति का अतिवादी रूप है । इसलिए वह जितेन को छोडकर मधुकर को और मधुकर के साथ जीने पर जितेन के साथ अपने सुख को परख करती है । नारीवाद के अतिवादी आन्दोलनकारियों ने यही "बोल्डनस" पाने का आह्वान नारी को दिया है । मनीषा को मालूम हो गया कि आधुनिक से आधुनिक विचारोंवाले पुरुष भी इन्सान को रिश्तों से आँकता है, विशेषकर स्त्रियों को । वह बेटी है, वह बहिन है, वह पत्नी है, वह प्रेयसी है, मेरी तेरी उसकी । बेटी

बहन-पत्नी-प्रेयसी होने का अर्थ ही है किसी का होना । पर क्या यही स्त्री का पूरा परिचय है ? वह सोचती है नारी स्वयं अपने में कुछ भी नहीं है ? उसकी सारी कोशिशें कुछ होने और हासिल करने की दिशा की ओर अग्रसर हैं ।

सुधा

मनीषा के कॉलेज के अंग्रेज़ी विभाग की अध्यापिका है । उसका अपना अलग व्यक्तित्व है । वह हमेशा मस्ती में रहती है । हमेशा मस्ती से झूमती सुधा से मनीषा पूछती है "तू हर दम हँसती कैसी रहती है । सुधा ने जवाब दिया "बात यह है कि मेरा "पतित्व" करनेवाला कोई नहीं है । इसलिए जब मैं बेकार की बात करती हूँ तो कोई मुझे झेलकर काम की बात की ओर नहीं ले जाता । और जब मैं हँसना चाहती हूँ तो यह सोचकर गम्भीर नहीं बनी रहती कि उससे मेरा पति यह अनुमान न लगा बैठे कि मैं आवश्यकता से अधिक प्रसन्न हूँ ।"

सुधा का जीवन दर्शन एक अलग किस्म का है । वह अति आधुनिका बनकर जीना चाहती है । लेकिन अपने जीवन प्यार में फँसाकर प्यार केलिए मिटना बेवकूफी समझती है । उसके अनुसार जीवन में सब अनुभवों से एक बार गुज़रना अनिवार्य है । वह मनीषा से कहती है - जीवन में कम से कम एक बार प्रेम अवश्य करना चाहिए । वैसे ही जैसे जीवन में कम से कम एक बार भूकम्प से होकर अवश्य गुज़रना चाहिए, एक बार ऊँचे पहाड की दुर्गम चोटी पर अवश्य चढना चाहिए । मेरा मतलब यह सब महत्वपूर्ण अनुभव है, जो हो सकते तो प्रत्येक मनुष्य को
185
प्राप्त कर लेना चाहिए बस ।"

सुधा सब पुरुषों से एक सा बर्ताव करती है । वह पुरुष से मित्रता बढाने में कोई खतरा नहीं देखती । वह प्रेम को कोई महत्वपूर्ण वस्तु नहीं मानती । उसे मालूम है प्रेम स्त्री को बहकाने का पुरुष का मंत्र है । इसलिए वह मनीषा से कहती है "प्रेम क्षणिक वस्तु है, जब कुछ

जाता है तो विवाहित जीवन ऐसा ही होता ।" वह प्यार का कोई स्वतंत्र अस्तित्व मानती नहीं । वह मनीषा से पूछती है "तू तो ऐसा कह रही है जैसे प्यार का कोई स्वतंत्र अस्तित्व हो । उसके अनुसार किसी से प्यार करने का मतलब यह नहीं है कि उससे शादी करना है । उसके अनुसार शादी और प्रेम अलग अलग है । वह कभी भी प्रेमी से शादी नहीं करेगी ।

सुधा में नारी मुक्ति का एक अलग भाव नज़र आता है । वह ज्यादा राडिकल तो नहीं है लेकिन कुछ हद तक राडिकल भाव उसमें है । वह पुरुषके सेवा भाव को पसंद नहीं करती । प्यार करना, नारी का हक है, लेकिन प्यार के लिए मर मिटना बेवकूफी है । यह नारी मुक्ति के राडिकल फेमिनिस्टों का आदर्श है । पुरुष के हसबेण्ड करने-वाले भाव से छुटकारा पाने केलिए कुँआरी रहना वह पसंद करती है । उसके अनुसार यदि जिंदगी में "पतिव्रत" करने केलिए कोई नहीं होगा तो जीवन में हँसी खुशी रहेगी । इसलिए उसके अनुसार कुआरी रहकर जीवन के सब अनुभवों से गुज़रना अच्छा है ।

यों मृदुलाजी ने "उसके हिस्से की धूप" में व्यक्तित्व संपन्न स्वतंत्र नारी चरित्र को उकेरा है । जितेन को तलाक देना और उसके बाद मधुकर से विवाह आधुनिक सुशिक्षित नारी का सजीव उदाहरण है । अपने संस्कारों की केंचुली उतार नए जीवन की शुरुआत नारी जीवन के नए मोडों का सूचक है । लेकिन मृदुला जी ने केवल तलाक तक उपन्यास को नहीं छोडा और न ही उसे जीवन की त्रासदी बनाकर छोडा है । बडी सफलतापूर्वक किसी ग्लानि के बिना मनीषा अपने जीवन का दूसरा अध्याय जीती है । दूसरी और उसका पति जितेन उसे एक सुविधाभरी मुक्ति देकर स्वतंत्रता ही नहीं देता साथ ही जीवन में - फिर कभी भी वह चाहे तो वापस आ सकती है इस बात की भी आज़ादी देता है । लेखिका ने पति की सहनशीलता और गंभीर व्यक्तित्व को उजागर किया है । जब मनीषा अपने प्रेम की सूचना देती है तब भी जितेन का

कहना है - किसी भी स्त्री पुरुष के बीच आकर्षण का मतलब यह नहीं होता कि विवाह ही करे । आकर्षण ऐसी चीज़ है जो वक्त के साथ टिकता नहीं । इतना सहृदय पति जो पत्नी को केवल धरोहर न मानकर एक जीता जागता मानव समझता है । ऐसा चित्र खींचकर यह संदेश लेखिका ने पाठकों को दिया है, और नारी जाति का "फेवर" किया है ।

मृदुला जी अपने उपन्यासों में कदाचित एक सशक्त विचारधारा प्रस्तुत करना चाहती है कि नारी केलिए भी विवाह संस्था कोई "शोपीस" की तरह दिखावटी नहीं होती और आपसी संबन्धों में आई दरार बाह्य स्तर पर विस्फोट होने की अपेक्षा आंतरिक स्तर को उद्वेलित करती है । आधुनिक नारी इस विस्फोट से अपना बचाव चाहती है । सब कुछ होने पर भी आधुनिक नारी अपनी निजता खोजती है । इस खोज में आवश्यक नहीं कि कोई बेहतर-जीवन उसे मिले । आज नारी अपने को किसी भी रूप में पराश्रित नहीं समझती । वह आर्थिक रूप से भी पूर्णतः आत्मनिर्भर बनना चाहती है ।

मृदुला जी अपने उपन्यासों में स्त्री-पुरुष संबन्धों का जिक्र करती हैं तो उनके सामने अनैतिकता का प्रश्न नहीं उठता । उनके उपन्यासों में चित्रित नारी केवल सहनशीलता की मूर्ति नहीं है । उसमें इतनी शक्ति है कि वह अपने संग अपनी अनुभूतियों का स्वतंत्र रूप से प्रस्तुतीकरण कर सके । मनीषा कहीं भी अपने प्यार को छिपाती नहीं है ।

मनीषा और सुधा की निर्भीक उद्घोषणाएं यही सिद्ध करती हैं कि नारी सिकुड़कर अपने व्यक्तित्व का हनन नहीं होने देगी और समाज का डटकर ज़रूर मुकाबला करेगी । "अरेनजड मैरिज के कांट्रैक्ट को तोड लव मैरिज करना कोई पाप नहीं है । दूसरी तरफ तलाकशुदा नारियों को मनीषा का साहस भरी जिन्दगी स्वयं निर्णय लेने का उज्वल नमूना है । अक्सर ऐसे मौके पर नारी पति-पिता-पुत्र की इच्छा की दासी बनकर रह जाती है। पर मनीषा ने आत्म-निर्भर स्वतंत्र नारी जैसा

जीवन जीकर नारी के मनोबल को ऊँचा उठाया है ।

मृदुला गर्ग जहाँ नारी पात्रों का मनोविश्लेषण करती है उन्हें आधुनिक परिप्रेक्ष्य में "वुमेन लिब" का माइन बनाती है, वहाँ पुरुष पात्रों के साथ भी पूरा न्याय करती हैं। उन्हें कहीं भी नारी की राह का रोडा नहीं समझती । उसके हिस्से की धूप के पात्र जितेन और मधुकर इसके प्रमाण हैं । उनके नारी पात्र को मातृत्व की तडप नहीं है । मातृत्व की चाह के प्रश्न का स्त्री-पुरुष दोनों से संबन्ध है, इसका उल्लेख भी लेखिका ने अपने उपन्यासों में बडी ईमानदारी से किया है ।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मृदुला जी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से स्त्री-पुरुष संबन्धों को केन्द्रबिन्दु बनाकर समाज की एक ज्वलंत समस्या को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है । उन्होंने पुरुष द्वारा नारी पर अत्याचार जैसे परंपरागत विषय न लेकर नारी की नूतन समस्याओं एवं संघर्षों का चित्रण किया है, जो वर्तमान युग में व्याप्त नारी मुक्ति अन्दोलनों के प्रभाव का परिणाम है । यह आज की नारी समूह की माँग भी है । नारी को नूतन नमूनों के जरिए मुक्ति का रास्ता दिखाने में मृदुला जी के उपन्यास सफल निकले हैं ।

टिप्पणियाँ

1. आजकल - सितंबर 1984 - डॉ. वन्दना शुक्ल
2. हिन्दी के लघु उपन्यास - डा. घनश्याम मधुप, पृ. 10
3. साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास - डॉ. पारुकान्त देसाई, पृ. 38
4. हम हशमत - कृष्णा सोबती, पृ. 359
5. औरों के बहाने - राजेन्द्र यादव, पृ. 39
6. डार से बिछुडी, पृ. 35
7. वही, पृ. 39
8. वही, पृ. 65
9. वही, पृ. 40

10. औरों के बहाने, - राजेन्द्र यादव, पृ.40
11. हिन्दी कहानी में जीवन मूल्य - रमेशचन्द्र लावनिया, पृ.244
12. मित्रो मरजानी, पृ.19
13. वही, पृ.12
14. वही, पृ.15
15. वही, पृ.18
16. वही, पृ.18
17. वही, पृ.19
18. वही, पृ.64
19. वही, पृ.79
20. औरों के बहाने, - राजेन्द्र यादव, पृ.20
21. मित्रो मर जानी, पृ.88
22. वही, पृ.88
23. वही, पृ.89
24. वही, पृ.90
25. वही, पृ.45
26. सामाजिक उपन्यास और नारी मनोविज्ञान, पृ.84
- डॉ. शंकर प्रसाद
27. सूरज मुखी अँधेरे के, पृ.57
28. वही, पृ.57
29. वही, पृ.65
30. वही, पृ.67
31. साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास - डॉ.पारूकान्त देसाई, पृ.58
32. सूरज मुखी अँधेरे के, पृ.88
33. वही, पृ.125
34. हिन्दी उपन्यास में रूढ़ी मुक्त नारी - डॉ.राजारानी शर्मा,
पृ.304
35. नई कहानी की भूमिका - कमलेश्वर, पृ.19
36. औरों के बहाने, पृ.40

37. मानुषी - बेट्टी लेकी, मई-जून, 1979

38. आजकल - कृष्णा सोबती, सितम्बर 1984

39. साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में नारी - डॉ. किरणबाला अरोडा, पृ. 24

40. पचपन खम्भे लाल दीवारें - उषा प्रियंवदा, पृ. 54

41. वही, पृ. 55

42. वही, पृ. 8

43. वही, पृ. 89

44. वही, पृ. 102

45. वही, पृ. 44

46. वही, पृ. 109

47. वही, पृ. 61

48. वही, पृ. 62

49. वही, पृ. 27

50. वही, पृ. 114

51. वही, पृ. 119

52. वही, पृ. 52

53. वही, पृ. 120

54. रुकोगी नहीं राधिका - उषा प्रियंवदा, पृ. 10

55. वही, पृ. 49

56. वही, पृ. 35

57. वही, पृ. 35

58. वही, पृ. 35

59. वही, पृ. 82

60. वही, पृ. 82

61. वही, पृ. 62

62. वही, पृ. 45

63. वही, पृ. 48

64. वही, पृ. 51

65. रूकोगी नहीं राधिका - उषा प्रियंवदा, पृ.52
66. वही, पृ.84
67. वही, पृ.136
68. वही, पृ.66
69. वही, पृ.75
70. हिन्दी उपन्यास उपलब्धियाँ, पृ.125-128 लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
71. हिन्दी लघु उपन्यास - डॉ.घनश्याम मधुप, पृ.180
72. मन्नू भण्डारी की श्रेष्ठ कहानियाँ - सं.राजेन्द्र यादव
73. आपका बंटी, पृ.119
74. वही, पृ.119
75. वही, पृ.38
76. वही, पृ.40
77. वही, पृ.40
78. वही, पृ.124
79. वही, पृ.46
80. वही, पृ.47
81. वही, पृ.47
82. वही, पृ.48
83. वही, पृ.116
84. वही, पृ.116
85. वही, पृ.117
86. वही, पृ.117
87. कोहरे - दीप्ति खण्डेलवाल, पृ.15
88. वही, पृ.23
89. वही, पृ.12
90. वही, पृ.20
91. वही, पृ.20

92. कोहरे - दीप्ति खण्डेलवाल, पृ.26
93. वही, पृ.27
94. वही, पृ.95
95. वही, पृ.74
96. वही, पृ.77
97. प्रतिध्वनियाँ, दीप्ति खण्डेलवाल, पृ.37
98. वही, पृ.48
99. वही, पृ.52
100. वही, पृ.51
101. वही, पृ.53
102. वही, पृ.63
103. वही, पृ.80
104. वही, पृ.80
105. वही, पृ.82
106. वही, पृ.82
107. वही, पृ.83
108. वही, पृ.84
109. वही, पृ.84
110. हिन्दी उपन्यास में रूढ़ि मुक्त नारी, पृ.244
111. प्रतिध्वनियाँ, पृ.39
112. वही, पृ.45
113. वही, पृ.46
114. वही, पृ.46
115. वही, पृ.18
116. वही, पृ.24
117. वही, पृ.26
118. वही, पृ.27
119. वही, पृ.24
120. वही, पृ.54

121. प्रतिध्वनियाँ, पृ.60

122. वही, पृ.71

@ . वही, पृ.72

123. वही, पृ.74

124. वही, पृ.75

125. वही, पृ.78

126. वही, पृ.78

127. वही, पृ.12

128. वही, पृ.12

129. वह तीसरा - दीप्ति खण्डेलवाल, पृ.17

130. वही, पृ.17

131. वही, पृ.19

132. वही, पृ.20

133. वही, पृ.22

134. वही, पृ.26

135. वही, पृ.29

136. बातें, पृ.25

137. वही, पृ.27

138. वही, पृ.29

139. वही, पृ.30

140. वही, पृ.63

141. वही, पृ.144

142. वही, पृ.145

143. वही, पृ.145

144. वही, पृ.146

145. वही, पृ.146

146. बातें, पृ.148
147. परछाइयाँ के पीछे, पृ.16
148. वही, पृ.9
149. वही, पृ.4
150. वही, पृ.47
151. वही, पृ.48
152. वही, पृ.104
153. वही, पृ.79
154. वही, पृ.82
155. कहानी की संवेदनशीलता : सिद्धांत और प्रयोग -
डॉ. भगवानदास वर्मा, पृ.202
156. कुमारिकाएँ - कृष्णा अग्निहोत्री, पृ.11
157. वही, पृ.12
158. वही, पृ.11 - 12
159. वही, पृ.12
160. कुमारिकाएँ, पृ.15
161. वही, पृ.16
162. वही, पृ.17
163. वही, पृ.23
164. वही, पृ.93
165. वही, पृ.133
166. वही, पृ.135
167. वही, पृ.135
168. वही, पृ.179
169. वही, पृ.179
170. वही, पृ.180

171. कुमारिकाएँ, पृ.180
172. उसका घर, पृ.5
173. वही, पृ.6
174. वही, पृ.105
175. वही, पृ.81
176. मैं और मैं - आमुख में
177. उसके हिस्से की धूप, पृ.61
178. वही, पृ.88
179. वही, पृ.94
180. वही, पृ.125
181. वही, पृ.125
182. वही, पृ.125
183. वही, पृ.133
184. वही, पृ.147
185. वही, पृ.90

पाँचवाँ अध्याय

समकालीन उपन्यासों का अध्ययन

पाँचवाँ अध्याय

समकालीन उपन्यासों का अध्ययन

इस अध्याय में सन् अस्सी के बाद प्रकाशित उपन्यासों को सम्मिलित किया गया है । समकालीन महिला उपन्यासकारों ने नारी वाद के विभिन्न पहलुओं में किसी न किसी को आत्मसात किया है । नयी रचना धर्मिता का निर्वाह करनेवाली लेखिकाओं का लक्ष्य शाश्वत मूल्यों के प्रति आस्था को खण्डित करना ही नहीं बल्कि उन्हें अस्वीकार करके समय सापेक्ष तथा मानवोचित नये मूल्यों के सृजन में अपना महत्वपूर्ण सहयोग देना भी है । आधुनिक लेखिकाएँ इस प्रयत्न में लगी रही हैं कि भारतीय स्त्री के मानस में गहराई तक पैठ चुकी भाग्यवादिता और रूढिवादिता की भावना को खत्म करे ।

नये दौर की लेखिकाओं में कृष्णा सोबती, चित्रामुद्गल, सुधा, शशिप्रभा शास्त्री, उषा प्रियंवदा, मृता शुक्ल आदि बोल्ड बनकर नारी संबन्धी बातें व्यक्त करती हैं और उनके पात्र बोल्डनस के कारण ज्यादा राडिक्कल या अतिवादी हैं । युगों से अपने उलझे जीवन प्रश्नों के उत्तर खोजती हुई नारी आज पुरुष-प्रधान समाज में अपनी हैसियत साबित करने केलिए लड़ती रही है और उसे हासिल भी करती आयी है ।

उषा प्रियंवदा

शेषयात्रा

प्रवासी भारतीयों की समस्याओं पर लिखनेवाली उषाप्रियंवदा का अनमोल उपन्यास है "शेषयात्रा" । इसमें नारी जीवन को प्रमुखता दी गयी है और यह आधुनिक नारी के दु:खद परिवेश का जीवन्त परिचायक भी है ।

भारत की एक साधारण युवति प्रवासी नवयुवक, प्रसिद्ध कार्डियोलजिस्ट डॉ॰प्रणवकुमार के विवाह के प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार करती है । विवाह के पश्चात् पति से वरदान के रूप में प्राप्त वैवाहिक सुख सुविधाओं एवं विदेशी ठाठ-बाट के कारण वह अपनी ननिहाल को भी भूल जाती है । किन्तु अचानक प्रणव पर पाश्चात्य संस्कृति का गहरा प्रभाव पड़ता है । इसलिए वह शादी के चार वर्ष बाद अपनी पत्नी से ऊब जाता है । प्रणव के परित्याग से अनु आश्चर्य-चकित रह जाती है, वह हर हालत में प्रणव का साथ पाना चाहती है । प्रणव केलिए रोती बिलखती, तड़पती अनु, हताश होकर प्रणव के तलाक के प्रस्ताव को शान्त मन से स्वीकार कर लेती है । विदेशी समाज में भारतीय मित्रों का साथ पाकर अनु अपने एकाकीपन को भूल जाती है । अपनी सखी दिव्या की आत्मीयता और व्यवहार की वजह वह अपने आपको संतुलित रखने में समर्थ हो जाती है । धीरे धीरे परिस्थितियों का सामना करती हुई अथक परिश्रम से वह डाक्टर बन जाती है । अन्तत: दीपांकर को जीवन साथी के रूप में पाकर वह पुन: खिल उठती है ।

अनु का चरित्र

अनु भोली-भाली भारतीय कन्या है । पढ़ते समय में ही वह डॉ॰ प्रणवकुमार की परिणीता बनकर अमेरिका जाती है । पलक झपते ही उसका सबकुछ बदल गया - घर-परिवेश, रहन-सहन, खान-पान । अनु ने बड़ी मुश्किल से अपने को संभाला और प्रणव की आकांक्षाओं व

रुचियों के अनुसार ढाल लिया । लेकिन शीघ्र ही उसे लगने लगा कि वहाँ वह अकेली है । दोनों का जीवन एक अजनबी सी बासी पार्सल की तरह है । अमेरिकी सभ्यता से हैरान होनेवाली अनु से प्रणव ने कहा मैं नंबर वन रहना चाहता हूँ, हमेशा, घर, गाडी, प्रैक्टिस हर चीज़ में सबसे ऊपर तुम्हें मेरे साथ रहना होगा । पति की बात सुनकर उसने मन ही मन निश्चय कर लिया कि वह भी नंबर वन बनेगी, प्रणव की हर ख्वाहिश पूरी करेगी, सब कुछ सीखेगी । प्रणव ने एक बार सलाह भी दी थी कि किसी को मीठी बातों से फुसलाकर, किसी को ड्रिंक पिलाकर, किसीको विनम्रता से, किसी को रूप की चकाचौंध से हासिल कर सकता है ।

अनु को धीरे धीरे अमेरिकी सभ्यता का पता चला । हर काफी-पार्टी, हर लंच और हर डिनर में मिसेज़ कुमार निमंत्रित होती है । इस प्रकार के सभी सम्मेलन से उसे मालूम हो गया कि यहाँ बडे बडे लोग भी टीनेजर की तरह है । प्रणव के साथ रहकर उसकी लंबी लंबी चुप्पियाँ और उसका अनमनापन, उसका बात बेबात पर गरम हो जाना आदि से अनु को लगा कि कहीं कुछ गडबडी है । जिंदगी की जो गाडी आराम से पटरी पर जा रही थी, जैसे अब लडखडाने लगी है । अचानक एक दिन प्रणव से सुना कुछ चेंज होना चाहिए, नहीं तो जी भर जाता है ।" प्रणव ने डाक्टरी छोडकर फिल्मों डायरक्टर बनने का निश्चय किया । यों शादी के साढे चार साल बाद दोनों के बीच झगडा शुरू हो गया। अंत में प्रणव ने उससे कहा मैं चाहता हूँ कि तुम मुझपर इतनी निर्भर न रहो । मुझसे अलग अपना व्यक्तित्व बनाओ । आत्मनिर्भर बनो ····· छोड दो मुझे ।"[2]

अनु पहले सहमी, डरी औरत दिखाई देती है । लेकिन जीवन की सच्चाई का जब सामना करना पडा तो वह अपने आपसे साक्षात्कार पाना चाहती है । रोज रोज अपनी सहेलियों द्वारा दी गयी यह पाश्चात्य फिलोसफी पहले उससे निगली नहीं जाती । लेकिन बाद में वह सोचने लगी, पाश्चात्य फिलोसफी के अनुरूप अपने को ढलने केलिए उसे

अनु का नाम की इस औरत को पूरा-पूरा उघाड़कर देखना होगा । अपने बारे में वह सोचती रही क्या किया जाए, इस अनु का नाम की औरत की जिंदगी एक बेबुनियाद इमारत की तरह उसके अपने पैरों के पास ढही पड़ी है । जिसकी पूर्णता, जिसका पत्नीत्व, स्त्रीत्व, सब कुछ नकार दिया गया है, जिसकी पूरी "आइडेंटिटी" पूरा अनुपन एकदम झकझोर दिया गया है, लहरों ने उसे कूड़े की तरह रेत पर लाकर पटक दिया है और अनेक आवाज़ें उसे चिढ़ा-चिढ़ाकर कहती रही हैं - तुम कुछ नहीं हो, तुम कुछ नहीं हो ।"[3]

अनु पलायनवादी नहीं है । निडर होकर वह जीवन का सामना करना चाहती है । इसलिए ठगी गई अनु जीवन से पलायन करना नहीं चाहती । अनु ने निश्चय कर लिया मैं आत्महत्या नहीं करूँगी । टूट बिखरकर भी जोड़ने की कोशिश करूँगी, स्वयं को, क्योंकि दलित आश्रित रहना ही नारी जीवन का यथार्थ नहीं है, यथार्थ है उसकी निजता और स्वावलंबन । इसलिए वह जागृत हो उठी - "नई आँखों से सब कुछ देखना होगा ? सब कुछ का मतलब है सभी कुछ । अंदर, बाहर अपने को दूसरे को प्रणव को । विशेष तौर पर प्रणव को ।"[3]

उसके अनुसार आदमी का चेहरा कड़ा है, वह औरत की तरफ पीठ करके बाहर देखने लगता है । नारी जीवन में झर-झर आँसु की कमी नहीं है । वह खुद सोचने लगी "मैं ने क्या कसूर किया है ? चोरी की ? झूठ बोला ? क्या मैं दुश्चरित्र हूँ ?" इसलिए अब सब कुछ सच्चाई से देखने समझने का निश्चय करके उसने आगे बढ़ने का निश्चय कर लिया।

अनु जीवन में प्यार को सबसे ज्यादा महत्व देती है । जब अपने इस प्यार में बाधा डालने केलिए प्रणव उत्सुक हो गया तो वह देवी से दानवी बन गयी । जब प्रणव ने अनु से कहा "हमारे संबन्ध खत्म हो गए हैं । मैं ने अपना रास्ता चुन लिया है, मैं चाहता हूँ कि तुम भी अपनी जिंदगी अपने आप गढ़ो । अपने-आप सेओ ।" यह सुनते ही वह बोल

उठी - "संबन्धों का मरना जीना आपने पहले क्यों नहीं सोचा ? मैं गई थी आपके पैरों पड़ने कि मुझसे शादी करो ? आपने ही मुझे टहनी पर से चुन लिया, अब कहते हो कि संबंध खत्म हो गया।"[4]

प्रणव ने उससे कहा दोनों का एक साथ रहना असंभव है और वह "फ्री" होना चाहता है। तो फिर अनु ने प्रश्न किया "मैं आपकी पत्नी नहीं हूं ? जिन्दगी भर निभाने का वचन नहीं दिया था।" प्रणव चन्द्रिका नाम की बदचलन औरत केलिए उसे छोड़ता है यह सत्य जान कर अनु प्रणव पर जा गिरी। उसकी बंधी मुट्ठियाँ प्रणव के चेहरे कंधों और सीने पर गोली की तरह टकराकर बरसने लगीं। प्रणव ने अपने को बचाया नहीं झेलता रहा। वह पति परमेश्वर पर बरस पड़ती है "तुम? तुम खुद बदचलन हो गुंडे, हो, आवारा हो, तभी तो रंडियों से फंसे हुए हो .... थू .... तुम पर।"[5] और पति जब उसे पागल पुकारता है तो अनु प्रणव की बाँहों में दाँत गड़ा देती है।

प्रणव ने उसे पागल कहकर अस्पताल में भरती करायी। कुछ दिन बाद डॉ॰ गुड्मैन ने उसे समझाया कि उसका पति उससे अलग होना चाहता है। उसकेलिए यह मैरिज बहुत पहले ही मर चुकी है, केवल एक वैधानिक बंधन बचा है। जो आदमी तुम्हें पत्नी रूप में नहीं चाहता, उसे जकड़े रहने फायदा क्या ?" डाक्टर से यह सुनने पर वह सोचने लगी - पेड पौधे मरते हैं, जीव जंतु भी, आदमी औरतें भी कहीं मैरिज भी मरा करती है, खास तौर से हिन्दुस्थानी मैरिज। डा॰ गुड्मैन उससे पूछतें है, क्या हिन्दुस्थान में तलाक नहीं होते ? क्या वहाँ आदमी औरतों की शादी के बाहर प्रेम संबन्ध नहीं होते ? क्या वहाँ अवैध बच्चे पैदा नहीं होते ? आदमी का स्वभाव वही रहता है, चाहे पूरब हो या पश्चिम।"

अनु, डॉ॰ गुड्मैन के भाषण से चिड़चिड़ा उठती हैं और कहती भी है "आप समझ नहीं सकते। लेकिन डॉ॰ के अनुसार वह प्यार कैसा है ? स्वार्थी, बिना आत्माभिमान के जो ठुकराए उसी के पैर पकड़ती रहो ? यही सिखाती है तुम्हारी सभ्यता ? मैं मानने को तैयार नहीं हूं।

अनु कहती है हमारी सोसाइटी औरतों को यही सिखाती है । लेकिन डॉ० ने उसे समझाया - पर तुम उस सोसाइटी में नहीं रही हो पश्चिम में हो, यहाँ तुम स्वतंत्र आत्मनिर्भर, मुक्त होकर रह सकती हो ।"[7]

अनु के दिमाग में हमेशा प्रणव की बेवफाइयों के साँप डसते रहते हैं । उसके अनुसार चेहरों में एक चेहरा उससे अलग कुछ भी नहीं है । डिग्री का मतलब है पैसा, पैसों का मतलब है ताकत । उसमें पसंद आ जाने पर किसी लड़की को शाख से तोड़कर हाथ में लेने की शक्ति है । पुरुष की इस शक्ति के आगे अनु बेबस है ।"[8] लेकिन आगे की यात्रा में वह सतर्क रहती है । कहीं से सहायता स्वीकारना उसे पसंद नहीं है । डॉ० साहा उसे स्वीकार करने केलिए उत्सुक है । यों ईडी के कहने पर अनु चुपचाप अस्पताल से चली जाती है । फिर वह अपनी पुरानी सहेली दिव्या के पास आती है ।

पचीस हज़ार डोलर लेकर भारत लौटने की सलाह प्रणव ने उसको दी थी । लेकिन दस वर्षों के बाद भोली भाली गुड़िया जैसी अनु आत्मविश्वासी संतुलित लापरवाही सी सादगी में भरपूर एक पूर्ण युवती के रूप में तबदील हो जाती है । वह टूटी नहीं । डाक्टरी पोशाक में बोस्टन के कान्सर सेंटर में मिली अनु प्रणव केलिए एक आश्चर्य थी । दोनों के बीच के मौन तोड़ने केलिए प्रणव ने कुछ पीने केलिए माँगा तो अनु ने कहा "उसकेलिए बाहर जाने की ज़रूरत नहीं है । अपने झोले में से जॉनी वॉकर व्हिस्की की एक बोतल निकालकर सामने की मेज़ पर रख दी । गिलास उठाकर प्रणव को थमा दिया दूसरा गिलास उसने उठा लिया और कहा पुनर्मिलन पर ।"[9]

डॉ० बनने का खर्च कैसे मिला ? प्रणव के प्रश्न पर अनु का जवाब है - "किसी न किसी तरह, पेट के बल रेंगते हुए सैनिक की तरह मैं ने यह पुल पार कर ही लिया ।" प्रणव कहता है "कभी कभी तुम्हें लेकर बहुत फिकर होती थी ... तुमने भी तो खोज खबर नहीं ली ।" अनु का जवाब है, "मैं क्यों लेती ? जानती थी कि आपने अपना सुख

अपने आप खोज ही लिया होगा - एक अकेली औरत वह भी अगर जवान हो और बदसूरत नहीं उसे क्या क्या झेलना पड़ता है, किस किस तरह से अपना बचाव करना पड़ता है, यह सब मुझे बहुत मुश्किल तरीके से सीखना पड़ा । अब देखिए मैं ने सुन्दरता का अभिशाप मिटा दिया है ।"[10]

अनु अपनी अस्मिता को कायम रखने में सतर्क है । उसे मालूम है कि परिस्थिति उसे न धकेलती तो आज वह परंपरागत भारतीय नारी के समान परिवेशगत जीवन बिताती रहती । अपनी तीसवीं वर्षगाँठ पर अपने को पूर्णतः बदलने केलिए हिम्मत करके बाल कटवा लिए । अनु पूरी तरह अपनी खोयी हुई जिन्दगी जीने केलिए तैयार हो जाती है । उसने डॉ॰ दीपांकर से शादी करने का निश्चय ले लिया । इतने सालों की स्वतंत्रता, अपने निर्णय अपने आप लेने की जिम्मेदारी, अपनी कमाई का पैसा बचाया या बहाए जाए, कहाँ रहे कैसे रहे, यह सब अपनी मर्जी से करने का सुख न किसी का दबाव न जवाबदेही ।"[11] यह सब कायम रखने की स्वतंत्रता के साथ वह शादी तय की गयी । "यह होगी बराबर की साझेदारी, न कोई बड़ा न छोटा, न सुपीरियर न इन्फीरियर ।"[12]

उषा प्रियवंदा की अनु वस्तुत नारी मन की समस्त कोमलताओं के बावजूद उसके जागते स्वाभिमान और कठोर जीवन संघर्ष की प्रतीक है, जिसे इस उपन्यास में गहरी आत्मीयता से उकेरा गया है । उच्च मध्य-वर्गीय प्रवासी भारतीय समाज यहाँ अपने तमाम अंतर्विरोधों, व्यामोहों और कुंठाओं के साथ मौजूद है ।

दिव्या

दिव्या, अनु की बचपन की दोस्त है । दोनों एक साथ कोलेज में पढती थी । कालेज में पढते वक्त दिव्या एक साँवली, गंभीर लड़की थी, बड़े घराने की, मोटर में आती थी । बड़े - से बँगले में रहती थी । एम.ए. करते करते उसकी शादी जल्द से ठहर गई और वह साथ-साथ आगे

पढ़ने अमेरिका चली आयी । अनु प्रणव से बिगड़ने के बाद अपनी सखी की खोज में निकली थी । जब दिव्या से उसकी मुलाकात हुई तो वह दुबली गठे बदन की युवती थी । अनु के अनुसार उसका चेहरा मोहरा नहीं बदला था, पर कुछ बदला ज़रूर था, जिस पर अनु अंगुली नहीं रख पा रही थी । क्या था वह, सिर उठाकर चलने का एक भाव, जिसमें अपने पर बहुत विश्वास सा लगता था । उसके चेहरे व आचरण का खुल्लम-खुल्लापन सहज मुस्कान, और बिना इधर-उधर किए बात करने का सीधापन । सब कुछ मिलाकर दिव्या बदल गई थी ।"[13]

दिव्या निर्भीक स्वावलंबी युवति है । अनु की कथा सुन कर वह कहती है - "किसी बात की चिंता करने की ज़रूरत नहीं । थिंग्स विल वर्क आउट इन दि ऐंड अनदर ।"[14] दिव्या अनु को स्वावलंबी बनाने का परिश्रम करती रही । इतना अन्याय सहने के बाद भी "सावित्री" जैसी आदर्श को पकड़कर प्रणव की प्रतीक्षा में बैठी अनु से दिव्या ने पूछा भी था कि तुम कब तक अपने सारे अस्तित्व को प्रणव नाम की खूंटी पर टांगी रहेगी । उसने तो तुम्हारी खबर भी नहीं ली कि कहाँ हो ? कैसी हो ? ...... बच्ची तू क्यों अपने को मिट्टी में मिला रही है । अगर उसने तेरी कद्र नहीं की तो रोने बिसरने की बजाय उसे जिंदगी से जाने दे । बाय-बाय प्रणवकुमार ।"[15]

दिव्या का जीवन दर्शन अलग है । उसके अनुसार "अक्सर हम जिंदगी को ऐसे ठिकाने पर आ खड़े होते हैं कि मालूम नहीं होता किस तरह मुड़े । इधर भी जा सकते हैं, उधर भी, हर हालत में तुम्हें अपने को थोड़ा सा बदलना होगा । तुम्हें अपने को कुछ तो ढलाना ही होगा । अपनी जिंदगी यों गढ़नी होगी कि अगर प्रणव आ जाए तो वाह, वाह, न आए तो भी ।"[16]

दिव्या के व्यक्तित्व में अन्याय के प्रति समझौता करने का भाव नहीं है, इसलिए वह अनु से कहती है "ऐसा बर्ताव मेरी प्रति जयंत करेगा तो मैं कहूँगी - जाओ जयंत, इफ ऐ आम नोट गुड इनफ फार यू, यू आर नोट गुड इनफ फोर मी ।" और मैं जयंत को दिखा दूंगी कि मैं भी कुछ हूँ, कि मैं उनपर निर्भर नहीं हूँ । मैं अपनी ज़िंदगी से हर मायने में जयंत को निकाल फेंकूँगी ।"[18]

दिव्या, अनु में सुषुप्त अवस्था में पड़ी स्त्री-शक्ति को जगाना चाहती है । इसलिए उसने अनु को समझाया कि तुम पढ़ी लिखी हो, तुम्हें अवसर मिलता तो तुम भी डाक्टर हो सकती थी । ......

अनु तुम में किसी चीज़ की कमी नहीं है । मई गुड वुमन अपने को देखो तो ज़रा ।" पुणक ने जो कहा उसे देववाक्य की तरह मत मानो । न उसे खंजर की तरह सीने में ही गडाए रखो ।" [19]

अनु के मन की भारतीय पतिव्रता स्वरूप बीच बीच में जगाने पर दिव्या पूछती है "तुम्हारा आत्मसम्मान कहाँ है अनु ?" । रस्टोरण्ट में काम करके डाक्टरी पढाई की खर्च इकट्ठा करने में दिव्या उसे रास्ता दिखाती है । और अंत में वह अपने भाई के साथ डॉ. अनु का संबन्ध भी जोडती है ।

ईडी

पगली अनु को जिस अस्पताल में भर्ती होती है वहाँ की नर्स है ईडी । जीवन के प्रताडनों से कुछ जानकारी प्राप्त समझदार नारी है वह । पुरुष मेधा समाज द्वारा नारी को दी गयी प्रवंचना से परिचित ईडी भी अनु को जीवन का सामना करने की सलाह देती है । अस्पताल में होश आने पर जब अनु चिंताग्रस्त बैठी, तब नर्स ईडी ने कहा "हमें बडा बनना चाहिए, हमें अपने पर काबू करना चाहिए ।" [17]

ईडी कभी भी पुरुष और स्त्री में फर्क नहीं मानती । पुरुष की मनमानी सहकर जीवन बिताना वह पसंद नहीं करती । उसके अहं के सामने टकराकर खुदकुशी करने में तैयार होने वाली अनु से वह कहती है आदमी जो कर सकता है वह हम औरतें भी कर सकती है । अगर आदमी इधर उधर मज़ा करता तो हम क्यों न करें । फिर तुम इतनी सुन्दर हो ।" [18]

कारिन, सूसी और होज़्लिन

ये तीनों अनु के पडोसी और आत्म मित्र हैं । जब पुणक उसे छोडकर इश्क मनाने निकल गया तो, ये सखियाँ पुणक के बिना ज़िंदगी काटने का उपदेश देती हैं । ये तीनों पुरुष के मेधा भाव को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है । इसलिए वे अनु को बताती है "अनु उठो तैयार हो । अपने को देखो संवारो, बाहर निकलो । पूरी दुनिया तुम्हारेलिए बिखरी पडी है । अभी तुम्हारी उम्र ही क्या है । अनगिनत अवसर, अभूतपूर्व संभावनाएं । उठो बच्ची, सुख आले मोड पर तुम्हारा आह्वान कर रहा है । ज़िंदगी से जूझना सीखो, कठिनाइयों को जीतो रियैलिटी का सामना करो ।" [19]

ज्योत्स्ना बन

ज्योत्स्ना बन डॉ॰ पटेल की पत्नी है । प्रवासी भारतीय महिला होने के नाते अनु और ज्योत्स्ना में अच्छी मैत्री है । डॉ॰ प्रणव के बुरे व्यवहार से वह दुःखी है । इसलिए एक दिन ज्योत्स्ना ने अनु को समझाया - "अनु तुम अपना भला-बुरा सोचो । इस लीक को क्यों पकडे बैठे हो ? अपने को गल रही हो । प्रणव तो हमेशा से ही ऐसा था । कभी किसी का होकर रहा है ? शादी से पहले भी उसके कितने संबंध रह चुके है । नई-नई नर्सें - हम लोग तो सब जानते हैं, देखते आए हैं, सोचा था तुम्हें पाकर सुधर जाएगा मगर .... ।"[20] अपने पति होने पर भी पुरुष द्वारा स्त्री को दी गयी प्रताडना के खिलाफ ज्योत्स्ना आवाज़ उठाती है । वह अनु से सतर्क होकर, पटरी बदलकर जीने की सलाह देती है । अनु के चरित्र के माध्यम से लेखिका ने नारी जीवन के यथार्थों पर प्रकाश डाला है । डरी डरी भारतीय नारी विवाह के पश्चात् कैसी बदलती है और कैसी आत्मनिर्भर बनती है, यह चित्र नारी वर्ग केलिए आशा की एक लकीर है । अनु के जीवन के दस वर्ष उसके पूरे बदलने का, उसके रहन सहन खान-पान आचार व्यवहार में नवीनता लाने के वर्ष है । दस वर्ष के बाद पूर्व पति प्रणव से पुनर्मिलन के आनन्द को वह सहर्ष उसके साथ विस्की पीकर स्वीकार करती है । लेखिका ने इधर नारी स्वतंत्रता के अतिवादी रूप का ही चित्रण किया है । पति के साथ पीने में आधुनिक नारी हिचकती नहीं । अनु के चरित्र में पाश्चात्य सभ्यता का ज़बरदस्त प्रभाव पडा है ।

पुरुष के विवाहेतर संबन्धों के कारण नारी जीवन में जो दुःख पूर्ण परिस्थिति आ जाती है उसका भी अत्यन्त स्वाभाविक वर्णन हुआ है । परित्यक्त अनु के चित्रण के द्वारा लेखिका ने यह स्पष्ट किया है कि पति से परित्यक्ता होकर भी नारी विदेशी समाज में स्वयं को व्यवस्थित कर सकती है । नारी भी पुरुष के समक्ष समाज में अपने अस्तित्व को बनाए रख सकती है । लेकिन विदेशी सभ्यता एवं

संस्कृति से प्रभावित होते हुए भी भारतीय नारी अपने व्यक्तिगत जीवन की समस्याओं का समाधान ढूँढ पाने में असमर्थ है ।

पुरुष के अहं को भ्रामक सिद्ध करती हुई नारी की जागरूकता की ओर संकेत करना भी लेखिका का उद्देश्य रहा है । वे यह बताना चाहती हैं कि आज की नारी आधुनिक शिक्षा के परिणाम स्वरूप पुरुष की कृपा दृष्टि पाने केलिए बाध्य या विवश नहीं है । पुरुष प्रधान समाज में नारी भी अपने अलग व्यक्तित्व का निर्माण कर सकती है । परित्यक्ता होने पर भी आत्मविश्वास के साथ आगे बढ़कर मंजिल तक पहुँचने की सामर्थ्य आज की नारी में है । यों नारी जीवन को एक नया आयाम प्रदान किया गया है । साथ नारी जीवनमें व्याप्त हताशा को दूर करने का प्रयास भी हुआ है ।

लेखिका यह सिद्ध करना चाहती है कि शताब्दियों से नारी के प्रति समाज का जो दृष्टिकोण रहा है, उसमें आज पर्याप्त परिवर्तन की संभावना है । आधुनिक शिक्षा एवं परिवर्तित जीवन मूल्यों के परिणाम स्वरूप नारी आज विवशता की श्रृंखला में जकडी रहना चाहती है । वह अपने जीवन में परिवर्तन का आकांक्षी है ।

पुरुष कितनी सरलता से स्त्री का त्याग कर सकता है, किन्तु स्त्री का अस्तित्व आज अपनी विशिष्टता पर निर्भर है । वह परित्यक्ता होकर रोती, कलपती, जूठन खाकर जीवन नहीं बितायेगी । आधुनिक जीवन के प्रभाव के कारण नारी आज आत्मनिर्भर हो गयी है । नारी के इस यथार्थ की ओर संकेत करती हुई लेखिका ने इस बात की पुष्टि की है कि पुरुष से विलग रहकर नारी अपना विशिष्ट अस्तित्व-निर्माण कर सकती है ।

अनु अपने जीवन की शेष यात्रा को अकेले ही तय करने का निर्णय लेती है । दीपांकर के साथ शेष जीवन बिताने केलिए वह सहर्ष स्वीकार तो करती है । लेकिन अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता को कायम रखने का प्रस्ताव रखती है । इस प्रकार प्रणव से परित्यक्त होकर अनु

अपने शेष जीवन यात्रा को नवीन मोड प्रदान करती है । वस्तुत: अनु आधुनिक नारी का प्रतिनिधित्व करती हुई नारी जीवन की सर्वागीणता की ओर संकेत करती है । दिव्या से प्रोत्साहन पाकर जीवन के प्रति सर्वथा नवीन दृष्टिकोण प्राप्त करती है ।

उपन्यास के सभी नारी पात्र अनु, दिव्या, ईडी, मीरा बन, सूजी, रोज़लिन, कारिन और पुरुष पात्र में डॉ॰ गुड्मैन और डॉ॰ पटेल सब नारी के प्रति अन्याय का खुले आम विरोध प्रकट करते हैं । अन्याय के खिलाफ आवाज़ उठाकर अपनी ज़िंदगी अपनी तरह मोडने और ढालने का उपदेश देते हैं । उषा जी की सुषमा {पचपन खम्भे लाल दीवारें} और राधिका {रुकोगी नहीं राधिका} से अधिक मज़बूत पात्र है अनु और दिव्या।

मन्नू भण्डारी

स्वामी

मन्नू भण्डारी के श्रेष्ठ उपन्यास है "स्वामी" । "स्वामी" की कथा सौदामिनी या {मिनी} को केन्द्र में रखकर आगे बढ़ती है ।

सौदामिनी पिता की मृत्यु के बाद माँ और मामा के संरक्षण में रहती है । पिता न होने के कारण माँ के मन में बेटी के प्रति डर रहता है । इसलिए परंपरानुकूल उसे जल्दी से जल्दी शादी करके अपना दायित्व निभाना वह चाहती थी । लेकिन सौदामिनी आगे पढ़ना चाहती है ।

अपने पडोसी नरेन्द्र के साथ वह बचपन से स्कूल जाया करती थी । दोनों के बीच सहज आकर्षण-विकर्षण, प्यार, आदर सब का आदान-प्रदान जारी रहा । नरेन्द्र स्कूली शिक्षा समाप्त कर उच्च शिक्षा केलिए कलकत्ता चला गया ।

सौदामिनी की पढाई की पूर्ति होते ही मामा उसका विवाह घनश्याम के साथ कराता है । मिनी बहु बनकर घनश्याम के घर पहुँचती है । धीरे धीरे उसे मालूम भी हो गया कि परिवारवाले घनश्याम की उपेक्षा करते रहते हैं । वह जान गई कि उसकी माँ उस घर में एक तिनका भर अधिकार भी किसी को नहीं देती । न चाहते हुए भी जैसे उसने जान लिया कि उसका पति इस घर का भर्ता चाहे हो कर्त्ता कतई नहीं है । पल्ले में चाबियों का बडा सा गुच्छा बाँधे अपनी उंगलियों के इशारे पर सारे घर को नचानेवाली सास ही उसकी कर्त्ता है - गृहस्वामिनी । उसकी इच्छा के बिना घर में एक पत्ता भी नहीं हिल सकता और घर का सबसे अधिक उपेक्षित और तिरस्कृत पात्र है उसका अपना पति । मिनी के मन में पहली बार अनचाहे पति के प्रति करुणा उमड कर आयी थी ।

पति के घर में दिन-व-दिन अन्याय बढता रहा । वह साहस के साथ सहती रही । लेकिन एक दिन माँ बेटे से मिनी की यही शिकायत करती है - "मैं तो पहले ही इतनी बडी बहू लाने के बिल्कुल पक्ष में नहीं थी । जो जबान कैंची की तरह चले, वह सारी गृहस्थी को तितर-बितर नहीं कर देगी ? न ... न मुझसे अब एक दिन भी बर्दाश्त नहीं होने का ।"[21]

एक दिन अचानक मिनी का प्रेमी नरेन्द्र उससे मिलने आता है और वह नरेन्द्र के साथ घर छोडकर भाग जाती है । जाते जाते उसके मन में अनेक प्रकार के विचार उठते हैं । उसे लगता है कि उसने घनश्याम के प्रति अन्याय किया है । उसे मामा का वचन याद आया कि "नरेन्द्र प्यार कर सकता है, निभा घनश्याम ही सकेगा ।" अन्त में वह प्रेमी नरेन्द्र के सामीप्य छोडकर स्टेशन से पति के पास जाने का निश्चय लेती है । प्रेमी को भेजकर पति को सच्चाई बताकर वह पति का इन्तज़ार करती है ।

दूसरे दिन उसका पति उसे वापस बुलाने आता है । इस प्रकार संबन्धों की मनोवैज्ञानिक उलझनों से अनवरत उलझती मिनी अन्त में अविश्वास से विश्वास अनास्था से आस्था और नास्तिकता से आस्तिकता की प्रक्रिया से होती हुई गन्तव्य तक पहुँच जाती है ।

सौदामिनी का चरित्र

"स्वामी का प्रमुख चरित्र है सौदामिनी । बचपन में ही वह साधारण लड़की की भाँति घर के अन्दर ही सिमटकर रहना पसन्द नहीं करती थी । उसकी माँ हमेशा इस ओर ध्यान भी देती थी । उसका विचार है कि घर में मामा के पास तरह तरह के लोग आते रहते हैं । सौदामिनी उनके साथ क्यों बैठे ? लेकिन उसका तर्क है कि वह क्यों न जाए; ज़रूर जाएगी । सोचो तो भला, यह भी बात हुई ? बड़ी हो गई इसलिए घर के अन्दर बन्द होकर बैठ जाए ।"[22]

वह पुरुष के मेधा भाव को माननेवाली नहीं है । इसलिए नरेन्द्र, मामा आदि से बहस करने में वह कोई कमी नहीं दिखाती । मिनी के अनुसार स्त्री जाति का रूढ़िग्रस्त जिन्दगी बिताना केवल उसकी मज़बूरी या विवशता है । नरेन्द्र मामा से कहता है हम बेसिकली हिप्पोक्रेटस हैं । बातें बड़ी बड़ी करेंगे समाज सुधार की, स्त्रियों की स्वतंत्रता की, पर जिन्दगी जिएंगे उसी दकियानूसी पैटर्न पर ।"[23] यह सुनकर मिनी ने जवाब दिया था यह मज़बूरी है । अनेक अन्तर्विरोधों में जीने की मज़बूरी । जीवन इतना सीधा और सपाट तो होता नहीं, नरेन दा कि गणित के दो और दो चारवाले नियम से उसे न समझ जा सके । लेकिन नरेन्द्र के अनुसार अपनी कमी को हम न जानना चाहते है, न कबूल करना चाहते हैं, बल्कि बड़ी खूबसूरत बातों से उसे जस्टीफाई करते हैं, ढकने की कोशिश करते हैं । हिप्पोक्रसी नहीं केवल अन्तर्विरोध में जीने की मज़बूरी है । लेकिन मिनी का विचार अलग है । वह कहती है - देखिये हम लोग पढ़-लिख सोच विचार कर, बौद्धिक रूप से बहुत

....

आगे बढ जाते हैं .... बहुत बडी बडी बातें सोच डालते हैं और केवल सोचते ही नहीं उन्हें करने केलिए कदम भी बढाते हैं, पर उतना सब कर नहीं पाते । सदियों पुराने संस्कार हमें पीछे खींचते हैं और यह द्वन्द्व बराबर चलता ही रहता है । कुछ संस्कारों को हम तोड पाते हैं, कुछ के आगे हम खुद टूट जाते हैं ।"[24]

सीधे सादे संदिग्धग्रस्त परिवार की लडकी सौदामिनी में नारी जागृति की स्पष्ट छाप दिखाई पडती है ।वह बचपन से ही गलत बातों का विरोध करती रही । विद्रोही व्यक्तित्वशाली विचारों वाली मिनी घर में पूरी मनमानी करती थी । नरेन्द्र से प्यार करने पर भी मामाजी की अंतिम वाणी को वह टाल नहीं सकी । इसलिए उसका विवाह घनश्याम के साथ संपन्न हुआ । ससुराल में वह अपने आपको उपेक्षित महसूस करती है । कम दहेज लाने, बडी उम्र की, पढी लिखी होने के कारण उसे ताने सुनने को मिलते थे । लेकिन भारतीय कुलवधु को कुछ कहने की अनुमति नहीं है तो भी वह कभी कभी सास से मुँह तोड जवाब देती है । ससुराल में मुँह लगाकर बातें करना भारतीय कुलवधु केलिए निषिद्ध था । पति के घर में मिले ज्यादतियाँ अन्याय और अपमान उसे परेशान करने लगी । स्वभाव से ही मुँहफट और हर छोटे बडे अन्याय का विरोध करनेवाली मिनी का मन किसी पर भी बुरी तरह बरस पडने केलिए अकुलाने लगा । उसने मन ही मन तय कर लिया कि वह एक दिन केलिए भी न अन्याय बर्दाश्त करेगी न अपमान । वह सास की कटुता भरी बातों पर न दुःखी है, न रोती है बल्कि कभी कभी उसे मुँह फट जवाब भी देती है । सास को पता लगा बूढे तोता कभी भी राम राम नहीं सीखेगा । मिनी की बात और उसके व्यवहार से हतप्रभ हो गई सास एकटक उसे देखती रही ।

अन्याय जो भी करें उससे प्रतिशोध करने का साहस सौदामिनी में है । सुहाग रात में जब उसे अकेला छोडा गया तो उसका मन एक विचित्र दहशत से भर जाता है । .... वह किसी की पत्नी बनकर

नहीं रह सकेगी, नहीं रहेगी । वह सोचती है कि "लाख देव-पुरुष हो, जो ब्याह कर लाया है वह अपना अधिकार छोड़ेगा भला ? वह उसे पकड़ेगा, उसे बाहों में लेगा । .... इस कल्पना मात्र से उसका मन घृणा से भर आया । वह देखती है कि उसका पति असली भक्त है परंतु कर्ता उसकी सास है ।

अन्याय के खिलाफ आवाज़ उठाए बिना चुप बैठना घोर अन्याय है - ऐसा वह मानती है । बीच बीच में पति उससे कहता है "हम वैष्णव है, सहन करना, क्षमा करना यह तो हमारे महाप्रभु का आदेश है । लेकिन मिनी कभी भी इससे सहमत न हुई । इसलिए वह जवाब देती है, जिसे सहन करने से सामनेवाले को अन्याय करने की पूरी छूट मिल जाए, मेरी नज़र में तो वह भी उतना बड़ा अन्याय है ।"[25] पति के अनुसार यदि सच्चे मन से अपने आपको महाप्रभु के चरणों में सौंप देता, दु:ख, क्रोध, सब हमेशा केलिए समाप्त हो जाएंगे । पर मिनी का मन न अपने को भगवान के चरणों में समर्पित करने का हो रहा है, न ही अपने पति की इस मुद्दे को बर्दाश्त कर पा रही है । ससुराल आने के बाद उसने जो जो अन्याय होता देखा है, उस सबको वह पति की आँख में अंगुली डालकर दिखा देना चाहती है ।

पति के प्रति घर वालों का अन्याय वह बर्दाश्त नहीं करती । पति के धन पर पत्नी का पूर्ण हक है । उधर पत्नी का अस्तित्व और व्यक्तित्व को उचित स्थान पाना है यह आधुनिक जागृत नारी का विचार है । सौदामिनी भी इन सब बातों से सहमति प्रकट करती है । वह घर की वास्तविक हालत पति के सामने दिखाना उचित समझती है । इधर वह सिर्फ मुक्त पत्नी बन जाती है और पति से बातें करती है - अच्छा, तुम रात दिन खटते हो, सारा घर चलाते हो, अपनी कमाई की पाई पाई माँ के हाथ में रख देते हो, फिर भी तुम्हारी आवश्यकता तुम्हारा सुख दुख देने की न किसी को ज़रूरत है, न अवकाश । पत्नी की बात सुनकर विस्मय से घनश्याम मिनी को देखने लगा और बोला -

यह सब तुम क्या कह रही हो ? साधारण घरेलू औरतों की तरह तुम भी क्या सारे दिन यही सब सोचती रही हो ? जल्दी ही वह पूछ उठी तुमसे किसने कह दिया कि "मैं कुछ विशिष्ट हूँ । अगर विशिष्ट होकर यों अपना सब कुछ छोड़ना पड़ता है तो साधारण ही अच्छी ।"[26] घरवालों के पति के प्रति दिखानेवाले उपेक्षा भाव और दिन ब दिन बढ़ते अन्याय भाव मिनी सहन कर नहीं पाती और वह इसलिए झगड़ती है । सास से खुल्लम खुल्ला वह बताती है ये किसी दफ्तर में सौ रूपल्ली की क्लर्की नहीं करते इसलिए क्या ये घर में नौकर चाकरों से भी गए बीते हैं ? लेकिन मैं भी इतना अन्याय नहीं होने दूँगी ।"[27] जब घनश्याम को मिनी के इस प्रकार के व्यवहार का पता चला तो उसने पत्नी से क्षमा मांगने की बात की । लेकिन मिनी डटकर जल्दी ही जवाब देती है "मैं अन्याय नहीं बर्दाश्त कर सकती । अन्याय करें वे और माफी मांगू मैं ? वाह रे तुम्हारे न्याय । घनश्याम एकटक सहधर्मिणी का रूप और भाव देखता रहा था । मिनी की बात से वह जैसे भीतर तक आहत हो आया है । मिनी फिर भी क्रोध भरी वाणी से बोली "यहाँ कदम कदम पर जिस तरह का अन्याय होता है, उसमें चुप रहना मेरे लिए संभव नहीं । न हो तो तुम मुझे माँ के यहाँ भेज दो ।"[28]

अंत में मिनी के चरित्र की विशिष्टता में यह भी आती है कि कुलवधु होने पर भी वह अपनी पारिवारिक परिस्थिति से ऊबकर पूर्व प्रेमी को अपने घर में स्वागत करती है । और एक दिन उसके साथ भाग जाने का निश्चय भी करती है । लेकिन स्टेशन तक आते आते मन में परिवर्तन होता है और अपने मायके चली जाती है । प्रेमी से पति को सच्चाई बताने की बात कहती है । पति जो भी करें उसे स्वीकारने में वह डरती नहीं । उसके मन में यह दृढ विश्वास था कि उसका पति उसे माफ कर देगा । एक तरफ से वह पति से विद्रोह करती है और पति से प्यार भी करती है । पति के सामने प्रेमी को छोड़कर वापस लौटने का निर्णय उसमें निहित मानवीय मूल्यों के कारण संभव हुआ है ।

वह जानती है कि पति द्वारा कमाये पैसे से सारे घरवाले ऐश आराम करते हैं । इसलिए पति की ओर लडने केलिए उसके साथ जीना अनिवार्य है । उस लडाई केलिए वह लौट जाती है जिससे उसका और पति का हक उसे हासिल करना है ।

मन्नु भण्डारी के नारी पात्र भारतीय परिवेश की उपज होने पर भी उसमें रुढि बद्ध नारी की दयनीयता नहीं मिलती । निडर, शिक्षिता और अन्याय के खिलाफ लडती नारी को प्रस्तुत करके समाज केलिए नमूना दिखाती है । शकुन, सौदामिनी फूफी सब अन्याय का घोर विरोध करनेवाली पात्र हैं ।

मन्नूजी ने एक अलग परिप्रेक्ष्य में स्त्री के व्यक्तित्व को उपस्थित किया है । वह प्रेम को लेकर भावुक नहीं है - विवाह और प्रेम को वह दो स्तरों पर रखकर देख सकती है और विवाह केलिए प्रेम का न्योछावर भी कर सकती है । परन्तु वह पुराना रास्ता नहीं है क्योंकि यहाँ नारी अपने वरण से यह निर्णय कर रही है - सामाजिक या पारिवारिक विवशता से नहीं । जिन्दगी के साझे में जीना बहुत बडी बात है और वह केवल भावुकता के आधार पर नहीं हो सकता । उसी तरह प्रणय के सिवा नारी के सामने और भी चुनौतियाँ हैं जिनसे लडना जीवन की सार्थकता एक दिशा है ।[29]

आज की नारी पुरुष की भाँति अपने अहं के प्रति जागरुक है । जहाँ वह पहले अपने अहं की हत्या करके विपरीत परिस्थितियों से समायोजन करती थी वहीं आज परिस्थितियों को अपने अनुकूल ही चाहती है । अन्यथा उस संबन्ध को एक झटके से तोडने में नहीं हिचकिचाती ।

आज की नारी का व्यक्तित्व स्वतंत्र है । नारी पुरुष को पति के रूप में ही नहीं मित्र के रूप में भी पाना चाहती है । नारी नहीं चाहती है कि वही समझौता करती फिरे और अपने अहं को हीन

भावना में बदल ले । नारी मुक्ति आन्दोलन के लिबरल, सोश्यलिस्ट और राडिकल विचारधारा में घर या समाज में नारी को समुन्नत स्थान दिलाने का विचार को दिया जाता है । मन्नूजी की शकुन ‡आप का बेंटी‡ सौदामिनी ‡स्वामी‡ दोनों स्वतंत्र निर्णय लेने की अपनी क्षमता को कायम रखती हैं । अपने अहं को मिटाना दोनों नहीं चाहतीं । अपने परिवार और पति से उपेक्षित क्रीत - दासी बनकर रहना दोनों पसंद नहीं करतीं । परिवार को तोडने या छोडने में दोनों में कोई दुःख नहीं है । दोनों भारतीय परंपरा और रूढी की लीक से अलग कर चलनेवाली आधुनिक स्वतंत्र चेतता नारी हैं । व्यक्ति स्वातन्त्र्य की चेतना आज समाज और परिवार में व्याप्त हो गई है । मनुष्य अपने वैयक्तिक जीवनमें किसी का भी हस्तक्षेप पसंद नहीं करता, चाहे वो उसके माता-पिता का ही क्यों न हो । प्रेम तथा विवाह जैसे मामले में भी खुद निर्णय को महत्त्व देता है ।[30]

मन्नूजी इस देश की नारी की मुक्ति के मार्ग में गतिरोध बने हुए संकट की ओर इशारा करती हैं, जो आज के संवेदना शून्य, स्वार्थी, उद्धत, उपभोगशील और व्यवहार में प्रवंचनापूर्ण किन्तु ऊपरी तौर पर से नारी मुक्ति की भद्रता दिखाने वाले पुरुष द्वारा उत्पन्न किया गया है। आपका बेंटी के अजय, डॉ० जोशी, "स्वामी" के घनश्याम नरेन्द्र, और मामा सब इसके उदाहरण हैं । ये सब नारी-स्वतंत्रता पर भाषण देते हैं लेकिन असलियत में बात अलग होती हैं ।

मन्नूजी एक ओर यद्यपि रूढि ग्रस्त नैतिक मानमूल्यों की आग्रह-मूलता पर प्रहार करती तो हैं, तो दूसरी तरफ वह कुछ मान मूल्यों की हिफाजत भी करना चाहती हैं, जिनके बिना भारत जैसी पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था में भारतीय स्त्री का अस्तित्व सुरक्षित नहीं रह सकता । इसलिए मन्नूजी बेहद आधुनिक और "मुक्त जियो और जीने दो" की उद्घोषणा करनेवाली सौदामिनी जैसी नारी भी, वक्त - आने पर पुरातन रूढ संकीर्णताओं के घेरे में घिर जाती है और वापस आती है ।

आधुनिक युग में स्त्री पुरुष संबन्धों को किसी परिपूर्ण इकाई के रूप में समझना मुश्किल होता जा रहा है । दोनों के व्यक्तित्व, पूर्णत्व की तलाश में खण्डित हो जा रहे हैं । "पति और पत्नी की इकाई दो अर्द्ध इकाइयों में बदल गयी है, और अब ये इकाइयाँ अपने परिवेश से जीवन के स्रोत मूल्यों और पद्धतियों को चुनकर स्वतंत्र और परिपूर्ण इकाई बन सकने की दिशा में अग्रसर है ।"[31]

आधुनिकता की इस गतिशील प्रक्रिया में समय सापेक्षता का निर्वाह करती हुई मन्नूजी ने भारतीय स्त्री को अपनी पूरी गरिमा और वास्तविक सम्मान के साथ एक मानवी इकाई मानकर, इसे सहयोगी जीवन - पद्धति की भागीदार के सही रूप में देखने और प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया है । मन्नूजी को यह जानती हैकि जब तक पुरुषों द्वारा स्त्री का व्यक्तित्व गौण रखा जायेगा, स्त्री-पुरुष समानता के उद्घोष के बावजूद भी, स्त्री की तरफ़ जब ही वह मुक्त हो सकती है और न ही नारी मुक्ति आंदोलन केलिए खुला और साफ वातावरण नसीब हो सकता है ।

वास्तव में पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था के बोझ से दबी भारतीय नारी, जो हर अर्थ में स्वतंत्र, मुक्त, सहयोगिनी जीवन पद्धति की भागीदार बनने की हिमायत करती है, आज भ्रम की स्थिति में है। और इस स्थिति विशेष का चित्रण ही, मन्नूजी की नारी चेतना की समसामयिकता एवं यथार्थता को उजागर करता है ।"[32] यद्यपि मन्नूजी एक औसत भारतीय नारी का वास्तविक चित्रण न कर सकी हों, लेकिन उन्होंने जिस विशिष्ट भारतीय नारी को प्रस्तुत किया है वह सिर्फ समसामयिकता का सही रूप है और "नयी" बनने का प्रयत्न करनेवाले नारी समाज की आकांक्षाओं की पहचान भी करता है।

चित्रा मुदगल

एक ज़मीन अपनी

चित्रा मुदगल आठवें दशक की बहुचर्चित कथाकार है । चित्राजी अपने लेखन से जहाँ एक ओर निरंतर रीतती जा रही मानवीय संवेदना को रेखांकित करते हुए लगभग निम्न वर्ग के पात्रों को, उनकी जिंदगी के समूचे दायरे में छूकर, अध्ययन करती नज़र आती है, वही दूसरी ओर नए जमाने की रफ्तार में फंसी जिंदगी की मजबूरियों के तह अपसंस्कृति की गर्त में धसते जा रहे आधुनिक मानवीय मूल्यों को स्तब्ध कर देनेवाली तस्वीर भी गहरी संवेदना से उकेरती है ।

आधुनिकता, स्वतंत्रता और समता के नाम पर तमाम संचार माध्यमों के ज़रिये पुरुष प्रधान समाज नारी को आज क्या कुछ सौंप रहा है ? यहाँ समाज के पुनर्गठन में नई ताकत के साथ जुड़ने की आकांक्षा प्रबल है या भविष्य में भी नारी को अबला बनाए रखने का षड्‌यंत्र ? कैसी है आज की संघर्षशील नारी और किधर है उसका झुकाव - पुरुष द्वारा निर्धारित मूल्यों की ओर या संघर्ष जन्य नई चेतना की ओर ? नारी संघर्ष के मूल में बसी इन्हीं दो चरम परिणितियों, विसंगतियों को उजागर कर रहा है यह उपन्यास "एक ज़मीन अपनी" ।

बीमार परंपराओं और कुत्सित मर्यादाओं को नष्ट कर नई चेतना के संवाहक के रूप में इस उपन्यास के नारी पात्र कुछ नई राहों का चुनाव करते हैं । लेकिन यह चुनाव उनका अपना चुनाव नहीं है, पुरुष प्रधान समाज का एक और प्रपंच मात्र है । अपने वजूद की तलाश में निकली आधुनिक नारी का संघर्ष आखिर उसे पराजित करता है । जीवन भर का संघर्ष नीता को अपनी बेटी तक को छोड़कर मौत की गोदी में आश्वस्थ होने का अवसर ही प्रदान करता है । हिन्दी उपन्यास लेखन में सर्वथा अछूते विषय विज्ञापन जगत की चकाचौंध भरी पृष्ठभूमि पर लिखी गयी यह कृति एक बड़ी उपलब्धि है ।

अंकिता का चरित्र

सुधांशु की पत्नी है अंकिता । वह पढ लिखकर अध्यापिका बनने और साथ ही साथ कुछ लिखने का संकल्प करती है । अपने अलग व्यक्तित्व को कायम रखने में वह हमेशा सतर्क रही । उसके पति सुधांशु को पत्नी के इस प्रकार के विचार पसंद न आये । उसका कहना है – "तुम मामूली औरत ... क्या है तुम में ? सिवा तराशी देह के ? और मैं सिर्फ तराशे शरीर के साथ नहीं रह सकता ... पुरुष को इससे आगे भी कुछ चाहिए। महज शरीर पाने केलिए उसे घर में औरत पालने की जरूरत नहीं होती ।"[33]

अंकिता को सिर्फ मामूली औरत बनकर रसोई के बर्तनों के बीच अपनी जिंदगी गुजारना पसंद नहीं है । वह सिकुड़कर पति की हर बात पर हाँ में हाँ मिलानेवाली औरत बनना नहीं चाहती । इसलिए वह कहती है – "मैं घर को जीना चाहती हूँ, बरदाश्त करना नहीं । और धर्मशाला की तख्ती आज से मेरे घर के दरवाज़े पर नहीं टँगेगी । मैं सिर्फ गृहणी नहीं हूँ .... एक स्त्री भी हूँ .... आखिर सुबह से रात के बीच कोई एक क्षण ऐसे नहीं हो सकता, जिसे मैं नितांत अपने लिए जी सकूँ ... कागज़ कलम लेकर बैठ सकूँ । जो पढना चाहती हूँ पढ सकूँ ..... लिखना चाहती हूँ लिख सकूँ ?"[34]

अंकिता पुरुष के मेधा भाव की बिलकुल परवाह नहीं करती । शादी के बाद पति-पत्नी के समान अधिकार पर वह विश्वास रखती है । पति की जो संपत्ति है उस पर उसका भी समान अधिकार है । इसलिए जब सुधांशु ने उस से कहा यह मेरा घर है और यहाँ तख्ती वह लटकेगी जैसे मैं चाहूँगा .... इसका फैसला तुम कैसे कर सकती हो ?" सुनकर वह चुप न बैठी । तुरंत जवाब दिया – "मैं ही करूँगी .... क्योंकि इस घर केलिए मैं ने अपना सब कुछ होम कर दिया है .... मुझे हक है यह फैसला करने का ।"[35]

आम नारी की तरह औलाद के प्रति या गृहस्थी के प्रति उसके मन में कोई विशेष आकर्षण नहीं है। ये दोनों अगर हैं तो ठीक-ठाक होना है । उसे पराजित करने केलिए सुधांशु ने कहा था अच्छा हुआ जो हमारा बच्चा जीवित नहीं रहा, नहीं तो वा उम्र वह मुझे तुमसे जोडे रहता ..... कुरेदता रहता कि तुम मेरे बच्चे की माँ हो मेरे पहले बच्चे की । यह सुनकर निडर निर्भीक नारी की तरह वह गरज उठी - मेरे लिए भी उसका मरना मेरी जिन्दगी से तुम्हारा निष्कासन है .... वरना उसकी शकल में जिंदगी भर मुझे तुमको ढोना पडता है । क्योंकि वह हमारा बच्चा नहीं था ..... तुम्हारी कामुकता का परिणाम था मुझे तुझसे घृणा है घृणा ... तुम्हारी ऐयाशियों और ज्यादतियों को सती-सात्वी बनी माँग में सजाए इस मुगालते में रहना कि मैं स्त्रीत्व की पूर्णता का भ्रम जीती रहूँगी .... लो इसी वक्त यह रिस्ता खत्म ।"[36] इतना कहकर अंकिता ने अपनी कलाई की चूडियाँ झन्न से फर्श पर उछाल दी थीं और पैरों के बिछुए लोढे से कुचल दिए थे ।

औरत की स्वतंत्रता केलिए वह लडती है । अपने "स्व" का नष्ट होनेवाली कोई भी वृत्ति किसी से भी वह सहने केलिए तैयार नहीं है । जब सुधांशु ने क्रोध में उसकी कविता की कॉपी चिथडे चिथडे कूडे दान में फेंक दी थी तो, उसे लगा यह कविता नहीं उसके "स्व" को चिंदी, चिंदी कर कूडेदान में फेंक दिया गया है । उसे मालूम हो गया कि औरत की स्वतंत्रता उसकी सबसे बडी दुश्मन है, दुश्चरित्रता का प्रमाण पत्र ।

अंकिता को स्त्री शरीर का प्रदर्शन करके लाभ लेनेवाले विज्ञापनदाताओं और उद्योगपति से मुकाबला करने का दिल है । वह जानती है कि इस अजनबी संसार में कूटनीति और जोड-तोड इस उद्योग की शिराओं में बहती हैं । झपटो, मारो, खाओ इसका स्वभाव हो गया है । इन्हीं दुर्बलताओं का लाभ उठाकर स्त्री को वस्तु समझने वाले सक्सेना जैसे कामुक कुटिल खाते एजेन्सियों को अपनी उंगलियों पर

नचाना है । जब तक इनके एकाधिपत्य को छिन्न भिन्न नहीं किया जाएगा, शोषण चक्र से स्त्री की मुक्ति संभव नहीं है । वह कहती है - मेरा वश चले तो मैं इन उद्योगपतियों पर मुकदमा दायर कर दूं और सभी को बरसों जेलों में सड़ने केलिए डलवा दूं" ।

अंकिता यह नहीं मानती कि स्त्री का असली शत्रु स्त्री है और उसकी लड़ाई भी स्त्री से होनी चाहिए । इसलिए जब तिलक ने उससे कहा "स्त्री-स्वातंत्र्य की आड में स्त्री व्यर्थ ही पुरुष वर्ग को शोषक बनाकर "मारो, मारो" का हल्ला मचा रही है ... स्त्री की वास्तविक लड़ाई स्त्री से है .... उसकी असली शत्रु । कहीं वह सास बनकर शोषण कर रही है तो कहीं माँ बनकर चौकीदारी तो कहीं ननद बनकर जासूसी तो कहीं प्रेमिका बनकर सीनाज़ोरी । .... आंदोलन करना है तो स्त्री को, स्त्री की संकीर्णताओं और क्षुद्रताओं के विरुद्ध करना चाहिए । उसकी सामाजिक स्थिति में तभी परिवर्तन आ सकता है । लेकिन अंकिता इससे सहमत न हुई । उसका कहना है उस केलिए स्त्री नहीं व्यवस्था दोषी है, जो उसे समाज ने दी है और व्यवस्था को बनाया पुरुषों ने ही ।"[38]

अंकिता यह मानती है कि स्त्री भी क्या किसी भी व्यक्ति को हम एक कमरे में सालों साल बंद रखिए, मात्र उसे खाना - पानी देते रहिए । खुली हवा-पानी प्रकृति से वंचित वह व्यक्ति एक रोज़ निश्चित ही असंतुलित हो उठेगा ..... उसकी संवेदना नष्ट हो जाएगी । उसकी निर्णय की क्षमता कम हो जाएगी । उसकी पूरी दुनिया सिमटकर उस कमरे तक सीमित हो उठेगी ... वही हाल स्त्री का हुआ है । उसे सदियों से एक कमरे में बंद रखा गया है .... अब जब नाम मात्र के दरवाज़े, खिड़कियाँ खोली जा रही हैं । इसलिए उससे एकदम कैसे उम्मीद कर सकते हैं कि वह अपनी दुनिया कमरे की हदें तोड वहाँ तक विस्तृत कर ले जहाँ तक पुरुष केलिए वह उपलब्ध है । वह आशा करती है

कि भोग्या और देवी के बीच पिसती हुई स्त्री अपनी स्त्री केलिए आत्मसम्मानपूर्ण समाधान खोज ही लेगी ।"[39]

नारी मुक्ति के बारे में अंकिता का विचार महत्वपूर्ण है । उसके अनुसार, खुद मुक्त होकर स्वच्छन्दता का अनुभव करने में ही नारी की मुक्ति है । स्त्री को पुरुष ने जिन सीमाओं पर रखा है उस केलिए ऐतिहासिक कारण भी है । स्त्री के सम्मान और सुरक्षाहेतु पुरुष ने उसे सीमाओं में बाँधा है । अंकिता के अनुसार पुरुष की ये सीमायें स्त्री को स्त्री न मानकर गाय भैंस बनानेवाली हैं । इसलिए वह तिलक से बताती है - "खतरे अवश्य रहे होंगे पर उन खतरों से सुरक्षित बने रहने केलिए पशुओं की भाँति उसे बाडे में कैद करने के बजाय परिस्थितियों का सामना कर आत्मरक्षा का साहस क्यों नहीं प्रदान किया पुरुष ने ? नहीं बना सकता था, उसे समर्थ । उसका राजपाट छिन जाने की आशंका थी । उसकी निरंकुशता पर अंकुश लग जाने का भय था ।"[40]

अंकिता स्त्री और पुरुष के समान साझीदारी की पक्षधर है । किन्तु उसके अहंवादी शोषण स्वरूप की नहीं । उसके अनुसार पुरुष को उसे बाडे से मुक्त कर बराबरी का दर्जा देना होगा । नहीं देता तो स्त्री को घर, परिवार और समाज के आतंक से आतंकित न होकर खोखली दीवारों से सिर पटक पटकर प्राण देने की बजाय बाहर निकलने का साहस जुटा आत्मनिर्भर हो नए सिरे से जीवन जीने के विकल्पों को खोजना चाहिए ।

जीवन मूल्यों को नकारकर मोडेर्न बनने में अंकिता सहमत नहीं है । जीवन मूल्यों को गँवाकर "नंबर वन बनने" में कोई महत्व नहीं है । इसलिए अंकिता नीता से कहती है "रातों रात नंबर वन का दर्जा हासिल करने केलिए वह सब करना जो एक स्त्री केलिए नहीं संपूर्ण नारी समाज केलिए अशोभनीय और लज्जा का विषय है । इस प्रकार जीवन को जीतने का प्रयत्न व्यर्थ है । उनके अनुसार विज्ञापन केलिए मनमानी

करना जागरूकता नहीं है । इसलिए वह कहती है "यह जागरूकता की नन्हीं सी लौ उम्मीद बंधाने और आश्वासन करने केलिए काफी नहीं है कि वह कुछेक तनिक मुट्ठियों में संगठित होकर, समाज में अपने अस्तित्व की लडाई लडने निकल पडी है । उसके अनुसार स्त्री को उसके सौन्दर्य का बखान करके बहकाना सामंती वातावरण का पुनर्जन्म मात्र है। वह नीता से खुल्लम खुल्ला बताती है कि आधुनिकता की जिस परिभाषा को तुम जी रही हो, जीना चाहती हो, क्या तुमने अन्वेषित और अर्जित की है ? नहीं दर असल, वह परिभाषा अधिकार, आधुनिकता, समता और स्वतंत्रता के नाम पर पुरुषों द्वारा ही अखबारों, पत्रिकाओं विज्ञापनों, फिल्मों, पोस्टरों, स्लाइडस के माध्यम से स्त्री को सौंपी जा रही है, बडी चतुरता से काया-कल्प के बहाने जिस को आगे भी अपने अधीन बनाये रखने के सामंती इरादों को वह इस हथकंडों से सिद्ध कर रहा है । ..... यही स्त्री को चाहिए ? यही आधुनिकता बोध स्त्री को चेतना पूर्ण बनाएगा ? कुरीतियों से भिडने की ताकत देगा ? स्त्री अब भी इस्तेमाल हो रही है और तथाकथित भद्र संपन्न महत्वाकांक्षी आधुनिक कहलाने का शौकीन शिक्षित स्त्री वर्ग ठीक तुम्हारी तरह इन परिभाषाओं को आत्मसात कर पुरुषों से बराबरी का दंभ जी रहा है ।"[41]

अंकिता को दुःख है, आज का अधिकांश पढा-लिखा विचार शील होने का दावा करता स्त्री समाज, स्त्री स्वतंत्र्य, समानता और अधिकारों केलिए जो लडाई लड रहा है उससे बेखबर है । स्त्री इन से अनभिज्ञ है कि अधिकार वस्तुतः क्या है, कैसे होना चाहिए, उसकी सामाजिक छवि कैसी हो ? उसके अनुसार स्त्री-समाज ज्यादा मोडेर्न होने या आधुनिक पोशाक पहनने मात्र से स्वतंत्र नहीं बनता है । स्त्री की अब तक कोई सामाजिक छवि नहीं है। इसलिए उसे सोच समझकर आगे बढना है । अपनी शक्ति के इस्तेमाल की राजनीति से उसे अवगत होना है ।

अंकिता, नारी को कोल्हू का बैल बनाकर घुमानेवाले पुरुष मेधा को सहनेवाली नहीं है । पुरुष की निरंकुश तनाशाही से ऊबकर वह विवाह विच्छेद करने को तैयार हो जाती है । पुरुष के अहं को सहती हुई उसके मनमानी बर्ताव को स्वीकार कर जिंदगी काटना नारी का पुराना रूप है । नारी मुक्ति का भाव उसमें बखूबी है । पति की क्रीत दासी बनकर जीना वह नहीं चाहती । बराबरी, साझेदारी का जो भाव आधुनिक मुक्त नारी का है, वह सब अंकिता में विद्यमान है । वह अपने अधिकारों के प्रति सजग है । अंकिता का नारी मुक्ति संबन्धी अपना अलग संकल्प है । उसकी राय है "औरत ज़रूर अपने मन को महत्व दे, लेकिन मर्द बनकर नहीं ।" वह नीता से कहती है - तुम्हारा स्त्री-समानता का दृष्टिकोण मर्द बनना है ..... मर्दों की भाँति रहना .... वे समस्त आचार व्यवहार, व्यवस्थाएं अपनाना .... यही समानता का दृष्टिकोण है । स्त्री को समाज में समान अधिकारों के नाम पर इन्हीं उच्छृंखलताओं और अनुशासन हीनता की चाह है ? प्रश्न उठता है नीतू ... जब ये अव्यवस्थाएँ मर्दों केलिए अनैतिक अमानवीय, दुराचरण और निरंकुशताएं हैं तो स्त्री केलिए उचित कैसे हो सकती हैं और इन्हें अपनाकर वह समाज में बराबरी का दर्जा कैसे हासिल कर सकती है ? यह प्रतिक्रिया में उपजी प्रतिशोधात्मक कार्यवाही है ... गलत दिशा की ओर उन्मुख होते हुए जो कुछ दिनों उसे खूबसूरत भ्रम में बाँध रहने के पश्चात् एक ऐसी विभ्रम मानसिक उद्विग्नता में झोंक देगी जहाँ अकेलेपन के संत्रास के अतिरिक्त उसे कुछ हाथ नहीं लगेगा ।"[42]

अंकिता के अनुसार राडिकल नारी मुक्ति भावना स्त्री स्वतंत्रता के पश्चिमी मापदंड है, हमारी संस्कृति हमारे सामाजिक परिवेश केलिए सर्वथा अनुपयुक्त । ये भ्रम वहाँ भी टूट रहे हैं । वहाँ की स्त्री भी दोहरे शोषण की शिकार बन रही है । अत: यह बहस कभी खत्म नहीं होती । अंकिता नीता से कहती है - "मैं तो विशेष रूप से इस बात को

रेखांकित करना चाहती हूँ कि स्त्री मर्द बनकर समाज में समानता चाहती है, स्त्री बने रहकर क्यों नहीं ? स्त्रीत्व के गुणों को बरकरार रखते हुए ... संघर्ष का यह गलत मोड है नीतू ! चेतने की ज़रूरत है ... स्त्री को स्त्रीत्व से मुक्ति नहीं चाहिए । उन रूढियों से मुक्ति चाहिए जिन्होंने उसे वस्तु बना रखा है ... तुम वर्जनाहीनता के तर्क से लैस होकर पुरुष की उसी पिपासा को संतुष्ट करने जा रही हो, जो स्त्री को भोग की वस्तु मानकर उसे इस्तेमाल करता आया है और कर रहा है।[43] "

जीवन के चुनौती भरे संघर्ष को स्वीकारने की स्फूर्ति अंकिता में है । इसलिए वह नीता को भी सलाह देती है कि जीवन में जब भी कोई निर्णय लें, सामाजिक सरोकारों से कटकर नहीं । जीवन मूल्यों को निजी तौर पर ध्वस्त करना आसान है, मगर उन्हें संशोधित करना चुनौती भरा संघर्ष है । इस तरह के संघर्षों को अपनाती हुई नारी के व्यक्तित्व और अस्तित्व को कायम रखने के लिए वह सतत संघर्ष करती रहती है ।

नीता

नीता हमारे समाज की उन बहुत सी लडकियों में से एक है, जो अपने परिवार के दायित्व को वहन करने केलिए नौकरी की तलाश में निकलने को मज़बूर होती हैं और उसके वास्ते कृतज्ञता के नाम पर आत्मीय सा दिखते दबावों की शिकार हो जाती है । नीता को मॉडल बनने का बहुत शौक है । "आम्रपाली" एडवेरटरिंग में वह प्रसिद्ध मोडल बनकर मज़े में जिन्दगी बिताती है । विज्ञापन और मॉडलिंग के क्षेत्र में जो अनुभव उसे प्राप्त है उसके प्रति वह दुःखी नहीं है ।

नीता में नारी मुक्ति के अतिवाद का प्रभाव है । अधनंगी समुद्र तट पर लेटना, सिगार और शराब पीना आदि को वह पाप नहीं समझती नीता अपने को दबाकर अन्तर्मुख जीवन पसंद नहीं करती । उसका विचार है कि नारी होने के नाते उसे भी अपने जीवन गढने का पूर्ण अधिकार है ।

नारी को स्वतंत्र रास्ता खुद अपनाना है । वह अपना रास्ता खुद चुनती है । मॉडल बनकर शो में बुरी तरह अपने को प्रस्तुत करनेवाली नीता को अंकिता ने समझाया कि उसका इस प्रकार नंबर वन बनने का भाव अच्छा नहीं है । लेकिन अम्रपाली का अनुबंध प्राप्त करने की शर्त ने कपडे उतारकर सागर तट पर दौडने केलिए उसे विवश कर दिया । जब अपनी सखी अंकिताने इसकेलिए उसे दोषी ठहराया तो वह उससे पूछती है - उन कपडों को पहनकर जब मैं किसी प्रकार संकोच और अश्लील भाव से ग्रस्त नहीं होती या मेरी तरह की अनेक स्त्रियाँ तुम क्यों ऐसा महसूस कर रही हो, समझ पाने में असमर्थ हूँ । न लज्जा, न अभद्रता, न प्रदर्शन ! न स्त्री की अस्मिता की नीलामी, न उसकी सामाजिक छवि को दूषित करने की कुचेष्टा कोई मंतव्य नहीं था मेरा । ऐसा ।" आगे वह अपनी सखी से कहती है वह भी उन छद्‌म महिला सामाजिक संगठनों जैसी दकियानूसी भावना और भावुकता से आक्रांत है जो अड्डा स्थापित करने की फिराक में बिकनी और मिडी से झांकती टांगों से स्त्री की अस्मिता खतरे में पडा हुआ महसूस करती है । वह पूछती है हाथों में तख्तियाँ ताने नारे कसती हुई पोस्टरों पर कालिख पोतने निकल पडती हैं धरने देती हैं - स्वयं और विरोधों में जीती हुई किसे बहला रही है ये ?[44]

नीता के अनुसार मॉडर्न बनने से कोई खतरा नहीं है । नारे लगानेवाली ये स्वतंत्रतावादी महिलाएँ ... स्त्री की अस्मिता की चिंता में दुबली होती ये भगिनियाँ घरों में अपनी हुकूमत का भ्रम पोसे रहने केलिए संबन्धों के मुखौटे में स्त्री को सामान्य मानवीय अधिकारों से वंचित रखने से नही हिचकिचाती । नीता कहती है "मैं ऐसा छद्‌म पर थूकती हूँ और यह हमें कहीं नहीं पहुँचायेगा जब तक कि हम अपनी संकीर्णताओं से मुक्त नहीं होंगी । स्त्री की इज्जत, प्रतिष्ठा, मोम की भाँति मामूली सी आँच पाकर पिघलती रहेगी । अंकिता के अनुसार स्त्री को गालियाँ देने के पहले समाज को स्त्री की संकीर्ण मनोवृत्ति के पीछे आधारभूत मनोविज्ञान को परखने पढने की कोशिश करनी है ।

लडकियों की छुई-मुई वृत्ति वह पसंद नहीं करती । वह इसकी वकालत करती है कि लडकी होने के नाते उसे निडर, निर्भय भाव अपनाना है तब वह पुरुष ऐसा समाज में अपना पैर फिसले बिना खडी हो सकती है । वह अंकिता से खुल्लम खुल्ला बताती है कि यह तुम्हारे दिमाग का फितूर है .... कोई किसी का इस्तेमाल कर सकता है । कल क्या था, आज वह कितना है, इसे मैं कतई नहीं ओढती बिछती और मैं सोचती हूं औरों को भी यही करना चाहिए । आखिर लडकियाँ इतनी छुई मुई क्यों है ? क्यों वे सेक्स से आक्रांत है ? इस देश में हालत यह है अब कि किसी लडके का किसी लडकी को गहरी नज़र से देख भर लेने मात्र से उसकी पवित्रता नष्ट होने लगती है । क्यों ? पुरुष उसे क्या दे रहा है, वह किन चीज़ों की हकदार है यह कटोरा लेकर भिक्षाटन से नहीं प्राप्त होगा . उसे सबसे पहले अपने भीतर की कुंठाओं से मुक्त होना है दृष्टि परिमार्जित करनी है । यानी सेक्स से पवित्र अपवित्र होने की भावना से स्वयं मुक्त होना है, तभी केवल तभी वह समाज में मनुष्य की तरह जीवित रह सकती है - बराबरी पर । आखिर पुरुष इसी समाज में वर्जनाहीन जीवन कभी बिसूरता नहीं कि वह नष्ट हो गया । किसी को मुँह दिखाने लायक नहीं रहा समाज में अब उसका कोई स्थान नहीं । स्त्री क्यों नहीं मुक्त होती इन फरेबी मर्यादाओं से ? जिस दिन वह कुंठाओं से मुक्त होगी, उसके सारे कष्ट कट जाएँगे । वह नए आत्म-विश्वास से परिपूर्ण होगी । निर्भीक विचारण कर सकेगी । यह हौवा जब उसके मन मस्तिष्क से दूर हो जाएगा, पुरुष के हाथों से वे सारे कार्ड्स निकल जाएँगे जिनके बूते पर वह स्त्री को घर, खेत, खलिहान, गली मोहल्ले, स्कूल दफ्तर और समाज में दबोचने को उद्यत रहता है, जीवन के हर क्षेत्र में उसे दोयम दर्जे की मानसिकता में जिलाता है बस इतना होने की भयंकर ज़रूरत है, तुम पाओगी पुरुष अपनी औकात पर पहुँच गया है"। नीता के अनुसार स्त्री को पहले पहले दास्य भाव से मुक्त होना है । नीता अंकिता से पूछती है स्त्री की सामाजिक छवि दूषित करने केलिए तुम हम जैसी आधुनिकाओं को कोस रही हो, उस स्त्री को क्यों नहीं कोसती जो फेरे लेते ही

तोला भर सिंदूर के रूप में पति को खोपड़ी पर बाकायदा बैठाए, दासता में गौरव अनुभव करती है । अनपढ़ औरत को छोड़ भी दें तो विश्व-विद्यालय से डिग्रियाँ लेकर निकली ये छोकरियाँ माँग में पुरुष को सजाकर बैठाए रखने को इतनी आतुर क्यों होती हैं ? पुरुष से स्वतंत्र होना है तो पहले उन्हें सिंदूर पोंछना होगा । बिछुए त्यागने होंगे । दासीत्व का प्रतीक चिह्न । यह इस्तेमाल अधिक खतरनाक है । उससे तो पहले मुक्त कर लो उन्हें ।

नीता अतिवादी है । उसकेलिए मूल्य का अर्थ और व्याख्या अलग है । उसके अनुसार मूल्य वही है जो व्यक्ति को कोई पाबंद लगे बिना अपनी इच्छा के अनुसार जीवन प्रदान करने में सहायक निकलता है । इसलिए वह अंकिता से कहती भी है "तुम ने जो कम कपड़ों की विवशता पर प्रश्नचिह्न लगाया है । कोई विवशता नहीं थी मेरी । हाँ, बिकनी पहनने की बात आई, मुझे आपत्ति नहीं हुई । आखिर मैं जब भी तरणताल में तैरने जाती हूँ धोती पहनकर नहीं तैरती । जब मैं निजी जीवन में तैरने केलिए "वन पीस" तरण पोशाक या बिकनी का उपयोग करती हूँ तो तैरने के किसी भी दृश्य को उसी पोशाक में देने में मुझे क्या आपत्ति हो सकती है ? हाँ जिन्हें इस तरह के दृश्यों को करने में संकोच अनुभव होता है, शोषण महसूस होता है, इस्तेमाल की बू आती है, वे विज्ञापनों में सिर्फ प्रेशर कुकर जाम, जेली, मैगी और शर्बत बेचें । कोई मजबूरी नहीं है वे बिकनी पहनें । अगर वे इसे मजबूरी के रूप में बयान करती है तो निश्चय ही यह अवसरवादिता है । छद्म है और यह तो मैं पहले ही कह चुकी हूँ कि इन दृश्यों से स्त्री का कुछ नहीं बनता बिगड़ता । नीताने रूढ़िग्रस्त सभी मूल्यों को तोड़ दिया है । वह पति-पत्नी के दासत्व भरे संबन्धों से मुक्त होने की कामना केलिए शुद्ध रूप से नारी-पुरुष संबन्धों की गहराई और उदारता को जीना चाहती है ।

वह नारीवाद की राडिकल धारा से प्रभावित है । कई पुरुषों के साथ अपने संबन्ध का जिक्र करने में वह कोई हिचक नहीं दिखाती । अपने व्यक्तिगत मामले में किसी की राय नहीं सुनती । अंकिता ने उसे कई बार सिगार और शराब पीने से मना किया है, लेकिन वह मानती नहीं । जब उसके पेट में बच्चा हुआ और डाक्टर ने सलाह दी तो इन आदतों को उसने छोड दिया । लेकिन उसका कहना है - सलाह बहाना बन जाती है । सच तो यह है .... जब तक अपने भीतर से कोई निश्चय न उठे, मानना मुश्किल होता है अब देखो न, भीतर ही तो था जिसने कितनों से शारीरिक संपर्क हुआ कभी देह को मन के साथ जोडकर नहीं जिया ... सुधीर के साथ मन और देह दोनों का समागम हुआ मगर ।"

प्रेम के बारे में उसका संकल्प भी अतिवादी है । वह प्यार में फँसना कोई पाप नहीं मानती, बल्कि यह व्यक्ति का अधिकार मानती है । प्यार के लेन-देन में जीवन का आदान प्रदान संभव है । इसलिए वह अपनी राय यों प्रकट करती है, हम प्रेम करते हैं । हमारा प्रेम मात्र आवेग नहीं है । न क्षणिक उन्माद । यह परस्पर संवाद है परिपक्व!, परिपक्व मानसिक जुडाव ! हम वर्जनाहीन होकर जिएँगे .... बंधनहीन होकर बंधी - रूढिमुक्त हो मानसिक वरण ।"[45] सुधीर जब वापस अपने परिवार गया तो नीता को सखियों ने सलाह दी कि गर्भ को बढने न दो । लेकिन निडर होकर वह बच्चे का जन्म देने केलिए तैयार हो गयी । उसे मालूम था बच्चे का जन्म उसकेलिए खतरनाक है, फिर भी उसने धीरज न छोडा । इस प्रकार धीरज के साथ अन्तिम दम तक वह पुरुष मेधा से लड लडकर जिन्दगी का अन्तिम वरण (मृत्यु) स्वीकारती है ।

चित्रा मुद्गल के दोनों पात्र सशक्त नारी है । दोनों ने स्त्री की अस्मिता और अधिकार केलिए दो तरह का मार्ग अपनाया है । अंकिता में लिबरल, और सामाजिक फेमिनिज़म की स्पष्ट छाप है । वह मानती है कि परिवार, समाज आदि की सीमा तोडे बिना नारी को मज़बूत बनाना है, नारी के प्रति अंकिता का यह प्रस्ताव चित्राजी का अपना प्रस्ताव ही है "स्त्री के अस्तित्व की तलाश तब तक पूरी नहीं होगी, नीता,

जब तक वह वर्गों में बाँटकर निजी स्वार्थों और सुविधाओं में उलझी विभाजित होकर जीती रहेगी ।"[46]

नीता में राडिकल भाव दिखाई पड़ता है । उसके अनुसार शादी करना, किसी एक का बनकर जीना, पत्नी का दासीत्व स्वीकार करना आदि से मुक्त हुए बिना स्त्री-जाति की मुक्ति नहीं हो सकती । नारी को रूढ़िग्रस्त परंपरा और विचारों से मुक्त करने से उसकी उन्नति हो जाएगी ऐसा विश्वास वह रखती है, और उसे अपने जीवन में अमल भी करती है ।

कृष्णा शुक्ल

समाधान

कृष्णा शुक्ल आधुनिक पीढ़ी की उन समर्थ लेखिकाओं में से हैं जिन्होंने अपने परिवेश की विद्रूपताओं और क्रूरताओं को गहरी दृष्टि से देखा है । उनकी औपन्यासिक कृतियाँ उसके सर्जक व्यक्तित्व की अच्छी पहचान कराती हैं । उनके औपन्यासिक पात्र न कायर है, न विद्रोही । लेकिन उनमें स्थितियों से टकराकर टिके रहने की क्षमता है । समस्याओं से विमुख होकर पलायन उन्होंने कभी नहीं किया । उसका कोई भी नारी पात्र विद्रोह करके ससुराल नहीं छोड़ती बल्कि परिस्थितियों से जूझती रहती है ।

कथानक

सुजाता एक समझदार माता पिता की कन्या है । वह एम॰ए॰ करने के बाद शोध कर रही है । परिवार में उसके अलावा उसके दो भाई भी हैं । दोनों की शादी हो चुकी है । लेकिन भाइयों को परायाधन कन्या को खर्च करके पढ़ाना पसंद नहीं है । वे उसकी शादी जल्दी कराके परिवार की संपत्ति आपस में बाँटना चाहते हैं ।

एक दिन सुजाता के बडे भाई अविनाश ने माँ से पूछा सुजाता दीदी का शोध पूरा हो चला है । उनके विषय में आपने कोई न कोई निर्णय तो लिया होगा । जल्दी ही माँ ने जवाब दिया - सुजाता की जिंदगी उसकी अपनी है । उसके बारे में सोचने की ज़रूरत किसी को नहीं ।"

माँ-बाप की मृत्यु होते ही भाइयों को उसके परिवार में रहना पसंद न आया । घर में उसकी उपस्थिति के कारण घर बेचना असंभव निकला । जब दोनों भाइयों ने इस ओर संकेत किया तो वह जल्दी ही मात्र अपने पिता की किताबों को लेकर परिवार छोडकर होस्टल में रहने लगी ।

फिर नौकरी करके अकेली रहनेवाली सुजाता के बारे में कोलेज के प्रधानाचार्य से लेकर चपरासी सीतादीन तक ने अनगिनत अटकलें अनुमानें और की कल्पनायें की हैं । उसे मालूम है भौतिक जाल-जाल में घिरे लोग बेशक कहा करें, कितनी अकेली कितनी बेचारी जिंदगी है उस महिला की । न कोई भाई बंधु न संगी साथी । पोथियों का बोझ उठाए सिर झुकाकर घर से निकली है, और फिर वापस उसी कोठरी में ।

सुजा का गुरु है गौतमजी । गौतम जी की माँ के लिए सुजाता बहुत प्यारी है । गौतम जी के बडे भाई सुजय की पत्नी है गौरा । माँ को पुत्र सुजय का बर्ताव अच्छा नहीं लगा । बहु गौरा के प्रति पुत्र का व्यवहार से माता हमेशा दुःखी है । अपनी तरक्की केलिए घर में ही "कोकटेल पार्टी" अरेंज करनेवाला सुजय ने, पत्नी को एक सीढी समझ रखी है । परिवार में इस तरह के बुरे व्यवहार से तडपती भाभी को मनाने केलिए गुरु गौतमजी सुजाता से अनुरोध करते हैं ।

गौरा उस घर में अकेली तडपती रहती है । एक दिन अचानक पति उसे छोडकर विदेश चला गया । गौतम ने सुजाता के ज़रिये उसे मजबूत कराने की कोशिश की । गौतम ने सुजाता और डॉ• आसद के सहारे

गौरा के आगे की पढाई में सहायता प्रदान की ।

गौतम के सहकर्मचारी डॉ• आसद की पत्नी की असामयिक मृत्यु में वह परेशान है । अपनी नन्ही लड़की कुशा को पालने पोसने में वह बहुत तकलीफ उठाता है । अपने दोस्त के दुःख में दुःखी होकर अपने भाई के द्वारा प्रताड़ित भाभी से उन्होंने आसद का गृहिणी पद अलंकृत करने की आशा प्रकट की । लेकिन गौरा सहमत न हुई । लड़की की देख-भाल का दायित्व उसने ले लिया ।

सुजय न्यूयोर्क से एक दिन अचानक विदेशी महिला जूली को साथ लेकर आया और परिवार में रहने लगा । यों दिन-ब-दिन पति का आचरण बिगड़ने लगा तो अंत में उसने पति के खिलाफ आवाज़ उठायी और हथौड़े से चोट भी लगायी । फिर अपने को खुद नष्ट भी कर दिया ।

गौरा

गौरा सुजय की पत्नी है । पति के घर में रहते रहते उसे जीवन की ज्वलंत सच्चाई का सामना करना पड़ता है । उसे मालूम हो गया कि उसको पति ने अपनेलिए नहीं, बल्कि माँ केलिए उसने शादी की है । सुजय दिन में आवारा घूमता रहता है और आधी रात घर वापस आता है । पहले गौरा सब चुप चाप सह लेती है । अपनी तरक्की केलिए परिवार में ही कोकटेल पार्टी अरेंज करनेवाला सुजय अपनी पत्नी को भी अपने साँचे में ढाल ने की कोशिश करता है । वह पत्नी को विदेशी शराब पिलाकर आनंद की अनोखी दुनिया में पहुँचना चाहता है । वह वह पत्नी से कहता है "गौरा मेरे साथ रहना चाहती हो । मेरी पूर्ण अनुगता बनाना चाहती हो न .... इधर आओ, आगे बढो, बस एक घूँट । देखना आनंद किस अनोखे संसार में पहुँच जाओगी ... फिर वह ..... सब कुछ मिलेगा जिसकी प्रत्याशा तुम्हें है ।"[47]

सुजय के घर लौटने की अवधि लंबी होती गई तो एक दिन गौरा ने इस बारे में प्रश्न किया । वह चुप-चाप सहनेवाली साध्वी नहीं

रही । लेकिन सृजय का जवाब विचित्र था । वह गौरा को चेतावनी देती है, भरण पोषण के साधन के सिवा किसी दूसरी चीज़ की अपेक्षा रखने की जुर्रत मत करना ... । क्या आकर्षण है तुम में ... माँ को एक पौत्र की साध थी ... वह भी तो तुम .... ।"[48]

अपने स्त्रीत्व पर पति ने चोट की तो अपना मौन व्रत तोड़कर वह पति को समझाती है कि संतान की संभावना केवल काम की पूर्ति मात्र नहीं होती । देह की खिंची हुई प्रत्यंचाएँ एक मन, एक प्राण, उस परम पिता की एकत्र साधना में रत होती हैं । गौरा समझ गयी कि रूढ़िग्रस्त पतिव्रता की लीक में अड़िग रहना व्यर्थ है । उसने स्वयं अपने को मज़बूत करने का प्रयत्न किया । पढाई पूरा करने का निश्चय भी कर लिया । देवरजी गौतम पढाई केलिए प्रोत्साहित किया तो उसे ऐसा लगा मानो आत्मविश्वास का छूटता हुआ सिरा जैसे किसी ने उसके हाथों में फिर से थमा दिया हो । अप्रत्याशित की पीडा .... अनहोनी का आभास सब मिलाकर उसे स्वावलंबन का पाठ पढाया ।

कठिन से कठिन परिस्थिति का भी सामना करने की शक्ति उसमें कूट कूटकर भरी है । सृजय ने जब न्यूयोर्क से उसे तलाक देकर पत्र लिखा तो वह रोयी नहीं । उसके मन ने इससे कई साल पहले ही उसे तलाक कर दिया था । पत्र पढ़कर गौतम ने उससे कहा - "असीमदा से दूसरी शादी हो जाये तो बेहतर होगा । सृजय दादा के अपराधों का इससे बेहतर दूसरा कोई प्रतिकार मेरे सामने नहीं है । अपने देवरजी से यह प्रस्ताव सुनकर वह अवाक रह गयी । उसने सधैर्य देवर से पूछा "तुम्हारे कुल-परिवार की स्त्री हूँ - यही मेरा अपराध है ? ... । अच्छा बताओ तो, तुम पुरुषों की दुनिया में क्या हमारेलिए अपनी कोई पहचान कभी संभव नहीं है ... इस या उसके बंधन को स्वीकारे बिना क्या हमारी कोई गति नहीं ?"[49]

गौरा का निर्भीक व्यक्तित्व है । पुरुष के सहारे के बिना ही वह जीना चाहती है । अपनी इच्छा के अनुसार वह आसद की बेटी कुशा की देखभाल करती है । नौकरी करके स्वावलंबी होकर जीवन बिताती है । जब उसे डॉ॰ असीमदा के पत्र से पता चला कि गौतम को विदेश जाने का सुअवसर मिला है, लेकिन गौरा के अकेलेपन और असुरक्षा के कारण उसने बाहर जाने का विचार छोड दिया है । तब गौरा देवरजी से जाने का अनुरोध करती है और माँ पर सौगंध खाकर दृढ स्वर में बताती है, "मुझे अपनी देखभाल करना आता है ।"[50]

जब सुजय विदेशी पत्नी जूली के साथ घर में रहने लगा और उसकी आवारगी बढी तो गौरा के मन में उससे प्रतिशोध लेने की इच्छा जागने लगी । सपत्नी जूली के जूठे बर्तन लेना, उसकी सेवा करना और उसके सामने अपनी बेइज्जती सहना आदि नित्य का काम हो गया था । जब उसके सामने सुजय अबोध बालिका कुशा को घसीटकर दूसरे कमरे में ले गया तो गौरा दुर्गा बनकर उसपर झपट पडी । गौरा के अनुसार उस समय उसे सुजय का रूप बर्बर पशु से भी बदतर लगा था । उसका विचार है - सात फेरों के एकाधिकार के नाते उसने मेरी देह .... उस पुरुष की पाशविक कामना का प्रतिकार मैं ने किया था .... घर में पडी हथौडी की चोट उसे लगी या नहीं .... मुझे नहीं पता । पर मेरी आत्मा उस जघन्यता से तिलमिला उठी थी । अपने पौरुष के दंभ में भूले हुए पुरुष को बल प्रयोग का अधिकार किसने दिया ... हिंस्र पशुओं से भी दुर्दांत खूँखार भेडिये जैसा वह रूप ।"[51]

गौरा पुरुष के मेधा भाव को चकनाचूर करती है । इसकेलिए वह दुर्गा बनकर हथौडा उठाती है, और उस दंभ को मिट्टी में मिला देती है । पुरुष मेधा समाज में आज भी स्त्री के प्रति जो ज्यादतियाँ होती हैं उन्हें खुलकर दिखाना लेखिका का उद्देश्य है । अपने अधिकारों से अभिज्ञ आधुनिक नारी पुरुष द्वारा किए गए अन्याय को चुप-चाप सहती

नहीं है । इधर गौरा पुरुष के विशेष अधिकारों पर उंगली उठाती है और उसके अन्याय के खिलाफ प्रतिशोध भी करती है । पुरुष की सहायता के बिना जीने में भी वह कामयाब निकलती है ।

सुजाता

कामकाजी नारी के रूप में सुजाता का अलग ही रूप उभारा गया है, एक अलग ही व्यक्तित्व सामने आता है, जो किसी से भी समझौता नहीं करता । बचपन में ही पिता की किताबों में तल्लीन रहने वाली वह भविष्य में खुद अपना रास्ता चुनने में सफल हो जाती है । भौतिकता की लोलुपता से अलग, समाज के विशेष अनुबंधों को अस्वीकृत करने का दुस्साहस करके सैकडों वर्षों की जर्जर वंशानुगत रूढियों की झिल्लियाँ उतारकर एक नये संकल्प का आनन्द-लोक रचने का प्रयत्न वह अकेली करती है ।

जब वह नवीं कक्षा में पढती थी तब उसने अपनी मास्टरनी अम्बिका से पूछा था "दी आप एकदम अकेली रहती है - आपको कोई असुविधा नहीं होती .... ।" उसे जवाब मिला, तनिक भी नहीं ।" यों बचपन से ही अपनी मास्टरनी से प्रेरणा पाकर सुजाता ने उसी प्रयोगशाला में अपने निजत्व को खो देने का अपने समस्त विकारों से जूझने की सामर्थ्य पायी है । वह अकेले रहने का अभ्यस्त हो गयी है ।

अपने दोनों भाइयों, जो उसकी शादी करके बोझ उतारना चाहते हैं, से लड-झगडकर वह एम.ए. पास करके शोध कार्य में लगी रही । पुरुष मेधा समाज में पढने का हक केवल पुरुष को है, स्त्री पराया धन होने के कारण उसकेलिए खर्च करना व्यर्थ है, इस तरह के विचारों पर अपने कर्म द्वारा वह कठोर प्रहार करती है । अपने भाइयों से खुल्लम-खुल्ला बताती है कि जिंदगी में केवल शादी ही एक महत्वपूर्ण कार्य नहीं है इससे अधिक महत्वपूर्ण कई कार्य होते हैं और आप मेरे बारे में सोचकर दु:खी मत हो जाये । मैं अपना भविष्य खुद ढूंढूंगी ।

शोधकार्य के बाद जब वह नौकरी करने लगी तो उसके अकेलेपन के बारे में कॉलेज का हर एक मनमानी बातें करने लगा । कभी कभी लोगों के प्रश्न सुनते ही वह सोचने लगती "पुरुष के संरक्षण से अलग नारी का कोई अस्तित्व नहीं । उसका जीवन केवल देय की परिभाषा तक सीमित है, उसका प्राप्य कुछ भी नहीं ?"[52]

जब स्त्री-मुक्ति की धुआँधार नारेबाजी करनेवाली चंद्रा और मालती शर्मा जैसी प्राध्यापिकाएँ अकेले में उससे पूछती हैं बाई द वे सुजाता, तुम्हारे अकेलेपन के पीछे ज़रूर कोई राज ...... किसी देवदास की पारो ..... बनकर तो सच बताना ।" नारी उत्थानवादियों का यह प्रस्ताव उसे अधिक हास्यास्पद लगा । आंदोलन की तमाम शर्तें घर की पहली पायदान पर खरी उतरती हैं । हर बुधवार को जागृति की गोष्ठी हर रविवार को चेतना का समारोह ठीक तो सैकडों वर्षों की दासता से प्रतिकार का इससे सुलभ पथ कोई दूसरा भी हो सकता है क्या ?"[53]

स्त्री का जीवन सिर्फ पीडा और वेदना में ही गुज़रे, यह उसे अच्छा नहीं लगता । इसलिए वह गौरा को शिक्षा जारी रखकर अपने को मजबूत बनाने का उपदेश देती है और इसकेलिए मदद भी करती है । डॉ॰ असीम को अपने जीवन-साथी बनाकर जीवन को हरा-भरा बनाने का उपदेश भी देती है । पुरानी मान्यताओं की तरह पति परमेश्वर की चरण सेवा किसी भी हद तक उसे स्वीकार्य नहीं है । अपने अस्तित्व को पीडा देकर हर पल झेलती रहें, देय अदेय का कोई अधिकार नहीं । फिर इस संबन्ध से क्या फायदा ? वह उस चौखटे से बँधे रहने की मजबूरी से मुक्त होने की सलाह देती है । वह समझाती है, इससे बेहतर हैं डॉ॰ असीम सरकार की अधूरी गृहस्थी को पूर्णता देने की एक नई पहल करना । शायद यह खतरे से भरी एक चुनौती ही नही, लेकिन उस जड़ता से तो मुक्ति मिल सकती है ।

नारी जीवन की विवशता को वह मानती नहीं । जब उस की माँ जिन्दा थी तब माँ बीच-बीच में कहा करती थी "भीतरी दुःख से भीगी पोर-पोर और बाहर अपने दाय को निबाहने केलिए लचीला लता जैसा कोमल लचीलापन इन्हीं दो तारों के मेल से संसार की हर औरत का गठन होता है बचिया ।" माँ की बात सुनकर उसने पूछा - लचीलापन सामंजस्य समर्पण ये सारे शब्द विधाता ने हम स्त्रियों में ही क्यों डाले अम्माँ, क्या इसलिए कि वह पुरुष है और उसके समस्त सोच का साँचा स्त्री की रचना करते हुए एक बारगी संकरा पड गया था । नारी गुणात्मक स्थितियाँ पुरुषों के हिस्से में ही क्यों ?"[54]

बीच बीच में ननद अपने पत्र में लिखा करता है, इस संसार में कोई अकेली औरत अपना जीवन निर्वाह कर ही नहीं सकती । जब सुजाता ने यह सब आभा को सुनाया तो उस ने ज़ोर देकर कहा था "हम वस्तु नहीं, इकाई है, और हमारे अस्तित्व की सार्थकता या निरर्थकता का प्रमाण भी स्वयं हम ही हो सकती है, मैं या आप या हमारी जैसी असंख्य स्त्रियाँ .... । आचरण, सतीत्व जैसे शब्दों को आवरण बनाकर अग्निपरीक्षाओं का एक तरफा सिल सिला कब तक चलता रहेगा । क्या आपको ऐसा नहीं लगता दीदी, अपने लिए नही दिशाओं के मुक्त निर्धारण में व्यवधान दूसरे उतने नहीं जितनी हम स्वयं है ।"[55]

सुजाता अपने व्यक्तिगत मामले में किसी को दखल देने की अनुमति नहीं देती । दोनों भाइयों ने मिलकर उसे शादी कराकर घर का बँटवारा चाहा तो उसने शादी किए बिना ही घर छोड दिया । लालची भाइयों का सहारा लेना उसके अस्तित्व को कलंकित करना है । अंत में जब गौतम को पसंद आया तो किसी की परवाह किये बिना शादी करने का निश्चय भी कर लेती है ।

सुजाता में नारी मुक्ति विचारों का ज़बरदस्त प्रभाव पडा है । वह पुरुष के मेधा-भाव को बिल्कुल पसंद नहीं करती । वह पुरुष शायद भाई हो, गृह-कर्मचारी हो, या और किसी दूसरे भी हो ।

वह यह विश्वास नहीं रखती कि स्त्री का अधिकार केवल सहना ही सहना है । तड़प, तड़पकर जीने से संबन्ध विच्छेद कर अपनी इच्छानुसार ज़िन्दगी बिताने में ही वह विश्वास रखती है और यही उपदेश वह गौरा को देती है । शादी के मामले में स्त्री को पूर्ण हक देना है । फेमिनिस्टों का मत भी यही है । शादी स्त्री का निजी मामला है, इसलिए उसे जीवन साथी चुनने में अधिकार देना है । सुजाता भी अपने भाइयों की सलाह के बगैर जीवन साथी चुनती है । इस प्रकार वह अपना निजत्व और व्यक्तित्व की स्थापना पूर्ण रूप से करती है ।

मालती शर्मा

मालती सुजाता के साथ काम करती है । वह नारी मुक्ति की, नारी स्वातंत्र्य की अनोखी परिभाषाओं के नए नए सूत्रों को ईज़ाद करनेवाली है । गौरा के प्रति सुजय के बर्ताव के बारे में जब कॉलेज की अध्यापिकाओं के बीच बहस हो जाती है तो मालती शर्मा कहती है - "यदि पुरुष इस तरह के अतिचार में कोई शर्म, कोई बेइज्जती महसूस नहीं करता तो स्त्री भी स्वाधीन है ... पूर्ण स्वाधीन । जैसे को तैसा .... उसे चाहिए कि वह भी अपने मनोनुकूल पुरुष मित्रों का चयन करे ... उसे पूरा अधिकार है वह स्वच्छंद भाव से रहे ।"[56]

मालती शर्मा में नारीवाद का अतिवादी रूप नज़र आता है । अतिवादियों का विचार भी यह है कि यदि पुरुष अपनी मन-पसंद स्त्रियों के साथ रहता है तो स्त्री भी क्यों ऐसा नहीं कर सकती ? उसे भी अपनी इच्छानुसार प्रेमियों को बदलने और साथ रहने का हक है ।

इस प्रकार "समाधान" उपन्यास में ऋताजी ने अपने नारी पात्रों को निडर व्यक्तित्व प्रदान किया है । पुरुष मेधा अस्वीकार करके अपने व्यक्तित्व को महत्व देकर जीने में उसकी नायिकाएँ सफल निकली हैं ।

सुधा

कातर क्षण

सुधा का एक प्रकाशित उपन्यास है "कातर क्षण"। परंपरा से विद्रोह करते नारी-मन की गहराई में उतरकर उस मन के समूचे हिलोरों को पाठक के सामने सुधाजी ने प्रस्तुत किया है। परम्परा और विद्रोह की अपनी अपनी विशेषताएं है। सुधा आधुनिकता की पक्ष धर है। वह परंपरा से विद्रोह करती हुई नवीन जीवन पथ पर अग्रसर होने में सफल होती है। शायद परंपरा और विद्रोह के द्वन्द्व ने ही उन्हें अधिकतर प्रेरणा दी है।

सुधाजी का उपन्यास आन्तरिक संघर्ष की उपज है, जो कथा को गति प्रदान करता है। नारी के प्रति बदले दृष्टिकोण को लेकर लेखिका एक खास बौद्धिक तेवर के साथ उपस्थित होती है जहाँ रोमैण्टिक भावुक दृष्टि को नकारती वैचारिकता के धरातल पर संबंधों की सूक्ष्म परतों को खोलती हैं। इन्होंने नारी के संबन्धों को नये कोण से देखा, पुरुष निरपेक्ष नारी के व्यक्तित्व की हिमायत की। साथ नारी मन के अंतर्द्वंद्वों और विषम सामाजिक, राजनैतिक परिस्थितियों में जीते मध्यवर्गीय समाज की विसंगतियों का पर्दाफाश भी किया है।

कथानक

मध्यवर्गीय परिवार की बेटी है कुन्ती। विख्यात पत्रकार शरद् की बहन है वह। कुन्ती के पिता की असामयिक मृत्यु के कारण भाई पर परिवार का आकस्मिक दायित्व आ पडता है। कुन्ती हमेशा सुविधाओं से भरे जीवन की कल्पना करती थी। अपनी उम्र से अठारह वर्ष बडे विधुर लालाजी से शादी करके वह अपनी कामना की पूर्ति करती है। इस शादी केलिए उसकी माँ और भाई सहमत न हुए तो भी शादी संपन्न हो गयी। कुन्ती अपनी निश्चय पर अडिग रही।

लालाजी की पहली पत्नी के तीन बच्चे और बीमार माँ का दायित्व वह खुशी से अपनाती है । लालाजी ने अपने तीन बच्चे के जन्म के बाद अपने ऊपर बच्चों के जन्म से संबन्धित निषेध लगा लिया था । विवाह के कई महीने के बाद ही कुन्ती को यह मालूम हुआ । इससे उसके जीवन में हताशा घर कर गयी । लेकिन कुन्ती का स्नेहिल मन अपने सौतेले बच्चों के प्रति कठोर नहीं है । उसे प्रेम करना आता है । वह अपने अभावों को भी प्रेम से भरने का प्रयास करती है । वह असफलता को सफलता में परिवर्तित करती हुई जीवन के संघर्षों का सहर्ष सामना करती है ।

<u>कुन्ती का चरित्र</u>

कुन्ती बहुत ही सुन्दर युवती है । उसकी शादी तीन बच्चों वाले विधुर के साथ होती है । उसका पति काले धन्धे/ का व्यापारी है, इसका उसे बाद में ही पता चलता है । दिन-रात उसका पति बिज़नेज़ में डूबा रहता था । कुन्ती बोर होती रहती थी । कुन्ती को अपने परिवार की दशा विचित्र लगने लगी । उसके अनुसार दिन भर दूसरे दर्जे का व्यापार करनेवाला पति । शाम को उसके हाथ में शराब से भरा गिलास । बीमार माँ (सास) और माँ की विषाक्त आनी बानी। बिगड़ते हुए बेटे, सहमी हुई बेटी - इसके बीच कुन्ती द्वितीय पत्नी की घुमड़ती हुई चुप्पी में रहने लगी ।

गृह संचालन की बागडोर पकड़ने के साथ ही वह अपने मायके के बारे में सोचती रहती है - "हमारे पिता हम चारों भाई बहन के मित्र थे । हमारी माँ के साथ उनका व्यवहार स्वामी का नहीं प्रेमी का था ।"[57] कुन्ती को अपने इस परिवार में अपना व्यक्तित्व घुटता हुआ दिखाई देता है । और यहीं पर वह परंपरा से बिछुड़ जाती है । उसमें जागरूकता आती है । पति को सिर्फ रात के समय ही बिस्तर पर कुन्ती की याद आती है और यह वह सह नहीं पाती । कुन्ती खुद

अपने बारे में सोचती है -क्यों उसने विधुर से शादी की । क्या उसका लालजी के साथ जीवन आँगन तक सीमित है ? क्यों नहीं शामिल हो जाती है उस बाहरी दुनिया में पति के साथ ? यह कौन सी बड़ी बात है । आज क्या बहुएँ घर की देहरी नहीं लाँघती ।[58]

वह रूढ़िग्रस्त परंपरा को तिलांजली देती है । उसे ठीक मालूम है रूढ़िग्रस्त परंपरा उन वर्जित क्षेत्रों में उसे जाने की अनुमति नहीं देती । उनके मन में बीच बीच में यह विचार आता है कि "खुशी कहीं पड़ी नहीं मिलती, आदमी खुद उसे हासिल करता है । धूल में पड़े हीरे को पाकर भी आदमी उसकी कीमत पर धूल डाल देता है ।" उसके जीवन में कई प्रकार के गम हैं । वह सोचती है "किन किन बातों केलिए दुःख करती फिरेगी -बूढ़े से ब्याह का दुःख, सौतेले बच्चों का दुःख । बड़ा लड़का बर्बाद हो जाने से भी वह दुःखी है । पिता के अनुसार जवान लड़के के नशीले पदार्थों का उपयोग केवल एक घर की समस्या नहीं है, यह तो संसार भर में फैला सांक्रमिक रोग है । जब पति उसे तुच्छ समस्या मानकर छेड़ता है, तो कुन्ती को पसंद नहीं आयी । वह खुद पति से झगड़ा मोल लेती है और पति से कहती है "मर्द रोते नहीं लड़ते हैं ।[59]"

अपने घर में अन्याय को देख समझकर चुप होना उसकेलिए कठिन हो गया । पतिव्रता का पर्दा हटाकर जाग्रत नारी का रूप वह धारण करती है । बार बार पति को चेतावनी देने पर भी बेटे के प्रति उदासीन रहनेवाले पति से वह कहती है "अब संभालो अपना घर, मैं आज ही शाम को जाऊँगी । लेकिन अगले क्षण वह सोचती है - "मेरे चले जाने पर उसका कुछ नहीं बिगड़ेगा । यह यों ही शराबी रहेगा । इसलिए धीरज के साथ परिस्थिति का सामना करने का निश्चय करती है । वह ड्राइवर के साथ खुद ही गुण्डी बाबा की झोंपड़ी से लालाजी के बड़े बेटे को लाने चली जाती है और उसे घर वापस लाती है । उसके बाद अपने भाई के मित्र पुलीस इंस्पेक्टर की सहायता से युवकों को नशीली

आदत में डालनेवाले ढोंगी सन्यासी बाबा को उधर से भगाकर गाँव को बचा लेती है ।

कुन्ती अपनी सहजता की सीमा नापना चाहती थी । उसके मन में विचार आया कि लालाजी के अतिरिक्त उसके अपने व्यक्तित्व की परिधि कितनी बड़ी है । वह खुद अनुभव करती है कि उसके अपने अनुभव का एक ऐसा कोना भी है जिसमें लालाजी की साझा नहीं है, वह यह सिद्ध करना भी चाहती थी । वह सोचती है "जीवन के पहाड़ को वह पंगू होकर नहीं लाँघ सकती - यह अनुभव उसे होने लगा था । इसलिए बैसाखी को दूर छोड़कर अपने पाँवों में आत्मविश्वास भरना चाहती थी ।"[60]

स्वावलंबी होना वह महत्व की बात मानती है । वह जीवन में पराजित होना चाहती नहीं । उसने अपने मन को एक दृढ संकल्प से भरा दिया "मैं कुन्ती को पंगू नहीं बनने दूंगी .... मैं उसे सही दिशा दे रही हूँ । मैं मार्ग बनना जानती हूँ । लीक पर चलना ज़रूरी नहीं है । लीक पर चलने से कोल्हू के बैल बनने की निश्चिंतता है । इसलिए मानव मन को मारने और तन को नापने की आवश्यकता नहीं ।"[61]

कुन्ती के अनुसार आज कल के समाज में केवल गृहिणी बनकर स्त्री का रहना सम्मानजनक नहीं है । नौकरी है तो उसे थोड़ा सा सम्मान समाज और परिवार देता है । लेकिन कुन्ती इससे भिन्न विचार रखती है । उसका विचार है - गृहिणी के रूप में स्त्री का व्यक्तित्व नहीं उभरता है - यह बात मैं नहीं मानता । गृहिणी जिसे अंग्रेज़ी में हाउस वाइफ, हाउस कीपर और न जाने क्या क्या कहा जाता है, गृहस्वामिनी नहीं होती है, वह होती है गृहस्वामी की इच्छाओं की छायामात्र । हमारे देश में स्त्री पुरुष संबन्धों में यह एकात्मकता प्रशंसित हुई है । परिवार में जो स्नेह उपजता है उसमें गृहिणी का श्रम आधे से अधिक होता है । स्त्री क्या स्वयं नहीं चाहती कि घर में प्रत्येक

क्रियाकलाप पर उसका हस्तक्षेप हर कोने में उसके पदचिह्न में अंकित हो ।"[62]

वह खुद आत्मविश्लेषण करके धीरज समेटती है । बेटे के नशे से दुःखी पिता ने नशे में डूबना चाहा तो विमाता होने पर भी वह धीरज धारण कर प्रतिकूल परिस्थितियों को काबू में रखती है । बड़े बेटे को ठीक करने केलिए उसे इलेक्शन में खड़ा करना चाहती थी । इस सारे अभियान की धुरी कुन्ती थी । उसने बड़े सुनियोजित ढंग से महिलाओं के बीच गुड्डू केलिए अनुकूल माहौल तैयार कर दिया । लालजी के बड़े बेटे ही लालजी के विरुद्ध कुन्ती का हथियार बन गया था । पिता बेटे के नशा और बुरी बातों को रटते तो कुन्ती उससे पूछती है - "आप नशा नहीं करते ?" लालाजी के अनुसार वह नशा करके घर में ही बैठता है । यह सुनकर वह मुँह तोड़ जवाब देती है "बड़ा नाम करते हैं, घर में रहकर न बच्चे खुश, न बीवी खुश ।"[63] बिगड़े अशिक्षित लड़के को राजपुरुष बनाने में कुन्ती जी जान से जुट गयी थी ।

जीवन की खुशियों के बारे में उसका संकल्प अलग है । लालजी कुन्ती से कहता है उन्होंने बीवी बच्चों की खुशी के लिए राजसी ठाट बाट उन्हें दिया है । इस पर खुशी नहीं होती तो उनका दुर्भाग्य है । कुन्ती के अनुसार "खुशी अगर राजसी ठाट-बाट से होती तो दुनिया से ईमानदारी उठ जाती । लालजी मैं तुमसे बेकार की बहस नहीं करूँगी । लेकिन इतना कह देता हूँ कि अपना व्यवहार अगर तुमने नहीं बदला तो कहीं के नहीं रहोगे ।" जब पति अपने मार्ग का रोड़ा बना तब उसे घर में कैद रखने में वह हिचकती नहीं । उसने पति पर हमेशा पहरा रखा कि वह कहीं नहीं जायें, न कोई उनसे मिल न पाए ।

कुन्ती अपनी अस्मिता और अधिकार दिखाना चाहती है और दिखाती भी है । वह लालजी के बेटे को जानवर से आदमी और आदमी से विशिष्ट आदमी बनाती है । एक निरर्थकता को सार्थक

बनाने में वह जुटी हुई थी । इसमें उसे सफलता भी मिली । वह सौतेले बेटे को विजयी बनाकर अपने सनकी पति को वश में करना चाहती थी, उसे नीचा दिखाना चाहती थी । लेकिन पति को नीचा दिखाने का कुविचार सफलता से दीप्त एक युवा मुख देखकर तिरोहित हो गया । "गुड्डू को उसने कूडे पर से उठाकर एम॰एल॰ए॰ बना दिया । यह "कान्स्ट्रक्टीव" काम हुआ ।"[64]

गुड्डू के सुधार की बात ही नहीं है, सचमुच गुड्डू के माध्यम से कुन्ती अपनी महत्वाकांक्षा पूरी करना चाहती थी ।

कुन्ती का अलग व्यक्तित्व है । इस कारण पति पत्नी के बीच शीत-युद्ध जारी रहता है । कुन्ती की व्यवहारिकता ही उसका शत्रु है । लालाजी को उसने जिस सुख केलिए चुना वह उसको अवश्य मिला । लेकिन व्यावहारिकता के परे मनुष्य के मन और उसके ऊपर भी आत्मा का जो साम्राज्य है, वहाँ इस व्यावहारिकता का गणित परास्त हो जाता है । लालाजी के अनुसार वह बिलकुल जड पदार्थ था । कुन्ती ने जैसे नचाया, नाचता रहा । लालजी कहते हैं "तुम्हारी मुक्ति केलिए मैं अब मृत्यु की राह देख रहा हूँ । यह सुनकर कुन्ती निडर भाव से कहती है "मैं मुक्त हूँ । तुम्हारे जीवन काल में ही मैं मुक्त हूँ ।"[65]

लालाजी के मन में अपनी पत्नी के प्रति शक है । इसलिए वह पत्नी से पूछता है कुन्ती वह डी॰एस॰पी॰ के साथ तुम्हारी घनिष्ठता क्या उसी मुक्ति का परिणाम है ? यह सुनकर आम औरत की तरह वह रोती कलपती नहीं । स्वतंत्र निर्भीक औरत बनकर वह कहती है "ओह तुम्हारे दिमाग में यह कीडा कुलबुला रहा है, सुनो मुझे इतना जलील न करो कि मैं सचमुच तुम्हारा मुँह न देखने का निश्चय कर लूँ । मुझे कोई सफाई नहीं देनी है । मैं जो हूँ, हूँ । तुमको जो समझ में आए सोचो ।"[66] अपने घर में पर-पुरुष का आगमन वह पाप नहीं समझती । उसकी भावना राडिकल नारी की है । जब पति ने उससे कहा देखो इस घर में किसी

पुरुष का आना ही बदनामी का बहाना बन जायेगा । तो वह कहती है "मेरा भाग्य ही खोटा है । तुम अगर मेरे दाहिने खड़े रहते तो किसी मज़ाल थी कुछ कहने की । जब लालाजी ने उससे पूछा क्या मेरा उपयोग ढाल की तरह करती है, तो मुँह फट जवाब देती है, हाँ सुरक्षा-कवच की तरह लेकिन तुम उसके योग्य नहीं रहे । तुम वह नहीं हो जो थे । उसके अनुसार उसके पति ने उसे कभी भी अपना न समझा । वह उससे कहती है "मैं तुम्हारा बच्चों की आया हूँ । तुम्हें न तो बाप होने का एहसास कभी था, न पति होने का । तुमने मुझसे इसलिए विवाह किया था कि तुम्हें एक औरत की ज़रूरत थी और इस घर में आकर मैं एक आया बन गयी हूँ, मुफ्त की ।"[67]

कपटी, ढोंगी पति के प्रति उसके मन में सहानुभूति नहीं है । इसलिए वह खुल्लम खुल्ला पति से बताती है "मेरा जीवन तो व्यर्थ हो गया । तुम ढोंग कर बीमार बने फिरते हो ताकि लोग सहानुभूति दिखायें । कुन्ती ज्यादातर व्यावहारिक है । जब लालाजी को काले बिज़िनेस करने के वास्ते पकड़ा गया तो वह डी.एस.पी. को घर पर बुलाकर, पति और डी.एस.पी. के साथ बैठकर भी शराब पीती है । पति केलिए बाजी भी उसने जीत ली । उसके इस तरह के बर्ताव में राडिकल नारीवाद का प्रभाव है ।

कुन्ती की महत्वाकांक्षा उसे जीने की प्रेरणा देती है । लालाजी उसकेलिए सीढ़ी है, गुड्डू भी उसकेलिए सीढ़ी ही है, और डी.एस.पी. भी इससे अधिक कुछ नहीं है । ऐसे ही प्रेम के स्वांग में वह मित्र बनकर उसके हाथ से निवाला खा ले गिलास टकराकर पी ले या हँसी हँसी में ही उसके आलिंगन में बँधा जाए । लालाजी यह तमाशा खत्म करना चाहते हैं । लेकिन अब पुतले की डोर उनके हाथों में नहीं है । अब लालजी कुन्ती को कोसती है तो वह कहती है "तुम्हीं से सब कुछ सीखा है । तब लालजी का कथन है "सीखकर गुरु बन गई हो, अब तुमको मेरी ज़रूरत नहीं है । कुन्ती मुँह तोड़ जवाब देती है मुझे कभी किसी की ज़रूरत नहीं रही है । डि.एस.पी. के आने के बारे में लोगों का

मुँह बन्द न कर सकती ऐसा लालजी के कहने पर वह निडर होकर कहती है "मुझे कुत्तों के भूँकने की परवाह नहीं है । जो भले हैं, वे दूसरों के दरीचों में नहीं झाँकते ।"[68]

बेटी नन्दिता केलिए डोनेशन देकर उसने मेडिसिन में सीट रिज़र्व करा दिया । नन्दिता बेटी के बारे में वह कहती है - मैं उसे पुरुष के ऊपर निर्भर नहीं देखना चाहती थी । मैं चाहती थी, वह एक बढ़िया डॉक्टर बनती । फिर अपनी रुचि से किसी सुयोग्य आदमी से प्रेम विवाह करती । यों कुन्ती जीवन भर स्वतंत्र अस्तित्व और व्यक्तित्व को कायम रखकर जीवन बिताती है । वह परंपरा, आदर्श सब को तोडने में सफल होती है । अपने परिवार और बच्चे की खातिर वह सब कुछ करती है । उसके मन में कोई डर या झिझक नहीं है । उसके अनुसार व्यक्ति की प्रगति केलिए जो करना है वह करके दिखाना है । समाज, परंपरा, परिवार के विचार में चुप होकर निष्क्रिय बैठने से कोई फायदा नहीं है । जो रूढ़ियाँ और परम्परायें अर्थहीन हो गयी हैं उनसे छुटकारा लेना ज़रूरी है । नारी को सचेत होना है और उसे अपने अधिकार क्षेत्र से अवगत भी होना है । जहाँ कहीं भी शोषण हो उसके खिलाफ आवाज़ उठावे । अपनी अस्मिता और पहचान को कायम रखने केलिए ज़रूरत के अनुरूप संघर्ष करने का आह्वान सुधाजी कुन्ती के द्वारा प्रकट करती है ।

शशिप्रभा शास्त्री

कर्क रेखा

नारी पुरुष संबन्धों पर हिन्दी में कई कोणों से काफी कुछ लिखा गया है, किन्तु 'कर्क रेखा' में जिस ढंग से इन संबन्धों की वास्तविकताओं से सीधा साक्षात्कार है, वह दुर्लभ है । मध्य-वर्गीय नारी के प्रेम विवाह के बाद की भयावहता को उकेरनेवाली यह कृति मानवीय संबन्धों की त्रासदी का अनुपम दस्तावेज़ बन जाती है ।

नागरिक जीवन की भागम-भाग में उलझते दाम्पत्य संबन्धों के बीच शिक्षित मध्यवर्गीय नारी के एकाकीपन को लेखिका ने सटीक अभिव्यक्ति प्रदान की है । पत्नी की आत्मिक आवश्यकताओं से निस्संग, इस उपन्यास का बुद्धिजीवी नायक अपने आचरण में इतने ठण्डेपन का शिकार रहता है कि उनके संबन्धों के बीच अस्पष्ट सी जड़ता हर वक्त सालती रहती है ।

अपने-अपने स्वार्थों में डूबे लोगों के बीच भारतीय नारी की पीडा को लेखिका ने खोखले आदर्श का जामा नहीं पहनाया है, बल्कि निरन्तर समकालीन सच्चाइयों से बेहिचक सामना किया है । अवश्य यह कृति पाठकों के मन में कई मानवीय प्रश्न उठाती है ।

कथानक

उपन्यास की नायिका तनु एक अध्यापिका है । भरे पूरे परिवार में तनु और भाई, माता- पिता के साथ रहते थे । लेकिन घर में ही तनु पराया सा जीवन महसूस करती है । पिता के रिटयरमेंट के पहले ही बडी बहनों की शादी संपन्न हो गयी थी । लड़की पराया धन जैसी दादी नानी के जमाने की मान्यताओं को विरासत में अपनाने वाली उसकी माँ ने तनु को सदा एक बोझ समझ लिया था ।

पढाई खतम होते ही उसे स्कूल में नौकरी मिली । इसी बीच एक दिन ताइजी ने तनु के सामने अनिरुद्ध की बात प्रस्तुत की तो वह उसको मुक्ति का मार्ग बन गया । इसलिए उसने सिर हिला दिया और अपनी सहमति दे दी । आदर्शवादी युवा अनिरुद्ध से विवाह करके एक सुखी और पति के प्यार से भरपूर जीवन की कामना वह करती रही ।

मायके से पीहर आनेवाली तनु को वहाँ का वातावरण मथता है । उस वातावरण में अनिरुद्ध के द्वारा दिये गये कुछ निर्जीव-सा शारीरिक सुख ने भी उसे कुछ आनन्द नहीं दिया था । पति के घर में उसे रोकने,

टोकने केलिए कोई नहीं था । अनिरुद्ध ने उसे पूर्ण स्वतंत्रता दी थी । हमेशा उसका कहना था "मैं तुम्हारी राह में कभी बाधक बनना नहीं चाहूँगा ।"

पति से उसकी समस्याएँ और बातें सुनने का हर काम तनु केलिए व्यर्थ-निकला । अनिरुद्ध के काम पर चले जाने के बाद पडोसिनों के बीच बातें करती हुई समय बिताने में कोई मज़ा नहीं निकला । इसलिए फिर से नौकरी करने की इच्छा उसके मन में समा गयी । अनिरुद्ध को पत्नी का नौकरी करके कमाना पसंद नहीं था लेकिन बाद में उसने सहमति दी । खुद अनिरुद्ध ने ही उसे साइकिल छोड आया था । अनिरुद्ध को उसके इधर या उधर रहने में कोई फर्क नहीं पड़ता है । उसे मालूम हो गया कि पति ने उसे केवल एक महज़ महिला समझ ली है ।

दोनों के जीवन में शिशु का पदार्पण बहुत सुखद रहा । नौकरी और बेटे के साथ रहने पर भी उसका मन ऊबने लगा । अनिरुद्ध के रूखे - सूखे व्यवहार के कारण तनु का मन पडोसी शुभ की ओर झुकने लगा ।

पढ़-लिखकर बेटा बड़ा हो गया और वह भी अपनी उन्नति के विचार में बाहर चला गया । पुत्र को पास रखने में असमर्थ अनिरुद्ध ने दूसरे के लड़के को पुत्र समान परवरिश करना शुरू कर दिया । रिटयर होने के बाद अनिरुद्ध आराम से घर में रहेगा, तनु का यह सपना भी सपना ही निकला । वह दूसरे शहर में जाकर काम में व्यस्त रहना चाहता है । तनु ने उसके मार्ग में रोडा बनना नहीं चाहा, लेकिन उसके मन में ज़रूर एक ठेस पहुँची । अपनी पत्नी को अकेलेपन से बचाने केलिए अनिरुद्ध ने एक लड़की का प्रबन्ध कराया तो तनु ने उसे मना किया ।

वह सोचने लगी कि यह अकेलापन हर स्त्री की नियति है । इससे लाचार होने की आवश्यकता नहीं है । विधाता ने एक लाल तो दिया है, अपने में अनूठा बेजोड, गर्व करनेलायक । लेकिन वह भी

कुपात्र निकला, क्योंकि जो पुत्र अपने पिता को तृप्त सन्तुष्ट नहीं कर सकता, जिसके रहते उसके पिता को एक दूसरे लठिया की तलाश करनी पड जाये तो वह पुत्र तो कुपात्र ही है। इतना कठिन आदर्शवादी पति मिला, वह भी अपने में तल्लीन रहा। उसने तो पत्नी केलिए कोई कर्क रेखा नहीं खींची है। अंत में तनु मुझ को पहचानने और समझाने का श्रम करती रही। दृढ विश्वासवाली बनकर तनु आँसू गिराये बिना अनिरुद्ध की राह देखती अकेली रहने का निश्चय कर लेती है।

तनु का चरित्र

उपन्यास की नायिका तनु अपने आप में एक अलग और अनोखा पात्र है। वह आदर्शशाली अनिरुद्ध की पत्नी है। बचपन से ही उसके मन में अन्याय के प्रति घृणा है। परिवार में माँ ने जब उसे एक बोझ समझकर बर्ताव किया तो उसके मन में माँ के प्रति घोर प्रतिशोध हुआ। उसके विचार से यह स्पष्ट है - भाई बेटा था, भविष्य की आशाओं का केन्द्र। वह लडकी थी, पढ लिख कर उसे अपने घर चले जाना था। घरवाले यों भी उस पर निर्भर नहीं हो सकते थे।[62] लडकी को पराया धन समझनेवाली रीति के प्रति उसके मन में क्रोध है।

तनु बहुत ही स्वावलम्बी है। इसलिए परिवारवाले की परवाह किये बिना उसने एम.ए. तक पढाई की। शादी के समय में भी एक आदर्श पुरुष जो दहेज के बिना शादी केलिए तैयार हो जाता है - को चुनने में वह सफल हो जाती है। परीक्षा की रस्म संपन्न होने के बाद अनिरुद्ध ने उसको लिखा "मेरे लिए विवाह मात्र एक सामाजिक आवश्यकता नहीं है। इसे मैं धर्म की दृष्टि से देखने का पक्षपाती हूँ। पुरुष और नारी के संबन्ध का नाम ही तो विवाह है और यह तभी संभव है जबकि हम एक दूसरे के आदर्श और सदिच्छाओं का आदर करें, यथाशक्ति उसमें सहयोग दें।" तनु ने यह पत्र पढकर साफ जवाब दिया "मैं एक सजी-धजी दासी की तरह अपने भगवान की पूजा करना चाहती हूँ,

भिखारिन की तरह नहीं । दो तन एक मन होकर ।"[70]

लड़की को पराई अमानत माननेवाली माँ के बर्ताव के खिलाफ वह आवाज़ उठाती है । वह माँ से लड़की के अधिकार के बारे में प्रश्न उठाती है । वह माँ से यह बात सुनकर तिलमिला उठती है कि आभूषणों के लिए उसे वापस आकर काम करना पड़ेगा । वह माँ से खुल्लम खुल्ला पूछती है - "क्या घर के एक तिनके पर भी कोई अधिकार नहीं हैं ? यहाँ से जो कुछ उसके साथ जायेगा, वह सब क्या उसकी ही कमाई का होना चाहिए ? अगर कुछ भी अतिरिक्त होगा तो वह उसे भरना होगा ?"

पति के निर्जीव ठण्डे व्यवहार के प्रति वह मौन न रह सकी । पति द्वारा दिये उस निर्जीव से शारीरिक सुख ने उसे आनन्द नहीं दिया था । इसलिए अनिध की ताई ने आकर उसकी कर्मठता के गुण का बखान किया तो उसने कहा - इस कर्मठ सज्जन केलिए तो शादी की कोई ज़रुरत ही नहीं थी । बाद में उसने सभी रूढ़ियों को तोड़कर किसी हिचक के बिना मौसीजी से पति की निस्संगता के बारे में बता देगा । नहीं मौसी जी, ऐसा मेरी जिन्दगी में कभी नहीं होगा, मेरा घर आँगन में कोई नन्हा-मुन्ना नहीं खेलेगा कभी ।"[71] जब मौसीजी ने पुरुष को रिझाने के, प्रसन्न करने के गुर बता दिया तो वह सुनती रही और सोचती रही "क्या शुरु शुरु में ही उसे अपने पति को रिझाने केलिए उपाय करने होंगे ? आर्थिक कठिनाइयों के होते हुए भी नवोढा पत्नी के प्रति उदासीन तटस्थ कोई व्यक्ति कैसे रह सकता है ।"[72]

पति द्वारा उसे पूर्ण आज़ादी प्राप्त है । लेकिन तनु इस प्रकार की स्वतंत्रता को स्वतंत्रता नहीं मानती । उसके अनुसार यह एक तरह का पलायन है । पत्नी की इच्छा में बाधा न डालना उसकेलिए स्वतंत्रता नहीं है । पति के व्यवहार से वह ऊबने लगी । पत्थर की मूरत जैसा व्यवहार वह नहीं चाहती । नवोढा पत्नी अपने घर जाने की

तैयारी करने पर पति ने कहा "मैं तुम्हारी इच्छा में बाधक नहीं बनूँगा ।" तनु को मालूम हुआ यह तो इनकी आदत है इसलिए पूछा "ऐसा कहकर तुम मुझे बहुत प्रसन्न बना रहे हो न?" । लेकिन अनिरुद्ध का कहना है "मैं समझ ही नहीं पा रहा कि तुम्हें मैं बाँधकर प्रसन्न कर पाऊँगा या मुक्त छोड़कर । वैसे नारी को बाँधकर रखने का पक्षधर मैं कभी नहीं रहा हूँ । अपना विकास करने केलिए उसे सर्वथा स्वतंत्र रहना चाहिए ।"[73]

अपने मन का भाव प्रकट करने में वह हिचकती नहीं । बड़ी बड़ी बातें करने वाले अनिरुद्ध से लड़ना बेवकूफी है, यह जानने पर भी वह बीच बीच में उसके साथ बहस करती है । पति को छोटी छोटी दुनियादारी की बातों से जुड़कर रहना पसंद नहीं है । लेकिन तनु अपने हर कामों को समझना अपना अधिकार समझती है । पति की बातों को जानने का हक सह-धर्मिणी के नाते उसे भी है । इसलिए उसने अनिरुद्ध से कहा - मुझे भी बताओ न अपनी समस्यायें अपनी बातें, अपने काम । लेकिन अनिरुद्ध ने कहा "समय पर तू जान जाओगी ।" इस तरह के व्यवहार से वह काँप उठी और सोचने लगी - ऐसे व्यक्ति से वह कैसे मेल बैठा पायेगी ? स्त्री पुरुष के मधुर प्रणय संबन्धों को रूप देने केलिए भी किसी समय की प्रतीक्षा करनी होती है क्या ? स्निग्ध - मांसल अपनी देहयष्टि के बारे में कुछ सुनने का अवसर अनिरुद्ध से उसे कभी नहीं मिला था ।

वह पति के हर व्यवहार को चुप होकर सहनेवाली सती-सावित्री नहीं है । जब उसके मायके से पहली बार बुलावा न आया तो अनिरुद्ध उसे छोड़ने केलिए गया था । रास्ते में उसने तनु से शिकायत की कि मुझे इधर आना अच्छा नहीं लगता । फिर पहली बार तो कम से कम लड़की के परिवारवालों का ही कर्तव्य होता है कि ..." यह सुनकर वह जल उठी और पूछा - "अब तुम्हें लड़की और लड़के के परिवारवालों के कर्तव्यों का काफी ज्ञान हो गया है ?"[74]

वह पुरुष की चालाकी बिलकुल नहीं मानती । लंबे समय तक माइके रहने पर भी उसे अनिरुद्धने वापस बुलाया नहीं । लेकिन जब घर किराये पर लेना पडा तो उसके नाम पर लेने की योजना से तनु असंतुष्ट हो गयी । इस प्रकार के बर्ताव पर वह सोचती है - पुरुष हमेशा स्त्री को इस प्रकार संपत्ति में आकृष्ट होने वाली ही समझा है । सात फेरे हो जाने के उपरान्त ही क्या व्यक्ति की मनःस्थिति में इतना बडा परिवर्तन आ जाता है । वह खुद सोचती रही "मुझे प्रसन्न करने केलिए अब ये गुर अपनाने होंगे क्या ? इस प्रकार के गुरों से नारी रीझती है, यह किसने बता दिया इन्हें । क्या इन्होंने सचमुच मुझे रुपया पैसे जमीन जायदाद, मिट्टी, गारे से आकृष्ट होनेवाली एक साधारण महिला समझ लिया है ।"[75]

तनु स्त्री का स्वावलंबी रूप ही पसंद करती है । अपने पैरों पर खडी होने की शक्ति में वह विश्वास रखती है । यह नारी की मुक्ति भावना है । समाजवादी फेमिनिस्ट यह मानते हैं कि नारी को भी संपत्ति की अधिकारिणी मानने से पारिवारिक व सामाजिक उन्नति हो सकती है । उसकेलिए उसे घर छोडकर बाहर काम करने में कोई खतरा नहीं है । तनु भी इस प्रकार सोचती है । नौकरी करने का प्रस्ताव सुनते ही अनिरुद्ध ने पूछा "क्यों ? क्या मैं तुम्हारी खाऊँगा ?" तनु ने जवाब दिया - "मेरी नहीं खाओगे, पर मैं तो अपनी कमाई खा ही सकती हूँ । अनिरुद्ध ने उसे--
अपनी मौजूदा हालत की सूचना देकर उसे रोकना चाहा तो वह पूछ उठी "तो जिन स्त्रियों को बच्चे होते हैं वे क्या काम नहीं करती ।"

पुरुष के समान हर काम में अधिकार हासिल करने की शक्ति स्त्री में है - ऐसा विश्वास तनु में है । स्त्री होने के नाते वह "अबला" बनकर जीना नहीं चाहती । उसका विचार है, अवसर और अधिकार का उपयोग स्त्री-पुरुष दोनों को बराबर होना हैं । इसलिए वह अपने पति के वास्ते नौकरी की सिफारिश केलिए भी तैयार थी । लेकिन अनिरुद्ध को

नारी का यह भाव पसन्द नहीं आया । तनु ने पूछा - "बीवियों के काम केलिए मर्द जा सकते हैं तो मर्दों के काम केलिए बीवियाँ चली जायें तो क्या बुरा है ? फिर औरतों की आगे करने की बात ही नहीं होनी चाहिए तो मकान के मामले में मुझे फँसाने की क्या पड़ी थी, पुरुष के रहते स्त्री के नाम पर मकान किराये पर लेने की क्या बात होती है ।"[76]

कहीं से भी अन्याय सहना उसकेलिए कठिन था । स्त्री होने के नाते पुरुष वर्ग की मनमानी सहने केलिए वह तैयार नहीं है । इसके लिए जहाँ भी आवाज़ उठानी पड़ती है, वह डरती नहीं । जब स्कूली अधिकारियों ने शादी के बहाने उसे नौकरी से हटाना चाहा तो उसने उनसे लड़कर फिर से नौकरी में जोयिन कर ली ।

पति से प्यार की झलक न मिलने के कारण पड़ोसी ध्रुव से प्यार लेने में वह बाध्य हो जाती है । ध्रुव को सांत्वना देते वक्त जीवन में पहली बार स्पर्श की उस उष्मा का अनुभव उसने किया, जिसकी अनुभूति उसे जिंदगी में अभी तक नहीं हुई थी । अनिरुद्ध के भूखे तटस्थ व्यवहार ने उस सत्य को कभी उजागर ही नहीं होने दिया था । कभी कभी तनु मन में कहती रही "सचमुच तुम मुझे पागल बना दोगे ध्रुव । तनु इधर रूढिमुक्त हो जाती है । पतिव्रता केलिए पति के अलावा दूसरे पुरुष के बारे में सोचना पाप है । लेकिन नारीजागरण, शिक्षा, आदि के कारण नारी में आमूल-चूल परिवर्तन आ गया है । नारी मुक्ति आंदोलन के राडिकल वादियों ने प्यार केलिए तड़पकर जीने से प्यार का अनुभव अपनाने का आह्वान दिया है । तनु के मन में भी ध्रुव की ओर झुकने से कोई पाप बोध नहीं है । तनु कहती है - अनिरुद्ध का विचार यह है कि "मुझे फूले ढंग से घर-गृहस्थी की बात कर लेना ही पत्नी केलिए काफी है ।"[77]

तनु जीने केलिए पुरुषों का पैर पकड़नेवाली नहीं है । पति या पुत्र से इनकार मिलने पर भी वह तनकर खड़ी होना ही ठीक समझती है । रिटयर होने के बाद पति दूसरे शहर में अकेले रहना चाहता है ।

यह समझकर तनु ने बिलकुल निस्संग और निडर होकर पति से कहा - "ठीक है अगर तुमने यही सोचा है तो मैं क्या कह सकती हूं, मैं तो यही चाहती हूं कि तुम संतुष्ट और खुश हो। तनु के सहारे केलिए अनिरुद्ध ने एक लड़की का प्रबन्ध कराया तो वह कह उठी - मैं कहती हूं छोड़ दो मेरे हाल पर। मुझे कुछ नहीं चाहिए ··· इस प्रकार के प्रतिदिन से कुछ कुछ नहीं बनेगा। पति के दूर रहने पर कोई दूसरा इन्सान रूपी मशीन आकर बैठ जाये तो क्या बनेगा मेरा ?[78]

सहचरी बनने केलिए ही उसकी तड़प है। उसे यही दुःख सालता रहता है कि वह उसका किसी प्रकार का सहयोग नहीं कर पा रही। कभी यह भी सोचती रही है कि उसे उसके मन के अनुकूल ही बनना चाहिए - सारे जग की माँ, उसकी खुद की भी, उन दोनों की भी, और उस पूरे झुण्ड की जो अब निरन्तर पीढ़ी - दर पीढ़ी फैलता ही चला जायेगा। पर उस प्रकार के उत्सर्ग करके वह जो कुछ पायेगी, वह प्यार होगा या दया ? दया अथवा तरस के नीचे वह नहीं रह सकती। उसे अपना अधिकार चाहिए। पूरा अधिकार। किसी के आगे वह क्यों लचे। इसलिए वह मन ही मन सोचती और कहती है - "तुम मुझे नहीं जानते अनिरुद्ध। पर मैं अपने को पहचानती हूं। अपने प्रिय के साथ किसी की भी राई-रत्ती साझेदारी सहन नहीं कर सकती, चाहे वह किसी भी रूप में हो। उस मामले में मैं हमेशा से ईर्ष्या करने-वाली, जलकुड़ी और अधिकारप्रिय रही हूं। अपना अधिकार खोकर मैं दाता नहीं बन सकती अनिरुद्ध। पर याचिका भी नहीं बनूंगी। तुम्हारे आड़े नहीं आऊंगी अब मैं[79] दृढ़ चित्तवाली तनु आँसू गिराये बिना अनिरुद्ध की राह देखती जीवन बिताने का निश्चय कर लेती है।

यों शशिप्रभा शास्त्री जी ने प्रस्तुत उपन्यास के ज़रिये एक उच्च शिक्षिता स्वाभिमानी नवयुवति के मानसिक घात-प्रतिघातों को अत्यन्त मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। तनु भारतीय नारी की वह प्रतीक है, जिसको ऊँचे आदर्श और ऊँचे पद पर विराजने वाले पति से सब सुख सुविधाएँ उपलब्ध हैं। फिर भी वह संतुष्ट नहीं है। वह पति के

साथ अपने को व्यवस्थित नहीं कर पाती है । पति के सामान्य प्रश्न भी उसके सामने कई प्रश्न चिह्न खड़े कर देते हैं । स्वयं सब सहकर, अंत में वह जुझारू योद्धा की तरह उसके समक्ष खड़ी हो जाती है । उसमें रूढ़ि-ग्रस्त भारतीय नारी का रूप नहीं है । वह रूढ़िमुक्त भारतीय नारी है । नारी जागरण के द्वारा जागृत भावना और विचार उसमें है । वह पति को परमेश्वर नहीं बल्कि सह धर्म-कर्म में भाग लेनेवाले साझेदार मानती है । नारी मन की कोमल भावनाओं का स्पर्श करनेवाला यह उपन्यास आज की आधुनिक नारी का यथा तथ्य चित्रांकन करने में सफल है ।

कृष्णा सोबती

ऐ लड़की

"ऐ लड़की" उपन्यास क्षेत्र का एक नया मोड़ है । यह मृत्यु की प्रतीक्षा में पड़ी एक बूढ़ी स्त्री की कहानी है । मरने के पहले अपने अचूक जिजीविषा से अपनी गत ज़िंदगी की वह याद करती है । उसमें घटनाएँ, बिम्ब तस्वीरें और यादें अपनी सारी ऊष्मता के साथ पुनः अवतरित हो गयी है ।

अम्मू

उपन्यास की नायिका अम्मू बीमार पड़ी है । वह "कोमा" की अवस्था में अपने जीवन के इने गिने दिन व्यतीत कर रही है । इस अवस्था में भी उसकी शक्ति और मनोबल सराहनीय है । पिछले जीवन की परत दर परत वह खोलती है । वह अपनी बेटी से कहती है "मैं मज़बूती से अड़ी हुई हूँ । रोग-बीमारी मनुष्य के बड़े दुश्मन है ।"[80]

मज़बूत होकर वह अपने जीवन जीने में तुली हुई है । उसके सामने दुःख, संताप आदि केलिए स्थान नहीं है । बेटी से उसका कथन है "लड़की, यह बतानेवाली बात नहीं । संताप ऐसा कि हर किसी को अकेला ही झेलना पड़ता है ।"

पुरुष के अहं के बारे में उसे सूक्ष्म जानकारी है। वह उसके सामने हाँ में हाँ मिलानेवाली पत्नी कभी नहीं थी। नयी नवेली बहू बनकर पहाडी यात्रा की अनुस्मरण करती हुई वह कहती है - पहाडी सैर के बीच पति की बातों से जब सहमत न हुई तो पति ने उससे रीझकर कहा - "अपने को संवारने केलिए बहुत कुछ सीखना पडता है। सिर्फ घोडे की सवारी से काम नहीं चलता। पुरुष के इस भाव के बारे में उसका विचार है "लडकी मर्द, का दबदबा रहना ही चाहिए। उसका स्थान नीचे नहीं ऊपर है। और वह आगे कहती है "अगर पुनरागमन की बात में कुछ तत्व है तो अगले जन्म में पुरुष बनकर देखना चाहती हूँ। पता तो लगे चलर्वत सैनिक कैसे स्त्री और परिवार पर छाया रहता है।"[81]

शादी शुदा होना और माँ बनने के प्रति वह विचित्र दृष्टिकोण रखती है। माँ, बेटी से सब बात खुलकर बताती भी है। बीमार माँ की देख-रेख में लगी रही बेटी को वह उपदेश देती है "सुन लडकी इस दुनिया में कोई किसी का इरादा नहीं चुरा सकता। इसका कसूर मेरे सिर कभी न धरना। न आज और न कल।"[82] उसके अनुसार जब एक स्त्री युवती से माँ बन जाती है तो वह अपार शक्ति भी हासिल करती है। उसे जो भी दर्द सहने की शक्ति अपने आप मिल जाती है। और माँ बनने से उसे ब्रह्माण्ड के कण कण से शक्ति संचित करने का मौका मिलता है। "लडकी, बच्चे ख्यालों से नहीं बनते। बनाने में मेहनत लगती है। खून पसीना एक हो जाता है माँ का। इस बारे में आगे फिर वह बताती है - लडकी, बच्चा बनाने से ही दर्द का साज-सिंगार पता लगता है।"[83]

दुःख के सामने साधारण सी नारी बनकर वह रोती तडपती नहीं। दुःख का सामना करने में ही जीवन की सफलता है। उसके विचार में दुःख अनेक प्रकार के हैं। दुःख सहने से शक्ति मिलती है। वह बेटी को दुःख के बारे में सचेत करती है - दर्द भी कई किस्म के। हलका, तेज़ और तेज़। लडकी इस लोक का सारा खेल ही इसमें समाया रहता है।"[84]

माँ का पद वह अमूल्य मानती है । इसलिए वह कहती है - "लड़की बच्चा बनाना एक तरह का यज्ञ ही है री । इन दिनों औरत पूरे ब्रह्मांड से शक्ति के कण खींचकर अपनी उर्वर ज्वलित कर लेती है । अपने में कुछ विशिष्ट ही जीती है । अपने अंदर का आकाश निरखती है । जीव उत्पन्न करने में उसकी गूँथ-गूँज कुदरत से मिली रहती है ।"

पुत्री जन्म पर शोक मनानेवाले वर्तमान समाज केलिए अम्मू एक विचित्र मिसाल है । उसके अनुसार बेटा या बेटी में कोई फर्क नहीं रखना है । उसकी बेटी ने जब प्रश्न किया कि "लड़की को देख मन उदास तो हुआ होगा । तो वह जवाब देती है "इतनी चतुर न बन लड़की, अपने दिल से पूछ । कभी तुम बहन, भाइयों में कोई भेदभाव किया गया ?" बेटी कहती है "सब घरों में लड़कियों के साथ ऐसा नहीं होता । लड़की के पहुँचते ही निराशा छा जाती है । यह सुनकर अम्मू बेटी की महिमा बताती है - अपनी समरूपता उत्पन्न करना माँ केलिए बड़ा महत्व-कारी है । पुण्य है । बेटी के पैदा होते ही माँ सदा जीवी हो जाती है । वह कभी नहीं मरती । हो उठती है वह निरंतरा । वह आज है, कल भी रहेगी । माँ से बेटी तक । बेटी से उसकी बेटी तक, उसकी बेटी से भी अगली बेटी । अगली से भी अगली वही सृष्टि का स्रोत है ।"[85] सृष्टि में पिता का महत्व ज़रूर है । इनसान के बच्चों में पिताओं का ही लहू दौड़ता है । लेकिन पिता बाहर खड़ा रहता है और माँ अंदर बच्चा जनती है । इसी से माँ "जननी" कहलाती है । वह अपने तन-मन में बच्चे की काया उगाती है ।

अम्मू की हर बात में एक प्रकार की विचित्रता है । उसके अनुसार स्कूल नहीं जाने से कोई भी स्त्री अनपढ नहीं रहती है । यदि उसमें ताकत है, तो वह विद्या कहीं से भी सीख सकती है और अपने जीवन की प्रयोगशाला में सतर्क पग रखने में यह सहायक भी हो सकती है । इसलिए वह बेटी से कहती है - लड़की, तुम्हारी माँ पतंजली नहीं पढा तो क्या हुआ । विद्या सुनी जाती है, देखी जाती है, और जी भी जाती है ।"[86]

खुद सीखी हुई विद्या के अनुसार वह जीवन का विवेचन करती हुई बताती है - हर नर अपने को परम पुरुष समझता है। इसलिए कि जीवन की कस्तूरी उसी को लगी है। लड़की जीवन हिरणी है, हिरणी। कस्तूरी मृग। इस क्षणभंगुर जगत में अपनी महक फैला यह जा वह जा। थोड़े से पलों के लिए औरत इस भागते मृग को थाम लेती है और आप मृगया बन जाती है। यही सृष्टि का खेल है। यहीं से चल निकलती संतति .... संतान की अटूट कड़ी।"

अम्मू के अनुसार पुरुष मेधा समाज होने के कारण पुरुष में पुत्र की लालसा है। पुत्र की गहरी लालसा नर के तन मन में व्याप्त है। उसकी प्रकृति और प्रवृत्ति दोनों में पैवस्त है। पुत्र-पौत्र-प्रपौत्र-पिता बनकर वह आगे से आगे की सोचता है। परिवार को दफ्ती में बाँध लेता है। परिवार अपने चाहने करने से नहीं बनता, वह मनुष्य का पूर्वार्जित होता है। उसके पुण्यों का फल। पिता जलाशय है। पीढ़ी दर पीढ़ी परिवार सींचता चला जाता है।"[87]

अम्मू अपनी बेटी को जीवन को निर्भय होकर सामना करने की सलाह देती है। "अपने लिए दुःख नहीं मानना। निराशा के परे ही रखना। मेरी बात का ध्यान करना। अब अपने में किसी पराये को उगाने की ज़रूरत नहीं। किसी के धकेलने से कोई धावक नहीं होता। खुद अपनी दौड़ दौड़ने से धावक कहलाता है। सबके बस का नहीं।"[88]

राडिकल विचार होने पर भी ज्यादा राडिकल बनाना वह पसंद नहीं करती है। उसके अनुसार स्त्री की असली मुक्ति "स्त्री होकर" जीने में हैं। बेटी से - जिसने अविवाहित रहने का निश्चय कर लिया है - वह कहती है - तुम लोग अपने को अनोखा क्यों समझते हो। घरानों की तीसरी पीढ़ी आप ही नीचे सरक जाती है। खानदान की नाक पर गुमान चिपका ही रहे, यह ठीक नहीं।"[89]

अम्मू के अनुसार नारी, जीवन में मुक्ति और सुधार चाहती है तो उसे खुद कमाना पड़ता है । "उसका वक्त तब सुधरेगा जब वह अपनी जीविका आप कमाने लगेगी ।"[90] शादी के बाद औरत पूरे परिवार केलिए शिकारे की मांझी बन जाती है । झील में तिरती नाव पर सवार परिवार मज़े, मज़े झूमते हैं और चप्पू चलाती है औरत । वह उम्रभर चलाती जाती है । औरत को खुद अपने पर ध्यान देना है, नहीं तो कोई उसकी परवाह नहीं करेगा ।

अम्मू का स्वतंत्रता-बोध रेडिकलों की मुक्ति नहीं है । उसके विचार में नारी का स्वतंत्र अस्तित्व कायम रखकर घर - गृहस्थी के साथ जीवन बिताना ही सच्ची मुक्ति है । उसे पता है कि परिवार संचालन आसान नहीं है । उनके अनुसार सच्ची आज़ादी मनमानी करने में नहीं, बल्कि कुछ मन चाहा करने में है ।

अम्मू अवश्य आधुनिक औरत है । उसके अनुसार घर में ऐसा कुछ नहीं, जो बदला न जा सके । वह बेटी को इजाज़त देती है कि जिसे करने में आराम मिले, सहूलियत हो और जो मन को अच्छा लगे, वह निश्चिंत होकर कर सकती हो । वह अपने परिवार में लड़के लड़की में कोई भेद नहीं दिखाती है । अम्मू याद करती है कि अपनी मायके में लड़का लड़की के बीच भेद-भाव स्पष्ट दिखाई पड़ते थे । "भाई को कालेज भेजा गया और हम बहनें की पढ़ाई पंडित, ग्रंथी और मौलवी के पास । ज़रा सोचो मैं अपनी भाई की तरह पढ़ती तो क्या बनती । क्या होती मैं और क्या होते मेरे बच्चे । सच तो यह है कि लड़कियों को तैयार ही जानमारी केलिए किया जाता है । भाई पढ़ रहा है जाओ दूध दे आओ । भाई सो रहा है, जाओ कंबल ओट दो । जल्दी से भाई को थाली परोस दे । उसे भूख लगी है भाई खा चुका है। लो अब तुम भी खा लो ।"[91]

लड़का-लड़की के बीच के इस फर्क के प्रति अम्मू के ज़रिये सोबती जी आवाज़ उठाती है । नारी मुक्ति की तीनों धाराएं इस प्रकार की भिन्नता को नष्ट करने केलिए जी तोड़ मेहनत करती हैं । उपर्युक्त

उपन्यास में अम्मू स्त्री जीवन का विश्लेषण कर बताती भी है "गृहस्थ में पाँव रखकर स्त्री का जो मंथन-मर्दन होता है, वह भूचाल के झटकों से कम नहीं होता । औरत सहन कर लेती है, क्योंकि उसे सहन करना पड़ता है ।"[92]

यों नारी की स्वतंत्रता और हैसियत केलिए अम्मू मरते दम तक अपनी जीभ चलाती रहती है । उसके विचारोंमेंनारी स्वतंत्रता के नये आयाम ही परिलक्षित है । मरते वक्त तक स्वतंत्र अस्तित्व को कायम रखती हुई अपनी कुंआरी बेटी को भी वैसे ही अपने अस्तित्व और व्यक्तित्व को सुरक्षित रखने का वह उपदेश देती है ।

निष्कर्ष

मानव समाज में नारी का महत्त्वपूर्ण स्थान है । उसे समाज के श्रृंगार और शक्ति का अजस्र स्रोत माना गया है । वह मानव जीवन की प्राणदायिनी शक्ति और मानवता की जननी है । उसकी कोख से मानव समाज के भविष्य का जन्म होता है ।

भारत में अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध से ही नारी पर तरह-तरह के प्रतिबन्ध लगाये जाते थे । उसे न खुलकर विचार व्यक्त करने की आज़ादी थी न ही बाहर निकलने की । तरह तरह से पुरुष समाज द्वारा प्रताडित होकर नारकीय जीवन बिताने पर वह मजबूर थी । बाद में समाज बदला, परिवेश बदला, नियम बदला तो नारी में चेतना की लहरें दौडीं । उसने अपनी कुंठाओं की केंचुल उतार फेंकी । महादेवी के अनुसार अदृष्ट की विडम्बना से भारतीय नारी पवित्र देव मन्दिर की अधिष्ठात्री देवी और अपने गृह के मलिन कोने की बन्दिनी भी बन चुकी है । वह मानती है अनादर, अश्रद्धा आदि उसके जन्मसिद्ध अधिकार है । उसे जगाने का प्रयास करनेवाले भी प्रायः उसी सन्देह में पडे रहे कि यह जाति सो रही है या मृतक ही हो चुकी है । जिसकी जागृति स्वप्न मात्र है ।"[93]

इस प्रकार सुप्त पडी नारी चेतना को जगाने का काम आधुनिक महिला उपन्यासकारों ने अपना लिया । महिला उपन्यासकार यह मानती है कि शैशव से लेकर युवावस्था तक निरन्तर नारी में हीनता ग्रंथि और पुरुषों में श्रेष्ठता ग्रंथि का विकास किया जाएगा और इस विकास में परिवार की स्त्रियाँ ही अधिक भागीदार होंगी तो पुरुष को दोषी ठहराना व्यर्थ है । इसी भेद-भाव से लडकी की सामाजीकरण – प्रक्रिया गलत हो जाती है । इस प्रक्रिया में शुरू से ही जब मानव-मनोविज्ञान के बजाय नारी मनोविज्ञान और पुरुष मनोविज्ञान की अलग अलग दृष्टि होने लगती है तो नारी मानवी कैसे बनेगी ? इसलिए महिला लेखिकाओं का विचार है, यदि नारी को स्वतंत्र हैसियत मिलनी है तो मानव मनोविज्ञान के आधार पर उसके विकास केलिए स्वयं पथप्रशस्त करना है ।

भारतीय नारी कहीं सम्मानित होती है तो माँ के नाते, वह भी बेटे की माँ के नाते । बेटी और पत्नी के रूप में वह पुरुष के अधीन संरक्षित स्थिति में ही मान्य है । अविवाहित रहकर या पति से अलग रहकर वह अपनी बुद्धि, प्रतिभा योग्यता, साहित्य कला-मर्मज्ञता, कार्य कुशलता, नेतृत्व आदि अर्जित गुणों से समाज केलिए, राष्ट्र केलिए अन्यथा किसी भी उपयोगिता सिद्ध करें, समाज उसे इज्ज़त की नज़र से नहीं देखेगा।"[94] महिलाओं के अन्तर भरा हुआ अज्ञान, रूढिवादिता, आत्मविश्वास की कमी, पुरुषाश्रित रहने का परम्परागत स्वभाव आदि अनेक कमज़ोरियाँ हैं जो इन्हें आगे बढने से रोकती हैं । व्यक्तिगत जीवन में हर मोड पर नारी ही प्रधान भूमिका निभा रही है । वर्तमान समाज-व्यवस्था में नारी की दयनीय हालत को देख समझकर ही महिला उपन्यासकारों ने अपने भीतर के प्रतिवाद को उपन्यास के रूप में व्यक्त किया है। महिला लेखिकाओं ने अनुभव किया कि नारी को अपनी अहमियत हासिल करने केलिए मदद देनी चाहिए ताकि अपनी विशेष परिस्थिति में वह स्वतंत्र निर्णय ले सके और वह उत्थान की ओर बढ सके । इस के लिए नारी के

सारे महिला उपन्यासकारों ने भरसक कोशिश की है । 1960 के बाद महिला लेखन की बढोतरी पिछत एक दशक में आयी नारी जागरूकता की ज्वलंत मिसाल है ।

अपने देश व समाज की चुनौतियों के बीच आधुनिक कथा साहित्य विकास के दौरे से गुज़रा है वहीं से महिला-उपन्यास लेखन का इतिहास भी शुरू होता है । महिला उपन्यास लेखन में एक नैरन्तर्य मिलता है ।

स्वातंत्र्योत्तर काल से ही रूढिवादिता का ह्रास दृष्टि गोचर होता है । नारी पुरुष की भोग्या अथवा समर्पिता बनकर नहीं रहना चाहती, आर्थिक क्षेत्र में स्वावलंबी बनकर वह पुरुष से मुक्त होना चाहती है । समाज में स्त्री के स्वतंत्र व्यक्तित्व के आग्रह के कारण रूढिवादियों में बौखलाहट उत्पन्न हुई । नारी आत्मविश्वास और स्वाभिमान के साथ अपना व्यक्तित्व निर्माण करने लगी । वह प्राचीन मान्यताओं से मुक्त होकर पुरुष के समकक्ष प्रतिष्ठा पाने की ओर प्रयत्नशील है ।

उषा प्रियंवदा के उपन्यास 'रूकोगी नहीं राधिका' में परिवार से अलग और मुक्त व्यक्तित्व स्पष्ट किया गया है । उसे जो स्थान चाहिए वह स्थान परिवार में नहीं पाती इसलिए वह उन्मुक्त जीवन जीती है । राधिका के समान सुषमा और अनुका देती नारी के मुक्त दृढ व्यक्तित्व का उदाहरण प्रस्तुत करती है ।

सोबती के उपन्यासों की सभी नारी पात्र पुरुष-मेधा समाज के शोषण और अन्याय से खुले आम लडनेवाली हैं। कृष्णा सोबती के "मित्रो मर जानी" में नयी पीढी की नारी का अंकन किया है । मित्रो को किसी आदर्श का भय नहीं था, किसी समाज का नहीं पति या सास-ससुर का भी भय नहीं था । वह स्वयं को पुरुष से कम नहीं मानती । वह परिवार में सभी को आचार-विचार के बारे में निर्भीकता से जवाब देती है । सदियों से नारी पुरुष की दासी रही है, लेकिन इस उपन्यास में मित्रो किसी के हाथ की कठपुतली नहीं बनना चाहती । उसी प्रकार

रत्तिका, अम्मू सभी निर्भीक व सुदृढ पात्र हैं ।

आज नारी घर की देहरी लाँघकर समाज के विभिन्न क्षेत्रों की ओर आगे बढ रही है । आज युग की मांग के अनुसार पुरुष उसे नौकरी करने की अनुमति ज़रूर देता है, पर स्वामित्व बना ही रहता है । घर से बाहर नौकरी या अन्य पेशा करती नारी का पुरुष द्वारा शोषण होता है । आधुनिक नारी की प्रगतिशीलता पुरुष के परंपरागत अहंमन्य व्यक्तित्व के लिए चुनौती है । साठोत्तर उपन्यासों में नारी शोषण के अनेक उदाहरण मिलते हैं ।

"कुमारिकाएँ" की शुचिता, "उसका घर" की सोफिया, ऐलमा, "परछाइयों के पीछे" की सुमित्रा आदि पत्नी के परम्परागत आदर्श को मानती हुई भी अपनी प्रगतिशीलता का परिचय देती है । आज की नारी प्राचीन काल की नारी से अधिक प्रबुद्ध है और उसमें अपने अधिकारों के प्रति एक चेतना जाग्रत हुई है । साथ अपनी समस्याओं के प्रति भी जागरूक दिखाई देती है । परंपरा से भारतीय समाज में विवाह की एक प्रतिष्ठित व्यवस्था स्वीकार की जाती रही है, किन्तु विवाह के कारण नारी का शोषण होता है । इसलिए महिला उपन्यासकारों ने इस सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध जो आवाज़ उठाई है, उससे लगता है कि आगे आनेवाली दशाब्दियों में विवाह का महत्त्व एक हद तक समाप्त हो जाएगा । दहेज और शादी से जुडी अनेक बुराइयाँ खत्म भी हो जायेंगी। विदेशों में तो विवाह को व्यावहारिक कान्ट्राक्ट की सी मान्यता प्राप्त है । भारतीय नारी भी अनेक रूपों में बाह्य प्रभावों से प्रभावित हुई है । आज की पढी लिखी नारी मात्र "हाउस वइफ" बनकर संतुष्ट नहीं है । जहाँ भी उसकी स्वतंत्रता में खलल पड़ता है, संबन्धों में दरार आ जाता है, वह प्रतिक्रिया प्रकट करती है । मन्नू भण्डारी की शकुन, मिनी आदि इसकेलिए मज़बूत गवाह है ।

"कातर क्षण" की कुन्ती अपनी भावनाओं का कद्र करनेवाले पति को साफ इन्कार करती है । "समाधान" की गौरा लम्पट पति को चोट पहुँचाती है । "प्रतिध्वनियाँ" की अचला का विवाह नीलकान्त से होता है किन्तु वह विनय से प्यार करती है । विवाह उसकेलिए सौदा है । "कुमारिकाएँ" की वन्दना, "पचपन खम्भे लाल दीवारें" की सुषमा, आदि शादी किये बिना नौकरी करके कुमारी जीवन बितानेमेंजीवन की सार्थकता का एहसास करती है । नारी को जीने केलिए शादी करना है इस तथ्य को वे इन्कार करती है । "शेषयात्रा" की अनुका, आपका बंटी की शकुन, आदि दूसरी शादी करके अपने जीवन को पुन:पल्लवित करती है । "नावें" की मालती, उसका घर की रेशमा, आदि कुमारी जीवन में माँ बनने से कोई खतरा नहीं महसूस करती । "कर्क रेखा" की तनु, पति और बेटे के होने पर भी अकेली रहती है और कोई सहारे के बिना जीवन बिताने का निश्चय करती है ।

आज की प्रगतिशील नारी ने विवाह को सुविधा प्रदान करती व्यवस्था ही मानी है । जो अगर सुविधा प्रदान न करें तो अनुपयोगी हो जाती है । यौन भूख केलिए तड़पनेवाली मित्रों जब अपनी सास से खुलकर इसके बारे में बताती है और दूसरे पुरुष को चाहती है तो इसके ज़रिए वह सभी सामाजिक रूढ़ियों को तोड़कर स्वतंत्र व्यक्तित्व ही प्रस्तुत करती है । उसी प्रकार आज जागृति के कारण विधवा भयानक यन्त्रणाओं से मुक्ति पा चुकी है । वह फिर से विवाह कर सकती है और पुन: नया जीवन शुरू करने का पूरा अधिकार रखती है ।

आज की नारी स्वयं चुनाव करने केलिए मज़बूत है । कभी कभी उसे अधिकार न मिलने पर इसकेलिए लड़ती भी है । "रुकोगी नहीं राधिका" की राधिका, "नावें" की नीलिमा, "उसका घर" की रेशमा सब स्वयं वरण करनेवाले पात्र है ।

इस प्रकार आधुनिक हिन्दी महिला उपन्यासकारों ने नारी के उभरते हुए व्यक्तित्व के अनेक रूप प्रस्तुत किए हैं। सामाजिक जागरण और पश्चिमी नारी मुक्ति आंदोलन के परिणामस्वरूप तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था के खिलाफ प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में नारी ने विद्रोह किया। इसका प्रत्यक्ष प्रभाव महिला उपन्यासकारों पर पड़ा भी है। इसलिए नारी जीवन की अनेक समस्याओं को इनमें स्थान मिला है।

टिप्पणियाँ

1. शेष यात्रा - उषा प्रियंवदा, पृ.42
2. वही, पृ.48
3. वही, पृ.9
0. वही, पृ.9
4. वही, पृ.62
5. वही, पृ.63
6. वही, पृ.62
7. वही, पृ.64
8. वही, पृ.65
9. वही, पृ.105
10. वही, पृ.111
11. वही, पृ.128
12. वही, पृ.128
13. वही, पृ.72
14. वही, पृ.70
15. वही, पृ.71-72
16. वही, पृ.73
17. वही, पृ.73

18. शेष यात्रा, पृ.73

19. वही, पृ.74

= . वही, पृ.47

+ . वही, पृ.60

x . वही, पृ.8

20. वही, पृ.54

21. स्वामी - मन्नू भण्डारी, पृ.85

22. वही, पृ.3

23. वही, पृ.3

24. वही, पृ.4

25. वही, पृ.69

26. वही, पृ.70

27. वही, पृ.84

28. वही, पृ.87

29. हिन्दी उपन्यास में रूढ़ि-मुक्त नारी - डॉ. राजारानी शर्मा, पृ.322

30. मन्नू भण्डारी के कथा साहित्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन -
- डॉ. ममता शुक्ल, पृ.113

31. नयी कहानी की भूमिका - कमलेश्वर, पृ.19

32. मन्नू भण्डारी का कहानी साहित्य - गुलाब रावहाडे, पृ.161

33. वही, पृ.18

34. वही, पृ.34

35. एक ज़मीन अपनी, पृ.19

36. वही, पृ.116

37. वही, पृ.116

38. वही, पृ.120

39. वही, पृ.102

40. वही, पृ.102

41. एक ज़मीन अपनी, पृ. 116
42. वही, पृ. 201
43. वही, पृ. 201
44. वही, पृ. 115
45. वही, पृ. 199
46. वही, चित्रा मुद्गल ।
47. समाधान - क्षमा शुक्ल, पृ. 63
48. वही, पृ. 64
49. वही, पृ. 81
50. वही, पृ. 82
51. वही, पृ. 83
52. वही, पृ. 23
53. वही, पृ. 24
54. वही, पृ. 83
55. वही, पृ. 96
56. वही, पृ. 63
57. कातर धूप, पृ. 20
58. वही, पृ. 12
59. वही, पृ. 47
60. वही, पृ. 49
61. वही, पृ. 20
62. वही, पृ. 71
63. वही, पृ. 90
64. वही, पृ. 103
65. वही, पृ. 109
66. वही, पृ. 110
67. वही, पृ. 110

68. कातर धूप, पृ.242
69. कर्क रेखा, पृ.8
70. वही, पृ.9
71. वही, पृ.46
72. वही, पृ.48
73. वही, पृ.68
74. वही, पृ.69
75. वही, पृ.76
76. वही, पृ.91
77. वही, पृ.162
78. वही, पृ.244
79. वही, पृ.248
80. ऐ लड़की, पृ.8
81. वही, पृ.22
82. वही, पृ.37
83. वही, पृ.54
84. वही, पृ.55
85. वही, पृ.57
86. वही, पृ.57
87. वही, पृ.58
88. वही, पृ.65
89. वही, पृ.67
90. वही, पृ.74
91. वही, पृ.91
92. वही, पृ.99
93. श्रृंखला की कड़ियाँ {आमुख} - महादेवी वर्मा
94. नारी शोषण आईना और आयाम - आशारानी व्होरा,पृ.28

उपसंहार

उपसंहार

महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में चित्रित नारी मुक्ति के विविध आयामों के अध्ययन से पता चलता है कि नारी का संघर्ष किसी बिन्दु पर आकर खत्म नहीं होता है । यह लंबा और शायद न खत्म होनेवाला आन्दोलन है । फिर भी इसे मज़बूत करने तथा ज़ारी रखने में महिला उपन्यासकारों ने निम्नलिखित योगदान दिया है -

इन्होंने इस पर बल दिया है कि उनकी नायिकाएँ पुरुष के समकक्ष अपने स्थान और महत्व की खुली घोषणा करें । इनमें यह भावना बिलकुल नहीं है कि स्त्री पुरुष की सेविका या गुलाम मात्र है ।

महिला उपन्यासकार स्त्री-पुरुष की समानता में विश्वास रखती हैं और नारी को अबला कभी नहीं मानती । स्त्री की क्षमता में भी उनका भरपूर विश्वास है ।

स्वातंत्र्योत्तर काल में रचित उपन्यासों की नायिकायें संघर्ष करके पराजित नहीं होतीं । वे लडलडकर पुरुष मेधा के खिलाफ विजय भी पाती हैं । प्रतिकूल परिस्थिति और दमघोटू वातावरण में जीने की मज़बूरी ये नहीं दिखाती हैं । इसलिए बिना शादी के जीना, तलाक लेना, विधवा जीवन बिताये बिना दूसरी शादी करना आदि प्रगतिशील चेतना को अपनाने का आह्वान देती हैं । इस प्रकार उपन्यासकारों ने

राडिकल नारी मुक्ति भावना को प्रोत्साहित करनेवाली नारी पात्रों का नमूना प्रस्तुत किया है ।

कुमारी जीवन में ही माँ बनने का निश्चय लेकर जीवन मूल्यों में राडिकल बदलाव लानेवाली नारी का चित्रण भी हुआ है । माँ बनना नारी का अधिकार है, इस अधिकार से कोई भी शक्ति उसे वंचित नहीं कर सकती । इस मामले में उसे कोई सामाजिक डर भी नहीं है ।

जीवन में अपेक्षित परिवर्तन करने की शक्ति और साहस नारी जागरण और नारी-शिक्षा के द्वारा आज नारी ने हासिल किये हैं । इन नायिकाओं में शक्ति और साहस है । जीवन को अपनी इच्छाओं के अनुसार बदलने में ये कोई कसर नहीं छोड़तीं । इसलिए शक्ति, साहस, परिश्रम संजोकर पुरुष से अलग होकर जीने केलिए भी वे तैयार हो जाती हैं ।

समाजवादी नारी मुक्ति के प्रभाव के कारण ये महिला लेखिकायें समझती हैं कि नारी जाति का और शक्तिहीनों का शोषण एक निरन्तर चलती आयी सामाजिक प्रक्रिया है । नारी जाति का पुरुषों द्वारा विभिन्न रूपों में और विभिन्न मात्रा में शोषण होता रहा है । शोषण मानवता विरोधी है । इनकी मान्यता है कि समाज में स्त्री की हैसियत में सुधार लाये बिना सामाजिक शोषण और दासता का अन्त नहीं हो सकता । इसलिए इनकी नायिकाएँ दासता और शोषण से मुक्ति तथा शोषण को ही खत्म करने का ज़बरदस्त प्रयत्न करती हैं ।

इन लेखिकाओं ने नारी मुक्ति आंदोलन के मुताबिक आत्मनिर्भर और स्वावलंबी स्त्रियों को प्रस्तुत किया है ताकि सारी स्त्री-जाति उनसे प्रेरणा ग्रहण कर लें । महिला उपन्यासकार जानती है कि आत्म-निर्भरता और स्वावलंबन दासता से मुक्त होने का उपाय है । इसलिए ही उनकी नायिकाओं ने आत्मनिर्भर और स्वावलंबी जीवन को स्वीकार किया है ।

महिला लेखिकायें जानती हैं कि स्त्री-पुरुष समानता की स्थापना नारी-जाति के स्वस्थ एवं स्वच्छ जीवन की पहली आवश्यकता है ।

इनका विश्वास है कि पुरुष के समान स्त्री भी सामर्थ्य और शक्ति रखती है । स्त्री को अपने अधिकार केलिए संघर्ष करने की आवश्यकता है । इनके मुताबिक इनकी नायिकाएं आचरण भी करती हैं ।

इनकी नायिकायें नियतिवादी या भाग्यवादी नहीं हैं । परिस्थिति का सामना करने केलिए बुद्धिवादी दृष्टिकोण को अपनाती हैं । इनकी नायिकाएं मानती नहीं है कि मनुष्य जीवन का संचालन ईश्वर के हाथ में है । अंध श्रद्धा (विश्वास) ये जीवन बरबाद होने नहीं देतीं । इनकी आस्था बुद्धिवादी विचारधारा में है, गलत सामाजिक परंपराओं में नहीं । इन नायिकाओं को जो बुद्धिसंगत लगता है वही उन्होंने करके दिखाया है । धन, संपत्ति, समाज, धर्म आदि उन्हें विचलित नहीं कर सकते ।

इन लेखिकाओं ने रोती कलपती विधवा जीवन बितानेवाली नारी का चित्र नहीं प्रस्तुत किया है । इनकी नायिकाएं विधवा न रहकर पुनर्विवाह केलिए तैयार होती हैं और नया जीवन आरम्भ करती हैं । यह साहस उनकी लौकिक दृष्टि का परिणाम है । पाप-पुण्य के हिसाब में पड़कर ये अलौकिक जीवन के ख्यालों से परेशान नहीं हैं ।

इनकी नायिकाएँ परम्परागत नैतिकता का विरोध करती हैं । नारी के शील और चरित्र को लेकर नैतिकता की धारणाएं प्राचीन काल से प्रचलित होती आयी है । सेक्स से संबन्धित आचरण की पवित्रता के सभी नियम नारी जाति पर आरोपित है । एक तरफा नीति और नियमों के कारण नारी के व्यक्तित्व की अवहेलना होती रही है और युगों से उसका शोषण होता रहा है । नारी को पुरुष की दासी बननी पड़ी है । इसलिए अपने उपन्यासों में परम्परागत नैतिक धारणा और मान्यताओं को ठुकराने की आवश्यकता उन्हें महसूस होने लगी । उन्हें मालूम भी था कि यह अत्यन्त कठिन कार्य है । फिर भी उन्होंने अपने उपन्यासों में ऐसी बहादुर नारियों की सृष्टि की जो अपने बलबूते पर खड़े होकर विद्रोह करती हैं । राडिक्कल नारी मुक्ति के प्रभाव के कारण अपनी पसंद के पुरुष के

साथ यौन संबन्ध रखना ये अपराध नहीं मानतीं और अपनी इच्छा के विरुद्ध होनेवाले बलात्कार को पाप नहीं समझतीं । स्त्री पर जब बलात्कार होता है तब वह स्त्री का पाप कैसे हो सकता है यही उनका विचार है । जीविका चलाने केलिए अगर स्त्री, शरीर - विक्रय करती है तो इसका कलंक समाज पर ही पड़ता है ।

नारी पर अन्याय और अत्याचार करनेवाला पुरुष ऐसा भाव वर्तमान समाज में मौजूद है । खुद पर होनेवाले अत्याचारों का मुकाबला नारी को ही करना चाहिए । महिला उपन्यासों की नायिकाएँ इस विचार से प्रेरित है । उनमें समाज-सुधार की भावना बुलन्द नहीं है । ये व्यक्ति जीवन को मज़बूत करने में ध्यान देती हैं । समाजवादी उपन्यासों की नायिकाओं के समान समाज के दलित वर्गों का उद्धार उनका लक्ष्य नहीं है । समाज के निम्न वर्ग के प्रति महिला उपन्यासकारों का ध्यान नहीं गया है । केवल मध्यवर्ग की स्त्रियों के दुःख के बारे में ही इन्होंने लिखा है । ऐसा लगता है वे स्त्री जाति को वर्गों में बाँटना नहीं चाहती हैं, जो भी हो यह उनकी सीमा है ।

प्रगतिशील विचारोंवाली महिला उपन्यासकारों की नायिकाएँ नारी मुक्ति संघर्ष की सुधीर नेत्री हैं । अपने सभी गुणावगुणों के साथ इनकी नायिकाएँ नारी मुक्ति केलिए भरसक प्रयत्न करती हैं और इसमें वे सफल भी निकली हैं ।

पश्चिम में नारी ने परिवार और मातृत्व को तिलांजली देकर स्वतंत्रता पायी है, जो नारी मुक्ति का राडिकल रूप है । सौभाग्य से भारतीय नारी अपने घर को आज भी बचाना चाहती है और पुरुष के विरोध में नहीं बल्कि उनके, सामीप्य और साझेदारी से जीवन को सार्थक रूप में जीना चाहती है । महिला उपन्यासकारों ने नारी के मुक्ति-संघर्ष का चित्रण तो किया है, लेकिन परिवार तोड़कर भागती मुक्ति का चित्रण बहुत कम है ।

समाजवादी फेमिनिस्टों का विचार है कि पूंजीवाद और निजी संपत्ति का अन्त किये बिना समाज में नारी को समानता का हक नहीं मिलेंगे। राडिकल नारी मुक्ति आंदोलनकारियों के अनुसार प्रेम नारी की गुलामी का मीवाधार है। इसलिए उन्होंने जैविक व्यवस्था के उल्लंघन का आह्वान किया है। लैंगिक स्वतंत्रता की मांग, समलैंगिकता, शादी किये बिना "को-हाबिटेशन" आदि की मांग भी उन्होंने की है। उनके अनुसार घर पुरुष प्रधान समाज की छोटी इकाई है। इसलिए पारिवारिक व्यवस्था का पूर्णत: उल्लंघन करने की बात करते हैं।

अस्तित्ववादी फेमिनिस्टों ने समाजवादी फेमिनिस्टों की तरह नारी शोषण को वर्ग शोषण के अंतर्गत सम्मिलित नहीं किया है। नारी को समाज का एक प्रत्येक वर्ग मानना वे उचित नहीं समझते हैं। बूर्ज्वा और मज़दूर के बीच की बुनियादी समस्या अर्थ संबन्धी है। नारी पुरुष के बीच जैव वैज्ञानिक अन्तर भी है। ये पूंजीवाद का नाश करना नहीं चाहते, क्योंकि उनका विश्वास है कि केवल पूंजीवाद में ही दूसरी व्यवस्था की अपेक्षा स्त्रियां अधिक महत्व और स्थान प्राप्त कर सकती हैं। ये स्त्री-मुक्ति केलिए पूरे समूह में एकदम क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने में विश्वास नहीं रखते। इसके बदले मौजूदा व्यवस्था में पूर्ण रूप से न्याय पाने केलिए परिश्रम करना है।

भारतीय लेखिकाएं, समाजवादी और अस्तित्ववादी नारी मुक्ति पर ही ज्यादा ज़ोर देती हैं। इनका विश्वास है कि तत्कालीन पारिवारिक, सामाजिक, व्यवस्था में पुरुषों के मनोभाव में बदलाव लाकर परिवार को टूटने से बचा सकता है और नारी पुन: वेदकालीन सम्मान हासिल कर सकती है। अन्ततोगत्वा भारतीय पुरुष का भी अलग ढंग से शिक्षित और सुसंस्कृत होना अवश्यंभावी है। रास्ता तो कठिन है, परंतु दुर्गम नहीं है। जब तक पुरुष नारी के प्रति अपना दृष्टिकोण नहीं बदलता तब तक उसका विद्रोह जारी रहेगा।

यह जाहिर है कि महिला उपन्यासकारों की रचनाओं पर भी इन नारी मुक्ति आन्दोलनों का जबरदस्त प्रभाव पड़ा है । इनके अधिकांश उपन्यास नायिका-प्रधान है, और ये नायिकाएं सामाजिक बन्धनों को तोडने केलिए तत्पर दिखाई पड़ती हैं । कृष्णा सोबती, उषाप्रियंवदा, शशिप्रभा शास्त्री, मन्नू भण्डारी, दीप्ति खण्डेलवाल आदि के उपन्यासों में नारी का यह विद्रोही रूप स्पष्ट है । ये पारिवारिक जीवन और सामाजिक जीवन में परंपरागत मूल्यों से विद्रोह करती हैं । नारी के केवल कन्या, पुत्री बहिन, पत्नी, माँ या प्रेमिका के रूप में ही नहीं बल्कि एक व्यक्ति के रूप में उसकी अस्मिता को कायम रखने का विशेष प्रयास भी किया गया है ।

आधुनिक समाज की प्रगति की सूचना की एक बडी शर्त है कि स्त्रियाँ भी पुरुषों की तरह सजग हैं । यद्यपि रचनात्मक स्तर पर प्रारंभिक दौर में स्त्रियों की भूमिका दूसरे दर्जे पर रही और पुरुष सत्ताप्रधान समाज में इसका सामाजिक महत्व नगण्य ही रहा पर आधुनिक दुनिया ने इस मिथक को तोडा है । आज स्त्रियाँ उबाऊ, नीरस, कामकाज के अलावा सामाजिक कार्यों में सह-भागी बनी हैं ।

पुरुष प्रधान समाज में आज महिलाएं काफी आगे बढ गई हैं । साथ ही शिक्षित नारी का दायित्व भी बढ गया है । गाँवों में भी काफी परिवर्तन आया है । अन्याय और अत्याचार का सामना करने का साहस भी उसमें आ गया है । महिला उपन्यासकार जानती है कि मुक्ति का प्रयास प्रत्येक नारी के भीतर दबा रहता है, उसको जगाना पडता है । आधुनिक महिला उपन्यासकारों के उपन्यास में चित्रित मुक्त नारी का रूप देखते हुए यह समझना गलत है कि वह मुक्ति द्वारा पुरुष को हेय समझने लगी है, वास्तव में वह तो पुरुष को पूरक बनाने का प्रयास कर रही है । आज की स्त्री मुक्त तो होना चाहती है परन्तु पूर्ण मुक्ति केलिए उसके सामने समस्याएं हैं, जिनसे उसे जूझना आवश्यक है ।

आज नारी अपने व्यक्तित्व की अलग इकाई की खोज में व्यग्र है। अपने व्यक्तित्व के विकास केलिए उसे वैयक्तिक मान्यताओं का सृजन करना है, और इस कार्य में वह ज्यादःतर बेताब है। नारी अपने वैयक्तिक जीवन में अपनी इच्छानुसार परिवर्तन करने की शक्ति रखती है। सामाजिक, राजनीतिक क्षेत्र में वर्तमान नारी ने अपनी शक्ति का परिचय भी दिया है। महिला उपन्यासकारों के नारी - मुक्तिवादी दृष्टिकोण के अनुसार रूपायित नायिकाएं ऐसी ही नारियों का प्रतिनिधित्व करती हैं।

ਗ੍ਰੰਥ ਸੂਚੀ

ग्रंथ - सूची

महिला उपन्यासकारों के उपन्यास

1.	आप का बंटी	मन्नू भण्डारी
		अक्षर प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1971
2.	उसका घर	मेहरुन्नीज़ा परवेज़
		नाशनल पब्लिशिंग हाउस, द्वि.सं. 1978
3.	उसके हिस्से की धूप	मृदुला गर्ग
		राजकमल प्रकाशन, दूसरा संस्करण 1976
4.	एक ज़मीन अपनी	चित्रा मुद्गल
		प्रभात प्रकाशन, प्र.सं. 1990
5.	ऐ लड़की	कृष्णा सोबती
		राजकमल प्रकाशन, प्र.सं. 1992
6.	कर्क रेखा	शशि प्रभाशास्त्री
		राजकमल प्रकाशन, प्र.सं. 1983
7.	कातर धूप	सुधा
		प्रभात प्रकाशन, प्र.सं. 1985
8.	कुमारिकाएं	कृष्णा अग्निहोत्री
		इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, संस्करण 1984
9.	कोहरे	दीप्ति खण्डेलवाल
		राजकमल एण्ड सन्ज़, प्र.सं. 1977
10.	डार से बिछुड़ी	कृष्णा सोबती
		राजकमल प्रकाशन, तृ.सं. 1979
11.	नावें	शशिप्रभा शास्त्री
		राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण 1990
12.	पचपन खम्भे लाल दीवारें	उषा प्रियंवदा
		राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड

13. परछाइयाँ के पीछे — शशिप्रभा शास्त्री
नाशनल पब्लिशिंग हाउस, सं. 1979

14. प्रतिध्वनियाँ — दीप्ति खण्डेलवाल
राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली।

15. मित्रो मर जानी — कृष्णा सोबती
राजकमल प्रकाशन

16. रुकोगी नहीं राधिका — उषा प्रियंवदा
अक्षर प्रकाशन प्रा.लि., द्वि.सं. 1986

17. वह तीसरा — दीप्ति खण्डेलवाल
राजपाल एण्ड सन्स, प्र.सं. 1976

18. शेषयात्रा — उषा प्रियंवदा
राजकमल प्रकाशन, दू.सं. 1988

19. समाधान — क्षमा शुक्ल
विद्या विहार, नई दिल्ली, प्र.सं. 1991

20. सूरजमुखी अँधेरे के — कृष्णा सोबती
राजकमल प्रकाशन, द्वि.सं.

21. स्वामी — मन्नू भंडारी
नाशनल पब्लिशिंग हाउस, प्र.सं. 1982

अन्य उपन्यास

22. अँधेरे बन्द कमरे — मोहन राकेश
राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण 1961

23. अन्तराल — मोहन राकेश
राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण 1968

24. गबन — प्रेमचन्द
सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद

25. कल्याणी — जैनेन्द्र
पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, द्वि.सं. 1961

26· कर्मभूमि — प्रेमचन्द
हंस. प्रकाशन, इलाहाबाद

27· गोदान — प्रेमचन्द
हंस प्रकाशन, 1961

28· झूठा सच — यशपाल
विप्लव कार्यालय, लखनऊ, सं· 1960

29· त्यागपत्र — जैनेन्द्र
पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, 1963

30· दिव्या — यशपाल
विप्लव कार्यालय, लखनऊ

31· न आनेवाला कल — मोहन राकेश
राजपाल एण्ड सन्ज़, दूसरा सं· 1970

32· निर्मला — प्रेमचन्द
सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद

33· नदी के द्वीप — अज्ञेय
सरस्वती प्रेस, वाराणसी, तृ·सं· 1960

34· परख — जैनेन्द्र
पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, f, ·सं· 1961

35· मनुष्य के रूप — यशपाल
विप्लव कार्यालय, पाँचवाँ सं· 1961

36· मेरी तेरी उसकी बात — यशपाल
लोकभारती प्रकाशन, प्र·सं· 1963

37· शेखर एक जीवनी (भाग एक-दो) — अज्ञेय
सरस्वती प्रेस, सप्तम सं· 1961

38· सुखदा
पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, प्र· 1961

39· सुनीता
पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, प्र· 1961

संदर्भ ग्रंथ

40· अस्तित्ववाद और द्वितीय समरोत्तर हिन्दी साहित्य -
विद्या प्रकाशन मन्दिर, दिल्ली,
प्रथम संस्करण 1971

41· अतीत के चलचित्र — महादेवी वर्मा
भारती भण्डार लीडर प्रेस, इलाहाबाद

42· आधुनिक हिन्दी साहित्य में नारी - श्रीमती सरला दुआ
साहित्य निकेतन, कानपुर, प्र·सं·

43· आधुनिक युग की हिन्दी लेखिकाएं - डॉ· उमेश माथुर
ऋषभचरण जैन एण्ड सन्स, नई दिल्ली, 1969

44· आधुनिक हिन्दी प्रबन्ध काव्य में नारी - डॉ· सावित्री डागा
देवनागर प्रकाशन, जयपुर

45· आधुनिक हिन्दी उपन्यास और मानवीय अर्थवत्ता - नवल किशोर
प्रकाशन संस्थान, प्रथम संस्करण 1977

46· आधुनिकता के बारे में तीन अध्याय - डॉ· धनंजय वर्मा
विद्या प्रकाशन मन्दिर

47· आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका - लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय
लोक भारती प्रकाशन, द्वि·सं·

48· आधुनिक हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना - डॉ·सुधाकर शंकर कलवडे
प्रकाशक पुस्तक संस्थान, प्र·सं· 1973

49· आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी भावना - शैलकुमारी
श्रीरंजन सेवा प्रेस, प्रथम संस्करण 1951

50· आधुनिक सामाजिक आन्दोलन और हिन्दी काव्य - कृष्णबिहारी मिश्र
आर्या बुक डिपो

51· आज़ादी के परवाने — हेनरी स्टील कोमेगर
अनु· भगवान सिंह
लोकप्रिय प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1965

52. औरों के बहाने — राजेन्द्र यादव
अक्षर प्रकाशन, 1981

53. गांधी, व्यक्ति विचार और प्रभाव - रामेश्वरी नेहरू
मित्र प्रकाशन, इलाहाबाद, 1964

54. गद्य लेखिका महादेवी वर्मा — योगराज थानी एम.ए.
भारती साहित्य मन्दिर

55. द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास -
लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय
पहला संस्करण, 1973

56. जैनेन्द्र के उपन्यासों में नारी पात्र - डॉ. सावित्री मठपाल
मंगल प्रकाशन, जयपुर

57. जैनेन्द्र के उपन्यास मर्म की तलाश - डॉ. चन्द्रकान्त बांदिवडेकर
पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली।

58. नई कहानी की भूमिका — कमलेश्वर
शब्दाकार, दिल्ली 1978

59. नारी शोषण आईना और आयाम - आशारानी व्होरा
नाशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1984

60. नारी गृहलक्ष्मी और कल्याणी — श्री रामनाथ सुमन
नवभारती प्रकाशन, 1956

61. नारी विद्रोह के भारतीय मंच — आशाराणी व्होरा
नाशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।

62. नारी उत्पीडन की कहानियाँ — गिरिजाशरण
प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1986

63. भारतीय नारी दशा-दिशा — आशा रानी व्होरा
नाशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण 1983

64. भारतीय नारी अस्मिता और अधिकार - वही

65. भैरवप्रसाद गुप्त के उपन्यासों में सामाजिक चेतना - कुमारी प्रिया अंबिका, संतोष प्रकाशन, प्र.सं. 1987

66. महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में बदलते सामाजिक संदर्भ - डॉ.शीलाप्रभा वर्मा
विद्याविहार, कानपुर, प्र.सं. 1987

67. मन्नू भण्डारी के कथा साहित्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन - डॉ.ममता शुक्ल
जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, प्र.सं. 1989

68. मन्नू भण्डारी का उपन्यास श्रीमती नंदिनी मिश्र
हिन्दी साहित्य भण्डार, लखनऊ

69. महादेवी का संस्मरणात्मक गद्य - वरनसखी शर्मा, ए. ए.
शोध प्रबन्ध प्रकाशन, दिल्ली ।

70. मार्क्स एंगेल्स भाग - 3 प्रगति प्रकाशन, मॉस्को ।

71. मोहन राकेश का उपन्यास डॉ. रमानन्द शर्मा
शान्ति प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1990

72. मोहन राकेश का साहित्य डॉ.शरतचन्द्र चुल्कीमठ
आर्य प्रकाशन मण्डली, दिल्ली ।

73. यशपाल व्यक्तित्व और कृतित्व - डॉ. सरोज गुप्ता
अनुराग प्रकाशन, अजमेर

74. विश्व इतिहास की झलक (दूसरा खण्ड) - जवाहरलाल नेहरू
मार्तण्ड उपाध्याय मंत्री सस्ता साहित्य मंडल ।

75. संस्कृति के चार अध्याय रामधारी सिंह दिनकर
उदयांचल प्रकाशन, पटना ।

76. समस्यामूलक उपन्यासकार भगवती प्रसाद वाजपेयी - डॉ.ओमप्रकाश गुप्ता, संस्कृति प्रकाशन, अहमदाबाद

77. सामाजिक उपन्यास और नारी मनोविज्ञान - डॉ.शंकर प्रसाद
अनुपम प्रकाशन, पटना, 1978

78. साठोत्तर हिन्दी उपन्यासों में नारी - डॉ.किरण बाला अरोड़ा
अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर

79. साठोत्तर हिन्दी उपन्यास डॉ. पारुकान्त देसाई
सूर्या प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली, प्र.सं.

80. स्त्री उपेक्षिता मधु भादुड़ि

81. स्त्री: देह की राजनीति से देश की राजनीति तक -
मृणाल पाण्डे
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1987

82. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी लेखिकाएँ - उर्मिला गुप्ता
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली ।

83. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास - डॉ. गीता
नचिकेता प्रकाशन, 1982, प्र.सं.

84. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में सामाजिक परिवर्तन -
डॉ. भैरूलाल गर्ग
चित्रलेखा प्रकाशन

85. हिन्दी उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभाव - भारत भूषण अग्रवाल
प्रथम संस्करण, 1971

86. हिन्दी उपन्यास सातवाँ दशक - जयश्री वरहटे
प्रकाशक संचयन, गोविन्द नगर, कानपुर
प्रथम संस्करण 1988

87. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद - त्रिभुवन सिंह
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी

88. हिन्दी उपन्यास में पारिवारिक संदर्भ - उषा मंत्री
नाशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली,
प्रथम संस्करण, 1991

89. हिन्दी कहानी में जीवन मूल्य - डॉ. रमेश चन्द्र लावनिया
अस्मिता प्रकाशन, गाज़ियाबाद

90• हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन - डॉ• गणेश
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 1960 ई•

91• हिन्दी उपन्यास : समाज और व्यक्ति का द्वन्द्व - डॉ•मंजुला गुप्ता
सूर्य प्रकाशन, नई दिल्ली ।

92• हिन्दी के बहुचर्चित उपन्यास और उपन्यासकार - डॉ•अमर जायसवाल
विद्यासागर प्रकाशन, कानपुर ।

93• हिन्दी साहित्य में नारी भूमिका - डॉ• सरला देवी
केरल हिन्दी साहित्य मंडल,कोचिन,प्र•सं•

94• हिन्दी उपन्यास प्रेम और जीवन - डॉ•शान्ति भारद्वाज
सुशील प्रकाशन, अजमेर, प्र•सं• 1969

95• हिन्दी उपन्यास प्रेमचन्द तथा उत्तर प्रेमचन्द काल - सुषमा धवन
राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण

96• हिन्दी उपन्यास विविध आयाम - डॉ•चन्द्रशेखर सोनवणे
पुस्तक संस्थान, कानपुर

97• हिन्दी उपन्यासों में रूढ़िमुक्त नारी - डॉ•राजा रानी शर्मा
साहित्य मण्डल,दरियागंज,नई
दिल्ली, प्रथम संस्करण 1989

98• हिन्दी उपन्यास में नारी चित्रण - बिन्दु अग्रवाल
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली ।

99• हिन्दी लघु उपन्यास घनश्याम मधुप
राधाकृष्ण प्रकाशन, 1971

100• हिन्दी लेखिकाओं के स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में पुरुष कल्पना -
डॉ•श्रीमती उर्मिला प्रकाश
चिन्ता प्रकाशन, गणेश नगर ।

101• हिन्दी उपन्यासों में सामन्तवाद - डॉ• कमला गुप्ता
अभिनव प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1979

102. हिन्दी उपन्यासों में सामन्तवाद - डॉ. कमला गुप्ता
अभिनव प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1979

103. हिन्दी के मार्क्सवादी उपन्यासों की नायिकाएं - डॉ. एन.जी. सालुंखे
उल्का प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 1992

104. श्रृंखला की कड़ियाँ महादेवी वर्मा
भारती भवन, इलाहाबाद।

अंग्रेजी

105. A Vindication of the Rights of Women -
Mary Wollstone Craft
Penguin Books Ltd.,
Middlesex England, 1792

106. A decade of Women's Movement in India -
Neera Desai
Himalaya Publications,
New Delhi, 1986.

107. A Feminis Dictionary
Cheriskramarae and Paulla Treidhler,
Pandoora Press Boston, Londoan and Henley.

108. About the liberation of Women -
Lenin
Progress Publishers,
Moscow, 1979.

109. Encyclopedia of Feminism - Lisa Tuttle
Arrone Books Ltd., 6265, Chandos Place, London

110. Faces of Feminism
Olive Banks
Basil Blackwell Ltd, 108
Cowely Road, Oxford.

111. Great Women of India
Dr. Radhakrishnan

112. Hindu Women's Right to Property in India -
Dr. Kulwant Gill and
Dr. Paras Diwan
Deep & Deep Publications,
D-1/24 Rajouri, New Delhi
110027

113. Indian Women's battle for Freedom -
Kamala devi Chattopadhyaya,
Abhinav Publications, New Delhi

114. Problems of Women's Liberation - A Marxist approach -
Evelyn Reed
Path Finder Press, Newyork,
First Printing 1980

115. Russia Revalution and Indian 1917-21 -
Tilak Raj Sareen
Sterling Publishers Pvt.Ltd.

116. Six Existentialist thinkers - N.I. Blaekhan
Roht ledge & Kegan Pvt.Ltd.,
London

117. Sexual Politics
Kate millet
Vigro Publications, London, 1970

118. Social Status of North Indian Women - JILA Mukerjee

119. The Ethics of Feminism
A.R. Wadia
Asian Publication Services,
India 1917.

120. The Indian Female Attitude towards sex - Naya Blase
1976, First Edition,
Chethana Publication

121. The Dialetics of Sex
Shalasmith Firestone
Fonathan cape, London 1970.

122. The Second Sex
Simone de Beauvior
Penguin Books, London, 1949

123. The Second stage
Betty Friedan
Penguin Book Ltd.,
London 1949

124. The Feminine Mystique
Betty Friedan
Penguin Book Ltd.
Middlesex, England.

125. The Origin of the Family Private Property and the State -
Federic Engles
progress publishers, Moscow.

126. The Female Eunach
Germaine Greer
Paladin Books 1971
Colling publishing groups.

127. The Constitutional Law of India (Eighth edition)
Dr.T.N.Pandey
Central Law Agency, 30D/1
Mothilal Nehru Road,
Allahabad.

128. Theories of Women Studies - Gloria Bowles & Renate Ouelli Klein
39 Store Street, London
Wolt Pat in 1983

129. Webster's Third New International Dictionary - By G & C Meria & Co.
Volume I A to G, 1976

130. What is Feminism — Juliet Mitchell and Annoakley
Basil Blackwell Ltd.,
108 Lowely Road Oxford

131. Women on the Indian scene - Kalpana Das Guptha
Abinav Publication, New Delhi
1976

132. Women's Organisations and women's Intreghts - P.M.Mathew & M.S. Nema
Ashish Publishing House,
Punjab Bagiy, 1986

133. Women's Rights — Nancy E Meglen and Karen O'Connar
Pregu Publishers,
New york, U.S.A. 1983

134. Women's Movement in India - Prathima Asthana
Vikas Publishing House Pvt.Ltd.

135. Women in Modern Age — Swami Ranganathan
Sri Rama Krishna Asharam
Srinagar 1990.

पत्रिकाएं

आलोचना	जुलाई-सितम्बर 1972
आजकल	सितम्बर 1984
अनुशीलन: प्रेमचन्द विशेषांक	1984
नव भारत टाइम्स	मई 1992
महात्मा गांधी का सन्देश - प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार,	
मानुषी	मई-जून 1979
समीक्षा	भाग - 6, 1972-73
साक्षात्कार	सितम्बर 1980

अन्य ग्रंथ

मनुस्मृति	चौखम्बा संस्कृत सीरिज, वाराणसी ।